F. No. 5-625/2012(HRP)

“अज्ञेय और मर्ढेकर के साहित्य का आधुनिकता के संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन”

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग,
नयी दिल्ली पुरस्कृत

बृहत् शोध परियोजना

- मुख्य अनुसंधाता -

›¡Ö. ÃÖÖŸÖÖß¿Ö µÖÖ¤ü¾Ö

सहयोगी प्राध्यापक तथा अध्यक्ष,
हिंदी विभाग,
शिवाजी महाविद्यालय, रेणापुर
×•Ö. »ÖÖŸÖÖ¸ü (´ÖÆüÖ¸üÖÂ™ü)

- कालावधि -

2013-2015

प्राक्कथन ....

'खुद को तलाशने और तराशने का सबब'

अध्यापक कर्म निभाते हुए मैं हमेशा यह मानता आया हूँ कि एक अध्यापक को निरंतर खुद को संस्कारित, संशोधित और पुनर्नवा होने की यात्रा से गुजरना पड़ता है। अपने संभाषण कौशल, वक्तृता और विषय की गहरी पकड़ का उसे परिचय देना पड़ता है। साथ ही अपने भीतर की शोध-वृत्ति को बढ़ावा देना, पालना-पोसना भी उतना ही जरूरी होता है। सन् 2004 में गुरूदेव डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे जी के मार्गदर्शन में विद्या वाचस्पति (पीएच. डी.) की उपाधि प्राप्त हुई। इसी दरमियान लिखना-पढ़ना चलता रहा। इसी कालखंड में 'हिंदी के कालजयी उपन्यास' तथा 'आधुनिक विमर्श : विविध आयाम' शीर्षक से दो किताबें प्रकाशित हुई। साथ ही बृहत् शोध परियोजना पर कार्य के दौरान अज्ञेय पर दो पुस्तकों का संपादन कार्य पूर्ण हुआ। वे दो पुस्तकें हैं- कवियों के कवि अज्ञेय तथा गद्यकार अज्ञेय तथा उनकी रचनाधर्मिता। ठीक इसी समय हिंदी अध्ययन मंडल के सदस्य के नाते भी काम चल रहा था। किंतु मैं कुछ ठोस करना चाह रहा था। बौद्धिक बेचैनी का दौर शुरू हुआ। परिणामतः विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सहयोग से 'बृहत् शोध परियोजना' के अंतर्गत कुछ ठोस कार्य करने का सुअवसर मिला। अर्थात् मैं मराठी भाषी हूँ। मराठी भाषी होने के नाते मराठी के बेहतरीन से बेहतरीन लेखकों, कवियों, समीक्षकों को पढ़ता आया हूँ। हिंदी तो मेरे जीवन निर्वाह, संकल्प और चेतनशील विवेक-विवेचना का माध्यम रही है। परिणामतः मैं यह अनुभव कर रहा था कि हिंदी-मराठी लेखकों को लेकर तुलनात्मक काम किया जाय। और अंततः विषय निर्धारित हुआ- **'अज्ञेय और मर्ढेकर के साहित्य का आधुनिकता के संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन।'**

वस्तुतः यह विषय मेरे अध्ययन, चिंतन और भावनात्मक दृष्टि से बहुत नजदिक का रहा है। क्योंकि, हिंदी-मराठी साहित्य पढ़ने की अभिरूचि, तुलनात्मक रूप में कुछ नया देने की चाह, दोनों भाषाओं के सांस्कृतिक विश्व को समझने की आकांक्षा तथा दो साहित्यकारों, दो भिन्न भाषाओं, दो भिन्न प्रतिभाओं को समझने-समझाने का स्वर्णिम अवसर जो मिल रहा था। विशेषतः 'आधुनिकता' के संदर्भ में दो भिन्न भाषाओं में स्थित साहित्यिक, सांस्कृतिक परिवेश को अंकित करने हेतु मैं तत्पर हुआ। मेरे मन में जिज्ञासा थी कि हिंदी-मराठी भाषा में आधुनिकता का उदय कब हुआ ? वे कौन-सी साहित्यिक, सांस्कृतिक स्थितियाँ रही हैं, जिनसे साहित्य का परिवेश बदलावों के दौर से गुजर रहा था। वस्तुतः आज हम उत्तर आधुनिकता के दौर से गुजर रहे हैं किंतु उत्तर आधुनिकता की नींव ही आधुनिकता रही है। इस पूरे परिप्रेक्ष्य को समझने की जिज्ञासा ने बृहत् शोध परियोजना का द्वार खोला। अर्थात् हमेशा की तरह 'प्लाटिनम' की भूमिका श्रद्धेय रणसुभे जी ने निभायी। जिनका स्नेह, मार्गदर्शन, सान्निध्य और अपनापा मेरी सामर्थ्यस्थलि रही है।

विषय निर्धारण के पश्चात पढ़ने का लंबा दौर शुरू हुआ। अज्ञेय तो प्रिय थे ही, मर्ढेकर भी कम चुनौतीपूर्ण नहीं थे। इन दोनों लेखकों, रचनाकारों के समग्र साहित्य को पढ़ते-पढ़ते महसूस किया, चुनौतियाँ अनेक हैं। अतः सुधी विद्वानों, समीक्षकों से मिलने, वार्तालाप करने का फैसला किया। इसी श्रृंखला में दिवंगत प्रो. डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल से लंबा वार्तालाप हुआ। उनकी अपूर्व प्रतिभा, तत्वान्वेषी दृष्टि और विश्लेषण की अद्‌भूत क्षमता से मैं लाभान्वित हुआ। सुधी आलोचक प्रो. डॉ. मैनेजर पांडेय, वरिष्ठ लेखिका राजी सेठ और गुरूप्रवर डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे से हुए वार्तालाप ने मेरी समझ का विस्तार किया। उनके सहज संपर्क ने मेरे चिंतन को दिशा मिली। अज्ञेय के अनेक अनछूए पहलुओं को सुनने, समझने का सुअवसर मिला।

अज्ञेय प्रगतिशील चेतना के दौर में व्यक्ति का मनोविश्लेषणशास्त्र बखुबी समझाते हैं तो मर्ढेकर 'बेचैनी का समाजशास्त्र' रचते हैं। दोनों के व्यक्तित्व, कविता, उपन्यास, समीक्षा तथा दोनों के साहित्य-व्यक्तित्व का बाद के हिंदी-मराठी साहित्य पर प्रभावों को लेकर मैं सोचता रहा और लेखन प्रक्रिया से जुडा रहा ।

इस संपूर्ण अभियान में मुझे विषय चयन से लेकर विषय समझ के अनेक आयामों तक अनाविल दृष्टि से लाभान्वित करनेवाले गुरूदेव डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे जी के प्रति श्रद्धानत हूँ। संस्था के अध्यक्ष तथा मेरे स्नेही श्री शिवाजीराव पाटील कव्हेकर हमेशा ही अकादमिक गतिविधियों, अनुसंधाताओं को प्रोत्साहित करते रहे हैं। उनके अड़िग विश्वास और अटूट स्नेह के प्रति कृतज्ञ हूँ। डॉ. विठ्ठलराव मोरे हमेशा मेरी वक्तृता की प्रशंसा करते रहे हैं। उन्होंने मुझे लेखन कार्य के लिए उकसाया, उनके प्रति आभार। महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ. राजेंद्रप्रसाद अवस्थी का सहयोग और स्नेह हमेशा मुझे 'स्व' की तलाश में प्रेरित करता रहा है, उनके प्रति हार्दिक धन्यवाद!

इस सारस्वत कर्म में मेरे मित्रों ने भी कोई कोताही नहीं बरती। वरिष्ठ मार्गदर्शक प्रा.ओम्प्रकाश होळीकर, प्रो. डॉ. अंबादास देशमुख, डॉ. नरसिंहप्रसाद दुबे, डॉ. नागनाथ कुंटे, प्रा. नरदेव गुडे, प्रा. श्याम आगळे, डॉ. रणजीत जाधव, डॉ. विजयकुमार रोडे आदियों के सान्निध्य, साहचर्य और स्नेह ने मेरे व्यक्तित्व और चिंतन को अकादमिक अवदान हेतु बढ़ावा दिया, इन सभी के प्रति कृतज्ञता।

मेरे महाविद्यालय के सहयोगी डॉ. सूर्यकांत पवार, डॉ. सुरेश नांदे, डॉ. जयद्रथ जाधव, प्रा. राजाराम जाधव, डॉ. क्रांति मोरे तथा डॉ. अर्जुन कसबे इन सभी सहयोगियों के प्रति आभार। विशेषतः श्री. रामचंद्र यादव के अकादमिक सुझावों और विषय की बारीकियों को समझने-समझाने की क्षमता से मैं अभिभूत हूँ। महाविद्यालय के ग्रंथपाल प्रा. अंकुश भंडे तथा परम मित्र डॉ. गोविंद काळे के प्रति साधुवाद व्यक्त करता हूँ।

परिवार तो हमेशा मेरी ऊर्जा का केंद्र रहा है। पत्नी रागिनी, कुमार स्वराज, सुपुत्री स्वप्नजा तथा माता-पिता के स्नेह ने हमेशा नया करने का जज्बा मुझमें पैदा किया है। उनका स्नेह ही मेरी सामर्थ्यस्थलि है। मेरे अपने डॉ. संतोष कुलकर्णी, डॉ. हणमंत पवार और बाबासाहेब गायकवाड तो हमेशा मुझे निर्व्याज भाव से साथ देते रहे हैं। इन सभी के प्रति 'आभार' शब्द बहुत छोटा है।

मैंने अपने आपको तलाशने और तराशने का सबब इस शोध परियोजना के माध्यम से ढूँढ़ा है। कोशिश की हैं कि मैं अपने विषय को न्याय दूँ। यह 'कोशिश' और 'कशिश' की छटपटाहट निरंतर बनी रहेगी।

›¡Ö. ÃÖÓÖß¿Ö µÖÖ¤ü¾Ö

मुख्य अनुसंधाता,

सहयोगी प्राध्यापक तथा अध्यक्ष,

हिंदी विभाग, शिवाजी महाविद्यालय, रेणापुर

अनुक्रम

अ.क्र.	†¬µÖÖµÖ	शीर्षक	पृष्ठ क्र.
	प्राक्कथन	खुद को तलाशने और तराशने का सबब	
1.	¯ÖÆü»ÖÖ †¬µÖÖµÖ	आधुनिक हिंदी-मराठी साहित्य की पृष्ठभूमि	1 - 25
2.	×«üŸÖßµÖ †¬µÖÖµÖ	अज्ञेय और मर्ढेकर का व्यक्तित्व : तुलनात्मक अध्ययन	26 - 57
3.	ŸÖéŸÖßµÖ †¬µÖÖµÖ	अज्ञेय और मर्ढेकर की कविता : तुलनात्मक अध्ययन (संवेदना, भाषा तथा शिल्प के आधार पर)	58 - 154
4.	“ÖŸÖã£Ö †¬µÖÖµÖ	अज्ञेय और मर्ढेकर के उपन्यास : तुलनात्मक अध्ययन (आशयद्रव्य, भाषा, शैली और शिल्पगत अध्ययन)	155- 236
5.	¯ÖÖ“Ö´Ö †¬µÖÖµÖ	अज्ञेय और मर्ढेकर की समीक्षा का तुलनात्मक अध्ययन	237 - 299
6.	ÂÖÂšü´Ö †¬µÖÖµÖ	अज्ञेय और मर्ढेकर के साहित्य-व्यक्तित्व का बाद के ØÆü¤üß-´Ö¸üÖšüß ÃÖÖ×ÆüŸµÖ ¯Ö¸ ¯Ö³ÖÖ¾Ö	300 - 337
7.		निष्कर्ष एवं मूल्यांकन	338 - 359
		¯Ö×¸ü×¿ÖÂ™ 1. साक्षात्कार 1.1 प्रो. डॉ. मैनेजर पांडेय 1.2 प्रो. डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल 1.3 Ë¾Öß´ÖŸÖß ¸üÖ•Öß ÃÖšü 1.4 डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे	360 - 403
		2. संदर्भ ग्रंथ सूची	404 - 410

¯ÖÆÖ´Ö †¬µÖÖµÖ

आधुनिक हिंदी-मराठी साहित्य की पृष्ठभूमि

¯Ö£Ö´Ö †¬µÖÖµÖ

आधुनिक हिंदी-मराठी साहित्य की पृष्ठभूमि :

1.1 आधुनिक हिंदी साहित्य की पृष्ठभूमि :

1.1.1 आधुनिकता : विविध पक्ष

1.1.2 आधुनिकता : लक्षण

1.1.3 आधुनिकता : आरंभ से मध्यकाल तक

1.1.4 आधुनिकता : आधुनिक काल

1.1.5 निष्कर्ष :

1.2 आधुनिक मराठी साहित्य की पृष्ठभूमि :

1.2.1 मराठी साहित्य में आधुनिकता (आरंभ से मध्यकाल तक)

1.2.2 आधुनिकता : आधुनिक काल

1.2.3 निष्कर्ष :

1.3 आधुनिक हिंदी-मराठी साहित्य की पृष्ठभूमि - तुलनात्मक अध्ययन :

1.1 आधुनिक हिंदी साहित्य की पृष्ठभूमि :

प्रस्तावना :

‘आधुनिक’शब्द का उच्चारण करते ही, ये शब्द दो अर्थों की प्रतीति कराता है - 1. मध्यकाल Ãö ×³ÖêöÝÖö ÝÖ£öö 2. नवीन इहलौकिक दृष्टिकोण। मध्यकाल-अवरोध, जड़ता, रूढ़िवादिता, स्थिर और एकरसता का आशय प्रदान करता है। विशिष्ट ऐतिहासिक प्रक्रिया ने गत्यात्मकता लायी। वैचारिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तन के चलते नवीन इहलौकिक दृष्टिकोण विकसित हुआ, अपनाया गया। इसी दृष्टिकोण ने पारंपारिक चीजों को नकारना शुरू किया। इसमें केवल नकार ही नहीं था स्वीकारने का साहस भी था। धर्म, दर्शन, साहित्य, चित्र के बारे में नया दृष्टिकोण, पर्यावरण के प्रति सतर्क, सुधार, परिष्कार और अतीत का पुनर्पाठ होने लगा। जाहिर है जब चीजों की नयी व्याख्याएँ होने लगती है, तब पुराना ध्वस्त होने लगता है। आधुनिकता ने गलित, दैववादी, विवेकशून्य, रूढ़िवादी और कठमूल्लेपन की विचारधारा का समर्थन करनेवाली परंपरा का विरोध किया। यह एक वैचारिक एवं सांस्कृतिक प्रक्रिया थी जिसे घटित होने में वर्षों लगे।

¾ÖÃÝÖÝÖ: ‘आधुनिक’ शब्द काल सापेक्ष है। इसका वर्तमान और भूत में प्रयोग होता है। ‘आधुनिकता’ के संबंध में उठाये गये कुछ प्रश्नों से रू-ब-रू हुए बगैर इस अवधारणा को गहराई से समझना मुश्किल है। क्या आधुनिकता का संबंध वर्तमान से है? जीवन पद्धति से है? क्या स्वार्थी, स्वकेंद्रित, पुराणमतवादियों को हम आधुनिक कह सकते हैं? केशभूषा, वेशभूषा की आधुनिक रचना को हम आधुनिक कह सकते हैं? आधुनिकता का संबंध विशिष्ट काल या प्रदेश से है? इन तमाम प्रश्नों के आलोक में यही कहा जा सकता है कि आधुनिकता का संबंध ‘´Ö»µÖ¾µÖ¾ÖÃ£ÖÖ’, ‘विशिष्ट मानसिकता’ †Ö¸ü ‘सांस्कृतिकता’ से है। क्योंकि, आधुनिकता मानवीय मूल्यों को सर्वोपरि मानती है। वह मनुष्य-मनुष्य में किसी प्रकार का भेद नहीं करती। धर्म प्रांत, विचारधारा मनुष्य से बड़े नहीं है। दैववाद और ईश्वर के स्थान पर प्रयत्नवाद और मनुष्य जीवन (मानवी जीवन) को केंद्र में रखकर सोचती है। आत्मपरीक्षण, आत्मसजगता (स्वयं तथा परिवेश के प्रति), अस्तित्त्व की तलाश, अपने भीतर उतरने की प्रक्रिया, नये मूल्यों के प्रति आग्रह, मनुष्य मात्र के प्रति श्रद्धा, परंपरा और नवीन में समन्वय स्थापित करती है। आधुनिकता यही मानती है कि, मनुष्य न वस्तु, न मशिन, न क्रियात्मक शक्ति है, अपितु वह एक स्वतंत्र इकाई है। आधुनिक काल का समग्र साहित्य इसी सोच का परिणाम है। अतः आधुनिकता तार्किकता, बुद्धिवाद का दामन पकड़कर नव समाज की सर्जना करना चाहती है। इस संपूर्ण परिप्रेक्ष्य को समझने हेतु हमें ‘आधुनिकता’ नामक अवधारणा के संबंध में पश्चिमी तथा भारतीय चिंतकों द्वारा प्रतिपादित परिभाषाओं पर गौर करना जरूरी है।

1.1.1 आधुनिकता : विविध पक्ष (पश्चिमी धारणाएँ)

आधुनिकता के विविध पक्षों पर पश्चिमी चिंतकों ने गहराई से चिंतन किया है।

- **लूकाच :** ‘अमूर्त, इतिहास निरपेक्ष, तर्केतर और मिथकीय ही आधुनिकता है।’
- **™ß. ‹ÃÖ. ‡×»»ÖµÖ™ :** ‘अपने समय या युग को व्यर्थता और अराजकता का परिदृश्य ही आधुनिकता है। इलियट परंपरा के निषेध के रूप में भी आधुनिकता को देखता है।’
- **मैथ्यू आर्नाल्ड :** ‘साहित्य में आधुनिकता को एक तत्व की उपस्थिति के रूप में घोषित किया है।’
- **´µÖ¸ ¿ÖÖ¯Ö»Ö :** ‘आधुनिकता कोई एकदम नयी चीज को इंगित करनेवाली धारणा नहीं है अपितु वह संस्कृति की एक आयोजना है, जीवन की एक विशिष्ट दृष्टि।’
- **स्पेनिश चिंतक ओर्तेगा :** ‘आधुनिक कला पर भूतकाल के ऋणात्मक प्रभाव का निर्देश किया है।’[1]
- **पीटर फोकनेट -** ‘आधुनिकता का एक लक्षण, कला के प्रश्नों प्रति तीव्र सजगता बताया Æü…’[2]
- **लायोनल ट्रिलिंग** के मतानुसार, ‘आधुनिक साहित्य का अथवा कम से कम एकदम अधिक उन्नत साहित्य का विशिष्ट लक्षण है - संस्कृति के प्रति तीखी विरोध रेखा।’[3]

इन तमाम पश्चिमी विद्वानों के चिंतन से कुछ तथ्य उभरते हैं। जहाँ लूकाच तर्केतर और मिथकीय रूप आधुनिकता को मानता है, वही टी. एस. इलियट अपने समय या युग को व्यर्थता और अराजकता का परिदृश्य कहता है। आर्नाल्ड ने आधुनिकता को एक तत्व के रूप में देखा तो शार्पले जीवन की एक विशिष्ट दृष्टि मानते हैं। ओर्तेगा इसे भूतकाल के ऋणात्मक प्रभाव का निर्देश के रूप में स्वीकारते हैं तो दूसरी ओर फोकनेट ने आधुनिकता का एक प्रमुख लक्षण ‘प्रश्नों के प्रति तीव्र सजगता’ बताया है। ट्रिलिंग ने इसे ‘संस्कृति के प्रति तीखी विरोध रेखा’ कहा है। तात्पर्य यही है कि पश्चिमी विद्वानों ने आधुनिकता के जीवन दृष्टि, प्रक्रिया और प्रश्नाकुलता जैसे लक्षणों को स्वीकारा Æü…

आधुनिकता के विविध पक्षों पर भारतीय चिंतकों ने भी दो टूक बात रखी है।

- **डॉ. नगेंद्र :** ‘आधुनिक ज्ञान-विज्ञान और टेक्नॉलॉजी के फलस्वरूप उत्पन्न मानवीय स्थितियों का नया, गैर-रोमांटिक और अमिथकीय साक्षात्कार आधुनिकता है।’[4]
- **डॉ. इन्द्रनाथ मदान** इसे प्रक्रिया मानते हुए कहते हैं, ‘इतना साफ हो चुका है कि यह एक प्रक्रिया है और इस प्रक्रिया में स्वीकृत मूल्य अस्वीकृत होकर बनते-मिटते रहते हैं।’
- **›Ö. ¸Ö´ÖÃ¾Ö°þ¯Ö “ÖŸÖ¾Ö¤üß** के अनुसार : ‘अपने वर्तमान के प्रति तीव्रतम सजगता आधुनिकता

का केन्द्रीय तत्व है।’

- **¸ÖÖ¤ü¸¿Ö ×´ÖÁÖ :** ‘दुर्भाग्य से शहरी मध्यवर्गीय व्यक्ति जीवन की जडता, ठहराव, स्तबंधता, टूटन, कुंठा को ही आधुनिकता बोध मान लिया जाता है।’

- **रमेश कुंतल मेघ** ने आधुनिकता को स्पष्ट करते हुए लिखा, ‘आधुनिकता एक प्रक्रिया है जिसमें मूल्य बनते-मिटते रहते हैं। इसमें मूल्यहीनता नहीं रहती। आधुनिकता बंधी बंधायी लीक को मोड़ देती है। हर मूल्य पर प्रश्नचिह्न लगाती चलती है। आधुनिकता को एक मूल्य के रूप में आंकने के बजाए एक प्रक्रिया के रूप में पहचाना जाए।’[5]

- **कुमार विमल :** ‘आधुनिकता अतीत से प्रस्थान है।’

- **डॉ. बलराम पाण्डेय** का कथन है- “युग की बदली हुई परिस्थिति के अनुसार सोचना और उसे कार्यरूप देना ही आधुनिकता है। आधुनिकता से हमें उन रूढ़ियों को नकारने में मदद मिलती हैं जो हमारे समाज को गति देने के लिए आवश्यक है। आधुनिकता से संकीर्णता खत्म होती है। आधुनिक होने के लिए आवश्यक है कि हम धर्म, जाति और पुरानी मान्यताओं को छोड़कर अपनी दृष्टि और अपने विचार को व्यापक बनाएँ। आधुनिकता का संबंध प्रायः सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों से अधिक होता है।”[6]

- **रामधारीसिंह दिनकर :** “जिसे हम आधुनिकता कहते हैं, वह एक प्रक्रिया का नाम है। यह प्रक्रिया अंधविश्वास से बाहर निकलने की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया बुद्धिवादी बनने की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया धर्म के सही रूप पर पहुँचने की प्रक्रिया है। आधुनिक वह है जो मनुष्य की ऊँचाई उसकी जाति या गोत्र से नहीं, बल्कि उसके कर्म से मानता है। आधुनिक वह है जो मनुष्य-मनुष्य को समान समझता है। इस अर्थ में आधुनिकता का आरंभ बुद्ध के समय में हुआ था और तबसे वह धारा बराबर ²ÖÆüÖß †Ö ¸üÆüß Æîü…”

- **†–ÖµÖ :** अज्ञेय ने आधुनिकता पर स्वतंत्र चिंतन किया है। ‘आत्मनेपद’ के अनेक निबंधों में नवीनता तथा आधुनिकता के विविध पक्षों पर उनकी चिंतनशील दृष्टि पड़ी है। वे लिखते हैं, “आधुनिकता के लोगों ने अलग-अलग अर्थ किये हैं। मेरी दृष्टि से आधुनिकता एक अनगढ़ चीज है। वह एक सिद्‌ध स्थिति नहीं, एक प्रक्रिया है। संस्कारवान होने की क्रिया को ही मैं आधुनिकता मानता Æü…”

इसके अलावा भी अनेक चिंतकों, आलोचकों ने आधुनिकता पर अपनी लेखनी चलायी है। किन्तु उपर्युक्त तमाम भारतीय लेखकों, आलोचकों ने आधुनिकता नयी तकनीकी व्यवस्था की देन, वर्तमान के प्रति तीव्र सजगता, एक प्रक्रिया, अतीत से प्रस्थान, रूढ़ि विरोध, परिवर्तनकामी चेतना तथा बुद्धितत्व की प्रधानता को माना है।

पश्चिमी तथा भारतीय विद्वानों द्वारा प्रतिपादित परिभाषाओं, अर्थो तथा व्याख्याओं के आधार पर ये कहा जा सकता है कि, अधिकांश विद्वानों ने इसे प्रक्रिया, जीवन दृष्टि और बुद्धिप्रधान चेतना के रूप में देखा है। अधिकांश विद्वानों ने परिभाषाओं में लक्षणों को स्थान दिया है।

1.1.2 आधुनिकता : लक्षण

उपरोल्लेखित अनेक विद्वानों के विचार सूत्रों का संगठन करके आधुनिकता के लक्षणों को समझा जा सकता है। वे लक्षण इस प्रकार हैं-

1. वैज्ञानिक दृष्टिकोण
2. आधुनिकता:प्रक्रिया
3. गुणात्मक धारणा
4. आधुनिकता : एक वृत्ति
5. ऐतिहासिक दृष्टि
6. नयी मानसिकता
7. रचना में आधुनिकता का प्रतिफलन
8. ¯Ö¸ü¯Ö¸üÖ ×¾Ö¸üÖ¬Ö
9. आधुनिकता तथा समसामयिकता
10. आधुनिकता : एक विशिष्ट दृष्टिकोण
11. आधुनिकता तथा मार्क्सवादी दर्शन
12. आधुनिकीकरण की सही दिशा।

आधुनिकता ग्रंथ के लेखक **ए. ख्वाजा** द्वारा बताये गये लक्षण -

1. जीवन सापेक्षता
2. साधनों की विपुलता
3. मानवीय प्रेम और व्यक्ति की गरिमा
4. आत्मिक आध्यात्मिक स्वाधीनता
5. विविधोन्मुखी साम्य
6. गत्यात्मकता मूल्यों की अनंत रचनाशीलता को आधुनिकता के लक्षण के रूप में गिनाया है।

'साहित्यिक आधुनिकतावाद' के संपादक **इरविंग हो** (Iring Howe) ने आधुनिकता के कुछ गुणधर्म बताये हैं, जो इस प्रकार हैं-

1. आस्था का निषेध

2. प्रकृति को स्थान नहीं
3. आदिमतावाद:आधुनिकतावादी लेखन का पड़ाव
4. चरित्र, संगठन और कथा नायक
5. शून्यतावाद (निहिलिज्म) को आधुनिक साहित्य में स्थान के बारें में नया ¯ö²öö¬ö…

अलावा इसके आधुनिकता के प्रमुख लक्षण कुछ इस प्रकार हैं- परंपरा से विच्छेद, पुराने मूल्यों के प्रति विरोध, प्रयोगवृत्ति का प्राबल्य, दुर्बोधता, नैराश्यबोध, विजनताबोध, आस्थाहीनता, असंगति या अर्थहीनता का स्वर प्रकट होता है। परंतु विद्रोह और विक्षोभ के स्वर में बौद्धिकता और चिन्तनप्रवणता अधिक मात्रा में लक्षित होने लगती है।

विख्यात लेखक **स्टीफन स्पैंडर** ने आधुनिकता के कुछ प्रमुख लक्षण बताए हैं -

1. आधुनिकता अनुभूति का नयी रचनात्मकता के जरिये प्रत्याभिज्ञान
2. समाज को प्रभावित करनेवाली कला की आशामयी प्रतिभा की खोज
3. जीवन की भागीदारी के प्रतीकीकरणों द्वारा अतीत को वर्तमान द्वारा निरस्त करने वाला कलात्मक विचार
4. कला का वैकल्पिक जीवन
5. ¬¾öÃö
6. ¯ö¸´¯ö¸ö …

आधुनिकता के बारे में हर युग के लेखक-आलोचकों ने अपने-अपने मतों को रखा है। इन पश्चिमी चिंतकों तथा भारतीय चिंतकों के चिंतन के परिप्रेक्ष्य तथा आधुनिक कालीन साहित्य की प्रवृत्ति विशेष को ध्यान में रखते हुए अनेक लक्षण दिखाई देतें हैं। जैसे - प्रयोगशीलता, अस्तित्ववाद, आधुनिक भाव-बोध, वैयक्तिकता, स्वच्छंदताविरोध बनाम छायावाद विरोध, अमूर्तता, बौद्धिकता, रूपवादिता, लघु मानववाद और अनुभव की विशिष्टता, स्मृतिहीनता, संकट बोध, मूल्यहीनता और अराजकता, इतिहास और परंपरा से मुक्ति, समसामायिकता महायुद्धों का त्रासद बोध, महानगरीय बोध, आत्मपरायापन या अलगाव बोध, नया कलाबोध आदि लक्षण नजर आते हैं। इसी बात को लक्ष्य करते हुए आधुनिकता का प्रमुख लक्षण अमूर्तता मानते हुए विपिनकुमार अग्रवाल ने लिखा है, “सर्वमान्य तक पहुँचने के लिए आधुनिकता अमूर्तन का रास्ता अपनाती है। सैद्धांतिक विज्ञान में नई चित्रकला में और वास्तव में संपूर्ण आधुनिकता के क्षेत्र में हमें अमूर्तन की चर्चा बहुत मिलती है। कुछ लोग कह सकते हैं कि एक अर्थ में छायावादी कवि भी अमूर्तन करता है तो फिर उसमें और आधुनिक कवि में अंतर कहाँ है और किस प्रकार का है।”[7] तो ठीक उसी समय लक्ष्मीकांत वर्मा

आधुनिकता का प्रमुख लक्षण ‘प्रखर बौद्धिकता’ बताते हैं। उनका कथन है, “आधुनिक युग की सारी प्रेक्षणीयता बौद्धिक होने में है। जो कलाभाव प्रधान है या भावुकता से ओतप्रोत है, वह जड़ है उसमें प्रेरणा नहीं है। इसलिए ट्राजन हॉर्स की भाँति भावुकता कला के क्षेत्र में सदैव आपत्तियों को जन्म देती है। आज का नया भाव-बोध इस सत्य को स्वीकार करता है कि केवल कोरी भावुकता आज के मनुष्य को संतुष्ट नहीं कर सकती, क्योंकि सारी मानव जाति की स्थिति कैशौर्य अवस्था की भावुकता के चरण को लांघ चुकी है।”[8] आधुनिकता का एक और प्रमुख लक्षण माना गया- संकट बोध। संकट बोध से तात्पर्य है मानवीय अस्तित्व के संकट का बोध। इसी बात को उजागर करते हुए धर्मवीर भारती ने लिखा है, “संकट का बोध और आधुनिकता बोध बहुधा अभिन्न रहते हैं, परस्परावलंबित। यह संकट का बोध हमें वर्तमान के प्रति जागरूक बनाता है। इस युग का अपना आधुनिकता बोध एक ऐसा बोध है जो इतिहास में पहली बार उदित हुआ। यह केवल आर्थिक, राजनीतिक या सामाजिक संकट नहीं, वरण मानव जीवन के मौलिक प्रतिमानों का संकट है।”[9]

अशोक वाजपेयी ने आधुनिकता का प्रमुख लक्षण ‘स्मृतिहीनता’[10] को माना है तो साथ ही वे यह बताना नहीं भूलते कि प्रखर बौद्धिकता, निपट अकेलापन, अथक पीड़ा, गहरा आत्मान्वेषण, अनेक भाषायी परंपराओं से सीधा संपर्क, इतिहासहीनता आदि। डॉ. रमेश कुंतल मेघ ने ‘समसामयिकता (कंटेपोरेटी)’[11] को आधुनिकता का मुख्य स्वर स्वीकार किया है। विपिनकुमार अग्रवाल आधुनिकता का मुख्य लक्षण ‘¸Ö´ÖÖ×™ÖxÃÖ•´Ö ×¾Ö¸Ö¬Ö’ को मानते हैं। तो डॉ. रघुवंश ने “महानगरीय बोध”[12] ŸÖ£ÖÖ डॉ. गंगाप्रसाद विमल ने भी ‘महानगरीय बोध’ को ही आधुनिकता का प्रधान गुणधर्म माना है। इंद्रनाथ मदान वैयक्तिकता, शमशेर बहादुर सिंह छायावाद-विरोध, गुप्त नया कला-बोध, प्रयोगधर्मिता, हजारीप्रसाद द्विवेदी सामूहिक मुक्ति का स्वर आधुनिकता का प्रधान लक्षण मानते हैं। ठीक उसी ÃÖ´ÖµÖ †´ÖêÝÖ¸ÖµÖ ‘†ÛÃÖŸÖŸ¾Ö¾ÖÖ¤’ को आधुनिकता का मूलाधार मानते हैं। डेहरन फोर्ड आधुनिकता का प्राण वायु ‘विवेक’ को मानते हैं। डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने अपनी पुस्तक ‘ØÆ¤ß ÃÖÖ×ÆŸµÖ †Ö¸ संवेदना का विकास’ में आधुनिकता का प्रमुख लक्षण ‘सचेतनता’ को स्वीकार किया है। जीने की अदम्य लालसा की प्रवृत्ति आधुनिकता के साथ जुड़ी हुई चीज है। डॉ. नगेन्द्र विवेकयुक्त वैज्ञानिक दृष्टिकोण, धर्मवीर भारती आंतरिकता का पूर्ण प्रस्फुटन, दिनकर बुद्धिवादी मनोवृत्ति आदि लक्षण 2ÖŸÖÖŸÖ Æî…

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि, उपरोल्लेखित तमाम लक्षणों के आधार पर आधुनिकता क्या है, इसका संज्ञान हो जाता है। विशेषतः अनेक विद्वानों ने अपनी-अपनी दृष्टि से इसे समझने-समझाने का प्रयास किया है। इन्हीं तत्वों, धारणाओं या लक्षणों को आधार बनाकर आधुनिकता की प्रवृत्ति (साहित्य में आधुनिकता) को समझने में सहायता मिल सकती है। हिंदी साहित्य में

आधुनिकता का आगमन कब से होता है, इस बात को हम अगले उपबंध में देखेंगे।

1.1.3 आधुनिकता : आरंभ से मध्यकाल तक -

आधुनिकता क्या है? यदि हम ऐसा प्रश्न पूछेंगे तो उसके अनेक उत्तर मिलेंगे। वस्तुत:आधुनिकता अर्थबहुल संज्ञा है। आधुनिक, आधुनिकता, आधुनिकतावाद, आधुनिकीकरण ये सभी संज्ञाएँ संस्कृत की 'अधुना' धातु से बनी हैं। अधुना शब्द का अर्थ है-अभी अभी अर्थात् यह कालवाची बोध देता है। उपर्युक्त सारी संज्ञाएँ अंग्रेजी के मॉडर्न संज्ञा से संबंधित हैं। आधुनिक-मॉडर्न, आधुनिकता-मॉडर्निटी, आधुनिकतावाद-मॉडर्निज्म, आधुनिकीकरण-मॉडर्नाइजेशन आदि शब्दों की प्रतीति होती है। अत: जब हम आधुनिक या आधुनिकता आदि संज्ञाओं को व्यव⁄त करते हैं तब हम अंग्रेजी संज्ञा मॉडर्न का बोध कराते हैं।

'आधुनिकता' नामक संज्ञा के बारे में प्राप्त ज्ञानदशा को देखते हुए यह समझ लेना नितांत जरूरी है कि, हिंदी साहित्य में आधुनिकता की शुरूआत कहाँ से मानी जाएगी? एक प्रवृत्ति विशेष के रूप में उसका प्रचलन कब से शुरू हुआ? भारतीय जीवन में आधुनिकता का प्रारंभ कब से होता है? जीवन में आधुनिकता है किन्तु साहित्य में नहीं ऐसा तो संभव नहीं है। क्योंकि, मानवीय जीवन में जब भौतिक उन्नति, प्रगति और बदलाव का दौर शुरू होता है तो ठीक उसी समय साहित्य में उसका प्रतिबिंब दिखाई देने लगता है।

आधुनिकता के जन्म के मूल में विज्ञान है। विज्ञान ने आधुनिकता को आधुनिकीकरण के जरिए व्यंजित किया है। डॉ. गंगाप्रसाद विमल मानते हैं कि, "तकनीकी विकास आधुनिकता की देन है। यह भी कहा जाता है कि तकनीकी विकास के कारण ही आधुनिकता का जन्म हुआ।"[13] विज्ञान, तकनीक और नवीन इहलौकिक दृष्टिकोण ने विश्वसमाज को एक नयी जीवन प्रणाली, जीवनदृष्टि दी। यह सही है कि, डार्विन, मार्क्स, फ्रायड, आइनस्टाइन इन चार प्रमुख विचारकों ने प्रकृति, राज्य, मानसिकता तथा काल के अन्तरिक्ष में छिपे रहस्यों को खोजा। इन चारों की वैचारिक आधारभूमि ने एक नयी मूल्यव्यवस्था दी। अत: मूल्य संबंधी तनाव महत्त्वपूर्ण कारक तत्व बना। परंपरागत मूल्यों के प्रति संशय और एक नयी मूल्य अवधारणा के प्रति ललक दिखाई पडती है। वस्तुतः आधुनिकता मूल्य नहीं है किन्तु वह मूल्यचक्र हो सकता है।

आधुनिकता के मूल में स्वतंत्रता का भाव है। आधुनिक मनुष्य स्वतंत्रता को लेकर अधिक सचेत हुआ। साथ ही धर्म-दर्शन और वैज्ञानिक चिंतन के बीच निर्धारक रेखा है आधुनिकता। आधुनिकता के केंद्र में मनुष्य है। इसलिए मानवीय दायित्व, मानवीय सुरक्षा, मानवीय विकास और मानवीय सर्जना का विकल्प बनकर उस अतिवाद, ध्वंस और खतरे का विकल्प आधुनिकता बनती है। तकनीकी विकास, संस्कारित संस्कृति बोध, वैज्ञानिक विचार दृष्टि, भविष्य के प्रति जागरूकता

आदि सभी मानवीय दायित्व की परिणितियाँ हैं। अर्थात् मानवीय दायित्व ही वह बिंदु है जिसने मानव को विज्ञान और तकनीकी विकास के लिए अनुप्रेरित किया है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि, अतीत और वर्तमान के संघर्ष ने आधुनिकता को जन्म दिया है। साथ ही आधुनिकता ने स्वतंत्र अस्मिता की अनुभावना की सृष्टि की, जिसने आधुनिक मनुष्य को वर्तमान के प्रति पूर्ण सजग बनाया। इन तमाम आधारों को केंद्र में रखकर इतना ही कहा जा सकता है कि, आधुनिकता से तात्पर्य है- 'विचारों की सार्वभौमिकता।'

हिंदी में आधुनिकता के प्रारंभ की चर्चा के बारें में रामधारीसिंह दिनकर का वक्तव्य बड़ा विचारणीय है। वे लिखते हैं, "जिसे हम आधुनिकता कहते हैं, वह एक प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया अंधविश्वास से बाहर निकलने की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया बुद्धिवादी बनने की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया धर्म के सही रूप पर पहुँचने की प्रक्रिया है। आधुनिक वह है जो मनुष्य की ऊँचाई, उसकी जाति या गोत्र से नहीं, बल्कि उसके कर्म से मानती है। आधुनिक वह है जो मनुष्य-मनुष्य को समान समझता है। इस अर्थ में आधुनिकता का आरंभ बुद्ध के समय में हुआ था और तब से वह धारा बराबर बहती रही है।"[14] दिनकर जी के इस संपूर्ण वक्तव्य का सार यही है कि, आधुनिकता एक प्रक्रिया है। वह धर्म समीक्षा, समता तत्व और वैज्ञानिक जीवन दृष्टि की परिचायक है। इसी अर्थ में उन्होंने भारत में आधुनिकता की शुरूआत 'बुद्ध काल' से अर्थात् आज से ढ़ाई हजार वर्ष पूर्व से मानी है। अर्थात् एक धारणा यह भी है कि आधुनिकता शब्द पिछले 5000 वर्षों से भी अधिक लगातार इस्तेमाल में रहा और कई बार इस शब्द के अर्थों की झाड़पोंछ होती रही है- कभी नए, कभी पुराने, कभी परंपरा, कभी इन सबको समझने-समझाने की कोशिश में।

कर्मवाद, नियतिवाद का विलोम रचते हुए परिस्थिति बोध और कर्तव्य-बोध को यूरोपीय लोगों ने आधार बनाया। "यूरोपीय देशों में आधुनिकता का विकास औपनिवेशिक साम्राज्यों के विस्तार के साथ हुआ और पराधीन देशों में प्रतिरोध आंदोलन के साथ। इसलिए स्वतंत्रता, समानता, जनतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, बुद्धिवाद जैसे सार्वभौम आधुनिक मूल्य एक जैसे हैं, लेकिन उनकी अन्तर्वस्तु में वर्चस्व और प्रतिरोध की रणनीतियों और विचारधाराओं के कारण पर्याप्त भिन्नता दिखाई देती है।"[15]

वस्तुतः म. गौतम बुद्ध इस देश के पहले विचारक थे जिन्होंने विवेक, वैज्ञानिक दृष्टि, तार्किकता और मानववाद को केंद्र में रखकर सोचा। चिंतन के केंद्र में मनुष्य को लाने का श्रेय बुद्ध को ही जाता है। बुद्ध के चिंतन में आधुनिकता के अनेक लक्षण लक्षित होते हैं। बुद्ध को हमने आधुनिक इसलिए कहा कि, वे भविष्य के बारे में सोच रहे थे। आधुनिकता का एक बहुव्याप्त उपयोग इतिहासपरक अर्थ में भी होता है। जब हम कालिदास, होमर, शेक्सपियर या कबीर जैसे विद्रोही के

लिए आधुनिक कहते हैं, तो एक ही मतलब होता है, वह अपने समय का बोध होता है, इस अर्थ में हम बुद्ध को आधुनिक कहते हैं। इन सभी कवि लेखकों को अपने समय का बोध था। उन्हें अपने समय की गहरी अभिज्ञता थी। जहाँ तक अपने समय के बोध का सवाल है प्रेमचंद आज भी उतने ही आधुनिक हैं जितने कि अज्ञेय।

साहित्य के प्रारंभिक कालीन कालबोध से मध्यकाल तक आते-आते आधुनिकता समय सापेक्ष संज्ञा बनती है। जहाँ अंग्रेजी साहित्य में आधुनिक काल का प्रारंभ 1660 से होता है, जबकि ØÆÉ¤ß ´Ö 1850 से। यह देखना दिलचस्प होगा कि, आधुनिकता का मध्यकाल से आधुनिक काल तक विकास किस रूप में हुआ? कैसे हुआ?

मध्यकालीनता से प्रस्थान और औद्योगिक प्रगति के संबंध में जुड़ी हुई एक जीवन दृष्टि के रूप में आधुनिकता विकसित होने लगी। पंद्रहवीं सदी में रेनेसां काल में आधुनिकता का अर्थ मुख्यतः मानवीय संदर्भों में कलाओं को पहचाना गया था और यही वह समय भी है जब आधुनिक विज्ञान की एक निश्चित पहचान बनने लगी थी। यह पहचान धीरे-धीरे चिंतन का रूप धारण करने लगी थी। यूरोप में सत्रहवीं सदी में जो चिंतन उभर रहा था, उसका मुख्य आधार तर्क और विश्लेषणात्मक सोच था। तर्क-विवेचन, विश्लेषण, संश्लेषण, अन्वेषण और प्रयोगशीलता का संबंध आधुनिकता से जुड़ता चला गया। उन्नीसवीं शताब्दी तक आते-आते दुनिया भर में वैचारिक क्रांति का, दर्शन का अलग दौर चला। उन्नीसवीं शताब्दी की पूरी सोच पर असर डालनेवाले तीन प्रमुख विचारक सामने आये। जिसमें मार्क्स (राज्य), फ्रायड (मनोविज्ञान) और आइन्स्टाइन (अंतरिक्ष का खोजी) का समावेश होता है। इन तीनों की विचारभूमि बीसवीं शताब्दी के चिंतन की आधारभूमि बनीं। मध्यकालीन सामंती जड़ता से बाहर निकलकर आधुनिक जीवनमूल्यों का सामना पहली बार बीसवीं शती का मनुष्य कर रहा था। 'आधुनिकता पर पुनर्विचार' पुस्तक में अजय तिवारी ने इसी पर ध्यान केंद्रित करते हुए लिखा है कि, "सामन्तवाद मध्यकालीन है, पूंजीवाद आधुनिक। परलोक का विचार मध्यकालीन है, इहलोक का विचार आधुनिक। ईश्वर की शक्ति का विकास मध्यकालीन है, मनुष्य की भूमिका का विश्वास आधुनिक। कालचक्र की धारणा मध्यकालीन है, इतिहास की विकासवादी धारणा आधुनिक। अतीत की निरंतरता मध्यकालीन बोध है, ज्ञान की विकाससमानता और भविष्य की चेतना आधुनिक। श्रद्धा मध्यकालीन मूल्य है, तर्क आधुनिक। धर्म मध्यकालीन है, विज्ञान आधुनिक। संतोष मध्यकालीन भाव है असंतोष आधुनिक। संस्कार मध्यकालीन जीवन पद्धति है, व्यवहार आधुनिक। भाग्य मध्यकालीन चेतना है, परिस्थिति-बोध आधुनिक। अध्यात्म मध्यकालीन विचार है, मानववाद आधुनिक। कुटुंब मध्यकालीन संस्था है, व्यक्ति आधुनिक। वर्ण मध्यकालीन सम्बन्ध है, वर्ग आधुनिक। दोनों के बीच संवाद हो सकता है, सामंजस्य नहीं।"[16] यही भाव सन् 1850 तक आते-

आते विकसित हो रहा था। उत्पादन के ढांचे में परिवर्तन, बाजार की मांग का विस्तार, उत्पादन और तकनीक का विस्तार आदि परिदृश्य घटित हो रहा था। परिणामतः 1850 तक आते-आते गद्यकाल का आरंभ हुआ। गद्य ने मनुष्य के सोचने की क्षमता को विस्तार दिया। तर्कवाद, मानववाद और आर्थिक-प्राविधिक मूल्यों से साहित्य और जीवन परिभाषित होने लगा। उधर यूरोपीय देशों में आधुनिकता का विकास औपनिवेशिक साम्राज्यों के विस्तार के साथ हुआ और पराधीन देशों में प्रतिरोध आंदोलन के साथ। प्रतिरोधी संस्कृति ने विवेक सम्मत विरोध का रूख अपनाया। ठीक उसी समय पश्चिम में पूंजीवादी व्यवस्था ने औद्योगिक संस्कृति को जन्म दिया और औद्योगिक संस्कृति के आधुनिकीकरण ने आधुनिकता को जन्म दिया।

कुल मिलाकर यह कह सकते हैं कि,वैश्विक स्तर पर हो रही उथल-पुथल और ज्ञान-विज्ञान की नयी प्रणाली ने मनुष्य के भौतिक जगत को अधिक विकासशील और गतिमान बनाया। परिणामतः 1850 तक आते-आते मध्यकालीन सामंती मानसिकता की सांकल ढीली पड रही थी। तो ठीक उसी समय नया तकनीक, नवज्ञान सर्जना ने मनुष्य को अधिक विचारशील तथा संवेदनशील बनाया। परिणामतः आधुनिकता का एक नया दौर शुरू हुआ।

1.1.4 आधुनिकता : आधुनिक काल -

हिंदी में आधुनिक काल का प्रारंभ भारतेंदु युग से अर्थात् नवजागरण काल से माना जाता है। नवजागरण के उदय के मूल में यहाँ की सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक स्थितियाँ कारणीभूत रही। प्रबोधन काल से निकलकर समाज, साहित्य, संस्कृति और कला के क्षेत्र में आधुनिक चेतना का आगमन हुआ। आधुनिकता ने ज्ञान, चेतना, विवेक और बोध को प्रभावित किया। क्योंकि, ठीक इसी समय अंग्रेजों की बदौलत शिक्षा व्यवस्था, डाक, तार, रेल, छापखाना प्रचलन में आया। उन्नीसवीं शताब्दी में औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप यूरोप में सामाजिक, आर्थिक विकास हुआ। औद्योगिक क्रांति ने उत्पादन का तंत्र बदला। नई क्रांतिकारी धाराओं ने व्यक्ति और समाज के सोचने के रवैये में मूलभूत परिवर्तन किया। वस्तुवादी दृष्टिकोण ने वस्तु, व्यक्ति, समाज, प्रवृत्ति और धर्म के आपसी संबंधों का संश्लेषण और विश्लेषण करना शुरू किया। परिणामतः नई सोच का आगाज Æ†Ö… ‡ÃÖ ÆÖ ‘ज्ञानोदय काल’ के रूप में जाना जाता है। “हिंदी में आधुनिकता का आरंभ हिंदी नवजागरण से और आधुनिकतावाद का प्रारंभ प्रयोगवाद से होता है।”[17] पश्चिम में आधुनिकता की “Ö““ÖÖ 1910-15 से शुरू होती है। जबकि डी. एच. लॉरेन्स इसी तथ्य को स्वीकारते हैं, जाब गॉस के मतानुसार 1920 से। वस्तुतः आधुनिकता की अनुगूंजे ‘µÖ»ÖßÃÖßÃÖ’ †Ö¸ ‘¾ÖÃ™»Ö›’ में सुनाई देती है। भारतीय समाज धीरे-धीरे पाश्चात्यों के सम्पर्क में आता गया। परिणामतः आधुनिकीकरण की प्रक्रिया शुरू हुई। यह प्रक्रिया हिंदी में भारतेंदु काल से होती है। युगीन जीवन के संदर्भ बदलते गये।

यंत्रयुग का आविर्भाव हुआ। बीसवीं सदी के आरंभिक दौर में जीवन के प्रति देखने का नजरिया आमूलचूल बदलता गया। इसी बात को उजागर करते हुए भोलाभाई पटेल लिखते हैं, "इस शती के साहित्य पर एक ओर यंत्र विज्ञान का, दूसरी ओर मनोविज्ञान आदि का प्रभाव रहा है। इन सब परिबलों से आधुनिकता का नया बोध पैदा हुआ है। इसका धरातल अंतर्राष्ट्रीय है। भारतीय साहित्य पर भी उसका असर हुआ। प्रतीकवाद, बिंबवाद, अतियथार्थवाद आदि कविता आंदोलनों के साथ बॉदलेयर, इलियट और पाउंड जैसे कवियों के संपर्क ने भारतीय सर्जक चेतना को उद्वेलित किया। बंगला के बुद्धदेव बसु, सुधीन्द्र दत्त, जीवनानंद दास या विष्णु डे, मराठी के बा. सी. मर्ढेकर, गुजराती के उमाशंकर जोशी, सुरेश जोशी और निरंजन भगत, हिंदी में अज्ञेय आदि कवियों की कविता आधुनिक साहित्य के इस वैश्विक धरातल से अनुप्राणित है।"[18] भारतीय साहित्य में, अनेक भाषाओं में आधुनिकता के पदचिह्न अंकित होने लगे। आधुनिकता के प्रधान वैशिष्ट्यों को लेकर हिंदी का आधुनिककालीन साहित्यकार साहित्य की सर्जना करने लगा। जिसमें मुख्य रूप से प्रयोगशीलता, अस्तित्ववाद, आधुनिक भाव-बोध, वैयक्तिकता का आग्रह, स्वच्छंदता-विरोध बनाम छायावाद-विरोध, अमूर्तता, बौद्धिकता, रूपवादिता, लघु मानववाद और अनुभव की विशिष्टता, स्मृतिहीनता, संकट बोध, मूल्यहीनता और अराजकता, इतिहास और परंपरा से मुक्ति, समसामायिकता, महायुद्धों का त्रासदबोध, महानगरीय बोध, आत्मपरायापन या अलगाव बोध तथा नया कला-बोध आदि आधुनिक संवेदन की वृत्तियों की पुष्टि होने लगी। समाज जीवन के बदलते समाजार्थिक ढांचे का परिदृश्य साहित्य के प्रांगण में खुलने लगा। हिंदी साहित्य में प्रेमचंद का आगमन एक नई भावभूमि के साथ हुआ। जिन्होंने जीवन यथार्थ के महीन पर्दे खोलकर अनुभूति का नया आकाश सृजित किया। प्रेमचंद मूक भारतीय समाज के वकील बनें और मनुष्य की त्रासद स्थितियों का बोध साहित्य के माध्यम से कराते रहे। आधुनिकता की चेतना साहित्य सर्जना की विधि का ही एक अंग है, इसकी प्रतीति प्रेमचंद-साहित्य से हुई। नवीन जीवनबोध को समाज के समक्ष लाने का कार्य इस समय के सर्जनशील साहित्यकारों ने किया। आधुनिक युग के महाकाव्य 'कामायनी' में प्रसाद जी ने 'ÁÖ¨¨Ö' सर्ग के माध्यम से आधुनिकता का सीधा संदेश प्रसारित किया है-

> "पुरातनता का यह निर्मोक सहन करती न प्रकृति पल एक।
> नित्य नूतनता का आनंद किये हैं परिवर्तन में टेक।"[19]

1935 तक आते-आते छायावादी कविता का स्वर धीमा पड़ने लगा था। छायावादी कविता के चतुष्क में से निराला अपने भाव-बोध में क्रांतिकारी परिवर्तन की गूंज अंकित करने लगते हैं। इसलिए कुछ विद्वानों की धारणा है कि, निराला की कविता 'कुकुरमुत्ता'को गैर-रोमैंटिक मानते हुए उससे ही आधुनिकता का आरंभ माना जाए। 'कुकुरमुत्ता' कविता को आधुनिक कविता का

प्रस्थान -बिंदु मानने के पीछे उसकी वस्तु और शिल्प संबंधी नवीनता है। जिसके बारे में लक्ष्मीकांत वर्मा ने बड़ा सटीक भाष्य किया है, “कुकुरमुत्ता में वे सभी तत्व मिलते हैं, जो आधुनिक काव्य की भाव-व्यंजना को स्वीकार करते हुए उन समस्त सामाजिक, आर्थिक और नैतिक मान्यताओं को अंगीकार करते हैं। जिनमें वस्तु का नयापन, शिल्प का प्रयोग और सर्वथा नई परंपरा का सूत्रपात x´Ö»ÖŸÖÖ Æü…”[20] वस्तुतः हिंदी में आधुनिकता की चर्चा नवजागरण काल से होती है, किन्तु आधुनिकतावाद का प्रारंभ सन् 1939-45 के बीच होता है। कवि अज्ञेय का आगमन हिंदी साहित्य के लिए एक क्रांतिकारी परिघटना के रूप में सिद्ध हुई। डॉ. बच्चनसिंह ने इसी बात को आगे बढ़ाते हुए कहा, “हिंदी में आधुनिकतावादी गतिविधियों के आविर्भाव का वर्ष 1941 हो सकता है। इसी वर्ष अज्ञेय की ‘शेखर : एक जीवनी’ का प्रकाशन हुआ, जो पारंपारिक रूप और नैतिक मान्यताओं को बुरी तरह ध्वस्त कर देता है।”[21] 1940 तक आते-आते प्रगतिवादी साहित्य की धारा में व्यक्ति कहीं खो गया था। परिणामतः ऊब, निरर्थकता, आक्रामकता, पलायनवृत्ति, निर्वासन, आत्मपरायापन और अजनबीपन यंत्र के संपर्क के कारण मनुष्य के मानस जगत में तीव्रता से उभरे हैं। साथ ही द्वितीय विश्वयुद्ध ने आधुनिक मनुष्य के मन में असुरक्षा का भाव जगाया। व्यक्ति मन, व्यक्ति सत्य, व्यक्ति- निष्ठता का आग्रह जोर पकडने लगा। फ्रायड का मनोविश्लेषण और मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की उपस्थिति यंत्र वैज्ञानिक युग और नगर सभ्यता का प्रतिफलन, नैराश्यबोध की व्यंजना होने लगी थी। अनुभूति की प्रामाणिकता अर्थात् भोगे हुए यथार्थ का आग्रह अभिव्यक्त होने लगा। इसी की फलश्रुति यह थी कि व्यक्ति चेतना का स्वर मुख्य रूप में विकसित हुआ। व्यक्ति चेतना में ‘Ã¾Ö’ का सबसे गहरा बोध लक्षित होने लगा। इसी की अभिव्यक्ति चौथे दशक के साहित्य में होने लगती है। डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर साहित्य की इसी धारा को लक्ष्य करते हुए लिखते हैं, “पश्चिम में आधुनिकता की चर्चा 1910-15 से होती है। हिंदी में सघन रूप में उसकी प्रतीति 1942-43 के बाद होने लगती है। आधुनिकता की सजग और उत्साहपूर्ण चर्चा 1947 के बाद 1960 तक इस शब्द के प्रति विशिष्ट मोहाविष्टता नजर आती है।”[22] आधुनिकता के बारे में सजगता का भाव दिखाई देने लगता है। किंतु यहीं से आधुनिकीकरण का बोध भी होने लगता है। क्योंकि विश्वयुद्धों के दौरान जिस अस्तित्ववादी साहित्य का सृजन हुआ, उसे ही आधुनिकतावादी साहित्य कहा जाने लगा।

हमारे देश पर पाश्चात्य सभ्यता और साहित्य का प्रभाव युगांतकारी रहा है। हमारी सभ्यता का आधुनिक होना इसी बात की प्रतीति कराता है। इसी प्रभाव को लक्ष्मीकांत वर्मा जी ने स्वीकारते हुए कहा, “आधुनिक कविता पर अंग्रेजी साहित्य के 1918 ÃÖ 1940 तक के साहित्यिक आंदोलन का भी बड़ा प्रभाव दीख पड़ता है। डी. एच. लॉरेन्स, टी. एस. इलियट इत्यादि ने प्रथम महायुद्ध के साथ एडवॉर्दियन और गॉर्जियन कवियों ने विक्टोरियन आत्मबोध और आडंबर की परंपरा को तोडकर

उस स्थिति के अनुकूल नवीनता को अपनाया और सीधी अनुभूतियों को, भाव चमत्कार को, शिल्प चमत्कार को, अपने रूप में अपनाया। यद्यपि ये कला को चिरनवीन रूप देने के पक्ष में थे। फिर भी ये अपनी नवीनता के अधिक पोषक थे। इनकी कविताओं में कलाकृतियों में प्रतिबोधन (परसेप्शन) अधिक है। केवल संवेदना का रूखा रूप (क्रुड फार्म) नहीं है। हिंदी कविता भी इससे आंशिक रूप में ¯Ö³ÖÖ×¾ÖŸÖ Æü‡Ô…”[23] प्रभाव की अन्विति छायावादी और छायावादोत्तर कविता में देख सकते हैं। किन्तु भारतीय फलक पर भी नई हलचलें पैदा हो रही थी। यही कारण है कि, हिंदी में आधुनिकता के आरंभ के प्रश्न को लेकर भारतभूषण अग्रवाल ने एक महत्त्वपूर्ण वक्तव्य दिया था। वे लिखते हैं, “बंगला में जो आधुनिकता रवीन्द्र ने स्थापित की, वह हिंदी में अज्ञेय के माध्यम से ही पहले पहल प्रस्फुटित हुई। उसकी व्याख्या का सूत्र है, पाश्चात्य का प्रसन्न स्वीकार।”[24] अत: यह स्वीकार करने में हर्ज नहीं कि हिंदी साहित्य में आधुनिकता का नेतृत्त्व अज्ञेय ने किया। अज्ञेय की कविता से ही आधुनिकता की तमाम प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होने लगती है। अज्ञेय ने सन् 1937-38 के आसपास ही अपने आधुनिकतावादी भावों की अभिव्यक्ति करते हुए लिखा, “यह युग संशय, अस्वीकार और कुंठा का है। अस्वीकार का व्यापक स्वर सर्वोपरि है और कुछ अपवादों को छोडकर सामान्यत: इसे अश्रद्धा का युग कह सकते हैं। किसी आस्था को स्वीकार करना अथवा पुराने आदर्शों से आसक्ति दिखलाना हास्यास्पद हो गया है, फिर वास्तविकता की इस बाढ़ में संबल के रूप में टेक लेने की प्रबल आवश्यकता सर्वत्र अनुभव की जा रही है, फिर भी हम यथार्थ के प्रति ही नहीं, बल्कि शक्ति के प्रति भी जागरूक हो रहे हैं। यह आत्मअन्वेषण का युग है।”[25] यह वही युग था जहाँ छायावादोत्तर काल के साहित्य में दो प्रवृत्तियाँ लक्षित होने लगी थी। 1. ¾µÖÛŒŸÖ¾ÖÖ¤üß 2. समाजोन्मुखी। इस तरह ‘आधुनिकता का उद्भव और विकास प्रयोगवाद, नई कविता और नई कहानी के आंदोलनों के दौरान हुआ।’ अंतत: डॉ. नामवरसिंह के इस वक्तव्य को बड़ा महत्व प्राप्त होता है, जब वे आधुनिकतावाद के साहित्यिक और कलात्मक आंदोलन और उसकी अवधारणा के विकसित होने के बारे में अपनी स्वतंत्र धारणा अभिव्यक्त करते हुए लिखते हैं, “वस्तुत: आधुनिकता अवधारणा के रूप में जब बनी और प्रचलन में आयी तब आधुनिकतावादी साहित्य समाप्त हो चुका था। कांसेप्ट के रूप में आधुनिकता दूसरे महायुद्ध के बाद की सृष्टि है, 1950 के आसपास की। प्रचलन में उसके बाद आयी। उस समय चर्चा आधुनिकतावाद की नहीं हुआ करती थी। उस समय चर्चा सिंबालिज्म, एक्सप्रेसनिज्म, सुर्रियालिज्म आदि की हुआ करती थी। इन तमाम को एक कंबल में बांधकर एक मटकिया में एक अचार की तरह डालकर हिलाकर एक मोटामोटी, एक मॉडर्निज्म की सृष्टि की गयी, यह भूलकर कि ये सारे वाद कई बार परस्पर विरोधी थे। सिंबालिज्म और सुर्रियालिज्म एक-दूसरे के घोर विरोधी थे, एक नहीं थे।”[26]

1.1.5 निष्कर्ष :

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि आधुनिक काल का अधिकांश साहित्य अपने को पहचानने का माध्यम बनता गया। ‘Ã¾Ö’ के माध्यम से ‘अन्य’ की पहचान उसकी विशेषता बनती गई। एक अर्थ में यह पाश्चात्य बंधनों से छूटकारा पाने का जरिया भी बना। साथ ही ये भी कहा जा सकता है कि आधुनिक काल अपने ज्ञान-विज्ञान और प्रविधियों के कारण मध्यकाल से पृथकता स्थापित करता है। वास्तव में यह काल नगरीकरण, औद्योगिकरण और प्रखर बौद्धिकता से सम्बन्ध रखता है। देश, धर्म, राष्ट्र, ईश्वर आदि की नयी-नयी व्याख्याएँ होने लगी। पुराने प्रतिमान टूटते गये। नये प्रतिमान गढ़े जाने लगे। एक दृष्टि से आधुनिकता तमाम चिंतनक्षेत्रों में पुरानेपन के प्रस्थान के पर्याय के रूप में स्वीकृत हुई है। धीरे-धीरे परवशता का बोध आधुनिक जीवन और चेतना की पहचान बनता गया। आधुनिकता की इस संपूर्ण चेतना को एक दर्शन के रूप में स्थापित और व्यवस्थित गति देने का श्रेय जर्मन विद्वान ओस्वाल्ड स्पेंगलर की सन् 1918 में प्रकाशित पुस्तक ‘डिक्लाइन आव दि वेस्ट’ को जाता है। इस दर्शन को व्यापक बनानेवालो में हैं- टी. एस. इलियट, अड्स हक्सले, जॉर्ज आरवेल और एच. जी. वेल्स आदि का नाम प्रमुख रूप से माना जाता है।

कुल मिलाकर हिंदी में आधुनिकता के प्रारंभ को लेकर विविध मतों को देखा जा सकता है। डॉ. भोलाभाई पटेल, डॉ. दुर्गाप्रसाद गुप्त, डॉ. नगेंद्र, कवि जयशंकर प्रसाद, लक्ष्मीकांत वर्मा, डॉ. रघुवंश, डॉ. बच्चन सिंह, डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर, भारतभूषण अग्रवाल, डॉ. नामवरसिंह, स्वयं कवि अज्ञेय, प्रो. डॉ. मैनेजर पांडेय, प्रो.डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल तथा प्रो. डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे जैसे विख्यात लेखक-समीक्षकों ने अपने-अपने मतों को प्रस्तुत किया है। इन तमाम लेखक-आलोचकों के मतों का केन्द्रीय तत्व यही है कि हिंदी में आधुनिकता की शुरूआत भारतेंदु युग अर्थात् नवजागरण काल से होती है किन्तु आधुनिकतावाद आंदोलन के रूप में सन् 1940 के पश्चात ही उभराऔर हिंदी साहित्य में आधुनिकता की प्रवृत्ति लक्षित होने लगती है। किन्तु यह भी बड़ा महत्वपूर्ण तथ्य है कि, प्रयोगवादी कविता ने आधुनिकतावादी दौर का आगाज किया। कवि अज्ञेय ही हैं, जिन्हें आधुनिक चेतना की सर्जनशीलता का कर्णधार समझा जा सकता है क्योंकि,अज्ञेय के साहित्य में आधुनिकता के तमाम लक्षण मुखरित होने लगते हैं। इसलिए यह निसंदेह रूप में कहा जा सकता है कि, कवि अज्ञेय अर्थात् सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन नामक प्रतिभाशाली, संवेदनशील, बहुमुखी रचनाकार की लेखनी का विराट अविष्कार आधुनिकता को चिह्नित करता है। इसलिए उन्हें नयी कविता का मसीहा भी कहा गया। अर्थात् सन् 1940-60 के बीच हिंदी में जो साहित्य (अनेक विधाओं) लिखा गया, उसमें मुख्य रूप से व्यक्ति मन, व्यक्ति सत्य, व्यक्तिवाद और व्यक्ति चेतना का स्वर आलापा जाने लगा। निष्कर्ष रूप में यही कह सकते हैं कि भारतीय स्तर पर स्थितियाँ भिन्न होने के बावजूद

हिंदी में आधुनिकता ने पैर जमाना शुरू किया। जिसके लिए उर्वरा भूमि बनाने का काम कविश्रेष्ठ अज्ञेय ने किया।

1.2 आधुनिक मराठी साहित्य की पृष्ठभूमि :

1.2.1 मराठी साहित्य में आधुनिकता (आरंभ से मध्यकाल तक) :

मराठी साहित्येतिहास को मुख्यतः तीन कालखंडों में विभाजित किया जाता है।

1. प्राचीन काल
2. मध्यकाल
3. आधुनिक काल।

मराठी साहित्य के आरंभिक काल अर्थात् प्राचीन काल में मोटे तौर पर आधुनिकता की स्पष्ट झांकी प्राप्त नहीं होती। परंपरा का निर्वाह, बस इतनी ही इस काल की पहचान रही है। बनी-बनायी परिपाटी पर चलना, अपने युग के अनुरूप खुद को ढालना, यही संकेत आरंभिक काल में x´Ö»ÖÝÖ Æî...

मराठी साहित्य का द्वितीय काल अर्थात् मध्यकाल अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। इसी काल में सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक सुधार (परिवर्तन नहीं) का दौर चला। तेरहवीं सदी के महान सुधारक, धर्म-चिंतक चक्रधर स्वामी (1194-1274) रहे हैं। वैदिक परंपरा को नकारते हुए उन्होंने हिंदु धर्म में स्थित गलित परंपराओं पर कुठाराघात करने का क्रांतिकारी कार्य किया। प्रस्थापित धर्म व्यवस्था, संस्कृति को नकारकर महानुभव पंथ की स्थापना आपने की। जिसमें कर्मकांड का विरोध, स्त्री-पुरूष समानता, जाति व्यवस्था का विरोध, अवतारवाद की भ्रामक कल्पना का प्रतिरोध लक्षित होता है। इतना ही नहीं ज्ञान, भक्ति, वैराग्य और प्रेम की चतुष्क पर उनका बल रहा। चक्रधर स्वामी का जन्म गुजरात में हुआ किन्तु उनकी कर्मभूमि महाराष्ट्र रही। लगभग बारह वर्षों तक वे महाराष्ट्र में भटकते रहे। यह भटकन लोकजीवन का निरीक्षण, परीक्षण और अध्ययन का महत्वपूर्ण हिस्सा बना। उनके लेखन, चिंतन और वाणी में मनुष्य केंद्र में था। तमाम प्रकार की सामाजिक अराजकता को निकाल बाहर कर कृष्ण के प्रेम में लीन होने का एक नया संदेश मध्यकालीन समाज को आपने दिया। वैज्ञानिक दृष्टि और प्रगतिशील जीवननिष्ठा चक्रधर स्वामी की पहचान रही। इसलिए यह कहने में दोराय नहीं कि, आधुनिकता के (सोच, जीवन दृष्टि, प्रतिरोध का स्वर, कर्मकांड की वृत्ति का विरोध) आरंभिक बीज हम चक्रधर स्वामी (मूल नाम हरपाल) के चिंतन में देख सकते हैं।

तेरहवीं सदी में ही संत नामदेव जैसे निर्गुणवादी, क्रांतिकारी संत हुए। वे संत कवि थे। कबीर ने नामदेव को अपना गुरू माना है, नामदेव पिछड़ी कहीं जानेवाली जाति में जन्मे। किन्तु जन्म से विद्रोही विचारों के क्रांतिकारी नामदेव ने वैदिक साहित्य, वैदिक परंपरा और बाह्याचारों की आलोचना

की। वर्ग, वर्ण, जाति से परे विश्वव्यापी धर्म की स्थापना की। ज्ञानसत्ता ही सभी सत्ताओं से श्रेष्ठ है, यह भी बताया। नामदेव समाज की शूद्र कहीं जानेवाली जाति से आये, किन्तु उनके विचारों में व्यापकता की वृत्ति दिखाई देती है। सत्य का निरूपण, सत्य का विवेचन और सत्य का प्रचार-प्रसार नामदेव जीवनभर करते रहे। जन-जन का हित तथा उद्‌बोधन की भावना अर्थात् लोकमंगल की कामना उनके चिंतन में लक्षित होती है। वर्णव्यवस्था का विरोध, भारत की सामंती व्यवस्था की रूढ़ियों, पाखंडों और मिथ्याचारों के प्रति जिहाद का नारा है नामदेव का साहित्य। नामदेव का योगदान मात्र मराठी साहित्य के लिए ही नहीं बल्कि हिंदी में भी अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। सिखों के गुरू गुरूनानक देव द्वारा रचित 'गुरू ग्रंथ साहिब' में उनके 107 हिंदी पद मिलते हैं। पंजाब के घुमान तक वे यात्रा कर चुके थे। वे पर्यटनप्रिय संत थे। धर्मसुधार तथा लोकजागृति का स्वर नामदेव में मिलता है। नारी के प्रति व्यापक दृष्टिकोण नामदेव में था। संत जनाबाई को भक्ति के प्रांगण में खड़ा करना, उन्हें स्त्री संत के रूप में सामने लाना, नामदेव का महत् कार्य है। सनातनी मानसिकता के खिलाफ संगठित होकर नामदेव जी ने संघर्ष किया। एक अर्थ में मध्यकालीन संतों का ही नहीं तत्कालीन समाज का सांस्कृतिक नेतृत्व भी नामदेव ने किया। यज्ञयाग, तीर्थक्षेत्र, बहुदेवोपासना का त्याग, व्रत, उपवास से मुक्ति, सामाजिक विषमता के उन्मुलन हेतु शूद्रों, स्त्रियों को उन्होंने अपने आंदोलन में सहभागिता दी। कुल मिलाकर नामदेव ने हिंदी, गुजराती, पंजाबी, मराठी भाषा में समता आधारित अद्वैतवादी दर्शन घर-घर तक पहुँचाया। इसलिए यह कहना साहसपूर्ण नहीं होगा कि, मध्यकाल में आधुनिकता की अवधारणा अस्तित्व में नहीं थी। किन्तु आधुनिकता की अधिकांश चेतनाएँ संत जनाबाई, संत चोखामेला, संत बंका, नरहरी सुनार, सेना नाई, गोरा कुम्हार तथा सावता माली में संक्रमित करने का प्रामाणिक प्रयत्न संत नामदेव ने किया। अपने काल की सीमा में रहते हुए नामदेव का यह कार्य विलक्षण है। कीर्तन परंपरा की शुरूआत करने का श्रेय भी नामदेव को ही जाता है। कीर्तन परंपरा एक अर्थ में उस काल में समाचार पत्र का काम कर रही थी।

परंपरागत रूढ़ियों के प्रति खुला विद्रोह सत्रहवीं सदी के महान मराठी संत तुकाराम ने भी किया। तुकाराम समतावादी लोककवि थे, जिनके विचारों में मानवता के शाश्वत मूल्य दीख पडते हैं। तुकाराम ने किसान, स्त्रियाँ, शूद्र तथा भक्ति के क्षेत्र से नकारे गये बहुजनों को अवैदिक परंपरा से जोड़ा। मनुष्य-मनुष्य में कृत्रिम रूप से निर्मित किसी भी प्रकार के भेदभावों का विरोध उन्होंने किया। शास्त्रज्ञान की अपेक्षा व्यवहार ज्ञान को महत्व देते हुए विवेकशील, निर्भीक और स्वतंत्रचेता वृत्ति की समाज निर्मिति में तुकाराम ने अमूल्य योगदान दिया। उदात्त अनुभूति की सरल एवं हृदयस्पर्शी अभिव्यक्ति उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से करायी। आचारनिष्ठा, विवेक संपन्नता, अंधविश्वासों के प्रति कठोरता, कर्मकांड निरर्थकता, कर्मकांड रहित निर्मल प्रेम, तत्कालीन समाज का यथार्थ चित्र

प्रस्तुत करते हुए गुलाम, निराश, हताश और बेजुबान समाज में आत्मविश्वास, आशावाद और आस्था की भावना संक्रमित करने का श्रेय तुकाराम को ही जाता है। ज्ञान पाने का अधिकार स्त्री और शूद्रों को भी है, यह बड़े आत्मविश्वास से धर्मसत्ता को सुनाया। अर्थात् आध्यात्मिक समता, आध्यात्मिक मानवतावाद स्थापित करने में तुकाराम ने महती भूमिका निभायी।

तात्पर्य यही है, मराठी साहित्य में चक्रधर स्वामी, संत नामदेव, संत जनाबाई, संत तुकाराम आदि के कार्य कृतित्त्व में आधुनिकता के आंशिक रूप हमें मिलते हैं। इन कवियों ने अपनी कविताई से विश्वमैत्री तथा श्रम संस्कृति को बचाए रखने का वैश्विक संदेश दिया। विशेषतः दिमागी गुलामी से मुक्त कर बहुजन समाज को विवेकी, विज्ञाननिष्ठ, रूढ़ियों को तोड़ने का विद्रोही संदेश दिया। प्रबोधन, संगठन और आंदोलन का मार्ग बताया। एक अर्थ में संतों के इसी प्रगतिशील साहित्य चिंतन को हम जनसाहित्य के अंतर्गत समाहित कर सकते हैं। अर्थात् मराठी साहित्य के मध्यकाल में आधुनिकता के आंशिक बीज हमें प्राप्त होते हैं, जिसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

1.2.2 आधुनिकता : आधुनिक काल -

मराठी साहित्य में आधुनिक काल की शुरूआत 1850 के पश्चात मानी जाती है। ज्ञान-विज्ञान,औद्योगिकरण, अंग्रेजों का संपर्क तथा नयी मूल्य व्यवस्था के आगमन के कारण ही आधुनिकता का आरंभ हुआ। विशेषतः शिक्षा व्यवस्था एक आंदोलन के रूप में उभरी। स्त्री शिक्षा, अछूत शिक्षा की शुरूआत इसी कालखंड में हुई। किंतु ये भी सही है कि ब्रिटिश कार्यकाल में सन् 1818 से मराठी समाज जीवन में आधुनिकीकरण की शुरूआत हुई, ऐसा माननेवाला समीक्षकों का एक वर्ग मराठी साहित्य समीक्षा में है। आधुनिक कवियों ने पश्चिमी स्वच्छंदतावाद को भारतीय चेहरा देकर नये युग की नयी प्रेरणाओं का उद्‌घाटन किया।

मराठी के विख्यात समीक्षक तथा कथाकार डॉ. नागनाथ कोत्तापल्ले ने अपनी पुस्तक ‘मराठी कविता : आकलन और आस्वाद’ में एक महत्त्वपूर्ण लेख लिखा है। लेख का शीर्षक है - ‘आधुनिकता और महात्मा फुले की कविता।’ प्रस्तुत लेख में कोत्तापल्ले जी ने एक महत्त्वपूर्ण स्थापना की है। उनका कहना है कि, आधुनिक मराठी साहित्य के प्रर्वतक म. फुले जी को मानना चाहिए। उन्होंने इस बात की पुष्टि करते हुए कहा कि, म. फुले जी की पहली रचना ‘तृतीय रत्न’ (1855) में प्रकाशित हुई। साथ ही फुले का संपूर्ण चिंतन मनुष्य केंद्रित है। मराठी साहित्य में मनुष्य केंद्रित अनुभूति को ही आधुनिकता कहा गया है।”[27] प्रस्तुत लेख में उन्होंने यह बात पूर्ण तथ्यों और तार्किक रूप में बताने की कोशिश की है कि आधुनिक मराठी साहित्य का प्रारंभ केशवसुत (कृष्णाजी केशव दामले) से नहीं बल्कि म. फुले द्‌वारा रचित साहित्य से होता है। आधुनिकता का पहला उद्‌गार म. फुले के साहित्य में होता है, ऐसा कोत्तापल्ले जी का मानना है। अपनी इसी स्थापना की

पुष्टि हेतु वे बताते हैं कि, म. फुले ने शिक्षा व्यवस्था, साहित्य आंदोलन और समाज परिवर्तन के कई आंदोलन चलाये। उनके द्‌वारा लिखित पोवाडा, (एक मराठी गीत प्रकार), अखंड (एक मराठी काव्य प्रकार, जो मराठी संतों के अभंग काव्य प्रकार से संबंधित है) तथा वैचारिक साहित्य में जीवन के बारे में एक नयी दृष्टि प्राप्त होती है। स्वातंत्र्य, समता, भ्रातृभाव, सामाजिक न्याय, स्त्री-पुरूष समानता, अछूत समस्या, सत्य का महत्त्व, उद्योगशीलता आदि बातों का उद्‌घोष किया है। छत्रपति शिवाजी महाराज के जीवन और कार्य से संबंधित लिखा हुआ पोवाडा (एक मराठी गीत प्रकार, जिसमें वीररस प्रधानता होती है), सार्वजनिक सत्यधर्म तथा अनेक गद्य रचनाओं में स्त्री, शूद्र, किसान तथा गुलाम भारतीय मनुष्य की दुर्दशा का अत्यंत यथार्थ वर्णन किया गया है। आर्य-अनार्य का संघर्ष, इतिहास के बारे में अलग धारणा, अध्यात्म को नकार, सामंती व्यवस्था का प्रतिरोध, ब्राह्मणी मनोवृत्ति का उद्‌घाटन आदि बातों का इसमें समावेश है। आधुनिकता के तमाम मूल्य फुले के अखंडों में प्राप्त होते हैं। धर्म, वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था, सामंतवाद, पुरोहितशाही, स्त्री, शूद्र आदि की ओर तटस्थता की दृष्टि से फुले ने देखा। एक सम्यक दृष्टि और सम्यक चिंतन फुले के साहित्य में मिलता है। यह विवेकवादी, बुद्धिवादी वृत्ति ही फुले को आधुनिक बनाती है। शोषक का विद्रुप चेहरा और शोषित का करूण अस्तित्व फुले के साहित्य में लक्षित होता है। साथ ही श्रम करनेवाली स्त्री तथा तमाम श्रमिक जाति की वास्तविक दशा का अत्यंत जीवंत चित्रण फुले ने अपने साहित्य में किया है। इसलिए कोत्तापल्ले अनेक प्रमाण देकर यही बताते है कि, "केशवसुत पूर्व मराठी साहित्य में आधुनिकता का ऊर्जस्वल अविष्कार हम म. फुले की कविता में देख सकते हैं।"[28]

मराठी साहित्य समीक्षा में आधुनिकता के प्रारंभ के बारे में दूसरी धारणा यह है कि, "सन् 1885 के आसपास प्रमुख रूप से अंग्रेजी स्वच्छंदवादी (रोमँटिक) काव्य से प्रेरणा लेकर केशवसुत (कृष्णाजी केशव दामले) की कविता से आधुनिक मराठी कविता का प्रारंभ माना जाता है।"[29] साधारणतया मराठी साहित्य में आधुनिकता के उदय के बारे में यह दूसरी धारणा है। इस दूसरी धारणा के अनुसार आधुनिक मराठी साहित्य के प्रवर्तक के रूप में केशवसुत को ही माना जाता है। डॉ. केशव सद्रे ने अपनी बात की पुष्टि करते हुए लिखा, ''मराठी कविता को आधुनिक विशेषण कालसापेक्षत्व के रूप में लगाया जाता है। इस कविता में आधुनिकता के प्रवृत्ति विशेष प्राप्त होते हैं। केशवसुत प्रणित क्रांति के पश्चात साठ वर्षों के बाद मर्ढेकर ने कविता में क्रांति की। मर्ढेकर की कविता में आधुनिकता का एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव नजर आता है।"[30]

किन्तु यह बात भी याद रखना जरूरी है कि, मराठी कविता को छह सौ वर्षों की लंबी परंपरा रही। इस परंपरा में ईश्वर केंद्रित कविता के स्थान पर मनुष्य केंद्रित कविता की परंपरा निर्माण करना इतना आसान नहीं था। केशवसुत ने अपनी कविता में पहली बार नये मनुष्य की नई वाणी को उद्‌धृत

किया। उनकी 'ŸöŸöö¸ß', ' नवा सिपाई' जैसी कविताएँ रूढ़ि, परंपरा को नकारते हुए व्यक्ति स्वातंत्र्य का समर्थन करने लगती हैं। अर्थात् केशवसुत की कविता पर अंग्रेजी रोमँटिसिज्म, प्रबोधन युग का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। नई जीवनगत प्रेरणाएँ, नये मूल्य, कविता में नया आशय तथा नयी जीवनदृष्टि के चलते केशसुत की कविता प्रभाव डालने लगी। आधुनिक मराठी साहित्य में केशवसुत का आशय, विषय, शैली तथा व्यक्तिवादी चेतना की मनोवृत्ति के चलते उनके योगदान को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

डॉ. केशव सद्रे के अनुसार, "भले ही म. फुले या केशवसुत की काव्य यात्रा से आधुनिक मराठी कविता का प्रारंभ माना जाता है। किन्तु मराठी साहित्य में आधुनिकता और काव्य में नवीनता की चर्चा मर्ढेकर के नवकाव्य से मानी जाती है।"[31] अर्थात् सद्रे जी मर्ढेकर से आधुनिक नव कविता की शुरूआत मानते हैं। 1940-45 के आसपास मराठी साहित्य का चेहरा मोहरा ही बदल गया। व्यक्तिनिष्ठता, चेतनाप्रवाही वृत्ति, व्यक्तिगत प्रतिभा, कालबोध तथा मूल्यबोध का अंतर्भाव साहित्य में होने लगा। ये तमाम लक्षण मर्ढेकर के साहित्य में दिखाई देने लगे। मराठी साहित्य विश्व में आधुनिकता नामक अवधारणा की प्रारंभिक चर्चा मर्ढेकर (1950), प्रा. रमेश तेंदुलकर (1961), ¯öö. गो. वि. करंदीकर (1962), प्रा. त्र्यं. वि. सरदेशमुख (1979) इन आलोचकों के लेखन से होती है। केशवसुत ने अपनी कविता में मनुष्य के लौकिक जीवन, मनुष्य की मुक्ति का सपना देखा था। यह चित्र मर्ढेकर की रचनाओं में दिखाई नहीं देता क्योंकि, यूरोप में घटित दो महायुद्ध, देशविभाजन के समय हुए दंगे, विकराल रूप ग्रहण करते महानगर आदि की वजह से मर्ढेकर की कविता मनुष्य की अनथक बेचैनी, असहायता और जीवन की क्षुद्रता का वर्णन करती है। वस्तुतः मर्ढेकर की कविता व्यक्तिवाद, व्यक्तिमन का जीवंत चित्र प्रस्तुत करती है। मर्ढेकर की कविताएँ प्रयोगशीलता का उत्तम उदाहरण है जो कि यह आधुनिकता का प्रमुख लक्षण भी है। मर्ढेकर द्वारा 1950 में लिखे हुए लेख 'काव्य में नवीनता' में आधुनिकता और काव्य में नवीनता का संबंधसूचक प्रथम व ठोस उल्लेख मिलता है। हालांकि मर्ढेकर ने आधुनिकता और नवीनता में अंतर किया है। उनका कहना है कि नवीनता और आधुनिकता के स्वरूप में फर्क है। आधुनिकता कालसापेक्ष है तो नवीनता प्रतिभासापेक्ष होती है। शायद इसी बात को मद्देनजर रखते हुए डॉ. जहागिरदार ने लिखा, 'आधुनिकता दो दृष्टि बिंदुओं से विकसित होती है। एक कालबोध, दूसरा मूल्यबोध। जहाँ कालबोध एवं मूल्यबोध का समन्वय होता है, वहाँ आधुनिकता के दर्शन होते हैं। यह बात ठीक-ठीक मर्ढेकर पर लागू होती है।' डॉ. केशव सद्रे ने मर्ढेकर कालीन इसी स्थिति का बोध कराते हुए कहा, 'मर्ढेकर, पु. शि. रेगे और विं. दा. करंदीकर के कार्यकृतित्व से अर्थात् 1940-45 से मराठी कविता में आधुनिकवाद का प्रारंभ हुआ। इसका प्रमाण यह है कि मर्ढेकर की कविता में आधुनिक मनुष्य की पीड़ा अभिव्यक्त हुई है।

इसी वजह से यह कविता आधुनिकवादी कविता है।'

उपर्युक्त इन मतों, स्थापनाओं के आलोक में यही कहा जा सकता है कि, आधुनिक मराठी साहित्य का प्रारंभ जरूर 1860 के आस-पास होता है किंतु आधुनिकता की शुरूआत मराठी में मर्ढेकर के आगमन से ही होती है। किन्तु जहाँ एक ओर भवानी शंकर, श्रीधर पंडित जैसे चिंतक केशवसुत की काव्ययात्रा से, डॉ. कोत्तापल्ले जैसे चिंतक म. फुले की कविता से तथा अ. ना. देशपांडे जैसे समीक्षक 1874-1920 बीच की कविता को आधुनिक की संज्ञा से अभिहित करते हैं।

तात्पर्य यही है कि आधुनिकवादी दृष्टि ने कवि और यथार्थ के संबंधों की जहाँ व्याख्या होने लगी वहीं संबंधों की नई व्याख्या ने आधुनिक मराठी कविता के शिल्प में अमुलाग्र परिवर्तन किया। आधुनिक मराठी कविता 'महानगरीय जीवन बोध' को अंकित करने लगी। ठीक इसी समय शरदचंद्र मुक्तिबोध मराठी में मार्क्सवादी चिंतन की कविता का आगाज करते हैं। अर्थात् इस समय मराठी साहित्य में तीन धाराएँ बहने लगी। एक व्यक्तिवादी चेतना की जिसका प्रतिनिधित्व मर्ढेकर कर रहे थे, दूसरी समूहवादी चेतना जिसका प्रतिनिधित्व शरदचंद्र मुक्तिबोध कर रहे थे तो तीसरी धारा सौंदर्यवादी या रूपवादिता की जिसका प्रतिनिधित्व पु. शि. रेगे कर रहे थे। भाव, भाषा, शैली और शिल्प के स्तर पर आधुनिकवादी कविता परंपरागत मूल्य व्यवस्था को धक्के दे रही थी। हालांकि दुर्बोधता इसमें अधिक मात्रा में थी। किन्तु दुर्बोधता आधुनिक कविता का एक प्रमुख लक्षण है। काव्यभाषा, काव्याशय और काव्यरूप इन तीनों दृष्टियों से यह वैविध्यता का अनुपालन कर रही थी। प्रयोगशीलता जिसकी वृत्ति थी और अनुभूति की प्रामाणिकता जिसकी महती उपलब्धि है।

1.2.3 निष्कर्ष :

आधुनिक मराठी साहित्य की पृष्ठभूमि का अवलोकन करने के बाद कुछ तथ्य उभरते हैं। वे इस प्रकार हैं-

1. डॉ. कोत्तापल्ले आधुनिक मराठी के प्रवर्तक के रूप में म. फुले को मानते हैं।
2. डॉ. केशव सद्रे और अधिकांश विद्वान केशसुत (कृष्णाजी केशव दामले) की काव्ययात्रा से आधुनिकता की मराठी में शुरूआत मानते हैं।
3. डॉ. वसंत पाटणकर तथा डॉ. चंद्रशेखर जहागिरदार 'मर्ढेकरी युग' से आधुनिकता का आरंभ मानते हैं।
4. आधुनिकता और आधुनिकवाद में स्थित अंतर को मराठी समीक्षकों ने रेखांकित किया है।
5. इन तमाम मतों को केंद्र में रखकर इतना ही कहा जा सकता है कि, मराठी में आधुनिकता की शुरूआत म. फुले की रचनाओं से होती है और आधुनिकवाद एक आंदोलन के रूप में 1940 के आसपास उभरता है।जिसका नेतृत्त्व बा. सी. मर्ढेकर ने पूरी क्षमता के साथ किया।

1.3 आधुनिक हिंदी-मराठी साहित्य की पृष्ठभूमि : तुलनात्मक अध्ययन -

उपर्युक्त उपबंध में हमने आधुनिक हिंदी साहित्य की पृष्ठभूमि तथा आधुनिक मराठी साहित्य की पृष्ठभूमि के संबंध में विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। हमने ये भी देखा कि आधुनिक हिंदी साहित्य में आधुनिकता और आधुनिकीकरण का दौर कहाँ से शुरू होता है? आधुनिकता के उदय के मूल में स्थित भूमि और भूमिका पर भी विचार किया है। ठीक उसी तरह आधुनिक मराठी साहित्य में आधुनिकता और आधुनिकीकरण का दौर कहाँ से प्रारंभ होता है? मराठी साहित्य में आधुनिकता से उदय के मूल में कौन-सी स्थितियाँ कारणीभूत रही है आदि पर हमने विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है।

प्रस्तुत उपबंध में आधुनिक हिंदी साहित्य में उदित आधुनिकता की पृष्ठभूमि और आधुनिक मराठी साहित्य में उदित आधुनिकता की पृष्ठभूमि पर तुलनात्मक दृष्टिक्षेप डालेंगे। विशेषतः दोनों भाषाओं के साहित्य में आधुनिकता के उदय संबंधी और सम-विषम रेखाओं का अध्ययन करना आवश्यक है। वे सम और विषम स्थितियाँ इस प्रकार हैं-

1. आधुनिक हिंदी साहित्य में आधुनिकता तथा आधुनिक मराठी साहित्य में आधुनिकता के उदय के ´Ö»Ö ´Ö ब्रिटीशों का आगमन, औद्योगिक क्रांति, विज्ञान का प्रचार और प्रसार तथा नवीन इहलौकिक दृष्टिकोण कारक तत्व के रूप में काम कर रहे हैं। तकनीकी विकास दोनों भाषाओं में आविर्भूत आधुनिकता के केंद्र में कार्यरत है।

2. आधुनिक हिंदी साहित्य में आधुनिकता तथा आधुनिक मराठी साहित्य में आविर्भूत आधुनिकता की वैचारिक पृष्ठभूमि में काफी समानता है। पश्चिमी चिंतक, कवि टी. एस. इलियट, डार्विन, फ्रायड, मार्क्स, नीत्शे की बड़ी भूमिका रही है। इनके चिंतन ने हिंदी तथा मराठी साहित्य में आधुनिकता के उदय हेतु उर्वरा भूमि बनायी।

3. हिंदी में आधुनिकता का आरंभ हिंदी नवजागरण से और आधुनिकतावाद का आरंभ प्रयोगवाद से होता है। ठीक उसी तरह मराठी में आधुनिकता का आरंभ म. फुले के साहित्य (1855) ÃÖ ÆÖŸÖÖ Æî †Ö¸ü आधुनिकवाद की चर्चा 1939-45 के बीच होती है। दोनों भाषाओं में लगभग एक ही समय में आधुनिकता के उदित होने का तथ्य सामने आता है।

4. हिंदी साहित्य में आधुनिकता का जन्म साहित्य की स्थापित मान्यताओं को चुनौती देने के लिए हुआ है ठीक यही स्थिति मराठी साहित्य में भी दिखाई देती है।

5. आधुनिक हिंदी-मराठी साहित्य की पृष्ठभूमि में सम-रेखाएँ यही है कि, दोनों भाषाओं के साहित्य में प्रयोगशीलता, प्रखर बौद्धिकता, नगरीय बोध, सूक्ष्म सौंदर्यबोध तथा शिल्प में नवीनता को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया। परिणामतः नया काव्य बोध, नया मूल्य बोध और नया भाव-बोध हिंदी मराठी

ÃÖÖ×ÆüŸµÖ ´Ö ¯ÖÖ¯ÖÖ ÆüÖŸÖÖ Æü…

6. हिंदी-मराठी साहित्य में आधुनिकता के तमाम लक्षण लक्षित होते हैं। विशेषतः व्यक्तिवादी चेतना की प्रवृत्ति दोनों में समान रूप से दिखाई देती है।

7. आधुनिक हिंदी-मराठी साहित्य की पृष्ठभूमि में सार्त्र का अस्तित्ववाद, मार्क्स का द्वंद्वात्मक भौतिकवाद, स्वच्छंदता-विरोध, महानगरीय बोध आदि तत्व पाये जा सकते हैं। विशेषतः शिल्प में रूपवाद और भाव में व्यक्ति सत्य या सत्यान्वेषण की झांकी प्राप्त होती है। मनोलोक की जटिलताएँ लेकर इन दोनों भाषाओं में साहित्य सृजन हुआ।

8. आधुनिक हिंदी-मराठी साहित्य की पृष्ठभूमि में 'वरण की स्वतंत्रता' †Ö¸ü 'स्वाधीनता की चेतना' (रचनाशीलता की स्वाधीनता) इन दो मूल्यों को सर्वाधिक महत्व दिया गया।

9. आधुनिक हिंदी-मराठी साहित्य में दुर्बोधता और प्रश्नाकुलता को अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। बदला हुआ समाज जीवन और बदली हुई समाज मानसिकता बनाम व्यक्ति मानसिकता को केंद्र में रखकर सन् 1940 के बाद हिंदी-मराठी साहित्य में समाज चिंतन के स्थान पर व्यक्ति सत्य का दौर “Ö»ÖÖ…

10. आधुनिक हिंदी - मराठी साहित्य में आधुनिकता एक प्रवृत्ति विशेष के रूप में उभरी। करीब-करीब दोनों भाषाओं के साहित्य में व्यक्ति की अनुभूति की प्रामाणिक अभिव्यक्ति होने लगती है।

सारांश रूप में, यह कहा जा सकता है कि आधुनिक हिंदी-मराठी साहित्य में आधुनिकता के उदय के मूल में लगभग सम रेखाएँ अधिक दीखती है, तुलना में विषम रेखाओं के। हिंदी में आधुनिकता के मुख्य प्रवर्तक के रूप में अज्ञेय अर्थात् सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन का आगमन एक ऐतिहासिक परिघटना बनती है। ठीक उसी तरह आधुनिक मराठी साहित्य के प्रणेता के रूप में बा. सी. मर्ढेकर का आगमन भी धमाकेदार तरीके से होता है। **अर्थात् सन् 1940 के पश्चात हिंदी-मराठी साहित्य में आधुनिकता के दर्शन होते हैं। साहित्य के परिवेश और परिदृश्य को बदलने में इस तत्व ने महती भूमिका निभायी है।**

■ ■ ■

ÃÖ¤¾³Ö ÃÖ“ÖÛ :

1 अज्ञेय : एक अध्ययन, भोलाभाई पटेल, पृष्ठ 84

2 ¾ÖÆüß, ¯ÖÂŠü 84

3 ¾ÖÆüß, ¯ÖÂŠü, 84

4 हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेंद्र, पृष्ठ 445

5 आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण, डॉ. रमेश कुंतल मेघ, पृष्ठ 41

6 कहानी आंदोलन की भूमिका, डॉ. बलराम पाण्डेय, पृष्ठ 92

7 आधुनिकता के पहलु, विपीनकुमार अग्रवाल, पृ. 27

8 नई कविता के प्रतिमान, लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ. 68-69

9 आधुनिकता के बारे में तीन अध्याय, डॉ. धर्मवीर भारती, पृ. 225

10 सीताकांत महापात्रा की प्रतिनिधि कविताएँ, अशोक वाजपेयी, भूमिका से

11 आधुनिकता और आधुनिकीकरण, डॉ. रमेश कुंतल मेघ, पृ. 314

12 आधुनिकता तथा सर्जनशीलता, डॉ. गंगाप्रसाद विमल, पृ. 34

13 आधुनिकता और उत्तर आधुनिकता, डॉ. गंगाप्रसाद विमल, प्रथम संस्करण की भूमिका

14 आधुनिक बोध, रामधारीसिंह दिनकर, संस्करण 1973, ×¤ü»»Öß, ¯Ö. 5

15 आधुनिकता पर पुनर्विचार, अजय तिवारी, पृ.68

16 ¾ÖÆüß

17 आधुनिकतावाद और साहित्य, दुर्गाप्रसाद गुप्त, पृ. 19

18 अज्ञेय : एक अध्ययन, भोलाभाई पटेल, पृ. 159

19 कामायनी, श्रद्धा सर्ग, पृ. 33

20 नई कविता के प्रतिमान,लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ. 24-25

21 हिंदी आलोचना के बीज शब्द, डॉ. बच्चनसिंह, पृ. 22

22 कविता की तलाश, डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर, पृ.

23 नई कविता के प्रतिमान, लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ.25

24 हिंदी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव, भारतभूषण अग्रवाल, पृ. 210

25 पूर्वग्रह, अंक 70,71, ¯Ö. 6

26 कविता के नये प्रतिमान, डॉ. नामवरसिंह, पृ.80

27 मराठी कविता : आकलन आणि आस्वाद, डॉ. नागनाथ कोत्तापल्ले, पृ. 16

28 ¾ÖÆüß, ¯Ö. 29

29 कवितेतील आधुनिकवाद, डॉ. केशव सद्रे

30 ¾ÖÆüß, ¯Ö. 11

31 ¾ÖÆüß, ¯Ö.

■ ■ ■

Û««ÍŸÖßµÖ †¬µÖÖµÖ

अज्ञेय और मर्ढेकर का व्यक्तित्व : तुलनात्मक अध्ययन

(दोनों के व्यक्तित्व का विकासात्मक अध्ययन)

Û«ìÏÖßµÖ †¬µÖÖµÖ

अज्ञेय और मर्ढेकर का व्यक्तित्व : तुलनात्मक अध्ययन

(दोनों के व्यक्तित्व का विकासात्मक अध्ययन)

†) †-ÖµÖ :

1 सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन '†-ÖµÖ' का जीवनवृत्त :

2 व्यक्तित्व में विलक्षणता :

3 ÃÖ´ÖÙ¯ÖÏÖ ÃÖÖ×ÆüÏµÖ ÃÖ¾ÖÖß :

4 निष्कर्ष :

²Ö) मर्ढेकर :

1 बा. सी. मर्ढेकर का जीवनवृत्त :

2 व्यक्तित्व की बुनावट :

3 सृजनधर्मी साहित्य सेवी :

4 निष्कर्ष :

क) अज्ञेय और मर्ढेकर का व्यक्तित्व : तुलनात्मक अध्ययन

निष्कर्ष :

अ) अज्ञेय : शिखर से सागर तक की जीवन-यात्रा :

प्रस्तावना :

किसी भी सृजनधर्मी रचनाकार के साहित्य को समझने हेतु उसके व्यक्तित्त्व और अभिव्यक्ति को समझना कितना आवश्यक होता है? यह प्रश्न हमेशा सर्जनशील व्यक्तित्व के बारे में पूछा जाता है। आलोचकों के एक वर्ग की यह मान्यता है कि रचनाकार से नहीं रचना से जुड़ जाइए। उसके व्यक्तित्व से हमें कुछ लेना-देना नहीं है, वह मात्र निमित्त है। किन्तु आलोचकों का दूसरा वर्ग यह मानते आया है कि, किसी भी सर्जनशील लेखक के व्यक्तित्व की बुनावट, उसके कृतित्त्व के धूप-छांही रंगों को समझे बगैर उसके साहित्य को समझना मुनासिब नहीं है। अस्तु, ये निश्चित रूप से कह सकते हैं कि किसी भी रचनाकार की जीवनानुभूति की छाया उसके सृजनशील मानस पर प्रभाव डालती है। अतः व्यक्तित्व की बुनावट को समझे बगैर उसके द्‌वारा अभिव्यक्त जीवनानुभूति को पकड़ना संभव नहीं होता।

उपरोक्त संपूर्ण पृष्ठभूमि के आलोक में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि, सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन '†-ÖµÖ' के व्यक्तित्व, जीवन संघर्ष और जीवन में आये उतार-चढ़ावों के आधार पर साहित्यकार '†-ÖµÖ' या व्यक्ति वात्स्यायन की जो तस्वीर उभरती है, उसे समझना निहायत आवश्यक होता है।

जीवन-वृत्त :

"सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन '†-ÖµÖ' का जन्म फाल्गुन शुक्ल सप्तमी संवत 1967 यानी अंग्रेजी तारीख के मुताबिक 7 ´ÖÖ“Ö 1911 को उत्तर प्रदेश के देवरिया जनपद के कसया नामक स्थान में एक पुरातत्व खुदाई शिविर में हुआ।"[1] अज्ञेय के पिता पं. हीरानंद शास्त्री भारत सरकार के पुरातत्व विभाग में उच्च अधिकारी थे। वे संस्कृत विद्वान थे। उनकी दस संताने थी, जिसमें आठ लड़के और दो लड़कियाँ थी। वास्तव में "अज्ञेय के पूर्वज पंजाब के गुरूदासपुर के निवासी, भणोत सारस्वत ब्राह्मण थे।"[2] शास्त्री जी भयंकर पढ़ाकु थे। उनका पुस्तकालय बहुत समृद्‌ध था, जिसका अज्ञेय ने भरपूर उपयोग किया। कहा जाता है कि, उन्होंने उसी काल में वर्डस्‌स्वर्थ, टेनिसन, लौंगफेलो और विटमैन की कविताएँ, शेक्सपीयर, मार्ले और वेस्टर के नाटक तथा लिटन, जॉर्ज इलियट, मैकरे, गोल्डस्मिथ, तोल्स्ताय, तुर्गनेव, गोगोल, विक्टर ह्यूगो और मेलविल के उपन्यास पढे थे, जिसका जिक्र पं. विद्यानिवास मिश्र ने अपनी महत्वपूर्ण पुस्तक 'आज के लोकप्रिय हिंदी कवि: †-ÖµÖ' में किया है। पं. हीरानंद शास्त्री के संस्कार काफी महत्वपूर्ण रूप में अज्ञेय पर हुए। शास्त्री जी को प्राचीन लिपियों का विशेष ज्ञान था। भारत के पुरातत्व विभाग की नींव डालनेवाले भारतीय पुरातत्वविदों में उनका प्रमुख स्थान था।

अज्ञेय को परिवार में 'Ãö““öö' नाम से बुलाया जाता था। परिवार में उनका पालन-पोषण बड़े लाड़ प्यार से हुआ। पिता सरकारी नौकरी में थे। परिणामतः उन्हें देशभर तबादले की वजह से घूमने का अवसर मिला। अज्ञेय का बचपन लखनऊ, श्रीनगर, जम्मू, नालंदा और पटना में व्यतीत हुआ। तबादले की वजह से उनकी स्कूली शिक्षा नहीं हो पायी। किन्तु पिता ने उनकी शिक्षा घर पर ही करवाई। 1927 में अज्ञेय बी. एस. सी. की परीक्षा उत्तीर्ण हुए। महाविद्यालयीन जीवन में उनकी मुलाकात प्रो. बनेड से हुई जो कि भौतिकशास्त्र में एक मान्य वैज्ञानिक थे। रामकमल राय के अनुसार, "कॉलेज में वात्स्यायन का भौतिकशास्त्र के प्रो. बनेड से संपर्क स्थापित हुआ, जो विश्व के भौतिकशास्त्र के मान्य वैज्ञानिकों में से थे। प्रो. बनेड ने कॉस्मिक किरणों के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण काम किया था। विज्ञान में स्नातक होने के बाद प्रो. बनेड ने वात्स्यायन को अपनी अनुसन्धान मंडली का सदस्य बनाया था और पानी की गहराईयों में कॉस्मिक किरणों को सघनता नापने के लिए उन्हें हिमालय की ऊँचाईयों पर स्थित झीलों तक ले गये थे।"[3]

अज्ञेय की पारिवारिक पृष्ठभूमि की ओर दृष्टिपात डाले तो पता चलता है कि एक मध्यवित्तीय परिवार में उनका पोषण हुआ। हालांकि अज्ञेय 'आत्मनेपद' में कहते हैं कि परिवार की आर्थिक स्थिति ठीक-ठाक थी। उतनी भी सधन नहीं थी कि ऐषोआराम से जीवन जिया जाय किन्तु परिवार में आर्थिक तंगी का माहौल भी नहीं था। माँ व्यन्तीदेवी अज्ञेय को हमेशा एकान्तवासी पाती। वस्तुतः अज्ञेय में बचपन से ही एकान्त प्रियता थी। उनके जन्म की विशिष्टता भी यही थी कि वे खेत में जन्मे थे। अतः माटी की गंध इनके व्यक्तित्व और कृतित्व का अंग थी। प्राकृतिक सौन्दर्य के सान्निध्य में अज्ञेय का बचपन बीता। लखनऊ की गोमती नदी के किनारे, कश्मीर के अप्रतिम अभिभूत करनेवाले सौंदर्य के बीच, नीलगिरि, कोटागिरि या ऊदकमंडलम् के अदभूत सौंदर्य के सान्निध्य में इनका रागदीप्त व्यक्तित्व ढलने लगा। अर्थात अज्ञेय में प्रकृति के प्रति, सौंदर्य के प्रति बचपन से ही आकर्षण रहा है, जिसकी प्रतीति उनकी रचनाओं में बार-बार होती है। इसलिए रामकमल राय लिखते Æö, "वात्स्यायन के बचपन से ही उनमें रागतत्व की प्रधानता थी। उनकी सृजनात्मक ऊर्जा मूलतः प्रेम की ऊर्जा है। जहाँ उन्होंने अपने पिता से एक मनस्विता संकल्प, स्वावलंबन और धुन के संस्कार प्राप्त किये थे, वहीं अपने परिवेश को तटस्थता से उन्हें एकान्तप्रियता और अपने काम में तन्मयता की प्रकृति मिली थी।"[4]

शिक्षा एवं अध्ययन :

जैसे कि उपर उल्लेख किया गया है- अज्ञेय ने 1927 में बी. एस. सी. की परीक्षा उत्तीर्ण की। किन्तु उसके पूर्व सन् 1911 Ãö 1915 तक लखनऊ में, 1915 Ãö 1919 तक श्रीनगर और जम्मू में, 1919 Ãö 1925 तक नालंदा और पटना में रहना पड़ा। पिता के स्थानांतरण के अनुसार उन्हें प्रवास

करना पड़ा। अज्ञेय खूब पढाकु थे। लाहोर के फॉरमेन कॉलेज से बी. एस. सी. की परीक्षा उत्तीर्ण होते-होते उनका परिचय प्रो. बनेड ने ब्राउनिंग से कराया। पढ़ाई जारी थी किन्तु उसी समय उनका सम्पर्क नौजवान भारत सभा से हुआ और गुप्त रूप से हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी के प्रमुख सदस्यों - 'आजाद, सुखदेव और भगवतीचरण बोहरा से हुआ।'[5] बी. एस. सी. करने के बाद उन्होंने एम. ए. (प्रीवियस) अंग्रेजी में दाखिला लिया।

जीवन में क्रांतिकारिता और जेल यात्रा का अनुभव :

उन दिनों अज्ञेय के कॉलेज में सहपाठी देवराय और कमलकृष्ण थे। दूसरे कॉलेज के सुखदेव, भगतसिंह और बोहरा भी उनके साथ थे। इन मित्रों की संगत ने देशभक्ति का जज्बा जागृत किया। परिणामतः गुप्त रूप से कुछ पर्चे वगैरह छापकर बांटना, क्रांतिकारी गतिविधियों में सहभाग लेना, बम बनाने का प्रशिक्षण लेना आदि गतिविधियों का दौर चला। जिसके कारण धीरे-धीरे औपचारिक शिक्षा सदैव के लिए बंद हो गयी। अज्ञेय के मन में साम्राज्यवादी अंग्रेजों के खिलाफ लड़ने की भावना पैदा हुई। उसकी दूसरी वजह यह भी थी कि अज्ञेय के मन में गुलामी का दंश कहीं न कहीं उछाले मार रहा था। इसी का असर हुआ कि उन्होंने क्रांतिकारियों से संबंध बना लिये। अज्ञेय उन दिनों क्रांतिकारियों के निकट आकर आश्वस्त हुए और उन्होंने अपना नाम बदलकर '´ÖÆ´´Ö¤ बख्श' रखा।

विज्ञान का विद्यार्थी होने के कारण अज्ञेय को विस्फोटक बनाने और हथियारों की मरम्मत का काम सौंपा गया। इन लोगों ने अमृतसर में विस्फोटों का कारखाना स्थापित किया। अंततः सन् 1930 में अज्ञेय की गिरफ्तारी हुई। हालांकि अज्ञेय और उनके मित्रों ने भगतसिंह को जेल से छुड़ाने की योजना भी बनायी थी। किन्तु भगवतीचरण बोहरा की आकस्मिक मृत्यु ने सारा प्लान चौपट कर दिया। अज्ञेय पूरे दो साल जेल में रहे। जिला अदालत ने पांच साल की सजा सुनाई थी। किन्तु हाईकोर्ट ने रिहा कर दिया। किन्तु उसी दौरान अज्ञेय के जीवन में एक साथ तीन हादसे हुए- माताजी की मृत्यु, छोटे भाई की आकस्मिक अकाल मृत्यु और पिता की सेवानिवृत्ति। 1934 के अंतिम दिनों में जेल और नजरबंदी से मुक्ति मिल गई।

जेल में रहकर अज्ञेय ने खूब अध्ययन किया। साहित्य, मनोविज्ञान, राजनीति, अर्थशास्त्र और कानून की खूब पढ़ाई की। उसी दौरान उनके संपर्क में महान स्वतंत्रता सेनानी- चंद्रशेखर आजाद, भगवतीचरण बोहरा, सुखदेव, यशपाल, विमलप्रसाद जैन, कमलकृष्ण आदि आये। क्रांतिकारियों का जीवन, उनका अनुशासन, उनका जीवन की और देखने का नजरिया आदि का प्रभाव अज्ञेय की जीवन दृष्टि पर पड़ा। उस समय क्रांतिकारियों के भी दो दल थे। "एक दल कम्युनिस्टों और सोवियत रूस से प्रभावित था और दूसरा दल स्वयं को अनार्किस्ट राजनीतिक दर्शन से जोड़ता था।

दोनों दलों में काफी समानताएँ थी परंतु वात्स्यायन का झुकाव मानवेंद्रनाथ राय की रैडिकल ह्यूमैनिज्म पार्टी की तरफअधिक था। (बाद में स्वयं अज्ञेय मानवेंद्रनाथ राय से मिले भी थे)”[6] वात्स्यायन को क्रांतिकारी बनाने में भावुकता का बड़ा हाथ रहा। क्रांतिकारियों का उदात्त रूप उनके लेखन में यत्र-तत्र मिलता है, जो कि इसी बात का प्रमाण है। किन्तु उनका अधिकांश लेखन क्रांतिकारियों से मोहभंग का दस्तावेज है। कम्युनिस्ट चरित्र उनकी रचनाओं में अतियथार्थवादी बनकर उभरते हैं।

शब्द कर्म का प्रारंभ :

आयु की ग्यारह वर्ष की अवस्था में वात्स्यायन को टेनीसन की कविता ने प्रभावित किया था। उसी समय ऋषि दयानंद की रचनाएँ पढ़ने में आयी। अज्ञेय की प्रारंभिक कविताओं पर टेनीसन की कविता की भाषा, छंद और शैली की गहरी छाप दिखाई देती है।उन्हीं दिनों अज्ञेय ने एक हस्तलिखित पत्रिका निकाली, जिसका नाम था ‘आनंद बंधु’। परिवार के भाईजनों को भी उसमें सम्मिलित कर लिया था। एकाध बार पिता भी लिखा करते थे। इसमें कविता, कहानी, लेख के अलावा यात्रावृत्त भी हुआ करते थे। वात्स्यायन की बाल्यावस्था में ही इलाहाबाद से प्रकाशित पत्रिका ‘ÃÖ¾ÖÖ’ में पहली कहानी छपी। लाहौर के कॉलेज दिनों में ही उनकी प्रथम कविता प्रकाशित हुई थी। यह कविता ‘गीतांजलि’ से प्रभावित थी। इसी अवधि में एक छोटा-सा उपन्यास भी लिखा।

रचनाकार अज्ञेय का उदय :

अपने जेल जीवन में अज्ञेय ने भरपूर पढ़ाई की। साथ ही खूब सारा लेखन भी किया। उसी समय जैनेंद्र भी जेल में थे। जैनेंद्र के जेल से बाहर आने के बाद अज्ञेय ने अपनी कुछ रचनाएँ उनके साथ भेजी थी। जैनेंद्र ने वे सारी रचनाएँ प्रेमचंद को ‘जागरण’ में छापने हेतु भेजी। किन्तु उन रचनाओं पर लेखक का नाम नहीं था। प्रेमचंद ने ‘†–ÖµÖ’ नाम वात्स्यायन जी को दिया। जिसकी कैफियत सुनाते हुए स्वयं अज्ञेय लिखते हैं, “मैंने अपने लिए स्वेच्छा से कभी कोई नाम नहीं चुना। सच्चिदानंद अच्छा खासा भरी भरकम नाम था। इसके आगे, पिता का नाम मैंने शायद पिता के व्यक्तित्व से अत्यधिक प्रभावित होने के कारण ही जोड़ा। अतः नाम और भारी हो गया- सच्चिदानंद हीरानंद, वात्स्यायन तो गोत्र नाम था ही। सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन के आगे अज्ञेय जुड़ा तो इसके लिए भी जिम्मेदार नहीं। अज्ञेय को मैंने स्वेच्छा से नहीं अपनाया। प्रेमचंद जी ने यह नाम दिया और इसी को सर माथे स्वीकारा भी। मुझे यह नाम साहित्यिक दुर्घटना के कारण मिला था।”[7] वस्तुतः अज्ञेय के भीतर के लेखक ने जेल में ही जन्म लिया था। एक उन्नीस वर्ष का युवा जो क्रांतिकारी दल के साथ जुड़े होने की वजह से गिरफ्तार हुआ था। अंदेशा होने लगा कि मृत्युदंड मिल सकता है। अज्ञेय ने सोचा कि जीवन की इस अंतिम बेला में जीवन का अर्थ समझने का प्रयास किया

जाय। अतः उन्होंने कविताएँ तो ‘भग्नदूत’ †Ö¸ú ‘¯Ö“ÖÓ×Ö’ संग्रह और ‘विपथगा’ कहानी संग्रह भी सन् 1933 के आसपास प्रकाशित हुआ था। किन्तु इसी दौरान मृत्यु की छाया में वात्स्यायन जी ने अपना पहला आत्मकथात्मक उपन्यास या उपन्यासात्मक आत्मकथा लिखी। जिसका शीर्षक है ‘शेखर : एक जीवनी’ - पहला खंड, प्रस्तुत रचना तीन-चार दिन में ही लिख डाली। ठीक इसी समय अज्ञेय ने इलियट की तर्ज पर दो नाम धारण कर लिए, कलात्मक लेखन के लिए अज्ञेय और विवेचनात्मक लेखन के लिए सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन। अतः अज्ञेय नाम रचनाकार, कलाकार और शिल्पी के लिए उपयोग में लाया जाने लगा और सच्चिदानंद वात्स्यायन भाष्यकार, विचारक, पाठक, भोक्ता और व्यक्ति के लिए प्रयुक्त होने लगा। अज्ञेय ने कुट्टिचातन नाम से ‘सबरंग’ नाम की रचना लिखी। लेखन के इस दौर ने उनके व्यक्तित्व और कृतित्व को नया आयाम दिया।

प्रगतिशील दौर की रचनाएँ :

अज्ञेय कैदी जीवन से 1934 में जेल से रिहा कर दिए गए। किन्तु मूलतः उन्हें एक कानून के अंतर्गत नजरबंद कर लिया गया था। यह वही दौर था जब राजनीतिक दृष्टि से वामपंथ का फैलाव हो रहा था। साहित्य में छायावाद का पतन और प्रगतिवाद का उत्थान होने लगा था। अज्ञेय किसान-मजदूरों के आंदोलन से जुडे। ‘सैनिक’ समाचार पत्र आगरा में काम भी किया। किसान मार्च का संगठन किया।

इन्हीं दिनों अज्ञेय वामपंथी विचारधारा के जुझारू लेखकों के संपर्क में आये। जिसमें रामविलास शर्मा, प्रकाशचंद्र गुप्त, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे और नेमिचंद जैन से संवाद की प्रक्रिया ¿Öºþ Æã‡… 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई किन्तु अज्ञेय ने उसमें रूचि नहीं ली। सन् 1937 में अज्ञेय ने बनारसीदास चतुर्वेदी के साथ ‘×¾Ö¿ÖÖ»Ö ³ÖÖ¸üŸÖ’ में सहायक संपादक के रूप में काम करना शुरू किया। बनारसीदास चतुर्वेदी घोर कम्युनिष्ट विरोधी थे। अज्ञेय मार्क्सवाद से प्रभावित न होकर एम. एन. राय और फ्रायड से अधिक प्रभावित हुए। अज्ञेय ने ‘×¾Ö¿ÖÖ»Ö ³ÖÖ¸üŸÖ’ ´Öë लगातार चौदह किश्तों में फ्रायडवाद और एम. एन. राय का मानवतावाद पर धारावाहिक रूप में लेखमाला प्रकाशित की। जिसमें कम्युनिस्टों की कटू आलोचना की गयी। यही से अज्ञेय और कम्युनिस्टों के बीच दरारें पड़ना शुरू हुआ। अज्ञेय मार्क्सवाद को एक अर्थदर्शन मानते थे। अर्थात् मार्क्सवाद हमें इतिहास की ओर देखने की नई दृष्टि देता है, इतना ही अज्ञेय का कहना था। हालांकि अज्ञेय प्रतिक्रियावादी नहीं थे, पर उनका झुकाव मनोविज्ञान, रैडिकल ह्यूमैनिज्म की ओर होने लगा। उनके प्रतिक्रियावादी न होने का प्रमाण यह है कि, 1942 में प्रगतिशील लेखक संघ के सहयोग से दिल्ली के फासिस्ट विरोधी सम्मेलन के आयोजन में महती भूमिका निभायी।

अज्ञेय के जीवन में एक ऐसा भी मोड आया जब उन्होंने ब्रिटिश सेना में भर्ती होने का निर्णय

×»ÖµÖÖ… “उन्होंने कथित अंधराष्ट्रवाद की समस्त दलीलों को ठुकराकर 1943 में ब्रिटिश आर्मी को अपनी सेवाएँ समर्पित की।”[8] द्वितीय विश्वयुद्ध में अज्ञेय कोहिमा फ्रंट पर काम करते रहे। हालांकि अज्ञेय के इस निर्णय पर बड़ा ताज्जुब होता है कि जो व्यक्ति अंग्रेजों के खिलाफ आंदोलन, उग्र प्रदर्शन और जेल यात्रा भुगतता रहा, वह अचानक उसी साम्राज्यवादी सेना में भर्ती कैसे क्या हो गये ? 1946 में कैप्टन वात्स्यायन युद्ध सेवा से मुक्त हुए। डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल ने अज्ञेय को ‘कम्युनिष्ट विरोधी नहीं माना। उलटे वे कहते हैं कि, कम्युनिष्ट ही अज्ञेय के विरोधी हुए।’

इसी दौरान भग्नदूत, चिंता के अलावा इत्यलम-1946, हरीघास पर क्षणभर-1946 †Ö¸ü ŸÖÖ¸ü सप्तक - 1943 (संपादन) का प्रकाशन हुआ। कवि अज्ञेय की हिंदी को सबसे बड़ी देन यह है कि, करीब 28 कवि (चार सप्तक), नई प्रतिभाएँ और अधुनातन नये उन्मेष का अविष्कार कराने में महती भूमिका निभायी। कविता के क्षेत्र में उन्होंने बावरा अहेरी, इंद्रधनु रौंदे हुए ये आदि कविता संग्रह दिये, जो हिंदी की अनुपम उपलब्धि है। 1954 से पूर्व लिखी गयी अधिकांश कविताओं में जनवाद, सामाजिकता और प्रगतिशीलता की दृष्टिगोचर होती है। अज्ञेय के तमाम कहानी संग्रह भी 1951 ÃÖ पहले ही प्रकाशित हुए। विपथगा, परम्परा, कोठरी की बात, शरणार्थी और जयदोल आदि कहानी संग्रहों में उनकी आधुनिक जीवन दृष्टि अभिव्यक्त हुई। 1951 के बाद कहानियाँ लिखना लगभग बंद किया। उपन्यासों में ‘शेखर : एक जीवनी’1941, द्वितीय भाग 1944,‘नदी के द्वीप-1952 †Ö¸ü ‘अपने-अपने अजनबी’-1961 में प्रकाशित हुए। वात्स्यायन जी ने हिंदी को मील का पत्थर समझे जानेवाले उपन्यास दिए। अज्ञेय ने केवल संपादन, पत्रकारिता और सृजनात्मक लेखन में ही पहल नहीं की बल्कि भ्रमण वृत्तांत - अरे यायावर रहेगा याद -1953, एक बूंद सहसा उछली -1960, †Ö¸ü निबंध त्रिशंकू -1945, आत्मनेपद -1960, आलवाल, जोगलिखी, संवत्सर, धार और किनारे -1982 आदि रचनाएँ दी। अर्थात् अज्ञेय एक बहुआयामी, प्रतिभासंपन्न और कालजयी लेखक के रूप में उभरे। अज्ञेय कवि, कथाकार, संपादक, पत्रकार, यात्रा-वृत्तांतकार, निबंध-लेखक, डायरी लेखक तथा सशक्त आलोचक के रूप में हिंदी साहित्य में अपनी अमिट मुद्रा अंकित करते हैं।

संपादक अज्ञेय भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। तारसप्तक -1943 का प्रकाशन हिंदी साहित्य में एक ऐतिहासिक घटना थी। विभिन्न पत्र पत्रिकाओं का संपादन सैनिक-1936, ×¾Ö¿ÖÖ»Ö ³ÖÖ¸üŸÖ -1937, प्रतीक -1947, £ÖÖ™ü -1950-55, वाक्, दिल्ली, साप्ताहिक दिनमान-1965, <¾Ö¸üß´ÖÖÃÖ -1972, नया प्रतीक -1973, नवभारत टाइम्स-1977, चौथा सप्तक -1978, पुष्करिणी, रूपांबरा आदि ग्रंथों का भी अमूल्य संपादन किया। एक तत्वान्वेषी संपादक के रूप में उनकी छवि उभरती है।

अज्ञेय ने देश-विदेश में प्राध्यापन कार्य भी किया। 1961 में कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय-1964 तक, तत्पश्चात उसी विश्वविद्यालय में 1969 में पुनश्च नियुक्ति हुई। 1969 में शिकागो

विश्वविद्यालय में अतिथि व्याख्यान देने गए। 1971 में जोधपुर विश्वविद्यालय में तुलनात्मक साहित्य विभाग में निदेशक पद पर नियुक्ति, 1976 में जर्मनी के हाइडेलबर्ग विश्वविद्यालय के निमंत्रण पर ‘विजिटिंग प्रोफेसर’ के रूप मेंआठ महिने काम किया। 1952 Ã0 55 तक समुचे भारत की यात्रा की। 1955 में युनेस्को के निमंत्रण पर पश्चिम यूरोप, आस्ट्रिया, हंगरी, स्वीडन की विदेश यात्रा पर गए। जापान, फिलीपींस, यूरोप की यात्राएँ की। युगोस्लाविया, चेकोस्लाविया, हालैंड, जर्मनी, फ्रांस, इग्लैंड, स्वीट्जरलैंड, इटली, ग्रीस की यात्राएँ की। विशेष उल्लेखनीय बात है कि 1943 Ã0 46 के बीच ऑल इंडिया रेडिओ में काम किया। तत्पश्चात 1950-55 के बीच रेडिओं में नौकरी की। उसी दौरान उनकी मुलाकात कपिला मलिक से हुई।

दाम्पत्य जीवन :

वस्तुतः अज्ञेय बचपन से ही एकान्त अभ्यासी थे। मौन, मितभाषिता उनके व्यक्तित्व की विशेषता रही। उनके जीवन में तब महत्वपूर्ण मोड़ आता है, जब वे अपने “अभिनेता मित्र बलराज साहनी के कहने और मनाने पर उनकी मित्र संतोष मलिक से 1940 में सिविल मैरेज किया।”[9] ¯Ö¸üŸÖ वैवाहिक संबंध में पहले ही दिन खटास पडी। ये संबंध ज्यादे दिन नहीं चले। जुलाई 1940 ´Ö ×¾Ö¾ÖÖÆü किया और अगस्त 1940 में अलग हो गये। अंततः 1946 में संतोष से तलाक लिया।

2ÖÖŸÖ 1950 की है। अज्ञेय उन दिनों दिल्ली में आकाशवाणी में काम करते थे। वहाँ उनकी भेंट कपिला मलिक से हुई। कपिला मलिक संतोष मलिक की बड़ी बहन सत्यवती मलिक की बेटी थी। कपिला जी से अज्ञेय का निर्धूम प्रेम दहकता रहा और अंततः 7 •Ö»ÖÖ‡Ô 1956 को दोनों विवाह सूत्र में बंध गए। तेरह साल बाद अपने दूसरे पड़ाव की इतिश्री हुई अर्थात् 1969 में अज्ञेय कपिला जी से अलग हुए, लेकिन दोनों ने तलाक नहीं लिया।

कपिला जी से अलग होने के बाद अज्ञेय इला डालमिया के साथ रहने लगे। इला डालमिया उस समय के प्रसिद्ध उद्योगपति रामकृष्ण डालमिया के सुपुत्री थी। इला जी के साथ उनकी प्रथम भेंट अमेरिका में हुई थी। वस्तुतः अज्ञेय और इला जी के बीच चौंतीस वर्ष का अंतर था। किन्तु उन्होंने इस संबंध को जीवन पर्यंत निभाया। सन् 1987 में अज्ञेय के निधन के पश्चात इला डालमिया ने किसी कोईराला के साथ विवाह किया। किन्तु आज कोईराला भी जीवित नहीं है।

अज्ञेय का वैवाहिक जीवन विवादास्पद रहा। अज्ञेय के विरोधियों ने उन पर नारी जाति का शोषण करने के आरोप लगाए। स्वयं संतोष मलिक जो बाद में संतोष साहनी बनीं उसने भी गंभीर आरोप लगाएँ है। वस्तुतः संतोष मलिक बलराज साहनी की पूर्व प्रेमिका थी। साहनी अपनी प्रेमिका को मित्र - पत्नी बनाकर रखना चाहते थे। अज्ञेय को इन महीन संबंधों का पता चला और धीरे-धीरे इन संबंधों में दूरियाँ निर्माण होती गई। कहा जाता है कि, अज्ञेय ने संतोष मलिक से तलाक लेने के

लिए अदालत में अपने उपर ऐसा आरोप ले लिया, जिसे शायद ही कोई पुरूष मान पाए। परंतु ये बात भी सच है कि अज्ञेय विवाहेतर संबंधों के बारे में हमेशा विवाद में घिरे रहे। अज्ञेय का सुंदर आकर्षक स्वस्थ व्यक्तित्व और उनकी प्रतिभा ने अनेक स्त्रियों को लुभाया था। पत्रकार प्रभाष जोशी ने भी समाचार पत्र में लिखते हुए इसकी खुलकर चर्चा की है।

पहला विवाह टूटने के बाद अज्ञेय अकेले रहने लगे। धीरे-धीरे कपिला जी से संपर्क हुआ। और अंततः माता-पिता के विरोध में जाकर कपिला जी ने 1956 में अज्ञेय के साथ विवाह रचा। विवाह के पहले और उसके बाद दोनों तेरह साल साथ रहे। दोनों में कोई औपचारिक तलाक नहीं हुआ। किन्तु कपिला जी के मन में इला डालमिया के सान्निध्य को लेकर संशय भाव जाग उठा। “कपिला जी के मन में संशय, उनके भीतर का पत्नीत्व का दर्प, विद्या एवं पद की सचेतनता ये सब अज्ञेय के लिए निरंतर क्लेशकारी अनुभव बनते चले गये।”[10] कपिला जी अपने नाम के आगे वात्स्यायन लगाती है। दोनों में तनाव और टकराव की स्थितियाँ बनती चली गई। किन्तु दोनों चुप थे, मौन थे। लेकिन कपिला जी से अलग होने के बाद अज्ञेय इला डालमिया के साथ रहने लगे। अज्ञेय को इला में एक गहरी सांस्कृतिकता, एक धवल प्रणयालोक, एक नवीन सृजन प्रेरणा, एक साथ-साथ चलनेवाले यात्री का निष्कम्प विश्वास दिखायी दिया। अज्ञेय इला जी के साथ अंत तक बिना विवाह किये जिये। वे इला जी को अपनी सखी, सचिव और प्रेमिका मानते रहे।

स्त्री-पुरूष संबंधों में आधुनिकता का पुरस्कार अज्ञेय ने किया। संबंधों में खुलापन, किसी बनी-बनायी लिक पर न चलने के वे आदी रहे। विशेषतः अपनी बेटी की उम्र की लड़की के साथ संबंध बनाना, उसे निभाना और भारत जैसे नैतिकता, पवित्रता और पाखंड मानसिकता वाले देश में इस प्रकार का व्यवहार चौंकाता जरूर है। किन्तु अज्ञेय इन सब चीजों से परे गये। अज्ञेय के दाम्पत्य जीवन का कृष्णपक्ष भी रहा, जिसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। किन्तु एक बात तो स्वीकारनी ही पडेगी कि, स्त्री-पुरूष संबंधों की दृष्टि से वे नर-मादा से परे जाते हैं। संबंधों में खुलापन और संबंधों को सहर्ष स्वीकारने की मानसिकता कहीं न कहीं अज्ञेय को अपने समकालीनों में विशिष्टता प्रदान करती है। किन्तु अज्ञेय ने ‘वरण् की स्वतंत्रता’ †Ö¸ü ‘स्वाधीनता की चेतना’ को हमेशा महत्त्व दिया, जिसका चरितार्थ उनके जीवन और साहित्य में लक्षित होता है। अंततः इतना ही कह सकते हैं कि, अज्ञेय निःसंदेह लीला-पुरूष थे।

सम्मान एवं पुरस्कार :

अज्ञेय के जीवन में जितनी मिठास है,उतनी ही कडवाहट थी। 1934 ÃÖ 1986 तक का दौर अज्ञेय का युग रहा। करीब पांच दशकों तक हिंदी साहित्य की समर्पित वृत्ति से सेवा करनेवाले साहित्यवृत्ति अज्ञेय को अनेक पुरस्कार और सम्मानों से नवाजा गया। अज्ञेय हमेशा साहित्य के सत्ता

केंद्र में रहे। नेहरू से मित्रता, जयप्रकाश नारायण और भारतीय जनसंघ तक, उनकी ओर सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। देश-विदेश की यात्राएँ की। अनेक साहित्यिक संस्थाओं की स्थापना (वत्सल निधि, जन जनक जानकी यात्रा) तथा परिमल में गोष्ठियाँ का आयोजन आदि साहित्यिक सांस्कृतिक गतिविधियों के साथ वे निरंतर जुडे रहे। लोठार लुत्से, कार्ल यास्पर्स, नोबेल पुरस्कार विजेता आन्द्रिच तथा स्लोवेनी कवि मातेई बोर से उनके आत्मीय संबंध रहे।

अज्ञेय को विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन ने डी. लिट की उपाधि प्रदान की। '¤¾Ö' पुरस्कार उन्हें मिला। साहित्य अकादमी ने 'आंगन के पार द्वार' के लिए सन् 1968 में पुरस्कृत किया गया। 1978 में भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा साहित्य के लिए दिया जानेवाला सर्वोच्च पुरस्कार ज्ञानपीठ उनकी काव्यकृति 'कितनी नावों में कितनी बार' रचना के लिए दिया गया। 1985 ´Ö ˆ¢Ö¸¾Ö ¯Ö¤¿Ö ØÆ¤ß संस्थान ने शिखर सम्मान, भारत भारती से सम्मानित किया। साथ ही वैश्विक स्तर पर अज्ञेय को बड़े पुरस्कार से नवाजा गया, जो अंतर्राष्ट्रीय ख्याति का पुरस्कार स्वर्णमाल 1983 को प्राप्त हुआ। स्वर्णमाल पुरस्कार उनके पहले अमेरिका के डब्लु. एच. ओडन, इटली के यजीनियो मोंताले, चिली के पाब्लो नेरूदा, सेनेगल के लियोपाल्ड - से - होर, फ्रांस के यजी ग्लेलेविच, जर्मनी के ऐन्रसेन्सबर्गर, स्पेन के अलबर्नी, रूमानिया के निकिता स्तोनेक जैसे प्रसिदध कवियों को प्राप्त हो चुका था।

वस्तुतः अज्ञेय हिंदी के शिखर पुरूष थे। देश और दुनिया में उन्हें भारतीय साहित्य और संस्कृति पर व्याख्यान देने हेतु कई बार निमंत्रित भी किया गया। अतिथि व्याख्याता के रूप में बर्कले, जर्मनी आदि स्थानों पर वे निमंत्रित थे। हिंदी के इस महत्वपूर्ण हस्ताक्षर का सम्मान देश और दुनिया ने किया। उत्तर-अज्ञेय चरित्र की अपनी परिवर्तित वैचारिक दिशाएँ हैं। जिसकी वजह से कई बार उन्हें कटू आलोचना भी सहनी पड़ी। कभी उन्हें हिंदी का चिम्पाजी या अमेरिका का दलाल या यूरोप का लाडला भी कहा गया। अज्ञेय का सफर प्रगतिशीलता से व्यक्तिवाद की ओर मुडता है। कभी उन्हें साम्राज्यवाद का पिछलग्गू भी माना गया है। डॉ. आलोक सिंह के अनुसार "साम्राज्यवादी सांस्कृतिक शीतयुद्ध के मायावी और मानवघाती दांवपेचों के पुर्जे बनकर अंतराष्ट्रीय स्तर पर साम्यवाद विरोधी और राष्ट्रीय स्तर पर प्रगतिवाद विरोधी मुहिम को अज्ञेय और उनके संगी साथियों ने नई कविता में आधुनिकता के नाम पर शुरू किया।"[11]

अरे यायावर रहेगा याद :

अज्ञेय का निधन 4 †¯ÖÏ»Ö 1987 को हृदयगति रूक जाने से दिल्ली में हुआ। उन्होंनेअपना जीवन देश और देश की सेवा में समर्पित किया। 'कितनी नावों में कितनी बार' उनका सार्थक जीवनक्रम था क्योंकि, एक जगह पर कहीं टिके नहीं। यह हिंदी का हारिल था, जो नीड़ में न रह सका और सदा-सर्वदा अनंत यात्रा के लिए उड़ान भर गया। कवि माचवे की '†–µÖ' शीर्षक की कविता

की ये पंक्तियाँ यहाँ प्रासंगिक है -

हिंदी की नव कविता में तुम प्रथम तार-सप्तक के कविवर;
प्रतिभाओं के उत्तम चयनक, आलोचक, द्रम प्रेमी, सुंदर।
इतने गुण होने पर भी क्यों इतने तुम्हारे शत्रु गुरूतर;
इतने घर होने पर भी तुम रहे अकेले, अपुत्र, बेघर।
वत्सल न्यासी और अकिंचन, रहे विरोधाभास संतुलनर;
नट की तरह तनी रस्सी पर से तुम खिसक गए, वात्स्यायन।

ब) अज्ञेय का व्यक्तित्व : जमीनी सच -

अज्ञेय आकर्षक व्यक्तित्व के धनी थे। शांत, संयमी, चुप्पा उनके व्यक्तित्व के प्रमुख अंग थे। वस्तुतः अज्ञेय के व्यक्तित्व के दो आयाम थे। एक सृजनधर्मी लेखक और दूसरा परिस्थितियों के प्रहारों को झेलता हुआ व्यक्ति। अज्ञेय के व्यक्तित्व के बारे में आलोक सिंह लिखते हैं, "अज्ञेय का शारीरिक सौष्ठव बहुत ही आकर्षक था। ऊँचा कद, प्रशस्त ललाट, सुडौल उन्नत नासिका, आजानु बाहु, गोल मुखमंडल, चश्मे के पीछे से झांकती बड़ी-बड़ी आकर्षक मुस्कराती सी आँखे, चौड़ा वक्षस्थल, बलिष्ट भुजाएँ, एक राजसी व्यक्तित्व की छवि दर्शक को अनायास ही मोह लेती थी। उनके राजसी रूप के कारण ही क्रांतिकारी दल में उन्हें राजा कहा जाता था।"[12] अज्ञेय के इसी रूप पर सब मोहित थे। किन्तु बाहरी रूप की अपेक्षा उनका व्यक्तित्व ही इतना सघन, संतुलित और संयत था कि देखनेवाला देखते ही रह जाता। व्यक्तित्व की इसी आभा से पुष्पा भारती जी भी लुब्ध थी। वे लिखती हैं, "सफेद दाढ़ी, काले सफेद बाल, आँखों पर चश्मा, चश्मे के भीतर तीखी, गंभीर किन्तु स्नेहमय आँखे, गंभीर आभिजात्य, मौन मुखमुद्रा, विनय साहित्य वाचस्पति, अज्ञेय का व्यक्तित्व कतिपय विशेषताओं को लिए हुए था। बातें करते तो भवें किंचित ऊँची उठी रहती और उन्नत ललाट पर सल पड़ जाते और हँसती-सी आँखों में न जाने कैसा अजब-सा कातर भाव डोलता रहता, पर दृष्टि ऐसी होती थी कि सामनेवाले की भीतरी तहें तक चीरती चली जाती और उनका वजूद ऐसी ऊँगली बन जाता जो सामनेवाले की मन की पर्तो में जो सुंदरतम अंश होता, उसे जाकर छू लेता £ÖÖ..."[13] ये तो बिलकुल स्वीकार्य है कि अज्ञेय का व्यक्तित्व विविधमुखी था। साहित्य को समर्पित व्यक्तित्व होने के कारण इस व्यक्ति ने अपनी तमाम प्रतिभा विविध विधाओं में उंडेल दी। अज्ञेय के इसी विविधमुखी व्यक्तित्व का परिचय देते हुए निराला ने 'अर्चना' ग्रंथ पर लिखकर अज्ञेय को भेंट की थी- "To Ajneya, the poet writer and novelist, in the foremost rank. Ni/18.5.51"[14]

प्रो. डॉ. मैनेजर पांडेय ने अज्ञेय के व्यक्तित्व के बारे में बातचीत में कहा, 'अज्ञेय का व्यक्तित्व संवेदनशील और ग्रहणशील था। एक लेखक का आत्मसम्मान उनमें कुटकुटकर भरा

Æ¡†ö £öö…’

अज्ञेय के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता एकांत अभ्यासी होना थी। वे बचपन से ही एकांतवासी थे। उसके कई सारी कारण थे। एक तो प्राकृतिक सौंदर्य के बीच उन्हें रहने, जीने का अवसर मिला। वे निरंतर अपने जीवन और साहित्य में प्रकृति से संवाद करते हैं। इसलिए प्रो. डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल उन्हें ‘¸¡Ÿöö’ का कवि कहते हैं। रेता अर्थात् प्रकृति। एक तो प्रकृति, दूसरा उनके स्वभाव की विशेषता ही थी कि, वे बहुत कम बोलते थे। जेल जीवन के एकांत ने उन्हें चुप्पा बनाया था। परिणामतः उनकी कविता में मौन का संगीत सुनायी देता है। वस्तुतः अज्ञेय व्यक्ति मन के अंधेरे कोने में झांकने वाले रचनाकार हैं। इसी वजह से अस्तित्ववादी दर्शन का अवगाहन वे करते हैं।

वात्स्यायन जी मूलतः तीव्र भावावेग के व्यक्ति थे। सिद्धांत निष्ठा की वृत्ति उनके भीतर समाहत थी। आवेगशीलता को उन्होंने बचाए रखा था। एक नैतिक बुद्धिजीवी होने के नाते उन्होंने अपने समय की गहरी जाँच पड़ताल की। संवेदनशील अन्तरदृष्टि, सौन्दर्यबोध और शिवत्वबोध, सौम्य और प्रशान्तात्मा अज्ञेय की छवि का प्रधान अंग बन जाती है। उपर्युक्त तमाम विशेषताएँ उनके साहित्य सर्जना में प्रतिबिंबित होती है। इसी बात को केंद्र में रखते हुए ‘साहित्य कोश’ में कुछ इस प्रकार चर्चा की गई है। “वस्तुतः अज्ञेय का व्यक्तित्व उनके रचनाओं की मूलशक्ति है और शायद सीमा भी। अक्सर ऐसा लगता है कि यह व्यक्तित्व भोक्ता उतना नहीं जितना चिंतक है।”[15]

चिंतनशीलता अज्ञेय की प्रमुख विशेषता रही है। हिंदी कविता को चिंतनप्रधान बनाने का श्रेय उन्हीं को जाता है अर्थात् समाज के स्थान पर व्यक्ति को केंद्र में लाने का उनका प्रयास इसी बात की प्रतीति कराता है। उनकी चिंतनशीलता में व्यक्ति समाहित था। हिंदी कविता को चिंतन की भूमि से जोडने का श्रेय उन्हें ही जाता है। इसलिए मराठी के सुविख्यात विद्रोही कवि नामदेव ढसाळ कहते हैं कि ‘अज्ञेय ने हिंदी को एक चिंतन की दृष्टि दी।’ यही चिंतनशीलता उन्हें बड़ा लेखक ही नहीं बड़ा व्यक्ति भी बनाती है। क्योंकि अज्ञेय का साहित्य हमें संस्कारित करता है और उनका व्यक्तित्व भी।

अज्ञेय के व्यक्तित्व की एक और बड़ी विशेषता है- उनके भीतर समादृत ऋजुता। अनेक अन्तर्विरोधों को झेलते हुए अज्ञेय अपनी ऋजुता से सभी को जीत लेते हैं। औरों की तमाम कोशिशों को नाकाम करते हुए वह मुट्ठी से फिसल जाते हैं, जैसे रेत के कण मुट्ठी से सरक जाते हैं। अज्ञेय ने हमेशा अनुभूति की प्रामाणिकता को सर्वोपरि माना। पर ये भी सच है कि उनकी जीवनयात्रा अहं के शिखर से चलकर आत्मा के सागर में विसर्जित हो जाती है। अज्ञेय के काव्य में सागर बहुत है, मछली बहुत है और मछली सागर को नहीं, सागर मछली को टेरता है। इसलिए उनकी सुविख्यात कविता ‘नदी के द्वीप’ संस्कृति बोध की अभिव्यक्ति करती है। यहाँ नदी संस्कृति की प्रतीक के रूप में ग्रहण की गई है। सुविख्यात लेखिका राजी सेठ ने प्रस्तुत पंक्तियों के शोधार्थी से बातचीत करते हुए कहा

£ÖÖ, ‘अज्ञेय में गहरा संस्कृति बोध है। केवल संस्कृतिबोध ही नहीं उनका नेशनलिस्ट व्यक्तित्व हमें आज भी प्रेरणादायी हो सकता है।’

अज्ञेय के व्यक्तित्व की बड़ी खुबी विद्रोही होने में हैं, वे जन्म से विद्रोही हैं। बचपन में अंग्रेजी में पूछे गये प्रश्नों के जवाब हिंदी में देना, उनके विद्रोहीपन का प्रमाण है। डॉ. रामकमल राय के अनुसार “अज्ञेय में जन्मजात विद्रोही स्वर,उनका सौष्ठवपूर्ण एवं उन्मुक्त व्यक्तित्व, उत्कृष्ट मनीषा और गहरी साधना के दर्शन होते हैं।”[16] उन्मुक्त व्यक्तित्व के अनेक लक्षण उनमें दिखाई देते हैं। इला डालमिया के साथ बिना विवाह किये जीवनभर रहना, उनकी इसी वृत्ति को दर्शाता है। विशेषतः कविता के क्षेत्र में अज्ञेय का आगमन बड़ा विलक्षण रहा। अज्ञेय ने परंपरागत घाटों में बहती हुई कविता को मुक्त किया। छंद से मुक्ति, शैली और भाषा के बंधनों से मुक्ति। वस्तुतः उन्होंने भाषा का, लय का, तुक का, यति का, गति का संस्कार और पुनर्निर्माण किया। खुद के माध्यम से परिवेश की तलाश उन्होंने की। उनका विद्रोहीपन वहाँ भी नजर आता है, जब वे अंग्रेजों के खिलाफ क्रांतिकारी आंदोलन में शरीक होते हैं। उतना ही नहीं लंबी जेल यात्रा करनी पड़ी। ये विद्रोह भाव कई रूपों में, कई स्थानों पर उद्घाटित हुआ है। उनके इसी विद्रोहीपन की चर्चा करते हुए रामकमल राय लिखते हैं, “डी. आई. जी. जैन्किन्स को चांटा मारनेवाला, अपनी मान्यताओं के लिए अपने पिता की सारी परिकल्पनाओं को चकनाचूर करने वाला, क्रांतिकारी जीवन की नृंशस यातनाओं को बिना उफ् किये सहन करनेवाला, प्रो. बनेड के साथ कॉस्मिक रेत के शोध अभियान में जानेवाला यह व्यक्ति मात्र अस्सी रूपये का वेतनभोगी सह सम्पादक नहीं है, अपने मूल्यों के लिए लडनेवाला एक †¯Ö¸Ö•ÖµÖ µÖÖ¨¨Ö Æ…”[17]

वात्स्यायन जी का व्यक्तित्व बहुआयामी रहा है। उनमें सर्जनात्मक पक्ष जितना प्रबल है, उतना ही आयोजनात्मक पक्ष भी। परिमल की गोष्ठियाँ, अंतर्राष्ट्रीय गोष्ठियों का आयोजन, चार तार-सप्तकों का संयोजन, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय परिचर्चाओं में सहभागिता आदि की वजह से उनके व्यक्तित्व में अंतर्प्रादेशिकता से परे जाने की क्षमता दीख पड़ती है। विशेषतः अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त प्रतिभाओं से मिलाप, उनकी साथ-संगत और हर बार नया करने, पाने की ललक उनमें दिखाई देती है। इसलिए ये कहा जा सकता है कि, अज्ञेय में ज्ञान की जितनी विविधता, व्यापकता है, उतनी गहराई अन्यत्र नहीं है। विपरिताओं से खेलना उनकी हॉबी थी। यही कारण है कि अज्ञेय निरंतर सक्रिय रहे। उनकी इसी सक्रियता की वजह से हिंदी भाषा और साहित्य में विस्तार के साथ गहराई भी आ सकी।

अज्ञेय बहुमुखी साहित्यकार, प्रतिभावान लेखक थे। साहित्य की अनेक विधाओं में उन्होंने लेखनी चलायी। कविता, कहानी, उपन्यास, निबंध-लेखक, डायरी-लेखक, संपादक, समीक्षक और नाटककार भी थे। उन्होंने न केवल यात्राएँ की बल्कि प्रचुर मात्रा में यात्रा-साहित्य भी लिखा। उन्होंने

डायरी जैसी अभिनव विधा को जन्म दिया। विशेष उल्लेखनीय बात ये है कि, अनेक महत्वपूर्ण कृतियों के हिंदी में और हिंदी से अन्य भारतीय भाषाओं में सफल अनुवाद किए। हमेशा नया करने का उत्साह उनमें हुआ करता था। इसी बात को उजागर करते हुए मनोहर श्याम जोशी ने विस्तार से बतलाया कि, “वात्स्यायन में हमेशा नया करने और नया सीखने की अद्‌भत तत्परता रही।”[18] साहित्य की अनेक विधाओं में उन्होंने नये प्रयोग किये। प्रयोगशीलता उनके व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषता थी। बहुआयामी साहित्यिक प्रतिभा होने की वजह से साहित्य विचारक भी भाँति अपनी सक्षम अभिव्यक्ति दी। वस्तुतः अज्ञेय में घोर परिश्रमशीलता की वृत्ति होने से हमेशा विधाओं की जड़ों की छानबीन की।

अज्ञेय के विलक्षण व्यक्तित्व का एक अंग उनका बहुभाषाविद होना भी था। राहुल सांकृत्यायन जी के बाद अज्ञेय का भाषा ज्ञान साहित्य मनीषियों में कुतुहल का विषय था। हिंदी सहित अज्ञेय जी सोलह भाषाएँ जानते थे। पंजाबी उनकी मातृभाषा थी, घर में आर्यसमाजी संस्कार होने के कारण संस्कृतनिष्ठ हिंदी का चलन था। बांगला, गुजराती, तमिळ और मराठी बोल लेते थे। उर्दू पर उनका असाधारण अधिकार था। वे कपिला जी से हमेशा तमिळ में बात करते थे ताकि कोई दूसरा समझ न सके।

अज्ञेय का व्यक्तित्व व्यापक, जटिल और रहस्यपूर्ण था। व्यापकता उनके चिंतन में थी, तो जटिलता व्यक्तित्व का अंग बन चुकी थी। पर सबसे महत्वपूर्ण बात कि उनके व्यक्तित्व का रहस्यपूर्ण होने में थी। वे बहुत कम बोलते थे, इसलिए उनको जानने का प्रयास करना इतना आसान नहीं था। परंतु अज्ञेय के व्यक्तित्व ने, चिंतन ने एक युग को प्रभावित किया।

अज्ञेय एक कर्मयोगी थे। उनकी कर्मशीलता उनके लेखन, सांस्कृतिक गतिविधियों में, साहित्यिक आयोजनों में साफ झलकती है। यह कर्मभाव अपने साहित्यिक मित्रों को सहायता देने में कभी कंजुषी नहीं बरत पाया। लक्ष्मीकांत वर्मा, राजकमल चौधरी, मुक्तिबोध को भी भावनिक और आर्थिक सहायता देने में कोताही नहीं बरती।

अज्ञेय शब्द कृपण-वक्ता थे। उनकी वक्तृता तोल मोल के बोल वाली थी। वे एक सचेतन भाषण कर्ता थे। वे अक्सर अपनी बात लिखकर ही पेश करते थे। किसी भी विषय पर तात्कालिक, तुरंत प्रतिक्रिया देने से बचते थे। यही कारण है कि वे हिंदी साहित्य जगत के लिए आदरणीय थे। दूसरे शब्दों में कहे तो अज्ञेय मितभाषी थे। बोलचाल में आकर्षकता, मोहकता और मृदुलता दृष्टिगोचर ÆÖŸÖß £Öß…

अज्ञेय कालपुरूष थे। काल चिंतन पर उन्होंने ‘ÃÖ¾ÖŸÃÖ¸’ शीर्षक से एक पूरी की पूरी पुस्तक लिखी है। तमाम प्रकार की विचारधाराओं को नकारते हुए वे काल का अतिक्रमण कर पाते हैं।

युगसंधि पर खड़े होकर इस शिखर पुरूष ने मनुष्य और मानव मुक्ति का नया पाठ रचा। इसी कारण अज्ञेय के विरोधियों को फटकारते हुए रामकमल राय लिखते हैं, "अज्ञेय को व्यक्तिवादी या अहंवादी कहनेवाले हिंदी समीक्षकों को शायद नहीं मालूम कि मानवता को एक उद्‌भावना, एक मुक्तिसत्य तथा मानव इकाई को जीवंत सत्य माननेवाला यह लेखक लगातार, जीवनभर लोगों के दु:खों में शरीक होता रहा और ऊपर से दाता की मुद्रा में नहीं, एक सहभोक्ता या सह-संवेदना के स्तर पर।"[19] व्यक्ति से समष्टि तक की यात्रा अज्ञेय का साहित्य रहा है, जो उनके जीवन के साथ अभिन्न रूप से •Ö>Ö Æ†Ö Æ...

प्रारक्षित स्वभाव अज्ञेय की विशेषता थी। उन्होंने स्वाभिमान को जीवन का सर्वोपरि मूल्य माना। बौद्धिक दूरी बनाए रखते हुए संबंधों का निर्वाह उन्होंने किया। किसी के व्यक्तिगत जीवन में कभी दखल नहीं दी और न ही अपने जीवन में किसी को। समकालीन प्रतिभाओं को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। तार सप्तकों के संपादन से पता चलता है कि, सृजनात्मक क्षेत्र में वैचारिक मतभिन्नता या संकीर्णता कोई मायने नहीं रखती। सप्तकों के कवियों में कितनी विविधता है, कितना वैचित्र्य है।

अज्ञेय ने आलोचना के क्षेत्र भी काम किया। किन्तु प्रायोजित आलाचेना कभी नहीं की अथवा संबंध निर्वाह का प्रयास भी नहीं। एक लेखक के स्तर पर उनके विरोधियों ने कटु आलोचना की किन्तु वे तनिक भी विचलित नहीं हुए। कौन-सी गाली है, जो उन्हें नहीं दी गयी। अपना काम करते रहना, यही उनकी चेतनशील धारणा रही। उनके पास पचासों शब्दकोश थे। कोश के प्रति गहरी रूचि उनमें दिखाई देती है। इसलिए ये जरूर कह सकते है कि, अज्ञेय अनुकरणवादी नहीं अनुसरणवादी थे। ज्ञान के प्रति निरंतर जिज्ञासा और मस्त फकीरी ठाठ का चोला धारण कर अज्ञेय जीते रहे। अंत में, इतना ही कह सकते है कि, "अज्ञेय का व्यक्तित्व निस्संदेह हिंदी साहित्य का पूर्ण पुरूषार्थ था वह हिंदी के आभिजात्य पौरूष के प्रतीक थे।"[20]

निष्कर्ष :

छायावादोत्तर साहित्य में अज्ञेय का स्थान निश्चित रूप से ऊपर का है। एक बौद्धिक सतर्कता, प्रश्नाकुलता और समय-समाज के प्रति गहरी आस्था अज्ञेय में दिखाई देती है। समाज सत्य के स्थान पर व्यक्ति सत्य का अवगाहन वे करते हैं। अनुभूति की अद्वितीयता पर बल देते हुए महायुद्धोत्तर भारतीय समाज का अद्वितीय चित्र उकेरते हैं। अज्ञेय वागर्थ का वैभव थे। उनकी यह छवि बार-बार उनके साहित्य में अभिव्यक्त होती है। साहित्य में पहली बार परंपरा, आधुनिकता, प्रगति, प्रयोग, संस्कृति, अनुभूति आदि पर अवधारणा के रूप में विचार-बहस करने की शुरूआत अज्ञेय ने की। इसलिए अज्ञेय हिंदी साहित्य में आधुनिकता को अंकित करनेवाले सशक्त लेखक के

रूप में उभरते हैं। एकांतप्रियता, क्रांतिकारी विद्रोही व्यक्तित्व, आशावादिता, समाज के स्थान पर व्यक्ति को केंद्रवर्ती बनाना, अनुभूत सत्य को समाज सत्य बनाने की कोशिश, निरंतर कर्मशीलता, समय की चुनौतियाँ को स्वीकार करने का अदम्य साहस, बहुआयामी परिश्रमशीलता, जन्मजात विद्रोहीपन, प्रकृति से जुड़ा हुआ सौंदर्यबोधी व्यक्ति, संस्कृति का पुजक, भाव, भाषा, शैली और प्रतीकों में प्रयोगशीलता, जीवन के प्रति निस्संग समर्पण का भाव, नवीन रचनात्मक और वैचारिक धरातल पर साहित्य को खड़ा करने का सशक्त प्रयास, जीवन को सहज गरिमा दिलानेवाला कर्मयोगी आदि विशेषताओं से गुंथा हुआ हैं- अज्ञेय का विशाल एवं विराट व्यक्तित्व। अज्ञेय के व्यक्तित्व के इन्हीं पहलुओं को निम्न बिंदुओं के आधार पर समझा जा सकता है।

1. मिट्टी से जुड़ा हुआ सृजनधर्मी।
2. सुसंस्कृत और साहित्यिक पर्यावरण में पलना, बढ़ना, विकसित होना।
3. भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेना, क्रांतिकारी जीवन यात्री।
4. यायावरी वृत्ति अज्ञेय का शौक रही। अरे यायावर रहेगा याद!
5. अज्ञेय एकान्तप्रिय मौनशिल्पी।
6. सौम्य व्यक्तित्व मितभाषी, संवेदनशील, ग्रहणशील और चिंतनशील व्यक्तित्व।
7. अज्ञेय सौम्य, सूक्ष्म विद्रोही।
8. पूर्व प्रचलित परंपराओं को नकारकर नयी धारा का प्रवर्तन, प्रयोगवाद के मुख्य प्रवर्तक बने।
9. नये लेखकों को पैर टिकाने के लिए भूमि देनेवाला, भूमिधर। अपराजेय योद्धा, संकल्पसिद्ध व्यक्तित्व के धनी।
10. अज्ञेय कवि के अतिरिक्त कहानीकार, उपन्यासकार, पत्र संपादक, निबंधकार, डायरी-लेखक, अनुवादक और आलोचक के रूप में हिंदी साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान। अज्ञेय के इसे बहुमुखी व्यक्तित्व पर उन्हीं की काव्यपंक्तियाँ उनके जीवन पर भी लागू होती है -

    ‘यह वह विश्वास, नहीं जो अपनी लघुता में भी कांपा,
    वह पीड़ा जिसकी गहराई को स्वयं उसी ने नापा,
    कुत्सा, अपमान, अवज्ञा के धुंधवाते कड़वे तम में,
    यह सदा द्रवित चिर जागरूक, अनुरक्त नेत्र
    उल्लम्ब बाहु, यह चिर अखण्ड अपनापा
    ×•Ö–ÖÖÃÖ, ¯Ö²Ö¨ü ÃÖ¤ü Á֨ü´ÖµÖ,
    इसको भक्ति को दे दो।’

ब) मर्ढेकर :

1. बा. सी. मर्ढेकर का जीवन-वृत्त :

प्रस्तावना :

मराठी काव्येतिहास की परंपरा में मर्ढेकर का स्थान अत्यंत ऊँचा है। मराठी साहित्य की आधुनिक परंपरा का सूत्रपात मर्ढेकर ने किया। काव्य में नवीनता का प्रवर्तन करते हुए अपने नयी कलात्मक सोच का परिचय मराठी जगत् को मर्ढेकर देते हैं। किसी भी कवि, कलाकार का व्यक्तित्व अपनी अमिट छाप अपनी रचनाओं के द्वारा छोड़ता है और उसकी रचनाओं में उसके व्यक्तित्व की झांकी जरूर मिलती है। मराठी के सुविख्यात विचारक गं. बा. सरदार ने इसी बात को लक्ष्य करते हुए लिखा है, "लेखक का व्यक्तित्व ही उसकी जीवन दृष्टि है।"[21] मर्ढेकर के व्यक्तित्व और चिंतन की छाप मराठी काव्य परंपरा में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। मर्ढेकर ने आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में मराठी कविता, उपन्यास और आलोचना के क्षेत्र में अपनी स्वतंत्र मुद्रा अंकित की। 1940 के बाद का मराठी काव्य 'मर्ढेकरी युगीन काव्य' के नाम से पहचाना जाता है। इतना वैविध्यपूर्ण, बहुरंगी और प्रभावशाली लेखन मर्ढेकर ने किया। ऐसे प्रतिभाशाली, प्रभावशाली और एक युग निर्माता लेखक-कवि के जीवन को समझना आवश्यक है। 'किसी कवि की प्रतिभा और उसका जीवन संबंधी दृष्टिकोण इन दोनों का सुंदर मिलाफ ही कवि-व्यक्तित्व होता है।' मर्ढेकर का जीवन-वृत्त निम्न रूप ´Ö Æî…

जन्म :

"मर्ढेकर का जन्म खानदेश में फैजपुर नामक ग्राम में 1 ×¤ÃÖ²Ö¸ü 1909 को हुआ।"[22] ´Ö¸üšß साहित्य जगत् का साहित्यिक परंपरा का अभिमान करानेवाले लेखक मर्ढेकर रहे। देशस्थ ऋग्वेदी ब्राह्मण परिवार में मर्ढेकर का जन्म हुआ। मर्ढेकर का परिवार मूल रूप से सातारा (महाराष्ट्र) जिले में स्थित अनेवाडी नामक ग्राम से आता है। उनके पुश्तैनी गाँव का नाम मर्ढे है। मर्ढेकर का उपनाम मूल रूप से गोसावी था। चाचाजी की देखा-देखी में अपने गाँव के नाम को उपनाम के रूप में मर्ढेकर ने धारण किया। उनके पिता का नाम सीताराम पंत था। वे पेशे से शिक्षक थे। सीताराम पंत का जन्म 1877 में हुआ। उन्होंने प्रारंभ में शिक्षक का पेशा अपनाया। तत्पश्चात मुख्याध्यापक बने और बाद में डेप्यूटी बने। उनका निधन 25 अगस्त 1945 ´Ö Æî†Ö…

सीताराम पंत की पहली तीन संताने लड़कियाँ हुई। किन्तु तीनों की असमय (बचपन में ही) मृत्यु हुई। चौथी लड़की हुई और उसके बाद बाल (बाळ) का जन्म हुआ। मर्ढेकर का परिवार धार्मिक परंपरा का पालन करनेवाला था। परिवार में रामदासी परंपरा का पालन हुआ करता था। अर्थात् रामभक्ति परिवार का मूल आधार बना। राम के बारे में अपार श्रद्धा परिवारजनों के मन में भी।

परिणामतः “भारतीय साहित्य, संस्कृति और धर्म के संबंध में अपार श्रद्धाभाव मर्ढेकर में दिखाई देता Æ…”[23] मर्ढेकर के मन में अपनी बड़ी बहन के प्रति अपार प्रेमभाव था। यह प्रेमभाव उनके ‘शिशिरागम’ काव्य संग्रह में लिखित ‘प्रीतीची दुनिया’ (प्रीति की दुनिया) कविता में अभिव्यक्त हुआ है। परिवार मर्ढेकर जी का ऊर्जा केंद्र रहा है। इसलिए अपने गांव और परिवार के प्रति जीवन के अंत तक लगाव रहा, जो उनकी रचनाओं और कथनों में बार-बार झलकता है।

शिक्षा एवं अध्ययन :

मर्ढेकर की मैट्रिक तक की पढ़ाई बहादरपुर, फैजपुर सावदे, गरूड हायस्कुल, धुलिया में हुई। शुरूआत में, उनके अपने गांव में अंग्रेजी कक्षा तीसरी तक पढ़ाई हुई। मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण होने के बाद वे पुना आये। 1924-28 के दौरान पुना के फर्ग्युसन कॉलेज में पढ़ाई की। 1928 ´Ö ´Ö²Ö‡ विश्वविदयालय से उन्होंने बी. ए. की उपाधि प्राप्त की। एम.ए. मराठी डेक्कन कॉलेज पुणें से किया।

वस्तुतः मर्ढेकर ने बचपन से एक बड़ा सपना देखा था। सपना था, आई. सी. एस. अधिकारी बनना। पिता को अपने पुत्र की यह अभिलाषा मालूम थी। अतः आई. सी. एस. परीक्षा की तैयारी हेतु लंदन जाना था। किन्तु आर्थिक स्थिति थी नहीं। अंततः अंमलनेर के प्रतापसेठ से कर्जा लेकर मर्ढेकर सन् 1929 में लंदन गये। चार वर्षों में तीन बार आई. सी. एस. की परीक्षा दी किन्तु सफल नहीं हुए। असफलता ही हाथ लगी। परिणामतः असफल होकर लंदन से 1933 में भारत लौटे। लंदन के निवास में वहाँ का जनजीवन, यूरोप के सुख-दुःख, जीने की दुर्दशा, विज्ञान का विकास, यंत्रसंस्कृति से उपजी नयी सभ्यता का परिचय मर्ढेकर को हुआ। द्वितीय महायुद्ध, आर्थिक मंदी, बेरोजगारी से परेशान युवक, आम आदमी का संकटग्रस्त जीवन मर्ढेकर ने अपनी आँखों से देखा। उसी दौरान “समय मिलते ही मर्ढेकर ने इतालियन, फ्रेंच भाषाओं, साहित्य का अध्ययन किया।”[24] लंदन से लौटने के बाद मर्ढेकर के जीवन में घोर निराशा आयी। किन्तु उसी हालात में जीवन निर्वाह तो करना •Öºþ¸üß £ÖÖ… ‡ÃÖ×»Ö‹ 1935 में मुंबई के एल्फिन्स्टन महाविद्यालय में टयूटर की नौकरी की। तत्पश्चात यह नौकरी छोड़ दी। अर्थात् इसी एक वर्ष के दौरान उनकी भेंट उनकी विद्यार्थिनी होमाय नल्लासेठ से हुई, जो बाद में होमाय मर्ढेकर बनी। 1938 में मर्ढेकर को प्रो. सदरलंड की सिफारिश पर ऑल इंडिया रेडिओ में प्रमुख कंट्रोलर के रूप में नियुक्ति मिली। बाद में वे उसी केंद्र में असिस्टंट डायरेक्टर भी बनें। मर्ढेकर ने आकाशवाणी में अनेक वर्ष काम किया। तबादले होते रहे। मुंबई से कलकत्ता फिर मुंबई, पटना, दिल्ली, त्रिचनापल्ली, गुवाहती में तबादला, कलकत्ता और अपने अंतिम दिनों में दिल्ली में रेडिओ के लिए सेवाएँ दी। (मार्च 1956 तक)

शब्द-कर्म का प्रारंभ अर्थात् रचनाकार मर्ढेकर का उदय :

मर्ढेकर मूलतः चिंतनशील व्यक्ति थे। घोर अध्ययन उनकी अभिरूचि का विषय था। लेखन

परंपरा की शुरूआत किशोर अवस्था में हुई थी। किन्तु लंदन निवास ने उनके मन में पश्चिमी साहित्य, नूतन अवधारणाओं को लेकर उत्सुकता जाग उठी। उनकी पहली पुस्तक अंग्रेजी में प्रकाशित हुई है, जिसका शीर्षक Arts and Man (1937) है। प्रस्तुत पुस्तक में मर्ढेकर का कला के बारे में मुक्त चिंतन है, सैद्धांतिक मुद्दों को लेकर भी चर्चा की गई है। इस पुस्तक का हिंदी अनुवाद मर्ढेकर की दूसरी पत्नी अंजना मर्ढेकर ने किया है।

मूलतः मर्ढेकर कवि हैं। उनके काव्य-जीवन की शुरूआत शिशिरागम (1939) ÃÖ Æ‡… मर्ढेकर की प्रारंभिक कविताओं का यह संकलन है, जिस पर स्वच्छंदवादी काव्य प्रवृत्ति का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। उनका दूसरा कविता संग्रह ‘कांही कविता’ (कुछ कविताएँ) 1947 ´Ö प्रकाशित हुआ। इन कविताओं में मर्ढेकर की काव्यप्रवृत्ति में मूलभूत परिवर्तन आया हुआ है। द्वितीय महायुद्धोत्तर भारतीय समाज जीवन और महानगरीय सभ्यता का जीवंत चित्रण वे करते हैं। इसी दौरान मर्ढेकर के तीन महत्त्वपूर्ण उपन्यास प्रकाशित हुए। जिसमें ‘¸ÖÖ¡ÖßÓ“ÖÖ ×¤¾ÖÃÖ’ (रात का दिन) 1942, ‘ŸÖÖ²Ö›ü ´ÖÖŸÖß’ (»ÖÖ»Ö ×´Ö½Öß) 1943 में, उनका तीसरा उपन्यास ‘पाणी’ (पानी) 1948 ÃÖÖ×ÆŸµÖ जगत् में प्रकाश में आया। कविता और उपन्यास के साथ-साथ मर्ढेकर का वैचारिक लेखन, सौंदर्यशास्त्रीय लेखन भी प्रकाशित हो रहा था। उनकी सर्जनात्मकता बराबर अभिव्यक्ति के लिए छटपटा रही थी। नतीजतन वाङमयीन महात्मता (1941), तीसरा कविता संग्रह ‘आणखी कांही कविता’ (और कुछ कविताएँ) 1951 में प्रकाशित हुआ। मर्ढेकर ने अपनी कविताओं से मराठी साहित्य जगत् को चौंकाया ही नहीं बल्कि एक नया मार्ग प्रशस्त किया। जिसे मराठी में ‘नवकविता’ का आरंभ माना जाता है। मराठी में मर्ढेकर नई कविता के पुरोधा बने। इसी दौरान मर्ढेकर की सौंदर्यशास्त्र पर एक चर्चित, विवादास्पद और महत्त्वपूर्ण वैचारिक रचना प्रकाशित हुई। जिसका शीर्षक है ‘सौंदर्य आणि साहित्य’ (ÃÖÖî¤µÖÔ †Ö¸ü ÃÖÖ×ÆŸµÖ) 1955, इस पुस्तक के पांच संस्करण निकल चुके हैं। सौंदर्यशास्त्र की प्रचलित मान्यताओं को उखाडने का काम मर्ढेकर ने इस ग्रंथ के माध्यम से किया। यह साहित्यशास्त्र या सौंदर्यशास्त्र पर लिखी गई मराठी में सबसे चर्चित पुस्तक है। इस पुस्तक ने नये कीर्तिमान स्थापित किये। अब तक मराठी में मर्ढेकर कवि, उपन्यासकार तथा वैचारिक लेखन के लिए विख्यात हुए थे। किन्तु ‘ÃÖÖî¤µÖÔ †Ö¸ü ÃÖÖ×ÆŸµÖ’ पुस्तक ने उन्हें एक सौंदर्यशास्त्र के विशेषज्ञ, विचारक और भाष्यकार के रूप में मान्यता मिली। इस पुस्तक की महानता दर्शानेवाली अनेक समीक्षात्मक पुस्तकें मराठी में लिखी गई। साथ ही पुस्तक की आलोचना करने वाली भी अनेक आलोचनात्मक पुस्तकें लिखी गई। मर्ढेकर की नटश्रेष्ठ और चार संगीतिका (1965) रचना प्रकाश में आयी जो उनकी मृत्यु के पश्चात प्रकाशित हुई।

मर्ढेकर ने मराठी साहित्य में एक युग का निर्माण किया। पूर्ववर्ती काव्य परंपरा को नकारकर

एक अलग राह बनायी। वैचारिक चिंतन, उपन्यास और कुछ प्रयोगशील रचनाएँ, नाटिका आदि का सृजन उन्होंने किया। इस प्रतिभावान लेखक ने अपनी अमिट मुद्रा मराठी साहित्य में निर्माण की है।

दाम्पत्य जीवन :

मर्ढेकर के दाम्पत्य जीवन में अनेक उतार-चढाव आये। कुछ सपने, कुछ जज्बे साकार होने से पहले ही खत्म हुए। सन् 1929 में लंदन जाने से पूर्व मर्ढेकर के जीवन में प्रेम का अंकुर फुट निकला था। “मर्ढेकर के मन में अपनी चचेरी बहन मालती के प्रति आकर्षण, प्रेमभाव दिखाई देता Æ…”[25] मर्ढेकर के जीवन की बागबां खिलने से पहले ही मुर्झा गयी। मर्ढेकर 1936 में एल्फिन्स्टन महाविद्यालय में टयुटर के रूप में नियुक्त हुए थे। ठीक उसी दौरान उनकी भेंट होमाय नल्लासेठ नामक पारसी युवती से हुई। होमाय उसी महाविद्यालय की छात्रा थी। यह परिचय धीरे-धीरे प्रेम में बदलता गया। होमाय के साथ 1940 में मर्ढेकर ने अंतरधर्मिय विवाह किया। होमाय अंग्रेजी विद्याविभुषित युवती थी। इस अंतरजातीय अंतरधर्मिय विवाह को मर्ढेकर के माता-पिता और बहन का घोर विरोध हुआ। किन्तु मर्ढेकर नहीं माने, विवाह हुआ। होमाय मुंबई के एक महाविद्यालय में अध्यापिका बनी। तत्पश्चात दिल्ली के इंद्रप्रस्थ महाविद्यालय में अध्यापिका के रूप में नियुक्ति हुई, वे वहीं पर प्राचार्य भी बनी। इधर मर्ढेकर और उनकी पत्नी में दूरियाँ बढ़ती गई। 1940-47 में मर्ढेकर का जीवन आपाधापी, भागदौड़ और गहरी यातनाओं में गुजरा। 1941 में माता का, 1945 में पिता का देहांत हुआ। मर्ढेकर अनेक प्रकार की यातनाओं से गुजरे। खुद को भयंकर अकेला पाते गये। 1950 ´Ö होमाय मर्ढेकर (हेमा) पढ़ाई हेतु लंदन गयी। इधर मर्ढेकर का तबादला पटना में हुआ। पटना में उनकी मुलाकात रेडिओ केंद्र में कार्यरत अंजना सयाल (पंजाबी युवती) से हुई। दोनों साथ-साथ काम करते थे। मर्ढेकर और उनकी प्रेमिका अंजना सयाल के प्रेम संबंधों की चर्चा होमाय तक पहूँची। परिणामत: होमाय ने मर्ढेकर को तलाक मांगा। सन 1950 में वे दोनों अलग हुए। कायदे से दोनों का तलाक हुआ। ठीक उसी समय मर्ढेकर ने अंजना सयाल से विवाह किया। होमाय के साथ दस वर्षों का वैवाहिक जीवन व्यतीत हुआ। किंतु होमाय से मर्ढेकर को सन्तान प्राप्ति नहीं हुई। अंजना सयाल से विवाह के तीन साल बाद मर्ढेकर को पुत्र प्राप्ति हुई। इस पुत्र का नाम रखा गया राघव (1953)… मर्ढेकर का जीवन द्वंद्व, संघर्ष और आपाधापी का रहा। इसी कारण विजया राजाध्यक्ष लिखती है, “मर्ढेकर की कविता में बार-बार निराशा, उदासी और अकेलेपन की पीड़ा का भाव दिखाई देता है। वैयक्तिक जीवनानुभव, आर्थिक स्थिति, पारिवारिक पीड़ा (संतान प्राप्ति का अभाव), व्यावसायिक जीवन में आयी अस्थिरता कविता में अभिव्यक्ति होने लगी।”[26]

कुल मिलाकर ये कह सकते हैं कि मर्ढेकर की युवावस्था का जीवन विरह का रहा। आरंभिक वैवाहिक जीवन बहुत सुखद नहीं रहा। किंतु दूसरे विवाह के बाद अंजना के साथ दिल्ली में

समय गुजारने का अवसर मिला किन्तु उनका जीवन ही इतना अल्पायु रहा कि, लंबा चल नहीं पाया। समय के थपेड़ों को सहते हुए, अनके तनावों से गुजरते हुए, पारिवारिक और प्रशासनिक जिम्मेदारियों को झेलते हुए मर्ढेकर के जीवन में थकावट आयी थी। धीरे-धीरे कम दिखाई देने लगा। सृजनात्मक स्तर पर भी कविता उनसे रूठ गयी थी। शरीर जवाब दे चुका था। ऐसी स्थिति में दिल्ली में 20 ´ÖÖ“Ö 1956 को उनका निधन हुआ।

सम्मान एवं पुरस्कार :

मर्ढेकर के जीवन में सम्मान एवं पुरस्कार के क्षण बहुत कम आए। किंतु अद्वितीय प्रतिभा के धनी मर्ढेकर ने मराठी कविता, उपन्यास को नया मोड़ देने का ऐतिहासिक काम कर दिखाया। मुंबई मराठी साहित्य संघ द्वारा आयोजित अखिल भारतीय मराठी साहित्य सम्मेलन में काव्य सत्र की अध्यक्षता का सम्मान उन्हें प्राप्त हुआ। उनके 'ÃÖÖ¤üµÖ †Ö¸ü ÃÖÖ×ÆüŸµÖ' ग्रंथ के लिए सन् 1957 ´Ö साहित्य अकादमी का पुरस्कार घोषित हुआ और सन 1958 में मरणोप्रांत प्रदान किया गया। यहीं कुछ आनंद, उल्लास और हर्ष के क्षण उनके जीवन में आये।

मर्ढेकर का व्यक्तित्व : यथार्थ से टकराहट

मर्ढेकर व्यक्तिगत जीवन में अत्यंत एकांतवासी थे। बहुत कम बोलते थे। मितभाषी, मितव्ययी व्यक्तित्व था। चुप्पा स्वभाव रहा उनका। सफलता और असफलता की परवाह न करनेवाला एक मनस्वी व्यक्ति उनके भीतर समादृत था। संयमी, मितभाषी, प्रखर बौद्धिक क्षमता, बेचैन व्यक्तित्व, प्रश्नाकुलता, अस्तित्ववादी भान, विनाश से निर्माण की ओर, नकार से स्वीकार की ओर, पाने की उनमें वृत्ति रही।

मर्ढेकर जिद्दी वृत्ति के थे। आई. सी. एस. की परीक्षा देने कर्जा निकलकर लंदन गये। असफल हुए। जीवनभर कर्जा चुकाते रहे। किन्तु जिद्दीपन गया नहीं। प्रवाह के विरूद्ध जाने की तैयारी, संघर्षशीलता, भावुकता, निराशा और उदासी वृत्ति का भाव उनमें था। थोडे से संयमी, अधिक क्रोधित होने की वृत्ति प्रवृत्ति उनमें लक्षित होती है। अर्थात् संवेदनशीलता और ग्रहणशीलता की वृत्ति उनमें हमेशा रही। शीघ्रकोपी थे किन्तु कार्यशैली में अनुशासन था। कुछ कर पाने का जज्बा उनमें निरंतर दिखाई देता है। यह लेखक दो स्तरों पर लड़ रहा था। एक अपने आप से लड़ना और दूसरी बाह्य लड़ाइयाँ तो निरंतर जारी थी। मर्ढेकर अनेक मोर्चो पर अपनी लड़ाई लड़ते हुए नजर आते Æîü...

मर्ढेकर के जीवन में दुखों ने कभी पीछा नहीं छोड़ा। उन्होंने अपने लेखन की प्रेरणाओं के ²ÖÖ¸êü ´Ö 'मैं क्यों लिखता हूँ' लेख में विशद वर्णन किया है। वे लिखते हैं, 'जिंदगी का नाम दु:ख है। दु:ख और आंसुओं ने मनुष्य को बहुत कुछ सिखाया। इन्हीं आंसूओं ने मुझसे कविता लिखवायी।'

मर्ढेकर को अनेक वर्ष अदालत के चक्कर भी काटने पड़े। उनकी चार कविताओं पर अश्लिलता का आरोप लगाते हुए कोर्ट में याचिका दायर की गयी थी। पुना के संस्कृति रक्षक मंच ने यह याचिका दायर की थी। उनका जाहिर तौर पर निषेध भी किया गया था। 1948 ÃÖ 1952 तक कोर्ट में बहस होती रही। सन् 1952 में कोर्ट का फैसला उनके पक्ष में आया। कोर्ट ने मर्ढेकर को निर्दोष बरी किया। किन्तु दुःख के प्रहारों से जीवटता में कमी आयी गयी।

वस्तुतः मर्ढेकर कभी भी समझौतावादी नहीं थे। किन्तु परिस्थिति ने निरंतर उन्हें समझौते करने के लिए विवश किया। यह विवशता, परिस्थितिवशता या परिस्थिति बोध उनकी रचनाओं में बार-बार झलकता है। द्रष्टव्य है उनकी काव्य पंक्तियाँ -

> "नाही शोधिले गावाला,
> नाही विचारले नाव,
> फक्त चालत रस्त्याने,
> केला स्वतः चा लिलाव."

(स्व की तलाश में भटकता रहा। स्व की पहचान के लिए छटपटाता रहा। किन्तु स्थितियाँ ही इस प्रकार बनी कि खुद को परिस्थिति के हवाले करने के सिवाय कोई विकल्प नहीं बचा) मर्ढेकर ने परिस्थिति परवशता का चित्रण प्रस्तुत काव्यपंक्तियों के द्वारा किया है। अर्थात् मर्ढेकर में कई सारे गुण थे। आधुनिकता, प्रश्नाकुलता, विज्ञाननिष्ठता, बौद्धिकता और प्रयोगशीलता आदि। आधुनिकता की अनेक प्रेरणाएँ इस व्यक्तित्व में समाहित थी। जीवन में अनिश्चितता का बोध उनके साहित्य में बार-बार झलकता है। मर्ढेकर अपनी राह स्वयं बनाते गये और नये कवियों के लिए एक नया मार्ग प्रशस्त करते गये। इसलिए उनके बाद की नयी पीढ़ी उनका अनुगमन करती हुई दिखाई देती है।

मर्ढेकर नये युग की नयी भाषा, नयी संवेदना और आभिजात्य का पौरूष लेकर जीनेवाले कवि थे, व्यक्ति थे। व्यक्तित्व की यह छाप उनके साहित्य में निरंतर लक्षित होती है। इसलिए यह कहना अधिक संगत होगा कि, "मर्ढेकर का जीवन और उनके द्वारा रचित साहित्य समांतर पथक्रमण करते हुए नजर आते हैं।"[27]

सुविख्यात समीक्षक डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे उनके व्यक्तित्व की विशेषताएँ बताते हुए कहते हैं, "मर्ढेकर मध्यमवर्गीय परिवार से होने के कारण उनके भीतर मध्यवर्गीय संस्कार थे। मर्ढेकर शहरी जीवन के प्रॉडक्ट थे। भाषा के प्रति विद्रोह, उनकी महत्वपूर्ण विशेषता रही। मराठी कविता का चेहरा मोहरा बदलनेवाला यह व्यक्ति है।" तात्पर्य यही है कि मर्ढेकर ने अपनी प्रतिभाशीलता से एक युग को रचा। मर्ढेकर में निरंतर आत्मशोध, आत्मपरीक्षण और आत्मविश्लेषण का भाव दिखाई देता है। कवि अज्ञेय की तरह ही यह रचनाकार प्रकृति के अत्यधिक निकट रहा। प्रकृति के

सुंदरतम चित्र अंकित करनेवाले इस कवि के व्यक्तित्व का मूल्यांकन उन्हीं की काव्य पंक्तियों से हो सकता है।

‘अजुन येतो वास फुलांना	‘अभी भी आती है गंध फुलों की
अजुन माती लाल चमकते,	अभी भी मिट्टी लाल चमकती है
खुरटया बुंध्यावरती चढून	नाटे तने पर चढ़कर
अजुन बकरी पाला खाते,	अभी भी बकरी खाती है पत्ते
अस्मानावर भगवा रंग	आसमान में भगवा रंग
आणि नागवे समोर पोर	और सामने बच्चा नंगा
अजुन डुलक्या घेत मोजते	अभी भी डुलकियाँ लेते गिन रहा है
Êö ¤öÆöÝößȫö †Ýö¸ì œö¸.’	इन दोनों के अंतर को ढोर’
	(अनुवादः डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे)

निष्कर्ष :

मर्ढेकर मराठी साहित्य में अपनी अभिव्यंजना के बलबुते शिखर पर पहुँचे। रेडिओ पर नौकरी की वजह से देशभर घूमते रहे। अनुभव की संपन्नता, अभिव्यक्ति की कुशलता, अभिव्यंजना में प्रयोगधर्मिता और चिंतन की गंभीरता इनके व्यक्तित्व की विशेषताएँ थी। मर्ढेकर ने प्रकृति सौंदर्य, वैज्ञानिक युग और साधारण मनुष्य, व्यक्ति की महत्ता, क्षण का महत्व, महानगरीय जीवन बोध, कामगार, श्रमिक, मजदूर, दलित की कथा-व्यथा का प्रस्फुटीकरण किया है। किन्तु मर्ढेकर के साहित्य का मुख्य स्वर व्यक्तिवाद और अहं से संबंधित है।

मर्ढेकर अनेक अर्थों में विद्रोही थे। जीवन, काव्य-भाषा, सौंदर्यशास्त्र के स्थापित मानदंड तथा अभिव्यक्ति का शैली पक्ष इन सभी के प्रति मर्ढेकर ने विद्रोह किया। मर्ढेकर ने शहरी जीवन की विद्रुपता का बेबाक चित्रण किया, जिसके आधार पर उन्हें अश्लिलता के आरोप से भी गुजरना पड़ा। मराठी के प्राचीन छंदों का प्रयोग, भूतकाल में वापसी, संत साहित्य का छंद विधान आदि चीजों को बेझिझक उन्होंने अपनाया। मर्ढेकर पूर्व कविता जमीनी सच से दूर गई थी। उसे जमीनी यथार्थ से जोड़ने का काम उन्होंने किया। संवेदना और शिल्प में किये गये प्रयोग उनकी इसी विद्रोही-चेतना को दर्शाता है। अर्थात् मर्ढेकर चेतना प्रवाह शैली, समकालीन यथार्थ की कुरूपता को दर्शानेवाले यथार्थोन्मुख रचनाकार, सौंदर्यवादी समीक्षक और जीवनोन्मुखी वृत्ति के चलते अमिट छाप छोड़ते Æì...

मर्ढेकर घोर परिश्रमी थे। साहित्य के प्रति समर्पण का निस्संग भाव उनमें पुरजोर तरीके से व्यक्त होता है। अपनी कविताई से उन्होंने युगीन जीवन संदर्भों की तलाश की। अनुभूति के दायरे को

विस्तार देते रहे, पूरी गहराई के साथ। इसी वजह से मराठी साहित्य में इनके नाम पर एक युग का प्रचलन हुआ जिसे ‘मर्ढेकर युग’ के नाम से संबोधित किया गया।

क) अज्ञेय और मर्ढेकर का व्यक्तित्व : तुलनात्मक अध्ययन -

किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास के दो मूलाधार होते है। एक उस व्यक्ति की जन्मजात योग्यता और दूसरा उस व्यक्ति की योग्यता के अनुकूल परिवेश का होना। व्यक्ति में जन्मजात योग्यता प्रतिभा से विकसित होती है, उसकी संवेदना को वह साकार करती है। किन्तु व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास के लिए अनुकूल परिवेश की निर्मिति उसे खुद ही करनी पड़ती है। जब इन दो आधारों का सुयोग्य सम्मेलन होता है, तब प्रतिभा के अंकुर फुटने लगते है। वह प्रतिभा ही है जो व्यक्ति को कवि कलाकार बनाती है। पर ये भी सच है कि, कई प्रतिभाएँ आलसीपन की वजह से नष्ट हुई या कुछ प्रतिभाओं को पता ही नहीं चला कि उनके भीतर एक अद्वितीय प्रतिभा समायी हुई है। एक वाक्य में कह सकते हैं कि, प्रतिभा व्यक्ति की पूंजी होती है, व्यक्तित्व विकास का प्रधान अंग बन जाती है।

हिंदी के मूर्धन्य चिंतक कवि सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन ‘†-Öµ̈Ö’ और मराठी के अत्यंत चर्चित, विवादाग्रस्त एवं नव कविता के प्रणेता बाळ सीताराम मर्ढेकर का व्यक्तित्व कई मायनों में साम्य-वैषम्य की रेखाओं से पुरित हैं। दोनों का जन्म एक सुसंस्कृत ब्राह्मण परिवार में हुआ। हालांकि किसका जन्म कहाँ हो, ये उसके हाथ में नहीं होता किन्तु पारिवारिक पृष्ठभूमि व्यक्तित्व विकास में सहायक होती है। परिवार के संस्कार व्यक्तित्व के विकास में मौलिक भूमिका निभाते हैं। अज्ञेय के पिता पुरातत्व विशेषज्ञ थे। एक सधन परिवार में उनका भरण पोषण हुआ। पिता संस्कृत के प्रकांड विद्वान थे। इसलिए बचपन से उन पर भाषा, साहित्य और संस्कृति के मूलगामी संस्कार हुए। ठीक उसी तरह मर्ढेकर के पिता भी शिक्षक थे। शिक्षक से मुख्याध्यापक एवं बाद में वे डेप्यूटी बने। उन्होंने भी अपने बच्चों पर साहित्य, संस्कृति और भाषा के मौलिक संस्कार किये। दोनों की पारिवारिक स्थिति दोनों के व्यक्तित्व विकास के अनुकूल दिखाई देती है।

वात्स्यायन जी युवावस्था में क्रांतिकारी आंदोलन से जुड़े। देश की गुलामी के प्रति चीढ़ उनके मन में कहीं न कहीं थी। इसलिए स्वाधीनता आंदोलन में उन्होनें सक्रिय सहभाग लिया। भूमिगत होकर आंदोलन में सक्रिय सहभागिता दर्शायी। पकडे गए, जेल गये। अर्थात् वात्स्यायन जी गुलाम देश में स्वाधीनता का सूर्य उदित होते हुए देखना चाहते थे। मर्ढेकर के संबंध ऐसे संदर्भ उपलब्ध नहीं है। किन्तु उनकी रचनाओं में किसान, मजदूर, कामगार, दलित की व्यथा का जीवंत चित्रण हुआ है। ये कहीं न कहीं उनकी स्वतंत्र-चेता वृत्ति को दर्शाता है।

अज्ञेय को साहित्य के अलावा चित्रकला, शिल्पकला, वास्तुकला और बढ़ईगिरी में गहरी

रूचि थी। देश-विदेश की यात्राओं ने उनके भीतर कलाप्रेम जागृत किया था। एक सौंदर्य प्रेमी रचनाकार या व्यक्ति के रूप में वे हमारे सामने आते हैं। किन्तु मर्ढेकर साहित्य के अलावा अन्य कलाओं के प्रति गहरी रूचि नहीं दिखाते। हाँ, ये जरूर है कि आकाशवाणी के माध्यम से उभरते हुए कलाकार और लोककलाओं को बढ़ावा देने का महत्वपूर्ण प्रयास उन्होंने किया। कला प्रेम जरूर उनमें रहा होगा किन्तु उन्होंने खुलकर अभिव्यक्ति नहीं दी।

अज्ञेय यायावर बनकर जिए। भ्रमण उनका शौक था। राजी सेठ ने प्रस्तुत पंक्तियों के शोधार्थी को वार्तालाप में बताया कि, 'देश और दुनिया के रमणीय, मनोहर एवं यादगार स्थानों की जानकारी रखनेवाले एक संस्कृति पुरूष थे अज्ञेय।' अज्ञेय देश विदेश घूमें। घूमक्कड़ी उनका शौक था। देश के अनेक स्थानों पर जाने, देखने का सुअवसर उन्हें प्राप्त हुआ। ऊटी, कश्मीर, लखनऊ आदि स्थानों पर उन्होंने निवास किया। विदेश में अनेक स्थानों पर गये, वहाँ के रमणीय सौंदर्य का आस्वाद लिया। वे हमेशा कहते थे कि कोई योजना बनाकर नहीं घूमना चाहिए। घूमने के लिए संयम, तैयारी की कोई जरूरत नहीं। किन्तु मर्ढेकर का नौकरी के निमित्त घूमना हुआ। हालांकि यायावरी कोई उनका शौक नहीं था। पर देश के विविध कोने में जाने का अवसर उन्हें प्राप्त हुआ। मर्ढेकर ने सौंदर्य, प्रकृति को अपने अनुभव विश्व का हिस्सा बनाया। पटना, दिल्ली, तिरूचरणपल्ली तथा गुवाहत्ती (हालांकि गये नहीं) में नौकरी के बहाने गये। उनके अचेतन मन में सृष्टि का सौंदर्य, गाँव का सौंदर्य बसा हुआ था। इसलिए सौंदर्य के प्रति एक गहरी आसक्ति उनके भीतर समाहित थी।

अज्ञेय बचपन से एकान्तप्रियता के प्रति आसक्त रहे। उन्हें मौन का शिल्पी भी कहा जाता है। तोल मोल के बोलना उनकी जीवन वृत्ति बनी। जेल जीवन ने उन्हें अधिक चुप्पा बनाया था। साथ ही उनके दाम्पत्य जीवन में जो उतार-चढ़ाव आये, उसने और भी अधिक उन्हें अकेला बनाया था। अकेलेपन का दंश उनके भीतर निरंतर व्यक्त होता है। अज्ञेय स्वयं कहते हैं, 'चुप एक निर्जीव चीज नहीं है, चुप से भी बातचीत हो सकती है।' उनका मौन एकांत का संगीत बन जाता है। जिसमें जीवनानुभव का रस भरा हुआ है। अज्ञेय ने एकान्त को जीवन का अंग बनाया। विशेषतः यह एकान्त का संगीत उनकी कविता में बार-बार आरोहित होता है। मर्ढेकर भी भयंकर चुप्पा थे। दूसरे व्यक्ति से बात करना भी उन्हें सहज नहीं होता था। एक आत्ममग्न, आत्मलुब्ध और आत्म की गहरी गुफा में खोये हुए कलाकार थे मर्ढेकर। किन्तु ये भी सच है कि, उन्होंने अपनी चुप्पी को साधा था, अभिव्यक्ति के लिए एक हथियार के रूप में हस्तेमाल किया। वस्तुतः मर्ढेकर का चुप्पापन पारिवारिक आघात, बचपन से बनी हुई मानसिक स्थिति और प्रशासकीय तनातनी के बीच ढलता संतुलन ये कुछ स्थितियाँ रही, जिनकी वजह से वे मौन की प्रतिमा बने।

अज्ञेय और मर्ढेकर के स्वभाव में अनेक साम्य-वैषम्य नजर आते हैं। दोनों का व्यक्तित्व,

दोनों की प्रकृति, दोनों का राजनीति, समाजनीति और अर्थनीति की ओर देखने के दृष्टिकोण में साम्य वैषम्य की अनेक रेखाएँ नजर आती है। अज्ञेय कला, साहित्य, संस्कृति, भाषा, पर्यटन और प्राकृतिक सौंदर्य के प्रति अभिभूत थे। मर्ढेकर जीवन की आपाधापी में यंत्रवत बनते जीवन में, महायुद्धोत्तर पृष्ठभूमि में मनुष्य की मूल से उखड़ जाने की पीड़ा लेकर आते हैं। पर विशेष उल्लेखनीय बात है कि, दोनों ने 'अनुभूति की प्रामाणिकता' को सर्वाधिक महत्त्व दिया। जीवनमूल्य, प्रतिरोध की भावना तथा समझौता परस्ती की स्थिति को लेकर दोनों ने प्रतिक्रियाएँ दी। हालांकि आजादी के पहले अज्ञेय स्वाधीनता आंदोलन से जुड़े हुए थे। किन्तु आजादी के बाद सत्ता के सबसे नजदिक रहे। नेहरू से उनकी गहरी मित्रता थी। पर मर्ढेकर के जीवन में सत्ता सोपानों की स्थिति कहीं भी बनती हुई नहीं दिखायी देती।

स्वातंत्र्योत्तर भारत के काव्यतेहास में अज्ञेय और मर्ढेकर का स्थान ऊँचा है। परिवर्तित स्वातंत्र्योत्तर भारत की छवि उभारने का काम दोनों ने किया। नवीन संवेदना की सार्थक अभिव्यक्ति अपनी रचनाओं के माध्यम से दोनों ने की। रोमांटिक काव्यधारा के प्रभाव को नकारते हुए व्यक्ति को प्रतिष्ठा दिलाने में दोनों ने महती भूमिका निभायी। दोनों के चिंतन और सृजन पर टी. एस. इलियट और येटस् का गहरा प्रभाव लक्षित होता है। बौद्धिकता, वैचारिकता, शैलीगत वैचित्र्य, प्रयोगशीलता की दृष्टि से दोनों में गहरा सादृश्य भाव नजर आता है। दोनों ने कविता की परंपरा में एक नयी काव्यधारा का प्रवर्तन किया। अज्ञेय ने प्रयोगवाद चलाया और नयी कविता के वे मसीहा बने। ठीक उसी तरह मर्ढेकर ने रोमांटिसिज्म को नकारकर नवकविता का प्रवर्तन किया। एक ओर अज्ञेय 'Ÿöö¸¡ सप्तक' लेकर आते हैं तो दूसरी मर्ढेकर अपने समकालीनों और उत्तरवर्तीयों को कविता का नया मार्ग प्रशस्त करते हैं। दोनों ने पूर्व परंपरा को नकारते हुए अपनी यथार्थ अनुभूति और व्यक्तिवादी चेतना का प्रगल्भ अविष्कार किया। इस संपूर्ण प्रक्रिया में दोनों की ठोस भूमिका रही।

साहित्य साधना की परंपरा में दोनों का मौलिक योगदान रहा है। अज्ञेय ने विपुल मात्रा में साहित्य की अनेकानेक विधाओं में मूलगामी लेखन किया। काव्य, कहानी, उपन्यास, निबंध, डायरी-लेखन, यात्राभ्रमण और संपादन का विशाल काम खड़ा किया। उनकी रचनाएँ उनकी पहचान बनती गयी। साहित्य साधना में अपनी प्रतिभा से अज्ञेय ने अनेक विधाओं में लेखनी चलायी। विशेषतः समीक्षा के क्षेत्र में भी उनका अत्यंत महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। अज्ञेय की तुलना में मर्ढेकर ने वस्तुतः कम ही लिखा किन्तु गुणवत्ता में कोई कमी नजर नहीं आती। हालांकि संख्या के आधार पर कोई श्रेष्ठ-कनिष्ठ नहीं हो सकता। किन्तु गुणात्मकता दोनों में भी थी। दोनों ने अनुवाद का कर्म भी किया। दोनों का साहित्यिक दृष्टि से अमूल्य योगदान रहा। अपने युग को, अपने समकालीनों को और अपने परवर्तीयों को प्रभावित करने का काम दोनों ने किया।

अज्ञेय अनुकरणवादी नहीं, अनुसरणवादी हैं। नियतिवादी नहीं किन्तु भविष्य पर उनकी नजर बराबर रही है। मर्ढेकर के व्यक्तित्व में अनुकरण की प्रेरणा बराबर रही है। विशेषतः साहित्य और जीवन में जो भी अनुकरणीय हैं, उसे स्वीकारने का साहस मर्ढेकर ने दिखाया। यह वृत्ति उनमें बराबर लक्षित होती है।

अज्ञेय और मर्ढेकर का दाम्पत्य जीवन लौकिक दृष्टि से सफल नहीं माना जा सकता। दोनों को जीवन में खुशी, उल्लास और आनंद के क्षण बहुत कम मिले। अज्ञेय की दोनों शादियाँ असफल रही। संतोष मलिक और कपिला मलिक के साथ संबंध निर्वाह नहीं हो पाया। इला डालमिया के साथ वे अपने जीवन के अंत तक बिना विवाह के रहे। आज की भाषा में कहूँ तो 'लिव इन रिलेशनशिप' में रहे। अज्ञेय के देहांत के बाद इला डालमिया ने किसी कोईराला के साथ विवाह किया। मर्ढेकर का प्रेमविवाह, अंतर्धर्मिय विवाह हुआ था। अपनी मेधावी छात्रा होमाय नल्लासेठ से विवाह किया। पहला विवाह दस वर्ष ही चल पाया, लड़खड़ाते संबंधों ने अंततः तलाक का रास्ता अख्तियार लिया। उनका दूसरा विवाह पंजाबी युवती, आकाशवाणी की सहकर्मी अंजना सयाल से हुआ किन्तु विवाह के छह साल बाद नियति ने ही मर्ढेकर को हम से छिना। तात्पर्य यह है कि, दोनों का वैवाहिक जीवन सुखद नहीं रहा। अकेलेपन का दंश उनके जीवन और साहित्य में साफ झलकता हुआ दिखाई देता Æ…

अज्ञेय तमाम विचारधाराओं का अतिक्रमण करते हैं। किसी एक विचारधारा से बंधे रहना उनकी प्रकृति नहीं थी। विचारधारा की अपनी सीमाएँ होती है। विशेषतः किसी भी विचारधारा में कालांतर में दोष आते हैं, मर्यादाएँ स्पष्ट होने लगती है। अर्थात् कोई भी विचारधारा परिपूर्ण नहीं है, ऐसी उनकी धारणा थी। अज्ञेय की पूर्ववर्ती कविता विचारधारा का अनुकरण कर रही थी। प्रचार-प्रसार का माध्यम ही कविता बन चुकी थी। ऐसी स्थिति में अज्ञेय तमाम प्रकार की विचारधाराओं को नकारते हुए मनुष्य मात्र की बात कर रहे थे। मनुष्य मन के सूक्ष्म कोनों में झांक रहे थे। इसी अर्थ में वे सूक्ष्म विद्रोही थे। मनुष्य मन की सूक्ष्मता में झांकते समय यास्पर्स के मनोविश्लेषणशास्त्र का आधार ले रहे थे। अस्तित्ववादी दर्शन की छाया उनकी रचनाओं में अभिव्यक्त होती है। मर्ढेकर ने भी किसी एक विचारधारा से प्रतिबद्धता की बात नहीं की। समाज के स्थान पर '¾µÖÛŒÖ ÃÖÔµÖ' को काव्य-विषय बनाने में मर्ढेकर को हिचकिचाहट नहीं हुई। मनुष्य के जीवन में आयी यांत्रिकता, अकेलापन छटपटाहट, असहायता आदि बातों का समावेश मर्ढेकर ने अपने चिंतन में किया। मनुष्य जीवन की क्षूद्रता और महानगरीय जीवन बोध की अभिव्यंजना मर्ढेकर ने की।

अज्ञेय और मर्ढेकर दोनों प्रकृति के कवि हैं। '¸ÖÖ' के कवि हैं। प्रकृति के मनोहारी रूप, सूक्ष्म सौंदर्यबोध का गहरा परिचय दोनों ने दिया। प्रकृति के अनेक रूप दोनों की रचनाओं में

स्पष्टतया नजर आते हैं। इस प्रवृत्ति का विस्तार से विवेचन उनकी काव्यगत विशेषताओं में होगा।

अज्ञेय ने अनुभूति की अद्वितीयता पर बल दिया। अनुभूति की प्रामाणिकता ही किसी भी कवि व्यक्तित्व की मूलभूत प्रकृति होनी चाहिए, ऐसा उनका मानना था। क्षणवादी अनुभूति को बड़ा महत्व है। दर्शन को अनुभूति में घुलाने की राह अज्ञेय ने निकाली थी। बड़े संकल्पशील व्यक्तित्व के धनी थे अज्ञेय। मर्ढेकर ने भी साहित्य सर्जना में अनुभूति के गहरे सरोकारों को बड़ा महत्व दिया था। उनका चिंतन स्वातंत्र्योत्तर मनुष्य की चिंताओं का अवगाहन करता है। मर्ढेकर की अनुभूति का फलक विशाल था। साहित्य में केवल सूक्ष्मता की बात ही नहीं करते बल्कि मानव समाज के जटिल और द्वंद्वग्रस्त प्रश्नों से रू-ब-रू होते हैं।

अज्ञेय की कविता में सूक्ष्मता है, दुर्बोधता नहीं। इस सूक्ष्मता में नयी संवेदना का साक्षात्कार है। किंतु मर्ढेकर की संवेदना में दुर्बोधता का भाव छिपा हुआ। उनकी रचनाएँ वाच्यार्थ नकारती है, व्यंग्यार्थ का आश्रय लेती है।

अज्ञेय और मर्ढेकर की सबसे बड़ी देन भाषा को है। भाषा में, अभिव्यक्ति में प्रयोगशीलता का बड़ा सरोकार दोनों में लक्षित होता है। भाव, भाषा, शैली, प्रतीक, बिंब, छंद आदि में दोनों ने विद्रोही वृत्ति का अवलंब किया। भाषा का एक नया रूप गढ़ते हुए अनुभूति के नये संसार को दोनों ने रचा।

कुल मिलाकर अज्ञेय और मर्ढेकर जी के बहुमुखी व्यक्तित्व की सम एवं विषम रेखाएँ इस प्रकार हैं...........

1. अज्ञेय का जन्म 7 ´ÖÖ“Ö 1911 को कसिया के पुरातत्व खुदाई शिविर में हुआ था तो मर्ढेकर का जन्म महाराष्ट्र के खानदेश में ‘´Öœ’ नामक छोटे से गांव में 1 ×¤ÃÖê²Ö¸ü 1909 को हुआ।
2. दोनों कवियों का परिवार सुसंस्कृत ब्राह्मण परिवार था। बाल्यकाल से ही दोनों साहित्यिक वातावरण में पले। अपनी अल्पायु में ही काव्य रचना में प्रवृत्त हो गये।
3. अज्ञेय ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में प्रत्यक्ष सहभाग लिया। जेल भी गए। वैसी कोई प्रत्यक्ष घटना मर्ढेकर के जीवन में नहीं हुई।
4. अज्ञेय एकान्तप्रिय, मौन शिल्पी थे। तो मर्ढेकर में भी यही वृत्ति बराबर दिखाई देती है। मर्ढेकर भयंकर चुप्पा थे।
5. अज्ञेय सौम्य, सूक्ष्म विद्रोही थे तो मर्ढेकर में भी कई अर्थों में विद्रोहीपन लक्षित होता है।
6. उभय कवियों ने पूर्व प्रचलित काव्यधारा के विरोध में एक नयी काव्य प्रवृत्ति का प्रवर्तन किया। अज्ञेय प्रयोगवाद के पुरोधा बने, नयी कविता के मसीहा भी कहलवाए। ठीक उसी तरह मर्ढेकर ने स्वच्छंदतावाद को नकारते हुए नवकविता का प्रवर्तन किया।

7. उभय कवियों ने अपने विभिन्न लेखों आत्मानुभवों, कविताओं आदि द्वारा नयी काव्यधारा को मूलभाषा प्रवाह के साथ जोड़ा। नये कवियों का मार्ग प्रशस्त किया। हिंदी-मराठी कविता की परंपरा में एक नया अध्याय जोड़ा।

8. दोनों का वैवाहिक जीवन असफल रहा।

9. निराशा की अभिव्यक्ति दोनों में हैं। भयंकर निराशा दोनों में व्यक्त हैं। व्यक्ति की क्षुद्रता का अहसास मर्ढेकर में हैं। पर अज्ञेय मनुष्य जीवन को क्षुद्र नहीं कहते। बल्कि मनुष्य की सीमाओं को बतलाते हैं।

10. मर्ढेकर शहरी जीवन के प्रॉडक्ट थे। उनकी सर्जना के केंद्र में मुंबई जैसा महानगर विराजित है। अज्ञेय महानगरीय जीवन और मशीनी संस्कृति का संकट जरूर बताते हैं।

11. अज्ञेय ने मनुष्य की असाहयता, जहरीलापन (सांप) का वर्णन किया तो मर्ढेकर मनुष्य जीवन की क्षुद्रता को बताते हैं।

12. भाषा के प्रति दोनों ने विद्रोह किया। परंपरागत भाषा, शैली और अभिव्यंजना के तमाम तेवर 2[illegible]...

13. अज्ञेय और मर्ढेकर के व्यक्तित्व और पारिवारिक स्थिति में वैषम्य दिखाई देता है। अज्ञेय एकांतप्रिय, क्रांतिकारी, विद्रोही किन्तु मर्ढेकर में क्रांतिकारिता का अभाव है। अज्ञेय सधन परिवार से थे। आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी थी और अपने अंतिम दिनों में दूसरों को आर्थिक सहायता कर सके, इतनी सधनता जरूर थी। किन्तु मर्ढेकर जीवन के आरंभिक समय से लेकर अंत तक आर्थिक अभावों में जीते रहे। कर्जे में ही जीवन समाप्त हुआ।

14. अज्ञेय स्थायी रूप में एक जगह टिके नहीं, यायावरी, भटकन और अलग-अलग व्यवसाय, पेशे से जुड़े रहे। किन्तु मर्ढेकर आरंभिक वर्ष छोड़ दें तो निरंतर रेडिओ में नौकरी करते रहे, टिके रहे।

15. अज्ञेय में महत्वाकांक्षा अधिक नहीं थी। किन्तु जीवन से उन्हें बहुत कुछ मिला। मर्ढेकर भयंकर महत्वाकांक्षी, जिद्दी थे किन्तु जीवन में असफलता (आई. ए. एस. परीक्षा में अनुत्तीर्ण) ही हाथ लगी।

16. अज्ञेय और मर्ढेकर उभय कवियों ने हिंदी - मराठी कविता का चेहरा-मोहरा ही बदल दिया।

17. अज्ञेय ने कविता के अतिरिक्त कहानीकार, उपन्यासकार, पत्र संपादक, निबंधकार, डायरी - लेखक तथा अतिथि व्याख्याता के रूप में हिंदी साहित्य और भाषा की सेवा की। किन्तु मर्ढेकर ने कविता, उपन्यास और नाट्य का एक प्रकार संगीतिका का सृजन किया। अज्ञेय के लेखन में वैविध्य हैं, अनेक विधाओं में अज्ञेय ने हाथ आजमाया किन्तु मर्ढेकर ने दो -

तीन विधाओं में ही अपनी अभिव्यक्ति दी।

18. अज्ञेय को दिर्घायु प्राप्त हुई। करीब 76 वर्ष की आयु अज्ञेय को प्राप्त हुई। जिसमें उन्होंने जीवन का भरपूर आस्वाद लिया। किन्तु मर्ढेकर को केवल 46 वर्ष का अल्पायु जीवन मिला। पर उल्लेखनीय बात ये है कि दोनों ने भारतीय भाषाओं (हिंदी-मराठी) की श्रीवृद्धि की।

■ ■ ■

ÃÖ¤³Ö ÃÖ“Öß :

1. अज्ञेय, रमेशचंद्र शाह, साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली, द्वितीय सं. 1994, ¯Ö. 7
2. अज्ञेय और उनका कथा साहित्य, गोपाल राय, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र. सं. 2010, ¯Ö.11
3. शिखर से सागर तक, रामकमल राय, नेशनल पब्लिसिंग हाऊस, दिल्ली, 105 द्वि.सं.1987 ¯Ö.35-38
4. ¾ÖÆüß, ¯Ö. 39
5. गोदारण, अंक 11, संपा. आलोक सिंह, पृ. 13
6. ¾ÖÆüß, ¯Ö.16
7. ¾ÖÆüß, ¯Ö. 17
8. ¾ÖÆüß, ¯Ö. 20
9. ¾ÖÆüß, ¯Ö.24
10. शिखर से सागर तक, रामकमल राय, नेशनल पब्लिसिंग हाऊस, दिल्ली, 105 द्वि. सं. 1987, ¯Ö. 141
11. गोदारण, अंक-11, ¯Ö. 34
12. ¾ÖÆüß, ¯Ö.35
13. आशिर्वाद के सुवास से भाई अज्ञेय जी, धर्मयुग, 19 †¯Ö»Ö 1987, ¯Ö.12
14. अज्ञेय, स्मृति लेखा, वसंत का अग्रदूत, पृ. 70
15. साहित्य कोश, सं. डॉ. धीरेंद्र वर्मा, पृ.10
16. शिखर से सागर तक, पृ. 189
17. ¾ÖÆüß, ¯Ö.59
18. ¾ÖÆüß, ¯Ö.237
19. ¾ÖÆüß, ¯Ö. 221
20. गोदारण, अंक-11, ¯Ö.44
21. मर्ढेकर-सुर्वे : दोन युग मुद्रा, डॉ. अशोक नामदेव पळवेकर, सुगावा प्रकाशन, पुणे, प्र. सं. 2008
22. मर्ढेकरांची कविता : स्वरूप आणि संवेदना, खंड-1, डॉ. विजया राजाध्यक्ष, मौज प्रकाशन गृह, मुंबई, द्वि.सं., 2008
23. बाळ सीताराम मर्ढेकर,यशवंत मनोहर, साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली,प्र. सं. 1987, ¯Ö. 3

24. ¾ÖÆß, ¯Ö. 6

25. मर्ढेकरांची कविता : स्वरूप आणि संदर्भ, विजया राजाध्यक्ष, मौज प्रकाशन गृह, मुंबई, ×«ú. ÃÖ. 2008, ¯Ö.29

26. ¾ÖÆß

27. ¾ÖÆß

■ ■ ■

ŸÖŸÖßµÖ †¬µÖÖµÖ

अज्ञेय और मर्ढेकर की कविता

(प्राप्त संग्रहों के आधार पर दोनों की कविताओं की संवेदना, भाषा तथा शिल्प के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन)

ŸÖŸÖßµÖ †¬µÖÖµÖ

अज्ञेय और मर्ढेकर की कविता

(प्राप्त संग्रहों के आधार पर दोनों की कविताओं की संवेदना, भाषा तथा शिल्प के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन)

†) अज्ञेय की काव्य यात्रा : एक अध्ययन

2) मर्ढेकर की काव्य यात्रा : एक अध्ययन

क) अज्ञेय और मर्ढेकर की कविता : तुलनात्मक अध्ययन

›) निष्कर्ष :

†) अज्ञेय की काव्य यात्रा : एक अध्ययन

आधुनिक हिंदी कविता के शलाका पुरुष अज्ञेय अपने आप में विलक्षण प्रतिभा के धनी हैं। हिंदी कविता को दिशा देने का काम इस कवि ने किया। अपने समकालीन परिवेश की गहराइयों में उतरकर इन्होंने एक नयी काव्य दृष्टि दी। हिंदी कविता को 'व्यक्ति' के सरोकारों से जोड़ने का महत्त्वपूर्ण काम अज्ञेय ने किया। 'प्रगतिवादी' कविता प्रचारात्मक,अभिधात्मक और समाजशीलता की वृत्ति से आक्रान्त हुई थी। उसके स्थान पर अज्ञेय हिंदी में व्यक्तिचेतना,व्यक्ति मनोजगत और व्यक्ति सत्य का अविष्कार करते हैं। इतना ही नहीं तार सप्तकों के द्वारा अज्ञेय ने हिंदी को 28 नई सृजनशीलताओं को साहित्य की उर्वरा भूमि प्रदान की। अज्ञेय का इस अर्थ में बड़ा ही महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। किन्तु ये देखना मुनासिब होगा कि अज्ञेय की काव्य-यात्रा के मोड़ कौन-से रहे,पड़ाव कौन-से रहे और काव्य-यात्रा की विशेषताएँ कौन-सी रही?

अज्ञेय की काव्य-यात्रा को उनके साहित्य के गहरे अध्येता डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने चार सोपानों में विभक्त किया है। वस्तुतः अज्ञेय ने 'Ÿ0¸Æ' कविता संग्रह लिखें। चार तार सप्तकों का संपादन किया। अलावा इसके कविता के संपादन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। उनके कविता संग्रह इस प्रकार हैं- भग्नदूत (1933), Ø“0Ÿ0 (1942), ‡Ÿµ0»0´0 (1946), हरी घास पर क्षण भर (1946), ²00¾0¸0 †Æ¸ß (1954), इंद्रधनु रौंदे हुए ये (1957),अरी ओ करूणा प्रभामय (1959),आंगन के पार «0¸¡ (1961),कितनी नावों में कितनी बार(1961),सागर मुद्रा (1970),पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ (1970) और महावृक्ष के नीचे (संदर्भ : युगपुरुष कवि अज्ञेय, डॉ. रामेश्वर बांगड)

अज्ञेय की दीर्घ काव्य-यात्रा का विद्यानिवास मिश्र जी द्वारा चार सोपानों में विभाजन निम्न रूप में हैं।

1. विद्रोह और हताशा का दौर - (चिन्ता और इत्यलम्)
2. अपने भीतर शक्ति संचय का दौर - (हरी घास पर क्षण भर, बावरा अहेरी और इंद्रधनु रौंदे हुए ये)
3. बिना किसी आशा के आत्मदान में सार्थकता पाने का दौर-(अरी ओ करूणा प्रभामय,आंगन के पार द्वार)
4. मानवीय दायित्व-बोध के साथ-साथ भारतीय अस्मिता की पहचान का दौर - (क्योंकि मैं उसे जानता हूँ, महावृक्ष के नीचे)

परंपरा को आधार बनाकर डॉ. परिमला अंबेकर ने अज्ञेय की काव्य-यात्रा को तीन सोपानों में विभाजित किया है।

†) प्रथम सोपान - (1929 Ã0 1940 तक) छायावादी काव्य

²0) द्वितीय सोपान - (1940 Ã0 1965 तक) नयी कविता -इसे पुनः दो उपभागों में रख सकते हैं-

अ. प्रयोगात्मक साधना   आ. नयी कवितागत सिद्धि

क) तृतीय सोपान (1965 Ã0 1975 तक) अद्यतन काव्य

किन्तु स्वयं अज्ञेय ने अपनी अजस्त्र काव्यधारा को अर्थात् कविताओं को दो खण्डों में संपादित किया है। 'सदानीरा भाग-1', और 'सदानीरा भाग - 2' जिसका प्रकाशन 1980 ´Ö Æ†Ö Æ… अज्ञेय की काव्य-यात्रा 1927 ÃÖ 1987 तक प्रदीर्घ रुप में चली। इस संपूर्ण दौर की कविताओं को अज्ञेय ने इस तरह विभाजित किया है-

1. सदानीरा भाग - 1 में सन् 1927 ÃÖ 1956 तक की कविताएँ संकलित हैं। तीन खण्डों में इस काल की कविताओं का विभाजन किया गया है-

1. खण्ड - 1 चिन्ता (विश्वप्रिया और एकायन)
2. खण्ड - 2 कविताएँ सन् 1929 ÃÖ 1945
3. खण्ड - 3 कविताएँ सन् 1945 ÃÖ 1956

2. सदानीरा भाग - 2 में सन् 1957 से सन् 1980 तक की कविताओं का संकलन इसे भी तीन खण्डों में विभाजित किया गया है -

1. खण्ड - 4 कविताएँ 1957 ÃÖ 1964 तक
2. खण्ड - 5 कविताएँ 1965 ÃÖ 1972 तक
3. खण्ड - 6 कविताएँ 1973 ÃÖ 1980 तक

सन् 1980 के बाद की कविताएँ 'ऐसा कोई घर आपने देखा है' कविता संग्रह में प्रकाशित हुई है। इन तीनों प्रकार के विभाजन को केंद्र में रखते हुए अज्ञेय की काव्य-यात्रा का अध्ययन किया जा सकता है।

अ. प्रथम सोपान : छायावादी काव्य (भग्नदूत, चिंता, इत्यलम् (मध्य तक)

अज्ञेय ने कविता के आंगन में तब प्रवेश किया था जब हिंदी में छायावादी कविता यौवनावस्था में थी। डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने अज्ञेय के इस दौर को 'विद्रोह और हताशा का दौर' कहा है। 'भग्नदूत' काव्य संग्रह में सन्1929 से लेकर 1932 तक की कालावधि में रची गयी कुल 29 कविताएँ संग्रहित हैं। यह काव्य संग्रह 1935 में प्रकाशित हुआ।'चिन्ता' काव्य संग्रह में 192 शीर्षक विहीन गद्य-पद्यमय कविताएँ संग्रहित हैं। सन् 1933 से लेकर 1936 तक की समयावधि में रचित कविताएँ हैं। इसके दो भाग हैं- विश्वप्रिया और एकायन। प्रस्तुत काव्य संग्रह का प्रकाशन 1942 में हुआ। अज्ञेय का तीसरा काव्यसंग्रह 'इत्यलम्' सन् 1946 में प्रकाशित हुआ। जिसमें कुल 92 कविताएँ संग्रहित हैं। सन्1933 ÃÖ1946 की अवधि में रची गयी रचनाएँ हैं। अज्ञेय के इन तीनों काव्य-संग्रहों के अध्ययन के उपरांत कुछ तथ्य उभरते हैं, जो इस प्रकार हैं। अर्थात् अज्ञेय के प्रथम सोपान की काव्य विशेषताएँ निम्नांकित Æ-

1. 'भग्नदूत' की अधिकांश कविताओं का विषय प्रणय ही रहा है। 'अतीत की पुकार', 'मैं तुम्हारे ध्यान

में हूँ', 'प्राप्ति', 'ताजमहल की छाया में' इत्यादि कविताओं में विगत प्रेम की स्मृति का भाव है, जिसे प्रकृति के दृश्यों के माध्यम से व्यक्त किया है। 'भग्नदूत' में भग्नप्रेमी, 'चिन्ता' में मनोवैज्ञानिक प्रेमी का, हियहारिल में वैचारिक प्रेमी के दर्शन होते हैं।

2. 'बन्दीस्वप्न' में वैयक्तिक प्रणय से हटकर सामाजिक स्वर उभर आया है। किन्तु इसी के साथ-साथ हताशा और निराशा की अभिव्यक्ति भी हुई है।

3. धीरे-धीरे वैयक्तिक प्रणय से हटकर असीम प्रणय की तृष्णा जगी है। जहाँ भावी सत्यान्वेषी प्रवृत्ति का चित्र दिखायी देता है।

4. मोहभंग, स्वप्नभंग की स्थिति का जाल अवश्य बुना गया है, जिसके दर्शन इस काल की कविता ´Ö ÆÖŸÖ Æî...

5. इस दौर की कविताओं में स्वच्छदतावादी कवियों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। अर्थात् ¯Ö¾Ö¾ÖŸÖá रोमान्टिक काव्यप्रवृत्ति की छाया में अज्ञेय की काव्य-यात्रा ढलती जाती है।

6. संस्कृतनिष्ठ कोमल, सुकुमार, सुसंस्कृत भाषा में अज्ञेय अपनी अनुभूति को व्यक्त करते हैं। छन्द लय के प्रति कवि का मोह दिखलाई पड़ता है।

7. छायावादी काव्यधारा का सुंदर निदर्शन यहाँ होता है।

कुल मिलाकर प्रथम दौर की काव्य-यात्रा में प्रणयानुभूति के दर्शन होते हैं। कवि भाव प्रधान कविता लिखने में रुचि लेता हुआ दिखाई देता है। साथ ही सूक्ष्म सौंदर्य बोध से आप्लावित कविता नजर आती है। प्रकृति के प्रति गहरा राग बोध कवि में लक्षित होता है।

ब. द्वितीय सोपान - नयी कविता (सन् 1940 ÃÖ 1965)

1. प्रयोगात्मक साधना
2. नयी कवितागत सिद्धि

डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने इस दौर की कविता को 'अपने भीतर शक्ति संचय का दौर' कहा है।

सन् 1940 ÃÖ 1950 तक की कविता का दौर 'प्रयोगात्मक साधना' का दौर रहा है। 'हरी घास पर क्षण भर, बावरा अहेरी और इन्द्रधनु रौंदे हुए ये' इन तीन काव्य संग्रहों के प्रकाशन का दौर है। यहाँ आकर कवि धीरे-धीरे गैर रोमांटिक कविता का मिथकीय साक्षात्कार करने लगता है। डॉ. रामस्वरुप चतुर्वेदी अज्ञेय की कविता में गैर रोमांटिकता की संभावना कवि की भाषिक सर्जनात्मकता के माध्यम में देखते हैं। वे कहते हैं, "कविता का यह विखार इसलिए है कि अब संगीत या भावावेग के स्थान पर भाषिक सर्जनात्मकता को रचना में अधिक महत्व मिला है।"[1]

प्रथम 'तारसप्तक' के संपादकीय वक्तव्य में अज्ञेय ने दो बातें कही थी। एक, उन्होंने मनुष्य को वासनाओं का पुंज कहा था। और दूसरी बात भाषा में सम्प्रेषणीयता के प्रश्न को लेकर की थी।

वस्तुतः कवि यहाँ आकर छायावादी संवेदना को ठेस पहुँचाने के ढंग से यौन प्रतीकों का प्रयोग करता है। आधुनिकता का एक प्रमुख लक्षण 'प्रयोगशीलता' है। अज्ञेय यहाँ आकर प्रयोग पर बल देते हैं। साथ ही वह स्वयं को हीन, लघु मानव के रुप में भी चित्रित करते हैं। कवि में टूटन, अकेलापन, क्षणिकता, मोहभंग, निराशा की संवेदनाएँ साकार हो उठी है। द्वितीय महायुद्धोतर कालखंड में मनुष्य के जीवन में आयी यांत्रिकता या यांत्रिक नागरिकता का चित्रण नवीन शहरी प्रतीकों के द्वारा अज्ञेय अभिव्यक्त करते हैं।

अज्ञेय का एक चर्चित काव्य संग्रह है- 'हरी घास पर क्षण भर' - प्रस्तुत काव्य संग्रह में नयी संवेदना, यांत्रिक नागरिकता का चित्रण नवीन शहरी प्रतीकों द्वारा किया गया है। 'हरी घास' कवि के ही शब्दों में, 'अधुनातन मानव मन की भावना की तरह सदा बिछी है- हरी, न्यौतती, यह सहजता और मुक्ति का प्रतीक है। कवि नगरीय बोध को पूरी संवेदना से अंकित करता है। 'नगर सभ्यता के प्रति वितृष्णा की भावना 'हरी घास पर क्षणभर में' खुलकर अभिव्यक्त हुई है। धीरे-धीरे कवि यांत्रिक सभ्यता का पर्दाफाश करता है। इसी बात को केन्द्र में रखते हुए डॉ. नंदकिशोर आचार्य लिखते हैं, "यांत्रिक सभ्यता और नगरबोध की जितनी अभिव्यक्ति परवर्ती काव्य में हुई उसका प्रारंभ इस संग्रह में देखा जा सकता है।"[2] इस संग्रह में संकलित अज्ञेय की दो कविताएँ द्रष्टव्य हैं- 'हमारा देश और सांप'। 'हमारा देश' कविता उस शहरी सभ्यता पर एक व्यंग्य है जिसके कारण सांस्कृतिक विघटन होता जा रहा है। तो 'साँप' कविता में नगर सभ्यता के प्रति व्यंग्य प्रतीकात्मक ढंग से अभिव्यक्त हुआ है। अज्ञेय का कवि-कर्म प्रयोगशीलता से व्यक्तिबोध के प्रतिफलन में होता है। जिसे नंदकिशोर आचार्य ने यूँ परिभाषित किया है, "तारसप्तक से हरी घास पर क्षण भर तक में अज्ञेय के व्यक्तिवाद का उत्स छुपा हुआ है। वर्ग-भावना और यौन वर्जनाओं के प्रति विद्रोह करने वाले व्यक्ति के लिए यांत्रिकता या सर्वसत्तावादी राज्य भी क्या एक नयी प्रकार की वर्जनाओं का जुआ कंधे पर रखने जैसा नहीं।"[3] यह भी सच है कि अज्ञेय ने आधुनिक सभ्यता के संदर्भ में नर-नारी के प्रणय संबंधों की नयी व्याख्या यहाँ की है। नगर सभ्यता ने प्रेम सम्बन्धों को जैसे नये ढंग से देखने के लिए बाध्य किया है। इतना ही नहीं 'हरी घास पर क्षण भर' ने एक नयी परंपरा का निर्वाह भी किया जिसे परवर्ती रचनाकारों ने सहर्ष स्वीकार किया है। इसी बात को नंदकिशोर आचार्य ने बड़ी मार्मिकता के साथ बेधते हुए लिखा है, "इस संग्रह में अज्ञेय की संवेदना में एक निश्चित स्वरूप ही ग्रहण नहीं किया- हिंदी को भी नयी काव्य-भूमि से परिचित करवाया। संवेदना व शिल्प व भाषा सभी दृष्टियों से इस संग्रह का परवर्ती हिंदी काव्य पर स्थायी प्रभाव पड़ा। यांत्रिक सभ्यता और नगर-बोध की जितनी अभिव्यक्ति परवर्ती हिंदी काव्य में हुई उसका प्रारंभ इस काव्य संग्रह में देखा जा सकता है।"[4]

'हरी घास पर क्षण भर' अज्ञेय का चौथा प्रकाशित काव्य संग्रह है। इसका प्रकाशन सन् 1949

में हुआ। प्रस्तुत काव्य संग्रह में कुल 40 कविताएँ संग्रहित हैं और इसमें सन् 1947 ÃÖ 1949 के बीच लिखी हुई कविताएँ संग्रहित हैं। यह 'प्रयोगशीलता' का दौर है। नयी काव्य-प्रवृत्ति के उदय का कालखंड है। काव्य-सृजन, काव्य-संपादन और उपन्यास-लेखन, कहानी लेखन में भी मनुष्य के आंतरिक जगत में हो रही हलचलों का चित्रण होने लगा। कवि-कथाकार अज्ञेय की इसी मानसिकता को दर्शाते हुए नंदकिशोर आचार्य लिखते हैं, "तारसप्तक, इत्यलम्, हरी घास पर क्षणभर और शेखर : एक जीवनी में अज्ञेय संक्रमणकालीन भारतीय मानस की विवशता को ही नहीं, वर्जनाओं को तोड़ने की उसकी चेष्टा को भी अभिव्यक्ति देते हैं।"[5] यह वही दौर है, जहाँ से मनुष्य जीवन में आयी यांत्रिकता, एकसता, ऊब, अकेलापन, अजनबीपन और कुण्ठाग्रस्त स्थिति का चित्रण अज्ञेय अपनी कविता के माध्यम से करते हैं। किन्तु ये भी सही है कि इस दौर में मार्क्स का द्वंद्वात्मक भौतिकवाद और फ्रायड का मनोविश्लेषण दोनों की उपस्थिति दिखाई देती है। इसके साथ प्रधानतया यंत्र वैज्ञानिक युग और नगर सभ्यता का प्रतिफलन है, साथ में वर्तमान जीवन की कलान्ति और नैराश्य बोध की अभिव्यक्ति है। परंपरागत मूल्यबोध में परिवर्तन देखने में आता है। अर्थात् इस कालखंड के तीनों काव्य संग्रहों में इसी बात की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। "अज्ञेय का पाँचवा काव्य संकलन सन् 1954 में प्रकाशित हुआ जिसका शीर्षक है- 'बावरा अहेरी'। इसमें सन् 1950 से लेकर 1953 तक की अवधि में रची गयी कुल 34 कविताएँ संग्रहित हैं।"[6] प्रस्तुत काव्य संग्रह में लघुत्व की भावना, पीड़ा की भावना दूर होकर कवि में आस्था और विश्वास जग जाते हैं। यहाँ आकर कवि में सामाजिक आशय के प्रति आस्था भाव दिखाई देता है। 'शोषक भैया', 'हवाई यात्रा', 'जनवरी छब्बीस', 'यह दीप अकेला' आदि कविताएँ इसका निदर्शन है। अज्ञेय के इस दौर का तीसरा और उनका छठा काव्य संग्रह 'इन्द्रधनु रौंदे हुए ये'- 1957 में प्रकाशित हुआ। इसमें कुल 58 कविताएँ संग्रहित हैं। इसमें सन् 1954 से लेकर 1955 तक की कालावधि में रची गयी कविताएँ संग्रहित की गयी हैं। इस काव्य संग्रह में कवि का दृष्टिकोण यथार्थवादी दिखायी देता है। कवि में अनुभूति की सत्यता, प्रामाणिकता (भोगा हुआ यथार्थ) अहं का विलयन, काव्य साधना आदि संबंधी कुतुहल का भाव जगा है। प्रस्तुत काव्य संग्रह में अज्ञेय जी का नया कवि रूप स्पष्ट रूप में दिखायी देता है। कवि असीम शक्ति के प्रति समर्पण का भाव व्यक्त करता है अर्थात् भाव, शब्द, अर्थ सामंजस्य और समाजोन्मुखता के दर्शन इस दौर की कविता में होते हैं। विशेषतः इस कालखंड में लिखी गयी कुछ कविताओं का उल्लेख करना आवश्यक है। जिन कविताओं ने अनुभूति के नये क्षितीज को स्पर्श किया है। उसमें सांप, इतिहास की हवा, मैं तुम्हारा प्रतिभू हूँ, रेंक, नयी कविता : एक संभाव्य भूमिका, विपर्यय, सीढ़ियाँ, महानगर : रात, उँची उड़ान, सागर और गिरगिट, हमने पौधे से कहा आदि कविताएँ आधुनिक खोखली सभ्यता, सामाजिक विषमता, वर्ग भावना और काव्य रुढ़ियाँ आदि पर व्यंग्य के जबरदस्त

प्रहार किये गये हैं। विशेषत: 'हवाई यात्रा' और 'दफ्तर : शाम' जैसी यांत्रिक सभ्यता के विषय की कविताएँ हैं। यंत्र संस्कृति ने प्रकृति की उपस्थिति को नगण्य बना दिया है। द्रष्टव्य है-

'वही तो तारे हैं वही आकाश है,
किन्तु जहाँ आसपास
घुमडन है, त्रास है
मशीनों की गडगड़ाहट में
भोली (कितनी भोली) आत्माओं की
अनुरणन की मोहमयी प्यास है।'

'इंद्रधनु रौंदे हुए ये' शीर्षक यंत्रसभ्यता के आक्रमण का संकेत देता है। 'इंद्रधनु' सौन्दर्य का प्रतीक है। यंत्र ने सौंदर्य चेतना को जड़ बना दिया है। विख्यात समीक्षक डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे इस कविता में अज्ञेय की सूक्ष्म सौंदर्य दृष्टि को देखते हैं। उनका मानना है कि अज्ञेय बिंबों, प्रतीकों के कवि हैं किन्तु इन बिंबों, प्रतीकों में अज्ञेय की सूक्ष्म सौंदर्य दृष्टि अभिव्यक्त हुई है।

अज्ञेय की काव्य-यात्रा के द्वितीय सोपान की प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्न रुप में लक्षित होती हैं-

1. द्वितीय सोपान की कविता में वैचारिकता, बौद्धिकता एवं आधुनिक संवेदना के प्रखर रुप में दर्शन ÆöŸö Æü...

2. कवि मानसिक कुण्ठाओं के स्थान पर जनजीवन के निकट पहुँचने का, उसकी पुनर्रचना करने का प्रयास करता है।

3. यहाँ आकर कविता में कवि ने भावना का दामन छोड़ा है और विचार एवं बुद्धि का आश्रय लेते हुए दिखाई पड़ता है।

4. कवि ने यौन प्रतीकों का खुलकर प्रयोग किया है।

5. मुक्त छंद का प्रयोग, नये-नये प्रतीकों का प्रयोग कवि अज्ञेय में ये विशेषताएँ दिखलायी पड़ती है।

6. लौकिक प्रेम की रेखाएँ धूमिल पड़ने लगती है और अलौकिक प्रेम में, असीम प्रेम में समाहित होने लगती है।

7. यांत्रिक सभ्यता, खोखलापन, त्रस्तता आदि का चित्रण नये-नये प्रतीकों द्वारा अभिव्यक्त हुआ है, आस्था और विश्वास का स्वर भी व्यक्त हुआ है।

8. अज्ञेय की कविता यहाँ आकर 'व्यंग्य' के कारगर अस्त्र का उपयोग करती है। कहीं-कहीं विडम्बना की ध्वनि भी व्यक्त हुई है।

9. कवि आत्मान्वेषण, आत्मशोधन और आत्मविश्लेषण के लिए निकल पड़ा है। वह मूल शाश्वत सत्य की खोज करना चाहता है।

10. यहाँ कवि का दार्शनिक, चिंतक रुप लक्षित होता है। बौद्ध, जेन, विदेशी दर्शनों का प्रभाव दिखायी पड़ता है।

11. सत्य का साक्षात्कार, अहं के विलयन द्वारा समष्टि कल्याण के मार्ग में व्यष्टि लाभ को अर्पण करना है।

12. वाक्लय द्वारा अमूर्त भावों को मूर्त रुप में प्रस्तुत करने का सशक्त प्रयास इस दौर की कविताओं में दिखाई देता है।

13. नयी कवितागत सिद्धि के दर्शन यहाँ आकर होते हैं। कवि अज्ञेय 'क्षण की अनुभूति' को बड़ी मार्मिकता के साथ अभिव्यक्त करते हैं।

क) तृतीय सोपान - अद्यतन काव्य (सन् 1965 ÃÖ 1975 तक)

इस दौर की कविताओं को डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने 'बिना किसी आशा के आत्मदान में सार्थकता पाने का दौर' कहा है। इस कालखंड में अज्ञेय के 'अरी ओ करुणा प्रभामय', 'आंगन के पार द्वार', 'कितनी नावों में कितनी बार', सागर मुद्रा, पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ आदि रचनाओं का ÃÖ®ÖÖß¾ÖÖ¿Ö ÆÖÖŸÖÖ Æî…

कवि अज्ञेय का 'अरी ओ करूणा प्रभामय' सन् 1959 में प्रकाशित सातवां काव्य संग्रह है। इसमें कुल 111 कविताएँ संकलित हैं। इसमें सन् 1956 से लेकर 1958 तक के काल में रची गई कविताओं समावेश होता है। 111 कविताओं को चार शीर्षक भागों में विभाजित किया गया है। †) ¸ÖÖ¯ÖÖ×µÖÖ¡Öß ब) रूप केकी क) एक चीड का खाका ड) द्वार हीन द्वार आदि।

प्रस्तुत काव्य संग्रह में अज्ञेय ने काव्य साधना संबंधी गंभीर चिन्तन, धारणाएँ व्यक्त की है। " एक दृष्टि से 'रोपयित्री' खण्ड की कविताएँ अज्ञेय के कविताओं का मेनिफिस्टो सिद्ध हो सकती Æî…"[7] कहीं-कहीं सामाजिक यथार्थ के आंशिक चित्र भी उपस्थित हुए हैं। 'रूप केकी' में जापानी, जैन, बौद्ध विचारधारा की एवं साधना पद्धति का प्रभाव लक्षित होता है। देशराज भाटी ने इस कालखण्ड की कविता पर भाष्य करते हुए लिखा, "इन कविताओं का महत्व यह है कि ये वक्तव्य न होकर वक्तव्य के बिंब हैं।"[8] जीवन की अस्थिरता का चित्र भी कवि ने बडा बखुबी से वर्णित किया है। 'सोन मछली', 'रश्मी बाण', 'धरा व्योम', 'जीवन छाया', 'पहेली' आदि उल्लेखनीय कविताएँ हैं। अत्यंत भाव सुंदर रचनाएँ इस कालखंड में लिखी गई हैं। 'एक चीड का खाका' में कुल 27 कविताएँ संग्रहित हैं। जिसमें हाइकु की तर्ज का प्रचलन दिखायी पड़ता है। ये कविताएँ कवि चेतना को संक्षिप्त और सघनता के साथ चित्रित करती हैं। तो 'द्वार हीन द्वार' में 32 कविताएँ हैं। यहाँ कवि के भीतर छिपा हुआ दार्शनिक प्रकट होता है। जीवन की नश्वरता, अस्थिरता, मोह, माया, असीम शान्ति का साक्षात्कार आदि विषयों पर अप्रतिम कविताएँ अज्ञेय ने लिखी हैं। 'मम' और 'ममेतर' के संबंधों का

बोध भी यहाँ आकर होने लगता है। द्रष्टव्य है काव्यपंक्तियाँ -

'एक बूँद सहसा
उछली सागर के झाग से
रंग गयी क्षण भर
ढलते सूरज की आग से।'

अर्थात् कवि ने उस विराट रुप में जीवन की एकाकारता का चित्रण सागर से उछलती बूँद के रुप में किया है।

कुल मिलाकर इस दौर की कविताओं में, विशेषतः प्रस्तुत काव्य संकलन में सत्यान्वेषण की यात्रा, चिंतनशीलता का गहरा प्रभाव, साधना पद्धति की झांकी, रहस्यवाद का स्वर आदि छवियाँ अंकित हुई हैं।

'आंगन के पार द्वार' अज्ञेय का आठवाँ काव्य संग्रह है। सन् 1961 में इसका प्रकाशन हुआ। सन् 1959 ÃÖ 1961 तक अवधि में रची गयी कविताएँ इस संग्रह में संकलित हैं। इसमें तीन भाग हैं।

अ. अन्तः सलिला ब. चक्रान्तशिला क. असाध्यवीणा

'अन्तःसलिला' के अन्तर्गत कुल 18 कविताएँ संकलित हैं। प्रस्तुत भाग में चिंतन की गंभीरता, सत्यान्वेषण, आत्मान्वेषण, जीवन मूल्य, जिजीविषा, सत्य का साक्षात्कार, आस्था का स्वर आदि दृष्टियाँ लक्षित होती है। रहस्य भावना के कारण कहीं-कहीं क्लिष्टता आ गयी है। 'बना दे चितेरे', 'भीतर जागा दाता, सरस्वती पुत्र, चिड़िया ने ही कहा, अनुभव परिपक्व, अन्धकार में दीप, एक प्रश्न, अंधेरे अकेले घर आदि कविताओं का समावेश हैं, जो उल्लेखनीय कविताएँ हैं।

'चक्रान्तशिला' में कवि का मौन मुखर हो उठा है। इसमें 27 शीर्षक विहीन कविताएँ हैं। अव्यक्त सत्ता का संस्पर्श, एकान्त का भाव, विराट सत्य से मिलने की जिज्ञासा अर्थात् कवि आत्मा को विराट के साथ जोड़ता है। साथ ही नश्वर जीवन की स्थिति का जायजा भी लिया गया है। नरेंद्र शर्मा इन कविताओं पर 'बौद्ध दर्शन' का प्रभाव देखते हैं।

'असाध्यवीणा' कवि की लंबी कविता है। कथात्मकता, संवादात्मकता और प्रतीकात्मकता के दर्शन इस कविता में होते हैं। एक जापानी कथा को आधार बनाकर रागात्मक समर्पण के द्वारा सत्य की प्राप्ति का महत्व दर्शाया हैं। इस लंबी कविता को अनुभूति की वैयक्तिकता की देन भी कहा जा सकता है। व्यक्तित्व की खोज, आधुनिक परिवेश के साथ समझौते का सूचक इसे 'आधुनिकीकरण' के 'क्रिटीक' के रुप में पढ़ा जाना चाहिए। विशेषतः यह कविता 'आधुनिकताबोध की पीड़ा से अधिक आधुनिकताबोध का उल्लास है।' (शम्भुनाथ) तात्पर्य यही है कि इस संपूर्ण काव्य संग्रह में कवि सत्य के स्वरुप का साक्षात्कार, समर्पण, मूलभूत तथ्य, मूल्यों की उपलब्धि आदि महत्वपूर्ण तथ्यों का

समावेश होता है। "इसे अज्ञेय के साधनात्मक यात्रा की चरम उपलब्धि मानी जा सकती है।"[9]

'कितनी नावों में कितनी बार' नामक काव्य संग्रह सन् 1967 में प्रकाशित हुआ। प्रस्तुत काव्यसंग्रह में कुल 44 कविताएँ संकलित हैं। प्रस्तुत कविताओं का रचनाकाल सन् 1962 Ãö 1966 के बीच का रहा है।

अज्ञेय की इन कविताओं में मानवीयता (मानवनिष्ठता), जीवनास्था अपने गहरे रंग को लिए हुए है। कवि भौतिक सुखों और सुरक्षाओं के स्थान पर सत्य संधान का प्रयास करता है। समर्पण, अहं का विलयन, अनस्तित्व, आस्था आदि भाव दृष्टिगोचर होते हैं। 'नाता-रिश्ता', 'संध्या संकल्प', 'प्रातः संकल्प', 'ओ निस्संग ममेतर', 'सूनी हैं सांसे', 'कितनी नावों में कितनी बार', 'हम नदी के साथ-साथ' आदि कृतियाँ महत्वपूर्ण हैं। यहाँ से कवि समष्टि कल्याण की ओर प्रस्थान करता है। इनमें कहीं-कहीं शुद्ध सामाजिक स्वर भी व्यक्त हुआ है। जैसे- 'तुम्हें नहीं तो किसे और, फोकिस में औदिपस, युद्ध विराम, प्रस्थान से पहले, स्मारक, यात्री, कालेमेग्दान' आदि। इसी कृति के लिए अज्ञेय को सन् 1968 में 'साहित्य अकादमी' पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

'क्योंकि मैं उसे जानता हूँ' नामक काव्य-संग्रह सन् 1969 में प्रकाशित हुआ, जो अज्ञेय का दसवाँ काव्य-संग्रह है। सन् 1965 Ãö 1968 तक की कालवधि में रचित कुल 74 कविताएँ इसमें संकलित हैं। अब तक कवि व्यक्ति के आंतरिक संघर्ष से जुझता हुआ नजर आ रहा था किन्तु यहाँ से वह बाह्य समस्याओं से जुझने लगता है। द्रष्टव्य है अज्ञेय की कविता 'तुम्हें नहीं तो किसे और'। इस काव्य संग्रह में कवि ने सामाजिक, राजनीतिक जीवन की विषमता, अराजकता, अमानवीयता का पर्दाफाश व्यंग्य के माध्यम से किया है। कवि ने मनुष्य जीवन की विडम्बना का मार्मिक चित्रण किया Æ¦...

'सागर मुद्रा' सन् 1970 में प्रकाशित अज्ञेय का ग्यारहवाँ काव्य-संग्रह है। जिसमें कुल 69 कविताएँ संग्रहित हैं। सन् 1968 Ãö 1969 की अवधि में रची गयी कविताओं का संकलन है। 'सागर मुद्रा' में व्यक्ति के अनुभूत सत्य को नये प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है। इन्द्रनाथ मदान इस कालखंड की कविताओं के बारे में लिखते हैं, "ये सभी परस्पर जुड़ी हुई हैं। उनमें एक अनिवार्य अन्विति हैं, जिसका टूटना असाध्यवीणा में अखरता है।"[10]

प्रस्तुत कविता-संग्रह में कवि आत्मसाक्षात्कार की भावना को जागृत कर देता है और वह जीवन से जुड़ना चाहता है। इसके अलावा कुछ कविताओं में कवि का चिन्तक व्यक्तित्व झलकता है। जिसमें 'काल की गदा', 'जीवन मर्म कांपती है', मज दुम्पटा-सा, नदी का पुल आदि कविताएँ उल्लेखनीय हैं।

'पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ'- अज्ञेय का बारहवां पुष्प है, जो सन् 1973 में प्रकाशित हुआ। सन्

1970 ÃÖ 1973 के बीच लिखी गयी 48 कविताओं का संकलन है। इसे तीन उपशीर्षकों में रखा गया है।

1. बन झरने की धार 2. खुले में खड़ा पेड़ 3. नन्दा देवी

इन कविताओं में अनुभूत सत्य के दर्शन होते हैं। कुछ प्रेम भावना की स्पंदित कविताएँ भी हैं। व्यंग्य की धार इन कविताओं में प्रखर रुप में दिखायी देती है। 'खुले में खड़ा पेड' अज्ञेय की अत्यंत महत्वपूर्ण रचना है। प्रत्यक्ष जीवनानुभव को अभिव्यक्त करते हुए कवि ने आधुनिक जीवनमूल्यों, सामाजिक असंगतियों पर जबरदस्त व्यंग्य किया है। आधुनिक सभ्यता, आधुनिक समाज की विद्रुपताओं पर कवि व्यंग्य के प्रहार करता है।

•ÖÃÖ - "जो निर्माता रहे

‡xÝÖÆÖÃÖ ´Ö

बंदर कहलायेंगे।"

'नन्दादेवी' में शीर्षकहीन 15 कविताएँ संग्रहित हैं। पहाडों का प्राकृतिक सौंदर्य, आधुनिक यांत्रिक सभ्यता, उजड़ते बनों की चिंता (इकॉलाजी की चिंता), राजनीतिक अराजकता, गरीबी, रहस्य भावना, सभ्यता से रौंदी हुई प्राकृतिक सम्पदा, दार्शनिक विचार, अव्यक्त स्वरूप, जीवन श्रद्धा, समर्पण आदि मुद्राएँ अंकित हुई हैं।

तात्पर्य यही है कि, इस दौर की कविताओं में 'रहस्यात्मक अभिव्यक्ति' हुई है। रचनाकार अपनी कविताओं में कथ्य का आत्मान्वेषण, रहस्यात्मकता, प्रकृति चित्रण आदि को सक्षम अभिव्यक्ति देता है। 'काव्य-विषयक चिन्तन' भी इस दौर कविता में अभिव्यक्त हुआ है। तृतीय सोपान की काव्य-यात्रा की प्रमुख विशेषताएँ निम्न रूप में हैं-

1. विविध संवेदनाओं की अभिव्यक्ति इस दौर की कविताओं में हुई है। (जैसे- प्रकृति, समाज, नव-रहस्यवाद, प्राकृतिक सम्पदा के नाश के प्रति चिंता, व्यक्तित्व के प्रति आस्था, विगत प्रणय की स्मृति, व्यक्ति के विवेक स्वातंत्र्य पर बल तथा अनुभूति के गहरे समुद्र में डुबकी लगाने का भाव †Ö×¤)

2. वैयक्तिक प्रेम के साथ अलौकिक प्रेम के दर्शन होते हैं।

3. आधुनिक यांत्रिक सभ्यता, अकेलापन, टूटन, द्वंद्व, निस्साहयता, मोहभंग आदि आधुनिक मानव की यथार्थ स्थिति का वर्णन हुआ है।

4. अज्ञेय पर प्रगतिवादी विचारधारा का स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं है।

5. प्रयोगात्मक साधना के दौर से गुजरते हुए सर्जनात्मक सिद्धि तक का सफर अज्ञेय तय करते हैं।

6. नव कवि का सार्थक रुप उनके कविता संग्रह 'आंगन के पार द्वार', 'कितनी नावों में कितनी बार' तथा 'सागर मुद्रा' में देखा जा सकता है।

7. यथार्थता, बौद्धिकता, प्रश्नाकुलता, प्रयोगशीलता आदि आधुनिक भावबोध के प्रति अज्ञेय में कोई ठोस प्रतिबद्धता पायी नहीं जा सकती।

8. सन् 1960 के पश्चात अज्ञेय ने एकरसता को दूर करने के लिए काव्य को असीम शक्ति से हटाकर सामान्य व्यक्ति को अर्जित कर दिया।

9. अज्ञेय की इस अवधि में श्रेष्ठ कृतियाँ हैं- 'पहले मैं सन्नाटा बुनता हू और 'क्योंकि मैं उसे जानता हूँ'।

10. अज्ञेय को 'कितनी नावों में कितनी बार' कविता संग्रह के लिए सन् 1978 में भारत सरकार के द्वारा दिया जाने वाला सर्वोच्च पुरस्कार 'ज्ञानपीठ' से सम्मानित किया गया। अज्ञेय के लिए ही नहीं हिंदी के लिए यह सबसे बड़ी उपलब्धि है।

अज्ञेय का अंतिम कविता संग्रह है- 'महावृक्ष के नीचे'। सन् 1974 - 1975 के बीच लिखी गयी कविताओं का संग्रह है। करीब 50 वर्ष की लंबी काव्य-यात्रा का यह अंतिम सोपान है। वर्ण्य विषय के रुप में सामाजिक विद्रुपताएँ, अकेलेपन की अकुलाहट, सभ्यता संस्कृति की क्रुरता, राजनीतिज्ञों के दांव-पेंच,आम आदमी का प्रश्नाकुल जीवन आदि की सशक्त अभिव्यक्ति इसमें हुई हैं।

इस संग्रह की 'हंसती रहने देना' कविता तमाम झूठ, अनर्थ और टूटन के बीच अपनी आँखों के बारे में अज्ञेय कहते हैं-

> "पर आँखों ने हार, दुख अवसान मृत्यु का
> अंधकार भी देखा तो सच सच देखा है।"[11]

तात्पर्य यही है कि प्रस्तुत काव्य-संग्रह के माध्यम से कवि ने मनुष्य की सृजन प्रेरणा का उत्सव रचा है, जिसका आज अवमूल्यन हो रहा है। यही चिंताभाव कवि की वाणी द्वारा प्रस्फुटित Æ†Ö Æ...

अज्ञेय की संपूर्ण काव्य-यात्रा का काव्यगत एवं जीवनगत दृष्टिकोण का समाहार निम्नांकित बिंदुओं के आधार पर हो सकता है।

1. व्यक्तिवाद समाजोन्मुख
2. छायावादी भावुकता के विरुद्ध बौद्धिकता के दर्शन
3. भावना और विचार का संगुफन
4. शालीन, अभिजात व्यक्तित्व का प्रभाव कविता पर, व्यक्तित्व में ऋतुजा, एक मर्यादावान विद्रोही।
5. शालीनता, सुसंस्कृतता, अनथक साधना एवं संस्कार का मणिकांचन योग।
6. मम एवं ममेतर संबंधों का चित्रण
7. आत्मान्वेषण, मूल्यान्वेषण की प्रक्रिया, व्यक्ति के मानसिक द्वंद्व एवं तनाव की स्थिति का मार्मिक चित्रण

8. विशिष्ट साहित्यकार की दायित्वों की अभिव्यक्ति।

इस प्रकार सन् 1939 से अज्ञेय की आरंभ हुई काव्य-यात्रा विभिन्न मोड़ों से गुजरते हुए अबाध गति से बहती रही। इस दौरान 'तेरह' काव्य-संग्रह रुपी 'सागरमुद्राओं' की भेंट कवि ने हिंदी जगत् को दी। शुरुआत रोमांटिकता के प्रभाव को लेकर हुई थी किन्तु धीरे-धीरे कवि 'व्यक्तित्व की खोज' करता है। 'वरण की स्वतंत्रता' का पक्षधर बनता है, क्षण को साक्षी बनाता है और महावृक्ष के नीचे विराट मानव जाति के कल्याण का सपना देखता है। कवि अज्ञेय सत्य को मुट्ठी में लेकर निकल पड़े थे। प्रयोग, प्रगति, काव्य-भाषा और नये उपमानों से जुड़े प्रश्नों पर संवाद करते रहे। तात्पर्य यही है कि अज्ञेय ने भारतीयता, सामाजिकता, आत्मबोध, आत्मान्वेषण और आधुनिकता इन पाँचों को एक विलक्षण ढंग से साधा है। यह इस कवि की महती उपलब्धि है। अज्ञेय जी के इस विस्तृत काव्य-यात्रा के विविध सोपानों एवं प्रमुख अंशों को निम्न रुप में, निम्न बिंदुओं के आधार पर रखा जा सकता है-

1. कवि अज्ञेय 'व्यक्तिवादी' चेतना से प्रारंभ करते हैं। धीरे-धीरे वे 'व्यक्ति स्वतंत्रता' को सामाजिक विकास का आधार बनाते हैं।

2. कवि अज्ञेय अहं के विलयन को सर्वोपरि मानते हैं। आत्मा की पहचान से अहं के विलयन को ´ÖÆüÖ¾Ö ¤üÖ Æî...

3. कवि ने बुद्धिमूलक यथार्थवादी दृष्टि का अवलंब किया। किंतु बुद्धि की तुलना में भावना भारी पड़ती हुई नजर आती है।

4. अज्ञेय कविता में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का परिदृश्य खोलते हैं।

5. कवि अज्ञेय विद्रोही, सूक्ष्म विद्रोही हैं। यह विद्रोह भाव-भाव, भाषा, शैली, शिल्प और संवेदना के ÃŸÖ¸ü ¯Ö¸ü †x³Ö¾µÖŒŸÖ Æî †Ö Æî...

6. अज्ञेय के काव्य में 'व्यंग्य' एक अस्त्र के रूप में उभरता है किन्तु तीखापन नहीं।

7. प्रणय के प्रति अज्ञेय का दृष्टिकोण सूक्ष्म, ऋजु एवं श्रद्धापूर्ण है।

8. प्रकृति के प्रति गहरी निष्ठा-आद्यन्त प्रकृति कवि अज्ञेय की सहचरी।

9. अज्ञेय सौन्दर्यप्रेमी हैं, कलाप्रेमी हैं। गहरा सौंदर्यबोध उनके कवि-व्यक्तित्व में झलकता है।

10. अज्ञेय जी का काव्य-व्यक्तित्व आदर्श एवं अव्यक्त। 'अमूर्तिकरण' की छाया में कविता पलती, बढ़ती, विकसित होती है।

11.अज्ञेय जी के काव्य का आध्यत्मिक व्यक्तित्व लौकिक जीवनादर्शों की भावभूमि पर स्थित Æî...

12. पीड़ितों, शोषितों के प्रति सहानुभूति का भाव व्यक्त हुआ है।

13. अज्ञेय में राष्ट्रप्रेम जीवननिष्ठा के रुप में व्यक्त हुआ है।

14. दुर्बोधता का भाव है, किन्तु यह यंत्रयुग और नगरीय सभ्यता की देन है।

15. नव्य काव्य के प्रवर्तक हैं अज्ञेय।

16. अज्ञेय जी की कविताओं में विदेशी संस्कृति की गंध लक्षित होती है।

17. अज्ञेय द्वारा अन्वेषित जीवनमूल्य मानवीय, मानववादी है। एम. एन. राय के 'रेडिकल ह्यूमेनिजम' का गहरा प्रभाव दिखायी देता है।

18. स्वातंत्र्योत्तर परिवर्तित संवेदना (मोहभंग, कुण्ठा, अकेलापन, टूटन, द्वंद्व, निस्साहयता, यांत्रिक Ãö³µöŸöö) की अभिव्यक्ति हुई है। अभिव्यक्ति में 'प्रयोगशीलता' स्पष्ट दिखती है।

19. अज्ञेय के अनुसार सम्प्रेषण की समस्या शिल्पगत प्रयोगों का मूल है। व्यक्ति अनुभूति को समष्टि तक कैसे पहुँचाया जाय? यही मुख्य समस्या है।

20. संवेदना के अनुकूल नये प्रतीकों की योजना पर यह कवि बल देता है। इसलिए पुराने छायावादी संस्कारों को नकारकर नयी शैलीगत अभिव्यंजना को महत्व देते हैं।

21. सत्यान्वेषण, आत्मान्वेषण एवं अहं के विलयन की यात्रा अज्ञेय की कविता में दृष्टिगोचर होती Æî...

22. प्रकृति अज्ञेय के प्रतीकों का प्रमुख क्षेत्र है। प्रतीकों में नयापन, ताजगी एवं सहजता लाने का श्रेय कवि अज्ञेय को जाता है।

23. अज्ञेय की उत्तरकालीन रचनाओं में आध्यात्मिक उदिषा के साथ एक बहिर्मुखी सामाजिक चेतना Æî...

24. अज्ञेय की कविता का असाधारण गुण है- 'असाधारण काव्यसंयम'।

25. अज्ञेय की प्रकृति या प्रेमसंबंधी अधिकांश कविताओं में कृतज्ञता, विनयशीलता और आत्मदान जैसी मानवीय भावनाएँ निरंतर उपस्थित हैं।

26. अज्ञेय विचार के पोषण के लिए प्रतीकों का उपयोग करते हैं। इसलिए प्रतीकों में वैविध्य अज्ञेय की प्रधान विशेषता है।

27. अज्ञेय में कवि की अपेक्षा दार्शनिक अधिक झलकता है। जिस पर विदेशी एवं जेन, बौद्ध दर्शनों का गहरा प्रभाव पड़ा है। परिणामतः कवि की प्रणयानुभूति में प्रांजलता, सूक्ष्मता और गहराई आ गयी Æî...

28. अज्ञेय भाषा के पुनः संस्कार पर जोर देते हैं।

29. तत्सम शब्दों की बहुलता के कारण अज्ञेय की काव्यभाषा जनभाषा से दूर जाती रही।

30. संस्कृतनिष्ठ भाषा, मुक्त छंद एवं वाक्य के कारण अज्ञेय ने विभिन्न अनुभूतियों को प्रस्तुत करने में सफलता पायी। अज्ञेय की भाषा में भावों का अभिनय दृष्टिगोचर होता है।

31. मुक्तछंद का समर्थन अज्ञेय की कविता का लक्ष्य है।

32. वर्णनात्मक शैली के स्थान पर नाटकीय शैली का प्रयोग दिखाई देता है। (लंबी कविताएँ इसके ज्वलंत उदाहरण)

33. अज्ञेय भग्नप्रेमी, सत्यान्वेषी, यथार्थवादी, मौन के शिल्पी, लघुमानव, आस्थावादी, मानववादी और गहरे प्रकृति प्रेमी के रूप में उभरकर सामने आते हैं।

34. 'यायावरी वृत्ति' के दर्शन उनकी कविता में जगह-जगह पर होते हैं। इसलिए हम इतना ही, कहेंगे, 'अरे यायावर रहेगा याद!'

अज्ञेय की कविता का भावगत एवं कलागत मूल्यांकन :

कवि अज्ञेय की काव्य प्रवृत्तियों पर दृष्टिक्षेप डालने से पूर्व तत्कालीन पृष्ठभूमि पर विचार करना आवश्यक है। क्योंकि अज्ञेय की कविता के अन्तः सूत्र तत्कालीन परिवेश में प्राप्त होते हैं। अर्थात् एक अर्थ में कवि अपने समय की उपज होता है। अज्ञेय और तत्कालीन समयबोध को समझकर ही अज्ञेय की कविता में चेतना के जो विविध आयाम लक्षित होते हैं, उन पर विचार किया जा सकता है।

औद्योगिक क्रांति, नई तकनीकी सभ्यता का विकास, बौद्धिकता, आर्थिक मंदी, दो महायुद्धों के बीच घटित राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक स्थिति, यंत्र संस्कृति का आगमन, सामंतवाद का धीरे-धीरे खत्म होते जाना और पूंजीवादी सभ्यता के विकास की प्रक्रिया गतिमान होते जाना। सबसे महत्वपूर्ण है भारतीय समाज में मध्यवर्ग का उदय होना आदि प्रमुख घटनाओं ने एक नई काव्य संवेदना को प्रश्रय दिया, आधार दिया। ये तमाम स्थितियाँ नवीन काव्य संवेदना को अभिव्यक्त होने के लिए अनुकूल परिवेश गढ़ती है। सन् 1940 तक आते-आते भारतीय समाज में मध्यवर्ग की संख्या बढ़ने लगी। और यह मध्यवर्ग अपने आसपास के समाज को अधिक सजगता से देखने लगा। अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन कार्य शुरू हो चुका था। इसी मध्यवर्ग के कारण प्रगतिवादी काव्यधारा विकसित Æ‡ £Öß...

ठीक इसी समय भारतीय समाज में युवकों का एक नया वर्ग उभरकर सामने आ रहा था। इस मध्यवर्ग के युवकों की समस्याएँ कुछ भिन्न थी। उन्हें बार-बार अनुभव हो रहा था कि परंपराबद्ध साहित्य में उनकी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति नहीं हो पा रही है। परंपराबद्ध काव्यभाषा, शिल्प में यह संभव भी नहीं था। छायावाद ने भाषा को कोमल, लक्षणा प्रधान और संस्कृतनिष्ठ बना दिया था। बाद में इन नये शब्दों को इतनी पुरावृत्ति हुई कि उन शब्दों की अर्थगत गतिशीलता समाप्त प्राय हुई। प्रगतिवादियों ने आर्थिक प्रश्नों की चर्चा की थी। मनुष्य की सामाजिक हैसियत को लेकर चिंतन किया था। उनके चिंतन में समाज के शोषित, वंचित और सर्वहारा वर्ग की बात थी। प्रगतिवादियों ने

भाषा को अधिक अभिधामूलक बना दिया था। छायावाद में प्रकृति और अध्यात्म की अभिव्यक्ति हुई थी। प्रगतिवादी कवि सामाजिकता का स्वर आलाप रही थी। 'व्यक्ति की मानसिक स्थिति का, द्वंद्वात्मक स्थिति का, वातावरण की क्रुरता का' कोई चित्रण उपर्युक्त काव्य में नहीं हो रहा था। यांत्रिकता के कारण मनुष्य की जो असहाय स्थिति हो रही थी, उसकी भी अभिव्यक्ति नहीं हो पा रही थी। मध्यवर्ग ने यह अनुभव किया कि उनके लघु व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति कहीं नहीं हो रही है। सिग्मंड फ्रायड, कीर्केगार्द, यास्पर्स, सार्त्र आदि विचारकों की चिंतनशीलता का प्रभाव उस युग पर पड़ने लगा था। मध्यवर्ग के युवक इन मनोविश्लेषणशास्त्रियों, अस्तित्ववादियों को, उनके सिद्धांतों को न केवल पढ़ रहे थे वरण् व्यक्तिगत जीवन में अनुभव भी कर रहे थे। इसी कारण व्यक्ति की सूक्ष्म मानसिकता को यथार्थ रूप में ग्रहण करने की आवश्यकता महसूस होने लगी। इसी पृष्ठभूमि में अज्ञेय की कविता नये सरोकारों के द्वारा बोलती हैं प्रगतिवादी काव्यधारा ने व्यक्ति के अस्तित्व को ही नकारा था। समष्टिगत भावना के कारण व्यक्ति की कुंठाएँ, दमित भावनाएँ, अतृप्त इच्छाएँ, बौद्धिक अभिलाषाएँ आदि की अभिव्यक्ति पर मानो पाबंदी लगी हुई थी। मध्यवर्गीय युवक अपने व्यक्तित्व के प्रति अत्यधिक सजग थे, वे कुछ सीमा तक अहं केंद्रित थे। परंतु उनका यह अहं अथवा वैयक्तिकता छायावाद की तरह रूग्ण नहीं थी। व्यष्टि से समष्टि की ओर वह मुड़ना चाहते थे। 'सामाजिक यथार्थ' के साथ-साथ 'व्यक्ति यथार्थ' को भी महत्व देना चाहते थे। इसी कारण अज्ञेय ने काव्य के क्षेत्र में नये प्रयोग करने की आवश्यकता प्रतिपादित की। केवल प्रतिपादन ही नहीं 'तारसप्तक' के प्रकाशन से एक नयी प्रयोगात्मक काव्य साधना का दौर शुरू हुआ, जिसके पुरोधा सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' बनें और एक नयी काव्यधारा के प्रवर्तक भी।

अज्ञेय जब कविता के क्षेत्र में आये, तब आधुनिक जिंदगी उनके सम्मुख चुनौती लेकर खड़ी थी। विज्ञान की प्रगति ने, शहरों के विकास ने, यंत्रों ने मनुष्य की संवेदना को अधिक जटिल बना दिया है। यंत्र सभ्यता ने मनुष्य को अधिक असहाय बना दिया। इन विभिन्न इकाइयों के कारण जीवन बड़ी तेजी से बदल रहा था। पुराने जीवन मूल्य टूट रहे हैं- नये जीवन मूल्य उभरने का दौर चल रहा है। सम्बन्धों में तनाव आ रहा है। यौन ग्रंथियाँ उभर रही है। एक नई आधुनिकता ने मनुष्य के मानसिक जगत में विस्फोट कर दिया। मन की इस सूक्ष्म स्थिति को किस रुप में व्यक्त किया जाय? व्यक्ति जो अनुभव कर रहा है। संवेदना के स्तर पर जो झेल रहा है, उसे वह समष्टि तक पहुँचाना चाहता है। परंपराबद्ध भाषा, प्रतीक, रुपक और विषयों के आधार पर यह संभव नहीं है। इसी कारण अज्ञेय ने व्यक्ति के अनुभूत सत्य को समष्टि तक पहुँचाने की चुनौती को स्वीकार किया। अभिव्यक्ति की यह समस्या प्रगतिशीलता को ललकारती है। क्योंकि परिपाठी से चली आ रही भाषा अपर्याप्त है। "भाषा को अपर्याप्त पाकर विराम संकेतों से, अंकों और सीधी तिरछी लकीरों से, छोटे बड़े टाईप से,

सीधे या उलटे अक्षरों से, लोगों और स्थानों के नामों से, अधूरे वाक्यों से, सभी प्रकार के इतर साधनों से कवि उद्योग करने लगा कि अपनी उलझी हुई संवेदना की सृष्टि को पाठकों तक अक्षुण्ण पहुँचा सके। आधुनिक जीवन की जटिलता ने कवि-कर्म को कठिन कर दिया, लेकिन कवि इस समस्या के समक्ष कभी हारा नहीं। वह भाषा की क्रमशः संकुचित हुई सार्थकता की केंचुल उतारकर उसमें नया, अधिक व्यापक, अधिक सारगर्भित अर्थ भरना चाहता है और अहंकार के कारण नहीं है।"[12] †-ÖµÖ का उपर्युक्त कथन भाषा की समस्या पर प्रकाश डालता है। किन्तु यह भी कहा कि, 'अलंकार विधान आमूल बदलना होगा, प्रभाव जमाने होंगे, रुपकों की कलई खोलनी होगी, उत्प्रेक्षाएँ सचमुच भाव के उत्स से उत्प्रेरित हैं या नहीं, यह देखना होगा। इस प्रकार कवि अज्ञेय संवेदना का एक नया क्षेत्र लेकर आ गये और इसके अनुरुप उन्हें शिल्प में भी परिवर्तन करने पड़े।

इसी पृष्ठभूमि में हिंदी काव्य के प्रतिभासंपन्न हस्ताक्षर, श्रेष्ठ सर्जक, विचारक अज्ञेय एक नये काव्यांदोलन को उद्‌भूत करते हैं। नई काव्य चेतना से प्रेरित होकर अनुभूति के नये क्षितीजों को स्पर्श करते हैं। अज्ञेय ने छायावाद के परंपराबद्ध फार्मूले को तोड़कर लघु मानव का ढाँचा निर्मित किया। अंतर्ध्वनित सत्य और बाह्य सत्य के अंतर को महसूस करते हुए भी तीसरा दशक उसे झुठलाना चाह रहा था, उसे पूर्णतः स्वीकार कर लिया। इस संपूर्ण पृष्ठभूमि के आधार पर अज्ञेय के काव्य की भावगत एवं कलागत प्रवृत्तियाँ निम्न रूप में हैं-

1. व्यक्तिवादी चेतना बनाम वैयक्तिकता :

अज्ञेय अन्तर्मुखी चेतना के रचनाकार हैं। उनके जीवन का उनके साहित्य से विशेष सम्बन्ध रहा है। कवि अज्ञेय हिंदी काव्य में 'व्यक्तिवादी चेतना' की प्रवृत्ति को लेकर आते हैं। यहाँ वैयक्तिक जीवनानुभव महत्वपूर्ण है। कवि व्यक्ति के अस्तित्व, सत्ता को महत्व देता है। अज्ञेय में जो व्यक्तिनिष्ठ भावना पनपती है उसके मूल में कहीं न कहीं प्रगतिवाद का विरोध है। कवि का व्यक्तिवाद यथार्थ से जुड़ा हुआ है। यह कविता की ओर देखने का एक चिंतनपरक दृष्टिकोण है, जो अज्ञेय में दृष्टिगोचर होता है। वे व्यक्तिमन की गहराई तक जाना चाहते हैं। उसकी कुरूपता और विकृति को स्पष्ट करना चाहते हैं। इसी कारण यौन वर्जनाओं और कुण्ठाओं की अभिव्यक्ति यहाँ हुई है। इसी अर्थ से अज्ञेय 'यास्पर्स' से प्रभावित नजर आते हैं। मन की नग्न एवं अश्लिल मनोवृत्तियों का यथार्थ चित्रण वे करते हैं। व्यक्ति की दमित वासनाओं की अभिव्यक्ति हुई है। यह कवि अपनी व्यक्तिनिष्ठता को सुरक्षित रखना चाहता है। द्रष्टव्य है, अज्ञेय की काव्य पंक्तियाँ, 'तुम कहाँ हो नारि?' इसी बात का संदर्भ 'तारसप्तक' की भूमिका में भी मिलता है। वे कहते हैं, "आधुनिक युग का साधारण व्यक्ति यौन वर्जनाओं का पुंज हैं।' कुरुपता और नगण्य वस्तुओं का प्रभूत रुप यहाँ देखने को मिलता है।" 'नदी के द्वीप' तथा 'इसको भी पंक्ति दो' इन दोनों कविताओं में यही स्वर प्रमुख है। व्यक्ति चेतना की इसी वृत्ति

के कारण यह काव्य प्रगतिवाद की अति सामाजिकता के विरोध में निर्माण हुआ। यह व्यक्तिवाद अलौकिक अथवा रहस्यवादी स्तर पर नहीं पहुँचता जैसा कि छायावादी काव्य में हुआ है।

अज्ञेय व्यक्ति की स्वतंत्रता के पक्षधर रहे हैं। व्यक्ति की मुक्ति में ही समूह की मुक्ति है, ऐसा उनका कहना हैं। वे मानते हैं कि समता उसी समाज में होती है जो स्वतंत्र हो और वही स्वतंत्र समाज होता है, जिसका प्रमुख अंग व्यक्ति का स्वतंत्र होता है। वास्तव में यह अज्ञेय की समाजोन्मुख व्यक्तिवादी विचारधारा का प्रतिफलन है। सुविख्यात समीक्षक नंदकिशोर आचार्य अज्ञेय की इसी वृत्ति की ओर संकेत करते हुए लिखते हैं, "अज्ञेय के इसी समाजोन्मुख व्यक्तिवादी विचारधारा पर मानवेन्द्रनाथ राय के बुनियादी मानववाद (Redical Humanisum) का प्रभाव है।" विश्वनाथ तिवारी ने भी अज्ञेय की इसी वृत्ति पर प्रकाश डाला है। वस्तुतः अज्ञेय समाजविरोधी नहीं है। उनका इतना ही कहना है कि, व्यक्ति का विकास समाज का विकास होता है। आखिरकार समाज की आधारशिला व्यक्ति ही तो होता है। इसलिए हरिचरण शर्मा लिखते हैं, "अज्ञेय समाजविमुखी, समाज निरपेक्ष कभी नहीं रहे। अगर ऐसा न होता तो वे यह कदापि न लिखते कि, "भावनाएँ तभी कहती हैं जबकि उनसे लोक कल्याण का अंकुर फुटे।"[13]

2. लघुता के प्रति दृष्टिपात :

अज्ञेय ने अपनी कविता के माध्यम से लघुता के प्रति दृष्टिपात किया है। उन्होंने अपने काव्य में सामान्य मनुष्य (लघुमानव) को महत्त्व दिया है। यह दृष्टि उन्हें प्रगतिवादियों से मिली। अंतर इतना है कि प्रगतिवादी इन लघु व्यक्तित्वों का संगठन कर क्रांति की बात करते हैं। किन्तु अज्ञेय लघु मानव की दमित कुंठाएँ, यौन वर्जनाओं, दमित वासनाओं, सुख, दुःखों एवं उसकी अस्तित्व की लघुता पर प्रकाश डालते हैं। अर्थात् कवि लघुमानव को समग्रता में पकड़ने की कोशिश करता है। इसी लघु मानव को लेकर विजयदेव नारायण साही जी ने एक लंबा लेख लिखा है- 'लघु मानव के बहाने हिंदी कविता पर बहस'। जिसमें उन्होंने लघु मानव के विविध आयामों को सोदाहरण प्रस्तुत किया है। वे मनुष्य में 'खण्डित चेतनावाली मनोभूमि' को देखते हैं। अर्थात् साही जी तीसरे दशक की कविता में मनुष्य के खण्डित व्यक्तित्व के दर्शन पाते हैं। इस लघुमानव की झांकी उनकी अनेक कविताओं में प्राप्त होती है। जिसके आधार पर अज्ञेय की 'लघुमानव' की अवधारणा को समझा जा सकता है।

वस्तुतः अज्ञेय ने अपनी कविता में लघुमानव का ढाँचा निर्मित किया। कवि ने छायावाद के परंपराबद्ध फार्मूले पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए एक नया पैटर्न निर्मित किया। जिसमें लघुता न तो विसर्जित होती है और न आवेग द्वारा संग्रहीत होती है। बल्कि कवि ने अपने आन्तरिक आलोक द्वारा उसे सिद्ध किया है। यहाँ लघु और महत् का सम्मेलन प्रतीकात्मक स्तर पर होता है। शाब्दिक स्तर पर हमें महत् की तीन अवस्थाएँ मिलती है- छायावाद में उसका रूप लघु की महानता का है, तीसरे

दशक में लघु की महिमा का है और उसके बाद की कविता में 'लघु के महत्त्व' का है। अर्थात् महत्त्व की जगह 'सार्थकता' शब्द अधिक अर्थसंगत होगा। कवि अज्ञेय कविता में जीवन की आंतरिक लय पकड़ते हैं। वे अनुभूति की प्रामाणिकता पर बल देते हुए 'अन्तः सत्य' की बात करते हैं। इसलिए कवि समरसता के दर्शन के बजाए दर्शन को अनुभूति में घुला देने की राह निकालता है। अंततः इतना ही यह सकते हैं कि, कवि अज्ञेय चौथे दशक में आकर कविता में मनुष्य (लघुमानव) की स्थापना करते हैं, उसे समग्रता (आधुनिकता) में पकड़ने का सशक्त प्रयास करते है। 'नदी के द्वीप' कविता इस दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण कविता है। अज्ञेय ने लघुमानव में 'आत्मान्वेषण की प्रवृत्ति' को देखा है। वे समकालीन मनुष्य के व्यक्तित्व की खोज करते हैं। उसके भीतर उतरकर अंतः सूत्रों का उद्घाटन करते हैं। द्रष्टव्य है उनकी कविता की पंक्तियाँ-

"कितनी शान्ति! कितनी शान्ति!
समाहित क्यों नहीं होती यहाँ भी
मेरे हृदय की क्रान्ति?
क्यों नहीं अंतरगुहा अश्रृंखल दुर्बाध वासी
अथिर यायावर अचिर में चिर-प्रवासी नहीं सकता,
चाहकर-स्वीकार कर-विश्रांति?"

3. व्यापक सौंदर्यबोध :

अज्ञेय की कविता में व्यापक सौंदर्यबोध के अनेक चित्र उपस्थित हुए हैं। इसलिए इंद्रनाथ मदान अज्ञेय की कविता को 'कविता' कहते हैं। प्रकृति और बाह्य जगत के सूक्ष्म सौंदर्य को स्पष्ट करने का प्रयत्न कवि ने किया है। इस सौंदर्य दृष्टि में किसी भी प्रकार की बाह्य दृष्टि आरोपित नहीं होती। एक कलाकार की सौंदर्य दृष्टि से वे उस वस्तु को समग्रता और सूक्ष्मता से देखते हैं। सौंदर्यबोध का परम्परागत वस्तुओं के स्थान पर उपेक्षित वस्तुओं के सूक्ष्म सौंदर्यबोध को कवि ने उद्घाटित किया है। इसी कारण गदहा, झुग्गियाँ, कुत्ता आदि उपेक्षित विषयों को स्वीकारा गया। महिमा मंडित अथवा काल्पनिक सौंदर्यबोध की अपेक्षा यथार्थ सौंदर्यबोध को अज्ञेय ने महत्व दिया है जो इनकी कविता की महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है। द्रष्टव्य है, उनकी एक महत्वपूर्ण कविता 'इन्द्रधनु रौंदे हुए ये' कविता की पंक्तियाँ, जो सूक्ष्म सौंदर्यबोध का उत्कृष्ट उदाहरण है-

"ÃÖß×¯ÖµÖÖ
ये शुभ्र-नीलिम-दर्द की आँखे कटी-सी
यह गन्ध-दूषितः मुख विवर जो फिर किराते रेत कन से
अचकचा कर अधखुला हो रह गया है।"[14]

4. निराशा का स्वर :

अज्ञेय की कविता में निराशा का स्वर सुनाई देता है। इसके मूल में आसन्न युद्ध का संकट, राष्ट्रीय आंदोलन की निराशा, मध्यवर्ग की गिरती हुई अवस्था और शिक्षित जन की हताशा दीख पड़ती है। जीवन में व्याप्त यांत्रिकता, एकरसता, कठोर व्यावहारिकता, हृदयहीनता से इन्हें चीढ़ है। जीवन में ये विफलता का अनुभव करते हैं। छायावादी भी जीवन से निराश है। इस निराशा के कारण वे प्रकृति सौंदर्य में खो जाते हैं। परंतु अज्ञेय जीवन से पलायन नहीं करते अपितु निराशा के विविध स्तरों की अभिव्यक्ति करते हैं। जीवनगत निराशा के कारण ही ये जीवन की विविधता और विसंगति को तीव्रता से अनुभव करते हैं। यह निराशा उनके व्यक्तिगत जीवन से उद्‌भूत हुई है। परंतु वे इस निराशा को सामूहिक स्वर दे देते हैं। प्रगतिवादी काव्यधारा में जीवन के प्रति निराशा नहीं है। जीवन में व्याप्त निराशा को खत्म करने के लिए वे क्रांति का आग्रह करते हैं। किन्तु अज्ञेय अपनी कविता में निराशा के कारणों की खोज करते हैं, उसकी भयावहता को स्पष्ट करते हैं। बाह्य जगत में व्याप्त निराशा के कारण ही ये अंतरजगत में प्रवेश करते हैं। उसके भीतरी तत्वों को उजागर करते हैं। निराशा के क्षणों में भी अपने जड़, दकियानुसी, पुरानेपन और कुचलने की शक्ति जिस व्यवस्था में है, उसके प्रति विद्रोह करते हैं, इसे भावनात्मक विस्फोट कह सकते हैं। निराशा की कई छवियाँ अज्ञेय की कविता में उभरी हैं। कहीं न कहीं यह निराशा तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक परिस्थिति की देन है। विशेषतः अज्ञेय के व्यक्तिगत जीवनानुभवों का संस्पर्श भी इसके साथ जुड़ा हुआ है।

5. व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध :

अज्ञेय की कविता में 'व्यक्ति' और 'समाज' के सम्बन्धों का सूक्ष्म अंकन है। सुविख्यात समीक्षक प्रभाकर श्रोत्रिय इसे दार्शनिक शब्दावली में 'मम' और 'ममेतर' सम्बन्ध के रुप में सम्बोधित करते हैं। 'मम' याने 'व्यक्ति' और 'ममेतर' याने 'समाज'।

अज्ञेय मूलतः एक गंभीर सर्जक एवं विचारक हैं। उनकी कविता में दार्शनिकता है। उनकी कविता में दार्शनिकता इसी वजह से प्रस्फुटित होती है। उनके भीतर 'सांस्कृतिक' और 'आधुनिक' तथा 'व्यक्तिवाद' और 'समाजवाद' मिलकर एक समन्वित दृष्टि अन्वेषित करते हैं। इसी संदर्भ में उन्होंने 'मम' और 'ममेतर' शब्दों की सर्जना की है। ये शब्द मोटे तौर पर 'व्यक्ति' और 'समाज' या 'अहं' और 'इदं' की पतीति कराते हैं। परंतु अज्ञेय के यहाँ इनके मौलिक अर्थ हैं और इनके पारस्परिक सम्बन्धों में अनुठापन है। 'मम' स्वप्रकाशित चैतन्य है और वह निस्संग समर्पण करता है लेकिन उसका समर्पण विसर्जित होनेवाला नहीं है। वास्तव में अज्ञेय का सामना व्यक्तिवाद से था- वह अस्तित्ववाद था। अज्ञेय ने एक ओर तमाम पश्चिमी धारणाओं की तरह सार्त्र के अस्तित्ववाद को नकारा था पर दूसरी ओर कीर्केगार्द और यास्पर्स के अस्तित्ववाद से प्रभावित भी हुए। शुक्ल जी ने

ममेतर को 'शेष सृष्टि' कहा था। अपनी कविता के माध्यम से अज्ञेय ने सही मायने में 'व्यक्ति-सत्य' और 'समाज-सत्य' को घुलाने की कोशिश की है। कवि अज्ञेय व्यक्ति और समाज के निकटतम सम्बन्धों की व्याख्या करते हैं। अपनी संपूर्ण सत्तासहित वह समाज की एकता में अपनी प्रतिभा, नैतिकता, संवेदना और दायित्वसहित उपस्थिति है। दूसरी ओर ममेतर भी व्यक्ति निरपेक्ष नहीं है, वह व्यक्ति-सापेक्ष है, उसके व्यक्तित्व को पूरी तरह सम्मीलित करने वाला। अज्ञेय 'अरी ओ करुणा प्रभामय' की एक कविता में संकेत करते हैं कि मछली (व्यक्ति) सागर (समाज या ममेतर) को ही नहीं टेर रही है, सागर भी मछली को टेरता है। ये परस्पर टेरते हुए दोनों ही हमारे काम्य है। प्रस्तुत है अज्ञेय की उपरनिर्दिष्ट कविता की पंक्तियाँ -

"Æü´ÖÖ¸üÖ
जितना है, सागर में नहीं
Æü´ÖÖ¸üß ´Ö”û»ÖÛß ´Ö Æü
सभी दिशाओं में सागर जिसको घेर रहा है
हम उसे नहीं
वह हमको टेर रहा है।"

व्यक्ति और समाज की इस परस्परता में न व्यक्ति पर समाज का निरंकुशता-विरोधी पाश्चात्य व्यक्तिवाद हावी है, न समाज में अपने को तिरोहित करने वाला साम्यवाद या समाजवाद। प्रभाकर श्रोत्रिय के शब्दों में यह 'भारतीय आत्मवाद' अधिक प्रतीत होता है।

कुल मिलाकर, अज्ञेय ने व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों का विश्लेषण करते समय दोनों की भूमिकाओं पर प्रकाश डाला है। किन्तु उनके चिंतन के केंद्र में 'व्यक्ति' ही रहा है। व्यक्ति और उसकी कुंठित, दमित मानसिकता का चित्रण वे करते हैं। क्योंकि, उनका मानना है कि व्यक्ति जितना बाहर से होता है उससे कहीं अधिक वह भीतर से होता है। व्यक्ति को भीतर से जानना, दूसरे अर्थ में यह आत्मान्वेषण से गुजरना होता है। इसलिए अज्ञेय की कविता में आत्मान्वेषण के गहरे संदर्भ लक्षित होते हैं, जिनका जिक्र अज्ञेय अपनी कविता में करते हैं। 'नदी के द्वीप', 'मरुथल', 'बावरा अहेरी' संकलन की अनेक कविताएँ इसके प्रमाण हैं।

6. बौद्धिकता एवं यथार्थ दृष्टिकोण :

बौद्धिकता आधुनिकता की सबसे बड़ी पहचान है। छायावादी कविता की अति भावुकता, रोमानीपन और आदर्शवादी दृष्टिकोण की प्रतिक्रिया में कवि अज्ञेय बौद्धिकता एवं यथार्थ दृष्टिकोण का अवगाहन करते हैं। अज्ञेय की प्रारंभिक दौर कविता में रोमांटिक वृत्ति के दर्शन होते हैं। किन्तु धीरे-धीरे वे रोमांटिकता की प्रवृत्ति को त्यागकर गैर रोमांटिकता की अभिव्यक्ति करते हैं।

अज्ञेय का मानना है कि, 'बौद्धिकता वैज्ञानिक युग की सहज उपलब्धि है।' 'तारसप्तक' के प्रकाशन के पश्चात अज्ञेय कविता क्षेत्र में नया दृष्टिकोण लेकर आते हैं। वह दृष्टिकोण 'प्रखर बौद्धिकता' का है। किन्तु अज्ञेय की बौद्धिकता कोरी बौद्धिकता नहीं है। वह रागमूलक है। यह बौद्धिकता का रागमूलक रुप उनकी वेदना को नियंत्रित करता है।

कवि अज्ञेय बौद्धिकता के माध्यम से भावनाओं पर नियंत्रण लाना चाहते हैं। भावनाओं की अभिव्यक्ति होनी चाहिए, किन्तु संयमित रूप में। इसलिए कवि-कवि से प्रश्न करता है-

"कवि हुआ क्या फिर
तुम्हारे ह्रदय को यदि लग गयी है ठेंस
सुनों कवि! भावनाएँ नहीं सोता,
भावनाएँ खाद है केवल,
जरा उनको दबा रखो
जरा-सा और पकने दो, ताने और तचने दो।"[15]

अज्ञेय की बौद्धिकता का दूसरा छोर उनका यथार्थ दृष्टिकोण है। भग्नता, टूटन, अविश्वास, लघुता आदि मानवीय यथार्थ स्थितियों के अनेक चित्र कवि उपस्थित करता है। अज्ञेय कविता में किसी वाद के समर्थक नहीं रहे किन्तु कविता को जीवन से जोड़ने का उनका संकल्प स्वयंसिद्ध है। वस्तुतः अज्ञेय की बौद्धिकता उन्हें गहन चिन्तक के रुप में स्थापित करती है। जिसकी वजह से उनकी कविता में 'विचार' तत्व प्रधान अंग बन जाता है। विचार केंद्र में आ जाने से कविता अधिक विचारशील बनी। मनुष्य और मनुष्य की समग्र जीवन यात्रा को कवि मंडित करने लगा।

पर यह भी सच है कि अज्ञेय ने संवेदना के क्षेत्र में जैसे बौद्धिकता का आग्रह पकड़ा। ठीक उसी तरह प्रतीक, उपमान और बिंबों की योजना में भी यथार्थमूलक बौद्धिक दृष्टिकोण अपनाया। प्रभाकर श्रोत्रिय अज्ञेय के इसी दृष्टिकोण को केंद्र में रखते हुए लिखते हैं, "मानवीय सम्बन्धों को गौरव मिला। मानव में निहित करूणा, तनाव, अकेलापन, आतंक, सुख और आल्हाद अर्थात् मानवीय संबंधों की ट्रेजेडी और कॉमेडी दोनों की सीधे ढंग से अभिव्यक्ति हुई।"[16]

7. प्रकृति चित्रण :

वस्तुतः अज्ञेय 'प्रकृति' के कवि हैं। प्रकृति के आद्यन्त चित्र उनकी कविता में दृष्टिगोचर होते हैं। कवि प्रकृति का अनुरागी रहा है। इसलिए उनकी कविता में प्रकृति 'सहचरी' बनकर आती हैं। कवि की आरंभिक कविताओं में प्रकृति के बारे में छायावादी कविता का अनुसरण दीखता है। किन्तु उत्तरोत्तर कवि में बौद्धिकता, यथार्थ एवं सहज दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति होने लगी। कवि प्रकृति की

ओर यथार्थ मानवीय दृष्टिकोण से देखता है। इसलिए कहीं भी अतिरंजित एवं अलंकारों की भरमार से युक्त उनकी कविता नहीं रही। कवि धीरे-धीरे छायावादी प्रभाव से मुक्त होने लगता है। पहले प्रकृति उन पर हावी थी किन्तु बाद में वे प्रकृति पर हावी हुए। प्रकृति-कवि के भीतर के द्वंद्व, हृदयगत संघर्ष और विकर्ष को अभिव्यक्त होने में सहायक होने लगी।

अज्ञेय के दूसरे चरण की कविताओं में प्रकृति के अनेक बिंब मिलते हैं। 'हरी घास पर क्षण भर' 'इंद्रधनु रौंदे हुए ये' और 'मरुथल' की कविताएँ द्रष्टव्य हैं। 'हरी घास' कवि के शब्दों में 'अधुनातन' मानव मन की भावना की तरह सदा बिछी है। हरी, न्यौतती, यह सहजता और मुक्ति का प्रतीक है। अज्ञेय की कविता में आये हुए प्रकृति के सारे प्रतीक 'मुक्ति' और 'स्वातंत्र्य की खोज' से जुड़े हुए हैं। कुछ और बिंब जो उनकी कविता में दृष्टिगोचर होते हैं। वे इस तरह से हैं- 'भूमि के कल्पित उरोजों पर मेघों का झुकना, लाल गुलाब की तपती मियासी, पंखुडियों के होंठ, हरियाली के बादलों के चुंबन से खिल उठना, कली का शरद की धूप में नहाकर निखर उठना, मंदिर के भग्नावशेष पर चंचुक्रीडा करते दो वन पारावत, नदी की जांघ पर सोया अंधियारा और डाहभरी चोर पैरों से उझककर झांकती चांदनी, छातियों के बीच घर की तलाश आदि अज्ञेय के काव्य में प्रयुक्त यह बिंबावली यौन वर्जनाओं के विरुद्ध यौन मुक्ति की ही शब्दावली है।' वे इसे अपनी कविता में उभारते हैं। 'नन्दादेवी' से संबंधित, जितनी भी कविताएँ हैं, उनमें अज्ञेय 'इकॉलॉजी' की चिन्ता करते हुए दिखाई देते हैं। इसलिए डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल अज्ञेय को 'रेता का कवि' कहते हैं।

डॉ. नामवर सिंह ने अपने एक व्याख्यान में (अज्ञेय के काव्य में प्रकृति) कवि अज्ञेय और प्रकृति के अन्तः संबंधों का बड़ा मार्मिक अंकन किया है। उनका कहना है कि 'मरुथल' की कविताएँ', लंबी कविता 'असाध्यवीणा' और 'कतकी पूनो' जैसी कविताऍ उनके प्राकृतिक दृश्यों को अंकित करने की सर्वोत्तम उपलब्धि मानते हैं। अर्थात् अज्ञेय ने समस्त भारतीय परम्परा में अपना उल्लेखनीय योगदान दिया है।

वस्तुतः अज्ञेय यायावर रहे। यह यायावरी उनके प्रकृति चित्रण के अनुठे रुप में काम में आई। क्योंकि कवि सारा भारत घूम चुका है। पूर्वोत्तर भारत, दक्षिण भारत, उत्तरी भारत और यूरोप और एशिया के अनेक देशों की यात्राएँ कर चुके हैं। कवि ने प्रकृति को करीब से देखा था। इसलिए प्रकृति की अनेकानेक छवियाँ उनकी कविता में उभरती हैं। अज्ञेय 12 •Ö»ÖÖ‡, 1947 को शिलांग गये थे। वहाँ का प्राकृतिक दृश्य उन्होंने अपनी एक छोटी कविता में अंकित किया है। जिस कविता में अज्ञेय के शब्द चयन के विवेक को देखा जा सकता है-

"3ÖÖ¸¡ 2Ö»ÖÖ

सिंची छत से ओस की तिप-तिप।

पहाडी काक की विजन की पकड़ती सी क्लांत बेसुर डाक
हाक! हाक! हाक!
मन सजों यह स्निग्ध सपनों का अतस सोना
रहेगी बस एक मुट्ठी खाक
थाक! थाक! थाक!"

इन पंक्तियों में ध्वनि लय, शब्द लय और मितव्ययिता के दर्शन होते हैं।

प्रारंभिक कविताओं में परंपरागत ढंग से हृदय की आकुलता, आकांक्षाओं, कामनाओं, विरह आदि संवेदनाओं की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। किन्तु धीरे-धीरे उनकी कविता में 'भग्न गुम्बद, लटकते चिन्दियाँ, तीन टांगों पर मूत्र-सिंचित मृत्तिका के वृत्त में खड़ा गधे की ओर नजर जाती Æ...

कवि अज्ञेय ने आधुनिक मनुष्य के जीवन की जटिलता को अभिव्यक्त करने के लिए 'हरी घास पर क्षण भर' कविता में अनेक बिंबों की योजना की है। वस्तुतः अज्ञेय की कविता में प्रकृति अमूर्त नहीं बनती बल्कि सगुण बनकर साकार हो उठती है। कवि का प्रकृति के प्रति राग-विराग वाला भाव है, जो उनकी अनेक कविताओं में परिलक्षित होता है। द्रष्टव्य है- 'बर्फ की झील' नामक कविता 'चर-चर-चर कर सहसा तडक गए हिमखंड जमे, सरसी के तल पर, लुढ़क-लुढ़क कर स्थिर बसन्त आया, यद्यपि पहले नहीं किसी ने जाना, होता रहा अलक्षित।'

जो चीजें अलक्षित होती रही, उसी पर कवि का ध्यान गया है। उनकी एक और कविता है जो स्वीडन में लिखी गई है। 25 जून 1955 को लिखी गई इस कविता में शिशु के बदन पर माँ की हँसी का प्रतिबिंब अंकित हुआ है। वे धूप के बारे में वर्णन कर रहे हैं किन्तु धूप और माँ और शिशु के वर्णन में कौन किसे प्रभावित कर रहा है, इसका निर्णय तो कवि ने पाठकों पर ही छोड़ा है।

'¬ö¯ö
माँ के हँसी के प्रतिबिंब सी शिशु के बदन पर
Æ‡ ³ööxÃöÝö
नए चीड़ों से कंटीली पार की गिरि
श्रृंखला पर'

अज्ञेय जी ने अपनी कविताओं में आँचलिक प्रकृति का भी चित्रण किया है। इस वर्णन में ब्यौरे अधिक है, जिसकी वजह से कविता विवरणात्मक बन जाती है।

प्रकृति चित्रण की दृष्टि से अज्ञेय की सबसे चर्चित कविता रही है- 'असाध्यवीणा'। प्रस्तुत कविता में कवि ने लगभग सभी इन्द्रियों के नाद के द्वारा रूप का चित्र उपस्थित किया है। कवि की

प्रतिभाशीलता, अद्‌भूत कल्पनाशीलता और दृश्यबिंबों का सार्थक उपयोग प्रस्तुत कविता की महती उपलब्धि है। प्रकृति की अनेक छवियाँ प्रस्तुत कविता में अंकित हुई हैं, जो इस कविता की अत्यंत महत्वपूर्ण विशेषता है। केशकंबली नामक साधक और असाध्य वीणा के मध्य स्थापित मौन को कवि ने अनुठे शब्दों में पकड़ा है। द्रष्टव्य है कविता की पंक्तियाँ -

'हाँ, मुझे स्मरण है,
बदली-कौंध-पत्तियों पर वर्षा बूंदों की पट-पट
घनी रात में महुए का चुपचाप टपकना।
चौंके खग-शावक की चिहुँक।
शिलाओं को दुलराते वन झरने के
द्रुत लहरीले जल का कल निनाद।
कुहरे में छनकर आती
पर्वती गाँव के उत्सव ढोलक की थाप
गडरिये की अनमनी बाँसुरी।
कठफोड़े का ठेका। फुलसुंघनी की आतुर फुरकनः
ओस बूंद की ठरकन-इतनी-कोमल, तरल,
कि झरते-झरते मानो
हरसिंगार का फूल बन गई।
भरे शरद के ताल, लहरियों की सरसर ध्वनि।
कूपों का क्रेंकार। काँद लम्बी टिट्टिभ की।
पंख-मुक्त साय-सी हँस बलाक ।'

इन पंक्तियों में नाद सौंदर्य है, बिंब है, इमेजरी है। कवि की अद्‌भूत प्रतिभा के दर्शन इन पंक्तियों के द्वारा होते हैं।

कुल मिलाकर कवि अज्ञेय ने प्रकृति को जिस रुप में देखा, उसे अपनी कविता में पकड़ने का सशक्त प्रयास किया है। कवि प्रकृति के प्रति समर्पित नहीं है किन्तु प्रकृति का खुलकर उपयोग अपनी कविता में करता है। इसलिए विद्यानिवास मिश्र कवि अज्ञेय की कविता में "उपभोग की यह प्रवृत्ति वस्तुतः वैज्ञानिक है। और आधुनिक हिंदी की नवीन उपलब्धि है"[17] ऐसा मानते हैं अर्थात् अज्ञेय की अनेक कविताओं में प्रकृति के मनोहारी, तडपाने वाले अनेक चित्र उपस्थित हुए हैं, जो कवि की महती उपलब्धि है।

8. नवरहस्यवाद :

अज्ञेय की कविता में नव्य रहस्यवाद के तत्व मिलते हैं। यह रहस्यवाद छायावादी कवियों की अनुभूति में घुलमिल जानेवाला नहीं है। छायावादी कवि प्रकृति में असीम सत्ता के दर्शन कर लेता है। अज्ञेय की रहस्यानुभूति जीवन से पलायन की प्रेरणा नहीं देती। अपने आसपास के परिवेश से, उसकी तमाम उथल-पुथल और निराशा, यंत्रवत जिंदगी की वजह से कवि अन्तर्मुखी बन जाता है। किन्तु कवि यथार्थ से पलायन नहीं करता। उनकी कविता में मनुष्य जीवन और उसके विविध व्यापार के प्रति उपेक्षा भाव नहीं है। विज्ञान की प्रगति के प्रति उदासीनता का भाव नहीं है और न ही प्रकृति को आत्मसात करने के लिए कोई ईश्वरीय संकेत कवि देता है। न ही कवि परमसत्ता के विराट को बिंब, प्रतीक के माध्यम से आरोपित करता है। कवि एक नवीन शक्ति का अनुभव करता है।नवीन शक्ति के प्रति रागात्मक सम्बन्ध स्थापित होने लगते हैं, प्रणय की एक अद्‌भूत अनुभूति को महसूस कर, अपना संपूर्ण, सर्वस्व एकाकार करना चाहता है। यही नवीन अनुभूति रहस्यानुभूति के रुप में उजागर होती है। द्रष्टव्य है अज्ञेय की काव्यपंक्तियाँ -

'मैं एक प्रवाह में हूँ-
लेकिन मेरा रहस्यवाद ईश्वर की ओर उन्मुख नहीं है।
मैं उस असीम शक्ति से सम्बन्ध जोड़ना चाहता हूँ।
•ÖÖ ´Ö¸ü 3ÖßÝÖ¸ü Æî..."[18]

अज्ञेय की उत्तरवर्ती कविताओं में चेतन आत्मा विराटता से तादात्म्य की अवस्था में पहूँच गई है। कवि प्रकृति के माध्यम से रहस्यात्मक अभिव्यक्ति करता है। 'हरी घास पर क्षणभर', 'बावरा अहेरी' तथा 'इंद्रधनु रौंदे हुए ये' कविता संग्रहों में आधुनिकता का विकसित रुप दिखायी देता है। किन्तु 'आंगन के पार द्वार' तथा 'पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ' कविता संग्रहों में रहस्यात्मक अभिव्यक्ति हुई है। कवि नवरहस्यवाद की ओर मुड़ने लगता है। डॉ. शैल सिन्हा ने अपनी पुस्तक 'प्रयोगवाद और अज्ञेय' में इसी बात को साधते हुए लिखा है कि, "अज्ञेय जी की इस रहस्यानुभूति को नव रहस्यवाद (New mysticism) की संज्ञा दी गयी, जो छायावादी कवियों की रहस्यानुभूति से अज्ञेय जी की अनुभूति को अलग करती है- कारण अज्ञेय शुद्ध अध्यात्मवादी नहीं रहे।"[19]

नवरहस्यवाद के अनेक चित्र अज्ञेय द्वारा रचित 'आंगन के पार द्वार' कविता संग्रह में वर्णित हुए हैं। कवि आत्मान्वेषण की ओर अग्रसर होता है और अब द्वैत भाव नहीं रहता। द्वैतभाव का समाप्त होना अद्वैत को दर्शाता है। इसी संकलन की एक महत्वपूर्ण कविता हैं- चिड़िया ने ही कहा'। प्रस्तुत कविता में कवि ने एक पहेली के ढंग को अपनाते हुए आत्मबोध और उसके रुपान्तर का वर्णन किया है-

"तब जाने कब। चिड़िया ने ही कहा।
कि चिड़िया। चिड़िया ने ही देखा।
¾ÖÆüí x“Öx>¡µÖÖ £Öß... x“Öx>¡µÖÖ...
चिड़िया नहीं रही है तब से।
मैं भी नहीं रहा मैं। कवि हूँ।
कहना सब सुनना है, स्वर केवल सन्नाटा।"[20]

तात्पर्य यही है कि, अज्ञेय के नवरहस्यवाद में सत्यान्वेषण की चाह है। कवि 'मम' और 'ममेतर' के निस्संग संबंधों का विवेचन करता है। दर्शन के आधिक्य के कारण कहीं-कहीं कविता में जटिलता आई है। किन्तु कवि का लक्ष्य ईश्वरीय अनुभूति को अभिव्यक्त करना नहीं है। बल्कि कवि उसे 'ममेतर' में मानवीय रूप का ही दर्शन करता है। संवेदना का यह आयाम कवि अज्ञेय को तरल हृदय का अनुरागी बनाता है पर साथ ही कवि के जटिल दार्शनिक विचार संवेदना का अंग बनकर उभरते है। दूसरे अर्थों में यह कह सकते हैं कि, अज्ञेय ने सत्यान्वेषण के प्रयास में मूलभूत मानवीय मूल्यों का सार्थक विश्लेषण किया है। यही कारण है कि नवरहस्यवाद का स्वर उनकी कविता में परिलक्षित होता है।

9. काव्य विषयक चिन्तन :

अज्ञेय मूलतः चिंतनशील, ग्रहणशील और संवेदनशील व्यक्तित्व के धनी थे। उनके समग्रकाव्य-विषयक चिंतन पर या कविता पर- टी. एस. एलियट के 'निर्वेयक्तिकता' के सिद्धांत का स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है। 'वरण् की स्वतंत्रता', 'स्वातंत्र्य की खोज', 'अनुभूति की विशिष्टता' और 'प्रयोग की साधनात्मक अभिव्यक्ति' हम उनके चिंतन में देख सकते हैं। अज्ञेय ने टी. एस. एलियट के एक निबंध का 'रुढ़ि और मौलकता (ट्रेडिशन ॲण्ड इंडियूजवल टैलेंट) शीर्षक से अनुवाद भी किया है।

अज्ञेय की प्रारंभिक कविताओं से लेकर उनके अन्तिम कविता संग्रह तक कवि चिंतन की स्पष्ट छाया दिखाई देती है। "उनकी प्रारंभिक कविताओं में जो प्रगतिशील तत्व दिखाई दिये थे वे लेखकीय चिंता में परिवर्तित हो गये और कविताओं में भी काव्य-सिद्धान्तों को, कवियों को, सृजन प्रक्रिया को व्यक्त किया है।"[21] कवि ने अपनी अनेक कविताओं में काव्य संबंधी धारणाओं की अभिव्यक्ति की है। विशेषतः 'हमने पौधे से कहा', 'असाध्यवीणा', 'कवि हुआ क्या फिर', 'कन्हाई ने प्यार किया', 'सत्य तो बहुत मिले', 'छन्द है यह फूल', 'शब्द और सत्य', 'नया कवि आत्मोपदेश', 'नये कवि से', 'सम्पदाय' आदि कविताओं में कवि का काव्य विषयक चिंतन उभरकर आया है। 'हमने पौधे से कहा' कविता में कवि ने पौधे को सच्चे कवि, नव कवि का प्रतीक मानकर, नव कवि को मिट्टी से जुड़ने का संदेश दिया है। अज्ञेय का मानना है कि कवि को जीवन की गहराई में उतरना होगा,

सड़ना, गलना और रस अंकित करना होगा तभी कोई कवि अच्छा काव्य दे सकता है। 'निर्वेयक्तिकता' के सिद्धांत का प्रतिपादन उन्होंने अपनी अनेक कविताओं में किया है। कवि का मानना है कि कविता सन्नाटा रुपी जाल है लेकिन कवि उस जाल से बंधता नहीं है, बाहर रह जाता है। कल्पना का सुंदर प्रयोग करते हुए कवि भावी दृष्टिकोण को कविता के माध्यम से उजागर करता है। कविता में भावोद्‌गार, सत्यान्वेषण की चाह, आत्मशोधन का प्रयास ('स्व की खोज'), अनुभूति का जीवंत साक्षात्कार होना चाहिए ऐसा कवि का मानना है। 'सत्य तो बहुत मिले' कविता में कवि ने 'सत्य' को संबोधित करते हुए अपने मनभावन स्वर को मंडित किया है। द्रष्टव्य है काव्य पंक्तियाँ -

'तुम मेरे साथ मेरे ही आँसू में गले,
´Ö¸ü ÆüÎ ¸üŒÖŸÖ ¯Ö¸ü ¯Ö»Ö,
अनुभव के दाह पर क्षण-क्षण उकसती
´Ö¸üß †¿Öx´ÖŸÖ x“ÖŸÖÖ ¯Ö¸ü Ÿö´Ö ´Ö¸ü ÆüÎ ÃÖÖ£Ö •Ö»Ö…"[22]

तो 'असाध्यवीणा' में सृजन-प्रक्रिया पर अत्यंत कलात्मक भाष्य कवि ने प्रस्तुत किया है। केशकंबली का वीणा साधने का अनथक प्रयास, अपने अन्तः सत्य से बाह्य सत्य तक पहुँचने की छटपटाहट और सृजन की यातना से गुजर जाने की कशमकश इस कविता में अभिव्यक्त हुई है। नये कवि को दिशा संकेत देते हुए, अपने समय से टकराने का आह्‌वान करते हुए कवि ने 'नये कवि से' नामक अत्यंत मार्मिक कविता लिखी है। जिसमें कवि का आहत अहं उद्धृत होकर संबोधन करता है -

"†Ö ŸÖ †Ö,
रखता पैरों पर पैर,
गालियाँ देता,
ठोकर मार मिटाता अनगढ़
(और अवांछित रखे गये!) इन
मर्यादा चिह्नों को।"[23]

कुल मिलाकर अज्ञेय की कविता में, लेखों में, चिंतनपरक वैचारिक निबंधों में उनका काव्य विषयक गहरा चिंतन अभिव्यक्त हुआ है। जिसमें कवि बड़े बेबाक होकर अपने मतों को रखता है। यही कारण है कि कवि अज्ञेय काव्य विषयक चिंतन को लेकर सजग दिखाई देते हैं। अर्थात् इसी चिंतन की वजह से उनकी कविता में दार्शनिकता का प्रवाह नजर आता है।

10. अज्ञेय की कविता का परिवेश :

कवि अज्ञेय विविधमुखी संवेदना के कवि हैं। विविधता उनकी कविता की प्रमुख विशेषता है। कवि अज्ञेय मूलतः अंतर्मुखी चेतना के कवि हैं। किन्तु उनकी कविता में समाज जीवन के अनेक

चित्र भी उपस्थित हुए हैं। कवि ने अपनी कविता के माध्यम से जिस परिवेश की सृष्टि की है, उस पर विचार करना नितांत आवश्यक है।

अज्ञेय की आरंभिक कृतियों में प्रेमी हृदय की आकांक्षा, संवेदनाओं के सजीव चित्र अंकित हुए हैं। धीरे-धीरे छायावादी संस्कारों से छुटकारा पाने की प्रक्रिया प्रारंभ होती हैं। कवि 'वरण् की स्वतंत्रता', 'महानगरीय जीवन बोध', 'यांत्रिक सभ्यता के परिणाम स्वरुप व्यक्ति जीवन में आई असहायता', 'नीरसता', विषैलेपन को व्यक्त करता है। किन्तु साथ ही शोषक-शोषितों का संघर्ष, वर्ग भावना का विरोध, आर्थिक विषमता के अनेक चित्र अंकित करता है। मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद, व्यंग्य एवं विद्रोह का स्वर, नया कलाबोध, क्षणानुभूति, परम्परा विरोध, नया मूल्यबोध तथा मानव मूल्यों का नये सिरे से अवगाहन कवि ने किया है।

अपनी कविताओं में अज्ञेय ने शोषितों की, पीड़ितों की दुर्दशा का मार्मिक चित्रण किया है। द्रष्टव्य है कवि की काव्य पंक्तियाँ -

"डरो मत, शोषक भैया, पी लो
´Ö¸üÖ ¸üŒÖŸÖ ŸÖÖ•ÖÖ Æü ´ÖßŠüÖ Æü Æüª Æü
पी लो शोषक भैयाः डरो मत।"[24]

कवि अज्ञेय श्रमिकों की भयावह स्थिति का भी चित्रण करते हैं। श्रमजीवियों की दुर्जय आकांक्षा का मार्मिक अंकन करते हैं। सहानुभूति, ललकार और विद्रोह इन तीन रूपों में पीड़ितों का चित्रण कवि अज्ञेय ने अपनी कविता के माध्यम से किया है।

वस्तुतः अज्ञेय शहर के कवि हैं। यांत्रिक सभ्यता के कारण शहरों में आयी नीरसता यांत्रिकता एवं विषैलेपन का चित्रण कवि की विशेषता है। कवि एक ओर गाँवों की मुग्धता का चित्रण करता है तो दूसरी ओर 'सांप' जैसी कविता में शहरों के असभ्य हो जाने का स्पष्ट संकेत करता है। प्रस्तुत है दोनों भावों को एक साथ अभिव्यक्त करनेवाली उनकी 'हमारा देश' नामक कविता की काव्य ¯ÖÓŒŸÖµÖÖ -

"इन्हीं तृण-फूस छप्पर से
ढँके ढूलमूल गंवास
–ÖÖ¯Ö>ÖÖ ´Ö ÆüßÆü´ÖÖ¸üÖ ¤ü¿Ö ²ÖÃÖŸÖÖ Æü…
इन्हीं के मर्म को अनजान
शहरों की ढँकी लोलुप
विषैली वासना का साँप डसता है।"[25]

अज्ञेय की कविता महायुद्धोतर मनुष्य की कथा-व्यथा कहती है। कवि ने दूसरे महायुद्ध के

भीषण परिणाम, मानवीयता की हत्या, अणुस्फोट की बर्बरता का चित्रण अपनी कविता में किया है। कवि देश-विदेश में युद्धों को रोकने हेतु आयोजित बैठकों की निरर्थकता पर भी प्रश्नचिह्न खड़ा करता है। असफल चर्चाएँ मानवी जीवन की बर्बरता को रोकने में नाकामयाब हुई है, ऐसा कवि का मानना है। द्रष्टव्य है काव्य पंक्तियाँ -

"कितनी देर
जलते गाँवो की चिरामंध के बदले
तम्बाकू के धुएँ का सहारा:
कितनी देर
चाय और वाह-वाही की
चिकनी सहलाहट में
रुकेगा कारवाँ हमारा।"[26]

कुल मिलाकार ये कह सकते हैं कि कवि अज्ञेय ने अपनी कविता के द्वारा विविध भाव सौंदर्य के उत्कट चित्र प्रस्तुत किये हैं। उसमें उनकी विविधांगी दृष्टि का परिणाम मिलता है। साथ ही अद्भूत निरीक्षण शक्ति का भी परिचय। क्योंकि, अलग-अलग, नये से नये विषय पर लेखनी चलाना इतना आसान नहीं होता। अद्भूत प्रतिभा के धनी अज्ञेय की यह विशेषता उन्हें हिंदी कविता को परंपरा में अलग स्थान प्रदान करती है।

11. भाषा, शिल्पगत सौन्दर्याभिव्यक्ति :

अज्ञेय का हिंदी कविता को सबसे बड़ा योगदान भाषा और शिल्प के क्षेत्र में रहा है। कवि ने नये प्रतीक, बिंब, भाषा आदि का निर्माण किया है। कवि अभिव्यक्ति के प्रति अत्यधिक आग्रही है। इसी आग्रह के कारण अज्ञेय कलावादियों के निकट पहुँचते हैं। कवि ने अपनी अनुभूति को व्यक्त करने के लिए परंपरागत शिल्प को नकारकर एक नया पैटर्न निर्मित किया।

कवि अपनी सूक्ष्म अनुभूति को अभिव्यक्त करने के लिए नयी भाषा गढ़ता है। भाषा के प्रति अज्ञेय अत्यधिक सजग रहे हैं। उनका मानना है कि, उलझी हुई अनुभूति को परंपरागत भाषा में व्यक्त करना संभव नहीं है। इसलिए कवि कर्म के लिए सबसे बड़ी समस्या 'भाषा की समस्या' है, ऐसा कवि का मानना है। कवि पूर्ववर्ती भाषिक संस्कार को नकारकर नये ढंग से काव्य भाषा का निर्माण करता है। इसलिए अज्ञेय ने 'गतिशील और प्रभावशील भाषा को आर्य भाषा कहा है।'

कवि अज्ञेय अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे। भाषाओं के मिश्रित प्रभाव को लेकर भी बड़े जिज्ञासू रहे। स्वयं कवि ने 'भवन्ती' में लिखा है कि, "हिंदी अनिवार्यता एक विकासमान भाषा है। एस्परान्तों की भाँति एक गढ़ी हुई चीज, एक निर्मित नहीं है।"[27]

अज्ञेय ने अपनी कविता में भाषा के क्षेत्र में शब्दों पर अधिक बल दिया है। शब्द चयन का विवेक अज्ञेय के पास है। शायद मलार्मे का कथन भी उन्हें अधिक प्रिय लगता हो, 'कविता विचारों से नहीं, शब्दों से बनती है।' इसलिए कवि अपनी कविता में कहता है, "मुझे तीन दो शब्द। कि मैं कविता कह पाऊँ। एक शब्द वह। जिससे कह सकूं। किन्तु दर्द मेरे से जो छोटा पडता हो। और तीसराः खरा धातु। पर जिसको पाकर पूंछू। क्या न बिना इसके भी काम चलेगा? और मौन रह जाऊँ। मुझे तीन दो शब्द कि मैं कविता कह पाऊँ।"[28]

वस्तुतः भाषा मानवीय अविष्कार है। कवि की सृजनशील प्रतिभा का अविष्कार है। कवि के जीवनानुभव जितने विविधांगी, जितने सौंदर्यबोधी, उतना ही कवि उन परंपरागत शब्दों में नया अर्थ भरने लगता है, पारंपारिक शब्दावली में नयी अर्थवत्ता की तलाश करता है। यह तलाश अज्ञेय की कविता में निरंतर परिलक्षित होती है। नये शब्द, अभिव्यंजना की नयी शैली अज्ञेय ने निर्मित की। अज्ञेय पुराने प्रतीकों-बिंबों के स्थान पर नये प्रतीक-बिंब अंकित करते हैं। इसी वजह से शिवदानसिंह चौहान उन्हें 'प्रतीकवादी' कहते हैं। किन्तु अज्ञेय ने भाषा में सम्प्रेषणीयता को सर्वाधिक महत्व दिया। उनका मानना है कि कविता में विविध भाषा के शब्दों को यथावत स्थान मिलना चाहिए। इसलिए अज्ञेय की कविता में संस्कृत के 'तत्सम' शब्द सर्वाधिक मात्रा में दिखलाई पड़ते हैं। संस्कृत की कहावतों, शब्दों का सार्थक प्रयोग वे करते हैं। अनेक कविताओं के शीर्षक संस्कृतनिष्ठ शब्द योजना से बने हुए हैं। किन्तु यह भी वास्तविकता है कि कवि भाषा में प्रौढ़ता लाने के लिए लोककथा-लोकभाषा का आश्रय ग्रहण कर लेता है। बांगर, जाट, वांग, कुआँ आदि लोकभाषा के कई शब्द उनकी कविता में अनायास आ जाते हैं।

अज्ञेय की भाषा 'वाक्‌लय' से युक्त है। कवि ध्वनि, शब्द और वक्रोक्ति का सार्थक प्रयोग करता है। कविता में लय को बड़ा महत्व देते हुए कवि ने अभिव्यंजना का नया रास्ता बनाया है। इसलिए लय, गेयता और भाषिक सर्जनशीलता के अनेक उदाहरण उनकी कविता में मिलते हैं।

अज्ञेय ने अपनी कविता में प्रतीकों की नयी व्यंजना की है। उन्हें 'प्रतीकों का कवि' भी कहा गया। नवीन संवेदना की सार्थक अभिव्यक्ति के लिए नये प्रतीकों को कवि गढ़ता है। साथ ही पुराने प्रतीकों में नये अर्थ भरता है। पुराने प्रतीकों को नकारकर नये प्रतीकों की अभिव्यंजना कवि ने की है। द्रष्टव्य है उनकी कविता 'कलगी बाजरे की' - "अगर मैं तुमकों ललाती सांझ के नभ की अकेली तारिका, अब नहीं कहता, या शरद के भोर की नीहार-नहाई कुँई, टटकी कली चम्पे की, वगैरह, तो नहीं कारण कि मेरा हृदय उथला या सूना है या कि मेरा प्यार मैला है बल्कि केवल यही ये उपमान मैले हो गये हैं। देवता इन प्रतीकों से कर गये हैं कूच, बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।"[29]

अज्ञेय ने अपनी कविता में प्रकृति से प्रतीक चुने हैं। प्रकृति के सूक्ष्म सौंदर्य में छिपे हुए

प्रतीकों की तलाश कवि ने की हैं। ऐसे ही प्रतीक चुने हैं, जो कवि संवेदना को अभिव्यक्त करने में सहायता देते हो। नगरीय बोध को व्यक्त करने के लिए, यांत्रिक सभ्यता के सार्थक चित्रण के लिए कवि नये प्रतीकों की योजना करता है। इस दृष्टि से उनकी 'महानगर : रात' में अत्यंत सुंदर प्रतीक योजना की है, "लद की मैली झालर के पीछे से बोलेगी दया कीजिए जैंटिल मैन......तब जो ओठों पर निर्बुद्ध हँसी चिपकाए, मानो सीलन के विवर्ण दीवार पर लगी किसी पुराने कौतुक-नाटक का ±úx™ÆÖ»Ö-ÃÖÖ ‡¿ŸÖÆÖ¸¡ ÆÖ…"[30]

अज्ञेय के काव्य में मछली, सागर, हारिल, तिमिर, खद्योत की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति हुई है। कवि एक ही प्रतीक को भिन्न-भिन्न स्थानों पर, भिन्न-भिन्न अर्थों की योजना द्वारा व्यंजना करता है। 'मछली जीवन के क्षेत्र में जिजीविषा का प्रतीक है तो ज्ञान के क्षेत्र में ज्ञानेषणा का। 'हारिल' अस्तित्व का, उड़ने की आकुलता जिसमें दिखाई देती है। 'सागर' समष्टि का प्रतीक है। वस्तुतः अज्ञेय प्रतीक को सत्यान्वेषण का साधन मानते हैं। अज्ञेय की कविता में 'यौन प्रतीकों' की भी व्यंजना हुई है। वर्ग भावना पर व्यंग्य कसने या शोषक वर्ग को ललकारने के लिए कवि ने 'यौन प्रतीकों' की अभिव्यंजना की है। इसका दूसरा संदर्भ सामाजिक बंधनों के विरोध की तीव्रता को भी दर्शाना रहा है। धीरे-धीरे कवि की प्रतीक योजना अधिक सूक्ष्म, अधिक शालीन होती गई।

अज्ञेय की कविता में बिंब विधान अपनी अलग पहचान रखता है। कवि ने प्रकृति से बिंब चुने। दृश्य बिंबों की सुंदर योजना अज्ञेय की कविता में हुई है। अज्ञेय के काव्य में प्रकृति भिन्न-भिन्न रुपों में अभिव्यक्त हुई है। ठीक उसी तरह अनेकानेक बिंबों की अभिव्यक्ति कवि ने अत्यंत कलात्मक ढंग से की है। अज्ञेय की कविता में प्रकृति दृश्य रुप में हमारे सम्मुख आती है- "तालों के जाल। घने, कहीं लदे-छदे। कहीं ठूंठ तले। केलों के कुंज बने, सीसम की मेड़ बंधे।"

कवि ने ऋतु, पेडे-पौधे, पक्षियों में चिड़ियों के बिंब, यौन बिंबों का प्रयोग तथा परंपरागत चीजों को भी स्थान देने का कार्य किया है। सूर्य, चन्द्र, तारे, आकाश, सागर, नदी, पर्वत, सांझ, रात, सभी महत्वपूर्ण ऋतुएँ शरद, वसन्त, वर्षा, ग्रीष्म आदि को कवि ने स्थान दिया है। बिंबों में विविधता अज्ञेय की कविता की विशेषता है, जिसे बखुबी निभाने का काम कवि ने किया है। 'हारिल' का बिंब अत्यंत मर्मग्राही बन पड़ा है। द्रष्टव्य है- "उड़ चल हारिल लिये हाथ में यही अकेला ओछा तिनका। उषा जाग उठी प्राची में-कैसी बाढ़, भरोसा किनका।"

अज्ञेय के काव्य में यौन-बिंब का एक सार्थ उदाहरण - "सो रहा है झोंप अंधियाला। नदी की •ÖÖ‘Ö ¯Ö¸¡…"[31]

कुल मिलाकर अज्ञेय प्रतीकवादी कवि नहीं, प्रतीकधर्मी कवि हैं। ठीक उसी तरह 'बिंबवादी' कवि नहीं, बिंबधर्मी कवि हैं।

अज्ञेय के शिल्प सौष्ठव में 'मुक्त छंद' को बड़ा महत्व है। स्वयं कवि ने लिखा है कि, 'मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है।' इसलिए कवि ने मुक्त छन्दों में कविता रची। भावों के स्वतंत्र और सहज अभिव्यक्ति के लिए छंदों से मुक्ति होनी चाहिए, ऐसा कवि का मानना है। यहाँ काव्य लय के साथ-साथ अर्थ लय भी जुड़ा हुआ है। कवि अनुभूति के खरेपन और उक्ति की प्रभावशीलता करता है। अज्ञेय जी की कविता की यह पंक्तियाँ मुक्त छंद का उत्कृष्ट उदाहरण है-

"सबेरे उठा तो धूप खिल कर छा गयी थी, और एक चिड़िया अभी-अभी गा गई थी। मैंने धूप से कहा : मुझे थोड़ी गरमाई दोगी उधार, शंख पुष्पी से पूछाः उजास दोगी ....किरण की ओक भर।"[32]

अज्ञेय की काव्यशैली की एक विशेषता है नाटकीयता। उनकी अनेक कविताओं में 'नाटकीयता' का तत्व मिलता है। 'असाध्यवीणा' और 'दिया हुआ : न पाया हुआ' शीर्षक से कविता में ये तत्व मिल जाता है। नाटकीयता के तत्व ने कविता को अधिक अर्थवाही बनाया है। इसलिए मुक्त छंद और नाटकीयता के तत्व से अज्ञेय की कविता 'नवता' का नया पाठ रचती है।

निष्कर्ष :

कुल मिलाकर ये कह सकते हैं कि, कवि अज्ञेय की कविता में लक्षित इन भावगत एवं शिल्पगत विशेषताओं के कारण कविता अधिक मर्मग्राही, संवेदनागत विविध रुपों की अभिव्यक्ति करने वाली, शिल्प में नवीनता का दामन पकड़नेवाली तथा भाषा के परंपरात ढाँचे को तोड़कर कवि एक नया पैटर्न निर्मित करता है। इसलिए कवि अज्ञेय छायावाद, प्रगतिवाद की धारा से अलग होकर प्रयोगात्मक साधना और नई काव्य दृष्टि का अवलंब करते नजर आते हैं। यहीं कारण है कि, अज्ञेय अनुभूति की विशिष्टता, अभिव्यक्ति की विलक्षणता और अर्थ सौंदर्य की दृष्टि से नयेपन का बोध कराते हैं। अपनी पूर्ववर्ती तमाम धारणाओं को खारिज करते हुए यह कवि अपनी राह स्वयं चुनता है, बनाता है। इसलिए कवि अज्ञेय को एक ओर 'प्रयोगवाद' का प्रवर्तक माना गया तो दूसरी ओर 'नयी कविता' का मसीहा भी कहा गया। अंततः हम इतना ही कह सकते हैं कि, अज्ञेय का ज्ञात-अज्ञात उनकी कविता में अंकित हुआ है। इसलिए हिंदी कविता की परंपरा में अपनी अलग कथन की भंगिमा, शिल्पगत सौष्ठवता, भाषागत नवीनता और संवेदनागत विशिष्टता की वजह से अज्ञेय का स्थान 'विशिष्ट' रहेगा।

ब) मर्ढेकर की काव्य-यात्रा : एक अध्ययन

'नवकविता' के प्रवर्तक, चेतनाप्रवाही उपन्यासों के लेखक, सौंदर्यशास्त्र के रचयिता और बीसवीं सदी के तीसरे दशक में अपनी प्रतिभा से समस्त मराठी जगत् को चौंकानेवाले, दिशा देनेवाले और अपनी सृजनशीलता से नयी काव्यभूमि का निर्माण करनेवाले कवि बा. सी. मर्ढेकर रहे। बा. सी. मर्ढेकर का पहला कविता संग्रह 'शिशिरागम' सन् 1939 में प्रकाशित हुआ और मराठी

में एक नयी युग धारा का प्रवर्तन हुआ। कवि मर्ढेकर की काव्य-यात्रा को समझने के लिए उनके पूर्व मराठी में जो कविता लिखी जा रही थी उसका संक्षेप में परिचय लेना, पृष्ठभूमि को समझ लेना नितांत आवश्यक है। सन् 1920 Ã0 1940 तक प्रकाशित मराठी कविता पर नजर डालना आवश्यक है। इन दो दशकों में जो कविता लिखी गयी, उसका परिप्रेक्ष्य कुछ इस प्रकार का है। सन् 1925 ´0 केशव कुमार (प्र. के. अत्रे) रचित 'झेंडुची फुले' ('गेंदे के फूल') नामक कविता संग्रह का प्रकाशन हुआ। इस दशक की यह सबसे महत्वपूर्ण घटना रही है। क्योंकि, इस कविता संग्रह ने मराठी कविता का परिदृश्य ही बदल दिया। इस दशक में भा. रा. तांबे की रौमाँटिक, गेयप्रधान कविता लोकप्रिय थी। किन्तु दूसरे दशक तक आते-आते तांबे की कविता की सीमाएँ स्पष्ट होने लगी। प्रथम दशक में 'रवि किरण मंडल' की कविता लोकप्रिय थी। इस कविता ने अपनी रोमॅंटिक वृत्ति (भावुकता, स्वप्न प्रधानता, रंजकता आदि) ने प्रभावित किया था। कवि गिरीश और यशवंत ने काव्यगायन की परंपरा की शुरूआत की थी, जिसकी वजह से यह कविता लोकप्रियता के शिखर पर पहुँची थी। किन्तु केशव कुमार द्वारा रचित 'झेंडुची फुले' (गेंदे के फूल) ने इस परंपरा पर जबरदस्त व्यंग्य किया। व्यंग्य, उपरोध और हास्य प्रधानता ने रविकिरण मंडल की कविता पर निशाना साधा। सन् 1930-33 के दौरान 'झेंडुची फुले' कविता संग्रह के तीन संस्करण निकले। केशवकुमार ने अनेक सार्वजनिक कार्यक्रमों में उन कविताओं का गायन भी किया। केवल रविकिरण मंडल ही नहीं, संपूर्ण मराठी कविता को बडा धक्का केशवकुमार ने दिया। इसी दौरान सन् 1939 में रविकिरण मंडल के प्रमुख कवि माधव जुलियन (माधवराव पटवर्धन) का देहांत हुआ। ठीक उसी समय मराठी के अत्यंत महत्वपूर्ण कवि भा. रा. तांबे जी की भी 1941 में मृत्यु हुई। इन दोनों के आकस्मिक निधन का परिणाम संपूर्ण मराठी कविता पर हुआ। एक नयी काव्य प्रवृत्ति को केशवकुमार ने जन्म दिया। केशवकुमार नयी संवेदना, हास्य प्रधानता, व्यंग्यात्मकता और उपहासात्मकता को लेकर आये। ठीक उसी समय बा. सी. मर्ढेकर मराठी कविता में 'नवकविता' का आगाज करते हैं। मराठी कविता में संक्रमण का एक नया दौर शुरू हुआ। जिसके प्रतिनिधि मर्ढेकर बनें। इसी दौरान मराठी कविता में कवि अनिल, ना. घ. देशपांडे, काणेकर, कुसुमाग्रज (वि. वा. शिरवाडकर), बा. भ. बोरकर आदि कवि कविता के क्षेत्र में अपनी छाप छोड रहे थे। कुसुमाग्रज और बोरकर ने रोमँटिक कविता का पोषण किया। किन्तु यह वही समय था, जिस कालखंड में परंपरागत मराठी कविता का दामन पकड़कर बा. सी. मर्ढेकर का आगमन होता है। मराठी कविता दो धाराओं में बंटी। एक धारा परंपरागत रोमांटिक परंपरा का निर्वाह करने वाली थी। तो दूसरी धारा नवकविता की जो 'आधुनिकता' की विशिष्टता की छाया में प्रस्फुटित हो रही थी। मर्ढेकर दूसरी परंपरा के पुरोधा बनकर मराठी कविता की काव्यधारा में अवतरित हुए।

पिछले अध्याय में हमने बा. सी. मर्ढेकर के व्यक्तित्व का बारीके से परिचय लिया है। जिससे पता चलता है कि, कवि का जीवन और कविता का दौर समांतर अवस्था में पथभ्रमण करता हुआ दिखलाई पड़ता है। मर्ढेकर ने कुल तीन कविता संग्रह लिखे। उनका पहला कविता संग्रह 'शिशिरागम' (1939) में, दूसरा कविता संग्रह 'कांही कविता (कुछ कविताएँ-1947) और तीसरा कविता संग्रह 'आणखी कांही कविता' (कुछ और कविताएँ - 1954) में प्रकाशित हुए। कुछ असंग्रहित भी कविताएँ रही हैं। मर्ढेकर ने कविता के क्षेत्र में अपनी अलग पहचान बनायी, जिसका परिचय उनकी कविताओं के द्वारा होता है। मर्ढेकर की कविता को तीन चरणों में विभाजित कर सकते हैं। पहला चरण - 'शिशिरागम', दूसरा चरण मर्ढेकर की 'कांही कविता' और तीसरा चरण- 'आणखी कांही कविता' जो सन् 1934 में प्रकाशित हुआ। 'शिशिरागम' में सन् 1931 Ã 1939 की अवधि में रची गयी कुल 20 कविताओं का संकलन है। जिसमें से 12 कविताएँ पहले ही भिन्न-भिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई थी। बाकी बची हुई 8 कविताएँ अप्रकाशित थी। वैसे मर्ढेकर की पहली कविता 'रत्नाकर' मासिक पत्रिका ´ ´“/† ¯» 1931 में प्रकाशित हुई थी। जिस कविता का शीर्षक है- 'शिशिरर्तुच्या पुनरागमे' (शिशिरऋतु के पुनरागमन में)।

मराठी काव्य की परंपरा में मर्ढेकर एक नयी काव्य परंपरा के प्रवर्तक बनें। मर्ढेकर के प्रथम काव्य संग्रह में संकलित 20 कविताओं का संवेदना-पक्ष की दृष्टि से वर्गीकरण करना योग्य होगा, ताकि उस आधार पर मर्ढेकर की काव्यप्रकृति, कवि-चेतना और काव्य दृष्टि का परिचय हो जाता है। मर्ढेकर की इन बीस कविताओं में उनकी आरंभिक कविता 'शिशिर ऋतु के पुनरागमन में' अत्यंत महत्वपूर्ण एवं कवि-दृष्टि को अभिव्यक्त करने वाली कविता है। एक तो कवि रोमँटिकता के प्रभाव को लेकर आता है। प्रकृति का उन्मुक्त गायन कवि करने लगता है। जहाँ तक वर्गीकरण का प्रश्न है, प्रस्तुत काव्य संग्रह की कविताओं को चार भागों में विभाजित कर सकते हैं। 1. प्रेम कविता 2. निसर्ग (प्रकृति) कविता 3. निराशा और आत्मनिष्ठता की कविता 4. संवेदना का अन्य स्वर।

1. प्रेम कविता :

जैसे कि पहले कहा गया है, मर्ढेकर की आरंभिक कविताओं पर रोमांटिसिज्म का गहरा प्रभाव दिखायी देता है। साथ ही 'रविकिरण मंडल' की भावोत्कट कविता की छाया भी नजर आती है। मर्ढेकर की अधिकांश कविताएँ 'सुहास' को संबोधित करके रची गयी है। 'सुहास' एक अनाम प्रेमिका है। इसलिए इस प्रकार की कविताओं में 'प्रेमभाव' व्यक्त हुआ। यह प्रेमभाव शरीरी नहीं बल्कि बौद्धिक प्रेम का सूचन भी दिलाता है। एक सुंदर स्त्री को केंद्र में रखकर मर्ढेकर उसके आस-पास फैले हुए, इर्दगिर्द बिखरे हुए सृष्टि के सौंदर्य का मर्मग्राही चित्रण करते हैं। किन्तु 'प्रेम' इस मूल्य का अशरीरी बोध दिलाते समय मानवीय रिश्ते-नातों का प्रभावी वर्णन करना नहीं भूलते। 'शिशिरागम'

कविता संग्रह में इसी प्रेम भावना को व्यक्त करनेवाली अनेक कविताएँ हैं। जैसे- 'शिशिर ऋतु के पुनरागमन में', 'माळावरल्या बांधावरती विलोलनयना जरा' (निसर्ग बांध पर जरा-सी सुंदर नयनी), 'हां हां थांब, नको सुहास' (सुन सुन रुक, ना सुहास), 'गमवु तोंडातली मौक्तिके', 'कोणी नको अन् कांही नको' (कोई भी नहीं चाहिए, कुछ भी नहीं चाहिए), 'सुन्न झाले मन, सुन्न भावना या' (सूना हुआ मन, सूनी हुयी भावनाएँ ये), 'जो जाई आता, परतुनि कां हाससी?' (जाओ, जाओ अब मुडकर हंसते ही क्यों?), 'आलो-स्वतंत्र तव भाव! स्वतंत्रतेने' (आया हूँ-स्वतंत्र भाव से, स्वतंत्रता से), 'प्रीतीची दुनिया सुहास, हसते वाऱ्यावरी भाबडी' (प्रीति की यह दुनिया सुहास, हंसते रहते है भोलेपन से हवा पर) आदि। करीब आठ कविताओं में 'प्रेम' के भिन्न-भिन्न रुप अभिव्यक्त हुए हैं। अपनी प्रेमिका में पूरी तरह से डूबे हुए मन की यात्रा इन कविताओं में व्यक्त हुई है। यहाँ प्रेम के दोनों पक्ष अंकित हुए हैं- मिलन और विरह। कवि ने दोनों स्थितियों का बड़ा सुंदर चित्रण इन कविताओं में किया है। कवि का अभिलाषी मन, मिलन का आकांक्षी मन, विरह भाव में तड़पता हुआ मन और पाने की लालसा का बोध इनमें अनेक रुपों में झलकता हुआ दिखायी देता है। मन का एक और पक्ष है- निस्संग समर्पण का भाव। उनकी 'कोई भी नहीं चाहिए', कुछ भी नहीं चाहिए' कविता में पूरी शिद्दत से व्यक्त हुआ है। द्रष्टव्य हैं काव्य पंक्तियाँ -

"कोई भी नहीं चाहिए, कुछ भी नहीं चाहिए,
देवता तू अकेली जहाँ हृदय अर्पित किया है,
श्रद्धांजलि के रुप में।"[33]

मर्ढेकर की अन्य कविताओं में कवि का विरह मन अंकित हुआ है। खुद को पूरी तरह डूबोया है कवि ने। यही भाव उनकी दूसरी महत्वपूर्ण कविता 'आया हूँ-स्वतंत्र भाव से!' कविता में व्यक्त हुआ है। कवि लिखता है-

"तू हंसती रही, देखा मैंने गर्दन घुमाकर,
मैं सिटपिटाया-स्तिमित-घबडाया समझ नहीं पा रहा था,
कहाँ, कैसे, किधर से मैं......."[34]

'सूना हुआ मन' कविता में भी मन की उच्छृंखलता, पाने का भाव अभिव्यक्त हुआ है। प्रेम में बौद्धिक सूचना का भी अविष्कार मर्ढेकर करते हैं। द्रष्टव्य है उनकी कविता- 'कोई भी नहीं चाहिए।' प्रेम का विलक्षण रुप, उनकी कविता 'प्रीति की यह दुनिया' में अभिव्यक्त हुआ है। अपनी बहन के प्रति कवि ने कृतज्ञता भाव, प्रेम भाव बड़ी सुंदरता से उपरोल्लेखित कविता में किया है।

2. निसर्ग (प्रकृति) कविता :

मर्ढेकर के मन में प्रकृति के प्रति गहरा रागबोध है। प्रकृति के अनुठे रुप, विविध अवस्थाएँ

और प्रकृत्ति के अनेक मनोहारी चित्र कवि ने अंकित किये हैं। 'शिशिर ऋतु के आगमन में', 'वाचन-मग्ना', 'चांद किरणों के लिए', 'गुलाब से' आदि कविताओं में प्रकृति के अनेक रुपों की झांकी मिलती है। किन्तु यहाँ पर प्रकृति भी अनाम प्रेमिका के रुप में ही दीख पड़ती है। मर्ढेकर ने प्रकृति के सौंदर्य का कलात्मक चित्रण इन कविताओं में किया है। जैसे- 'शिशिर ऋतु के पुनरागमन में' कविता की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य है-

"फूली होगी तेरे अनुसार
बाग की गुलबाकवली
रेत में निर्झर बांसरी,
कितनी मीठी ऊष्मा भूमि की।"[35]

मर्ढेकर प्रकृति के प्रति पूरी तरह आसक्त है। यह आसक्ति लौकिक जीवन में मिली असफलता, प्रेम में आयी असफलता की वजह से हो सकती है।

3. निराशा और आत्मनिष्ठता की कविता :

मर्ढेकर की कविता में निराशा के अनेक चित्र उभरें है। उसके कई कारण हैं, जिसका एक संदर्भ उपर उल्लेखित पंक्तियों में हुआ है। औद्योगिकरण, विज्ञान की देन, अकेलापन, व्यक्तिगत जीवन में आये उतार-चढ़ाव, यंत्रयुग की देन आदि की वजह से जीवन में रिक्तता, अकेलापन, परात्म भाव, निराशा का स्वर अंकित हुआ है। मनुष्य जीवन की क्षणभंगुरता, मनुष्य की नियति, मनुष्य जीवन की शुद्रता आदि की वजह से निराशा ने घेर लिया है। मर्ढेकर के इस संकलन की अनेक कविताओं में घोर निराशा का भाव व्यक्त हुआ है। लौकिक जीवन के प्रभाव की वजह से ऐसा हुआ है। द्रष्टव्य हैं उनकी कविताएँ- 'शिशिर ऋतु के आगमन में', 'प्रीति की यह दुनिया' 'सुहास', 'कोई भी नहीं चाहिए', 'कुछ भी नहीं चाहिए', 'सूना हुआ मन', सूनी हुई भावनाएँ', 'झाली चुक! क्षमस्व' (हो गयी गलती-माफ करना), 'मन वाचति ना रमे' (मन पढ़ने में नहीं लग रहा) आदि कविताओं में निराशा की अभिव्यक्ति हुई है।

मूलतः मर्ढेकर घोर आत्मनिष्ठ कवि हैं। समाज के साथ-साथ व्यक्ति के भीतर उतरने का उनका प्रयास सराहनीय है, जो प्रस्तुत कविता संग्रह की अनेक कविताओं में दिखायी देता है। मर्ढेकर ने 'आत्म' से संवाद किया है। 'स्व' की तलाश निरंतर उनकी कविताओं में व्यंजित हुई है। वस्तुतः मर्ढेकर की कविताओं में कवि के गतिमान मन की यात्रा का अनुभव पाठक कर सकता है। इसलिए डॉ. विजया राजाध्यक्ष लिखती है, "मर्ढेकर की कविताओं में वसंत से शिशिर, कल्पना से सत्य तक, स्वप्न से यथार्थ, अशाश्वत से शाश्वत की ओर यह सफर गतिमान हुआ है।"[36] कई स्थानों पर कवि प्रकृति में लीन हुआ है। तो कई जगह पर प्रकृति सौंदर्य के मनोहारी दर्शन हमें होते हैं।

4. संवेदना का अन्य स्वर :

मर्ढेकर की कविता में प्रेम, निराशा, आत्मनिष्ठता तथा निसर्ग के प्रति गहरा रागबोध व्यक्त हुआ है। किन्तु इसके अलावा कवि ने अपनी कविताओं में माँ, माटी, मृत्यु और परमतत्व के प्रति अपनी गहरी प्रतिक्रिया दी है। अशांति से शांति तक का सफर कवि अपनी कविताओं से कराता है। मर्ढेकर की इन आरंभिक कविताओं में स्त्री के प्रति सौंदर्य बोधी भाव व्यक्त हुआ है। किन्तु स्त्री के बारे में कवि करुणा से देखता है। स्त्री की दुर्दशा का चित्रण भी करने लगता है। किन्तु कवि मर्ढेकर को सर्वाधिक आकर्षित किया है, स्त्री के 'माँ' रुप ने। मिट्टी के प्रति कवि को भयंकर लगाव है। यह लगाव प्रकृति चित्रण में कई जगह झलकता है। मिट्टी की सौंधी खुश्बू लेकर कवि हमारे सामने आता है। निष्पर्ण वृक्षों का चित्र, अनुर्वरा भूमि, फूलों पत्तों से लदी वसुंधरा आदि कई चित्र कवि अंकित करने लगता हैं। 'मृत्यु' के बारे में भी कवि के मन में गहरा बोध है। जीवन में मिली असफलता, जिसे पाना था उसे ना पाने की अतृप्ति और जीवन में व्याप्त अनिश्चितता का बोध उनकी मृत्युविषयक कविताओं में वर्णित हुआ है। रुआंसा कवि शिशिर के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा है। किन्तु मृत्यु का भय बराबर पीछा नहीं छोड़ रहा है। इसी बात को उजागर करते हुए डॉ. केशव सद्रे लिखते हैं, "मर्ढेकर के 'शिशिरागम' में प्रकृति सौंदर्य, स्त्री सौंदर्य के अनेक चित्र, प्रेम में आयी निराशा, उसी वजह से मृत्यु के बारे में भयमिश्रित कुतुहल, अशरीर स्त्री-पुरुष प्रेम आदि जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति इसी बात को दर्शाती है कि कवि स्वच्छंदतावाद की मनोवृत्ति में भी रहा था।"[37] मृत्यु के बारे में गहरा चिंतन कवि मर्ढेकर ने किया है। इसके अलावा 'शिशिरागम' में भूतकालीन स्मृतियाँ और वर्तमान की अनिश्चितता का स्वरुप कवि ने अभिव्यक्त किया है। यंत्रयुग के आगमन ने मनुष्य की संवेदना को क्लिष्ट, दुर्बोध बनाया है। नतीजा ये है कि, मर्ढेकर की कविता में आयी प्रतिमा सृष्टि में 'दुर्बोधता का भाव नजर आता है।' वस्तुतः 'दुर्बोधता' आधुनिकता का एक लक्षण भी है।

कुल मिलाकर ये कह सकते हैं कि, मर्ढेकर के प्रथम कविता संग्रह 'शिशिरागम' में विविध प्रवृत्तियों का संयोजन हुआ है। कवि ने परंपरा का निर्वाह किया है, पर साथ ही नयी काव्य दृष्टि देने का उनका प्रयास सराहनीय है। इसलिए प्रेम की प्रधानता, निसर्ग चित्रण, कालबोध, मूल्यबोध, स्त्री के प्रति करुणाबोध, परिस्थिति के प्रति परवशताबोध और परमतत्व का बोध कवि मर्ढेकर ने कराया है। भाव, शैली, शिल्प में प्रयोगशीलता का बोध होता है। इसी कारण कवि मर्ढेकर के बारे में प्रा. रमेश तेंदुलकर ने उनके काव्य की समीक्षा करते हुए लिखते हैं, "कवि की विविध इकाइयों में संचार करने की प्रवृत्ति, एक नयी दृष्टि, विविधमुखी वृत्ति के दर्शन उनकी कविता में होते हैं।"

मर्ढेकर की कविता का दूसरा चरण अर्थात् उनका दूसरा कविता संग्रह 'कांही कविता (कुछ कविताएँ) का प्रकाश में आना। प्रस्तुत कविता संग्रह का प्रकाशन 1947 में हुआ। इस काव्य-संग्रह में

कुल 61 कविताएँ संकलित हैं। इन कविताओं का रचनाकाल सन् 1939 ÃÖ 1947 के बीच का रहा है। 'प्रेमाचे लव्हाळे' (प्रेम के पटेरे) 1943 में प्रकाशित उनकी कविता है। उसके बाद आरामाचा राम (आराम के राम), जे न जन्मले (जिन्होंने जन्म नहीं लिया), पिपात मेले (मरे पीपे में) आदि कविताओं का प्रकाशन वर्ष 1944, 45, 46 का रहा है।

प्रस्तुत काव्य-संग्रह में संकलित कविताओं को संवेदना के आधार पर पांच वर्गों में विभाजित कर सकते हैं। वर्गीकरण का आधार केन्द्रीय संवेदना को आधार बनाकर किया है।

1. युद्धकालीन अभंग
2. स्त्री के बारें में गहरा बोध
3. बदलते परिवेश को आंकने वाली कविताएँ
4. लघुमानव
5. मुंबई की पृष्ठभूमि पर लिखी गयी कविताएँ।

1. युद्धकालीन अभंग :

बा. सी. मर्ढेकर ने द्वितीय महायुद्ध की पृष्ठभूमि पर अनेक मार्मिक कविताएँ लिखी हैं। इन कविताओं में युद्धकालीन समाज जीवन का, जीवन में आयी असुरक्षितता, भयग्रस्तता तथा विज्ञान के विनाश का दंश झेलते हुए मनुष्य का पीड़ामय वर्णन अंकित हुआ है। इस संदर्भ में प्रस्तुत कविता संग्रह की पहली ही कविता 'प्रेमाचे लव्हाळे (प्रेम के पटेरे) अत्यंत उल्लेखनीय है। जिसमें कवि ने संवेदना का नया स्वर अंकित किया है। मनुष्य जीवन की आश्रय हीन, असहाय स्थिति का जीवंत चित्रण किया गया है। कविता की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य है-

"प्रेम के पटेरे
सौंदर्य का नयापन
खोजूँ?
†ÖÃÖ¯ÖÖÃÖ “ÖÖ¸Ö †Ö¸
मुर्दों की राशि।"[38]

उपर्युक्त पंक्तियों में युद्धोत्तर विनाश के भयावह चित्र अंकित हुए हैं। साथ ही कवि ने यंत्र संस्कृति, विज्ञान का विनाशमय चेहरा प्रस्तुत किया है। इसी भावधारा को अभिव्यक्त करने वाली दूसरी कविता है 'आराम का राम' (आरामाचा राम)। इस कविता में युद्धस्थ स्थिति का सूक्ष्मता से वर्णन आया हैं। कवि ने आम मनुष्य की असहाय, असुरक्षित जिंदगी का बेबाक चित्रण किया है। इसी संदर्भ से आपूरित मर्ढेकर की तीसरी महत्वपूर्ण कविता 'जे न जन्मले वा मेले' (जो कभी जन्मे या मरे नहीं) है। इस कविता में 'दासबोध' कार रामदास के 'श्लोक' (छंद प्रकार) का विडंबनात्मक,

वक्रोक्ति रुप में व्यंग्य किया गया है। जिसमें नेताओं की आमजन को मरवाने की वृत्ति का पर्दाफाश किया है। नेताओं के मन में आमजन के प्रति न ममता है न आँसू। मर्ढेकर की इसी संदर्भ को दर्शानेवाली एक और कविता है, जिसका शीर्षक है- 'है बुद्धि से इमान' (आहे बुद्धिशी इमान)। प्रस्तुत कविता में द्वितीय महायुद्ध में हिरोशिमा पर बम वर्षा के बाद जो विनाश हुआ, उसका वर्णन किया गया है। कवि ने साम्राज्यवादी मनोवृत्ति पर प्रहार करते हुए विज्ञान का विनाश के रुप में परिणाम कैसे हो रहा है? इसका अत्यंत मर्मग्राही चित्रण किया गया है। इन चारों कविताओं में कवि ने युद्धकालीन एवं युद्धोत्तर भारतीय समाज मन को शब्दबद्ध किया है।

2. स्त्री के बारे में गहरा बोध :

मर्ढेकर की इस काव्यसंग्रह में संकलित अनेक कविताएँ स्त्री जीवन के विविध रुपों पर प्रकाश डालती है। स्त्री का माता रुप, प्रेयसी रुप, वेश्या जीवन, गर्भवती स्त्री के प्रति कृतज्ञता भाव, अनचाहे संभोग को झेलती स्त्री आदि रुपों की अभिव्यक्ति मर्ढेकर की कविताओं में पूरी जीवंतता के साथ हुई है। द्रष्टव्य है उनकी कुछ कविताएँ - 'नाही कोणी का कुणाचा (कोई नहीं है किसी का), 'बडवीत टिर्ऱ्या, अर्धपोट किंवा पोरसवदा होतीस तू' (छोटी उम्र की थी कल परसों तक), 'पिचे अंधार पोकळ' आदि कविताओं में स्त्री जीवन के विविध रुपों की अभिव्यक्ति हुई हैं।

'कोई नहीं है किसी का' कविता में कवि ने स्त्री के वात्सल्य रुप को, मातृत्व भाव को व्यक्त किया है। माँ अपने बच्चों के लिए कितना व्याकुल, संकुल हो सकती है इसका वर्णन आया है। किन्तु बाकी सारे रिश्ते-नाते कितने कृत्रिम, औपचारिक होते जा रहे हैं, इसका चित्रण भी कवि करता है। इसी संदर्भ को दर्शानेवाली मर्ढेकर की दूसरी कविता है- 'बडवीत टिर्ऱ्या, अर्धपोट अथवा 'कविता में भीख मांगती हुई लाचार स्त्री का मर्मग्राही चित्रण कवि करता है। भीख मांगते हुए बालक और लाचार माता का दृश्य पाठकों के सम्मुख कवि ने प्रस्तुत किया है, जो हमें अंतर्मुख कर देता है। अमीरी-गरीबी के बीच बढ़ती दूरी या आर्थिक विषमता का एक नया परिदृश्य यहाँ कवि ने खोला है। 'पोरसवदा होतीस तू' (छोटी उम्र की थी कल परसों तक) कविता में स्त्री के यौवनावस्था से माँ बनने तक शरीर में आते हुए परिवर्तनों को कवि ने पकड़ा है। किन्तु कवि का इतना ही उद्देश्य नहीं है, कवि स्त्री में सृजनशीलता, निर्मिति को देखता है। समस्त स्त्री जाति के प्रति कृतज्ञता भाव, अभिव्यक्त हुआ है। 'पिचे अंधार पोकळ' कविता में कवि ने अनचाहे संभोग को झेलती स्त्री तथा कामक्रिया का भी रुटिन होते जाना, यंत्रवत होते जाना, नीरसता आते जाना आदि का अत्यंत स्वाभाविक चित्रण प्रस्तुत कविता में आया है। कवि स्त्री को भोग की दृष्टि से देखने वाली मानसिकता का चित्रण करता है। 'फसफसून येतो सोडयावरती गार' कविता में वेश्या जीवन का अत्यंत हृदयग्राही वर्णन आया है। कुछ पैसों के लिए अपनी इज्जत दांव पर लगाती हुई स्त्री, जो विवश है लाचार है। स्त्री के बारे में

कवि ने करुणा भाव जागृत किया है। स्त्री की दुर्दशा का चित्रण करने वाली, मानवता के लिए कलंक है बताने वाली यह कविता है। इन चार-पांच कविताओं में स्त्री जीवन के विविध आयामों को कवि ने प्रस्तुत किया है।

3. बदलते परिवेश को आंकने वाली कविताएँ :

प्रस्तुत काव्य-संग्रह में कवि मर्ढेकर ने पुराने विश्व और नये विश्व के बीच उभरते द्वंद्व को रेखांकित किया है। पुराने विश्व और नये विश्व के मध्य भाव, आशय और अभिव्यक्ति में खास अंतर आया है। बदलते विश्वबोध को कवि आंकने की कोशिश करता है। यंत्र संस्कृति के आगमन ने पुराने मूल्यों पर कुठाराघात किया है, नये मूल्यों की रवानगी जरूर हुई है। किन्तु नये और पुराने के बीच निरंतर संघर्ष होता हुआ दिखाई दे रहा है। कवि आम मनुष्य के मूल से उखड़ जाने के दर्द को चित्रित करता है। यांत्रिकता ने उसके समस्त जीवन को असहाय, अर्थहीन, असंतोष, निषेध का भाव पैदा किया है। मनुष्य की रुटिन जिंदगी का बेबाक चित्रण इस काव्य संग्रह की अनेक कविताओं में अत्यंत कलात्मक ढंग से हुआ है। मनुष्य का स्वत्वहीन, अंधकारमय जीवन, रोगग्रस्त, थकेहारे लोगों की स्थिति, जीवन के प्रति उदासीनता और मध्यवर्गीय मनुष्य की यंत्रवत जिंदगी के अनेक चित्र कवि ने उपस्थित किये हैं। कवि यहाँ पुराने विश्व और नये विश्व की तुलना करने लगता है। शुद्रता और उदात्तता को आमने सामने खड़ा करके मर्ढेकर सोचते हैं। इसी संवेदना को दर्शाने वाली 'कुछ कविताएँ' इस प्रकार हैं- जिसमें जीवन की असहायता, निरर्थकता और क्षुद्रता का आविर्भाव हुआ है। जैसे 'मैं एक चिंटी', 'पंक्चर हुई हो भले ही रात दीयों से', 'सबेरे उठकर चाय-कॉफी पीले', 'मरे पीपे में गीले चूहे', 'घने काले अंधेरे में सांस लेता इंजिन' आदि कविताओं में बदलते विश्व में यांत्रिक सभ्यता के चलते मनुष्य की हो रही दुर्दशा का चित्रण हुआ है। 'मैं एक चिंटी' कविता में मनुष्य जीवन की क्षुद्रता, क्षणभंगुरता का चित्रण हुआ। यंत्रयुग ने मनुष्य जीवन को कितना लघु, क्षुद्र कर दिया है इसका चित्रण कवि करता है। 'मरे पीपे में गीले चूहे' कविता में अभाव में जीते हुए मनुष्य की दयनीय स्थिति का स्वाभाविक चित्रण है। आम मनुष्य के जीवन में आयी अर्थशून्यता, संवेदनहीनता का मार्मिक चित्रण किया गया है। चिंटी, चूहा मनुष्य की क्षुद्रता के प्रतीक हैं। कवि यंत्रयुग के खतरे भी बताना नहीं भूलता। मनुष्य जिंदगी का रुटिन बनना, उसकी क्रूर नियति की ओर कवि संकेत करता Æ...

बदलते परिवेश को आंकने वाली मर्ढेकर की एक और महत्वपूर्ण कविता है- 'पंक्चर हुई हो भले ही रात दीयों से'। प्रस्तुत कविता में कवि ने मनुष्य जीवन की अपूर्णता, अर्थशून्यता, असम्बद्धता और वैपर्यय भाव का चित्रण किया है। मनुष्य को अज्ञान ने घेर लिया है। उसका अज्ञान कम होने के बजाय बढ़ता ही जा रहा है। 'दीया' - ज्ञान - विज्ञान का प्रतीक, अंधेरा पंप कर रहा है, मतलब

परमशक्ति, कुत्तों की उपमा मनुष्यों को दी है। ज्ञान-विज्ञान का प्रकाश निर्माण हो रहा है किन्तु हमारा अंधेरा खत्म नहीं हो रहा है। अंधेरे को प्रकाश ने छेदलिया है किन्तु बीच-बीच में अंधेरा घना होते जा रहा है। ज्ञान का आभास पैदा हो रहा है। यहाँ अज्ञान ही सत्य, शाश्वत रुप में सामने आ रहा है। कुल मिलाकर जीवन की रुकी हुई गति, मनुष्य के भीतर पसरा हुआ अंधेरा, बढता हुआ अहंकार आदि का सिनिकल (बौद्धिक) विवेचन इस कविता में आया है। ठीक उसी तरह सबेरे उठकर चाय कॉफी पी ले और 'घने काले अंधेरे में सांस लेता इंजिन' इन दोनों कविताओं में बदलते विश्व की नयी मानसिकता पर प्रकाश डाला गया है। एक ओर यंत्रवत जीवन है तो दूसरी और यंत्रसभ्यता के आगमन ने जीवन को यांत्रिक बनाया है। मनुष्य धीरे-धीरे यंत्र का पूर्जा बनता जा रहा है। यही भावधारा इन कविताओं के द्वारा अभिव्यक्त हुई है।

4. लघुमानव :

मर्ढेकर की कविताएँ 'बेचैनी का दर्शनशास्त्र' रचती है। यह बेचैनी मनुष्य जीवन को लेकर है। जीवन में व्याप्त असंगतियाँ, संत्रास, घुटन, अकेलापन, मूल से उखड़ जाने का दर्द, निरर्थकता और क्षुद्रता का चित्रण कवि करता है। 'लघुमानव' मर्ढेकर की कविता का केंद्रबिंदू रहा है। कभी अकेला तो कभी समुदाय की पृष्ठभूमि लेकर खड़ा होता है। 'लघुमानव'मर्ढेकर की कविता का नायक है। इस संग्रह की 'चालला हा बंदीवान' (चल रहा है कैदी), 'मैं एक चिंटी' तथा 'कोलाहल से भरी तथा संकरी (गोंधळलेल्या अन् चिंचोळया) नामक कविताओं का समावेश होता है। व्यक्ति के जीवन को समाज के परिप्रेक्ष्य में रखकर इस लघुमानव के अनेक चित्र खींचे हैं। उसे विविध कोणों से देखा है, परखा है। उसकी व्यथा-कथा को आंकने का सशक्त प्रयास कवि ने किया है। इसके अलावा 'पीप में परे', 'पंक्चर हुई ही रात भले ही दीयों से', 'बन बांबूचे' आदि कविताओं में जीने की दिशा गलत होने का भाव अंकित हुआ है। गलत होने के भाव से आयी निराशा, बेचैनी तथा सबकुछ खो जाने का भाव लेकर जीने वाले मनुष्य का चित्रण कवि ने किया है। विशेषत: जीवन में आयी एकरसता, नीरसता, विषमता आदि तत्व प्राप्त होते हैं। कवि ने 'लघुमानव' को पूरी समग्रता से देखने का प्रयास किया है। द्रष्टव्य है उनकी कविता 'कोलाहल से भरी तथा संकरी'। प्रस्तुत कविता में गिरगाव (मुंबई) की एक गली का जीवंत चित्रण किया है। अपनी नियति से लड़ता मनुष्य, परिस्थिति परवशता और अंधेरे के विरुद्ध चल रही अनथक लड़ाई का चित्रण कवि करता है। कवि ने इस गली में अंधकारमय जीवन जी रहे स्त्री-पुरुषों का बड़ा मर्मग्राही चित्रण किया है।

मर्ढेकर की कविता में कालबोध और मूल्यबोध का मार्मिक अंकन हुआ है। काल के बारे में मर्ढेकर ने गहरा चिंतन किया है। अतीत और वर्तमान के बीच चल रहा संघर्ष, स्मृति और समकालीनता के बीच घटित द्वंद्व आदि का चित्रण कवि ने किया है। उनकी तीन कविताएँ बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं, जो

इसी काव्य संग्रह में संकलित हैं। 'सुख दु:ख के गले काटकर' (सुख दु:खाचे गळे काटूनी), काल मारकर गया (काळ मारुनी गेला टपली) तथा जीवित अवस्था में आलसीपन (आळसली बघ जीवंतपणी) इन कविताओं में 'कालबोध', 'स्मृति', 'अतीत' और 'वर्तमान' के बारे में चिंतन व्यक्त हुआ है। कवि का यही कालबोध अपने समय की प्रतिक्रिया के रुप में अंकित हुआ है। मर्ढेकर की कविताओं में यह एक महत्वपूर्ण बोध लक्षित होता है।

3. मुंबई की पृष्ठभूमि पर लिखी गयी कविता :

एक कवि के रुप में मुंबई ने मर्ढेकर पर कई संस्कार किये। उनका अधिकांश जीवन मुंबई में बीता। मुंबई के जीवन की आपाधापी, संकरापन, यांत्रिकता, स्वत्वहीन, थकावट, कामगार वर्ग का होता हुआ भयंकर शोषण, मध्यवर्गीय मनुष्य की यंत्रवत जिंदगी, वेश्याओं का जीवन, स्त्रियों का निर्मम शोषण, अस्तव्यस्त मुंबई, आर्थिक विषमता का भयावह दृश्य, मजदूर वर्ग की दयनीय अवस्था आदि मुंबई के चेहरे हैं, जिन्हें मर्ढेकर ने प्रस्तुत संकलन में विविध रुपों में अंकित किये हैं। सांस्कृतिक दरिद्रता के भी कई चित्र कवि ने प्रस्तुत किये हैं। अकेलापन, असाहयता, भूख और गरीबी, प्रश्नाकुलता और लाचारी ने मनुष्य को 'परमतत्व' की ओर मोड़ दिया, इन्हीं संवेदनाओं की अभिव्यक्ति इस काव्य संग्रह के अंतर्गत हुई है। एक ओर मुंबई की चकाचौंथ है, अमीरी है तो दूसरी ओर भयंकर गरीबी और बदहाली में जीता हुआ आम मनुष्य है, इसी का बड़ा मार्मिक अंकन इन कविताओं में हुआ है।

कुल मिलाकर प्रस्तुत कविता संग्रह में मर्ढेकर ने मूल से उखड़ जाने का दर्द, यांत्रिकता, सांस्कृतिक दरिद्रता, आध्यात्मिक जीवन से दूर होने की पीड़ा, असहायता, प्रश्नाकुलता, भूख और गरीबी का जीवंत चित्रण, मनुष्य जीवन में आयी लाचारी, ('किया मैंने थोड़ा रोजगार'-कविता) स्त्री की सर्जनशीलता पर विश्वास, करुणा भाव, श्रद्धा भाव, गर्भवती स्त्री के प्रति करुणाद्रता आदि भाव अंकित हुए हैं। साथ ही महानगरीय जीवन की दुर्दशा का बड़ा ही मार्मिक अंकन कवि ने किया है। महानगर में सांस ले रहे लोगों की वास्तविक दशा का चित्रण कवि की उपलब्धि है। मर्ढेकर हमेशा कहते थे, 'चिंता, चीढ़ से कुछ नहीं होगा, जीवन के मूलभूत प्रश्नों से रु-ब-रु होना होगा।' निश्चित ही मर्ढेकर ने समय की चुनौतियों को सहर्ष स्वीकारा और अपने ढंग से परिशीलन करने का प्रयास भी किया। डॉ. केशव सद्रे ने इस संग्रह की कविताओं के बारे में लिखा है," मनुष्य जीवन में आयी असम्बद्धता, निरर्थकता, भय, परायापन, अकेलापन, सर्वव्यापी चीढ़, संताप भाव और वक्रोक्ति का भाव उनकी कविताओं के आशय में प्रमुखतया आया है। मर्ढेकर समकालीन वैश्विक परिदृश्य में मनुष्य के परायेपन को लेकर चिंतीत हैं और यही चिंताभाव उनकी कविताओं में दृष्टिगोचर होता है..."[39] साथ ही मर्ढेकर के काव्य की विशेषता को बताते हुए गद्रे जी ने कहा कि, 'मर्ढेकर समकालीन

वास्तविकता और उससे जुड़ी विफलता का बोध लेकर आते हैं। स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति के विरोध में खडे होकर नयी काव्यदृष्टि से आप्लावित 'नयी कविता' लिखते हैं।'

तीसरा चरण : 'आणखी कांही कविता (कुछ और कविताएँ)

बा. सी. मर्ढेकर का तीसरा और अंतिम कविता-संग्रह 'आणखी कांही कविता' (कुछ और कविताएँ) सन् 1954 में प्रकाशित हुआ। प्रस्तुत कविता-संग्रह में कुल 37 कविताएँ संकलित हैं। इन कविताओं का रचनाकाल 1947 ÃÖ 1954 के बीच का रहा है। मर्ढेकर की काव्यानुभूति का यह एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव है। इस कविता संग्रह से मर्ढेकर की काव्य यात्रा में एक और नया परिदृश्य खुलता है, अनुभूति का एक नया अध्याय जुड़ता है।

प्रस्तुत कविता-संग्रह में संकलित कविताओं को 'संवेदना' की दृष्टि से आठ भागों में विभाजित कर सकते हैं। विभाजन का आधार 'संवेदना' और 'प्रवृत्ति-विशेष' को ध्यान में रखते हुए किया गया Æ… 1. ¾µÖÛŒÖ¾ÖÖ¤üß Ã¾Ö¸ü 2. स्त्री जीवन का अंकन 3. यंत्र संस्कृति के आगमन का सूचन 4. ×¾ÖÂÖ´ÖŸÖÖ-²ÖÖ¬Ö 5. ´ÖŸµÖ ²ÖÖ¬Ö 6. ´Ö´Ö †Ö¸ü ´Ö´ÖŸÖ¸ü ÃÖ²Ö¬Ö 7. दुःख बोध 8. प्रकृति चित्रण आदि। इन प्रवृत्ति विशेष के आधार पर प्रस्तुत काव्य संग्रह का समीक्षात्मक मूल्यांकन कुछ इस प्रकार हो सकता है।

1. ¾µÖÛŒŸÖ¾ÖÖ¤üß Ã¾Ö¸ü :

मर्ढेकर की कविता में समाज की अपेक्षा 'व्यक्ति' को केंद्र में रखा गया है। 'व्यक्ति' को समग्रता में देखने का प्रयास कवि करता है। व्यक्ति के सुख, दुःख, उसकी लघुता, जीवन की क्षुद्रता, यंत्रयुग के कारण उसकी हो रही दयनीय अवस्था, जीवन की क्षणभंगुरता, संबंधहीनता, अपूर्णता, अतृप्ति, लाचारी आदि का मर्मग्राही अंकन कवि ने किया है। मनुष्य जीवन की असाहयता का जीवंत चित्रण कवि ने किया है। उनकी वैयक्तिकता में या व्यक्तिवाद में व्यक्ति को अनेक आयामों से देखने का प्रयास है। कवि 'व्यक्ति' और उसकी आंतरिक, मनोवैज्ञानिक स्थिति को लेकर बड़ा सचेत दिखता है। यही भावधारा उनकी अनेक कविताओं में अभिव्यक्त हुई है। द्रष्टव्य है उनकी कुछ कविताएँ- 'भंगु दे काठिन्य माझे' 'आया था, आया था', 'भटकता रहा कंगाल होकर' आदि। 'भंगु दे काठिन्य माझे' कविता में कवि ने सीधे-सीधे 'परमतत्व' के प्रति प्रार्थना की है। यह प्रार्थना व्यक्ति के भीतर छिपे अहंकार को समाप्त करने की अभिलाषा है। माया, मोह, ईर्ष्या, लालसा, इंद्रिय मोह आदि को त्यागने की आकांक्षा इस प्रार्थना में अभिव्यक्त हुई है। 'व्यक्ति' के कल्याण का एक नया स्वर प्रस्तुत कविता में आलापा गया है। 'मैं एक चिंटी' कविता में व्यक्ति जीवन की क्षुद्रता को चित्रित किया है। यहाँ 'चिंटी' मनुष्य जीवन की क्षुद्रता के प्रतीक के रूप में आयी है। पर सच्चाई यह है कि, चिंटी रुपी व्यक्ति का समूह में परिवर्तित होने का भाव कवि चित्रित करता है। 'झोपली ग'खुळी बाळे'

कविता में कवि ने व्यक्ति जीवन में कहीं कुछ गलत होने, चूक जाने के आशय को अभिव्यक्ति दी है। व्यक्ति के मन में निरंतर भय है। यहाँ का भय समाप्त होने का नाम नहीं ले रहा है। अकेलापन, परायापन और स्थापित व्यवस्था में अनफिट होने का भाव कवि ने वर्णित किया है। 'आया था, आया था' कविता में भी व्यक्ति के मूल से उखड़ जाने के दर्द को कवि चित्रित करता है। बहुत कुछ खो जाने का भय व्यक्ति के मन में छिपा हुआ है, उसी की अभिव्यक्ति कवि ने की है। 'भटकता रहा कंगाल होकर' (भटकत फिरलो भणंग आणीक, क्र. 27) कविता में 'स्व' की तलाश कवि ने की है। व्यक्ति के जीवन में अनथक भटकन है। अतृप्ति, निराशा, अर्थशून्यता आदि का भाव इस कविता में वर्णित हुआ है। कवि का यह मानना है कि, वर्तमान मनुष्य अतृप्ति का शिकार है। जीवन कहीं पीछे छूट रहा है, कुछ पाने की लालसा में उठाये गये हाथों में रिक्तता है। व्यक्ति का जीवन दुरुह बनता जा रहा है। मन, शरीर और बुद्धि का प्यासापन इस कविता में बड़े मार्मिक रुप में अंकित हुआ है।

2. स्त्री जीवन का अंकन :

मर्ढेकर के प्रथम कविता-संग्रह 'शिशिरागम', 'कुछ कविताएँ' और तीसरे कविता-संग्रह में (कुछ और कविताएँ) स्त्री जीवन के विविध रुप उभरकर आते हैं। स्त्री के प्रति कृतज्ञता का भाव, उसकी सर्जनक्षमता पर अटूट विश्वास, करुणा की भावना, स्त्री की दुर्दशा, दयनीय अवस्था (शारीरिक और मानसिक) तथा कवि अंततः स्त्री को 'प्रेरणा' के रूप में देखता है। विशेषतः गर्भवती स्त्री के बारे में एक विशेष कुतुहल कवि के मन में हैं, जो इस संग्रह की अनेक कविताओं में व्यंजित हुआ है। 'जिथे मारते कांदेवाडी' (कांदेवाडी-मुंबई यहाँ ठाकुर द्वारा को थोडी-सी) कविता में कवि ने 'स्त्री की वेश्या बनने की विवशता, खुद की अस्मत को दांव पर लगाने की मजबूरी अर्थात् वेश्या जीवन का मर्मग्राही अंकन इस कविता में हुआ है। अपने को दांव पर लगाने की मजबूरी, अनुत्साह, जीवन में व्याप्त निराशा और जैसे-तैसे जीने की लालसा इस कविता में अभिव्यक्त हुई है। मुंबई में जहाँ श्रम है, पैसा है, चकाचौंध है, वहाँ एक स्त्री को शरीर बेचने के लिए मजबूर होना पड़ता है। 'पांडुर संध्या चौथ्या प्रहरी' कविता में कवि ने एक गर्भवती स्त्री का हृदयग्राही चित्रण किया है। यह महिला कई घरों में काम करके अपना और अपने परिवार का पेट पालती है। किन्तु गर्भवती बनने के बाद काम छोड़कर वह प्रसुति के लिए निकल रही है। उसकी प्रार्थना है कि वह जल्दी ही लौटेगी, तब तक किसी को काम पर मत रखें। काम छिने जाने का भय उसके मन में है। पुनः काम पाने की लाचारी, मनोदशा और काम पर जल्दी लौट आने की अभिलाषा इस कविता में वर्णित हुई है। 'अशीच होती नकटी एक' कविता में स्त्री की दयनीय अवस्था का हृदयग्राही चित्रण हुआ है। मर्ढेकर ने स्त्री की विवशता का अंतर्मुख कर देनेवाला चित्रण प्रस्तुत कविता में किया है। शरीर का उन्मक्त प्रदर्शन करना और ग्राहक को पटाना इस स्त्री की मजबूरी है। कवि का यह मानना है कि, जिस

व्यवस्था में रोटी कमाने के लिए स्त्री को शरीर बेचना पड़ता है, उस समाज के लिए यह सबसे बड़ा कलंक है। 'ओसकणों से आयी हो प्रातः काल' (दवात आलीस भल्या पहाटे) कविता में कवि ने स्त्री को प्रेयसी के रुप में अंकित किया है। भूतकाल की स्मृतियाँ मन में लहर बनकर उठ रही है। प्रेयसी का ओसकणों में आना, रोमांटिक भावों को दर्शाता है। अतीत पीछा नहीं छोड़ रहा है और वर्तमान हाथ से फिसलता जा रहा है, यही भाव कवि व्यक्त करता है। अर्थात् अपनी प्रेमिका के प्रति अभी भी स्नेह भाव, आत्मीयता और प्रेमानुभाव छिपा हुआ है। 'रहा तिथे तू' (रह जाय वहाँ पर) कविता में पुराने संबंधों का टूट जाना, संबंधों में आये बिखराव का चित्रण कवि ने किया है। इस कविता में भी स्त्री को प्रेयसी के रुप में चित्रित किया है। किन्तु अतीत से पीछा छुडाकर वह भविष्यगामी बनना चाहता है। प्रस्तुत कविता में 'कालबोध' भी व्यक्त हुआ है। अर्थात् स्त्री के एक अलग रूप को दर्शाते हुए कवि ने अपनी बात रखी है।

3. यंत्र संस्कृति के आगमन का सूचन :

मर्ढेकर जिस कालखंड में कविता लिख रहे थे, तब यंत्र संस्कृति का आगमन हो रहा था। विज्ञान के शोधों ने मनुष्य जीवन को सहायता मिली। भौतिक सुख, सुविधाओं का विकास हुआ। किन्तु उसी के साथ-साथ मनुष्य का जीवन यांत्रिक बनता गया। जीवन में आयी यांत्रिकता ने मनुष्य जीवन पर कब्जा कर लिया। मर्ढेकर नये प्रश्न, नयी स्थिति का बड़े बेबाक होकर चित्रण करते हैं। यंत्र संस्कृति के आगमन की सूचना देने वाली उनकी प्रमुख कविताएँ हैं - 'बन बांबूचे पिवळया गाते', 'अजुन येतो वास फुलांना' (अभी भी आती है खुश्बू फूलों से), 'दणकट दंड स्नायु जैसे'। उपर्युक्त तीन कविताओं में यंत्रसंस्कृति का आगमन, इस संस्कृति का मनुष्य जीवन में हस्तक्षेप तथा मनुष्य जीवन को पूरी तरह घेर लेने का भाव अंकित हुआ है। इस संदर्भ में उनकी सबसे महत्वपूर्ण कविता है, 'बन बाबुंचे'। इस कविता में 'पायलन्स', 'रेडिओ' आदि शब्दों का प्रयोग 'यंत्र संस्कृति' की सूचना देता है। कवि मर्ढेकर ने यंत्र संस्कृति के आगमन की ही सूचना नहीं दी बल्कि उसके प्रभाव का भी मार्मिक अंकन अपनी कविताओं के माध्यम से किया है।

4. ×¾ÖÂÖ´ÖŸÖÖ-²ÖÖ¬Ö :

मर्ढेकर ने इस संग्रह की कविताओं में समाज में व्याप्त आर्थिक-सामाजिक विषमता के अनेक चित्र उकेरे हैं। कवि समाज में व्याप्त विषमता को देखकर चिंतीत होता है। विशेषतः आर्थिक विषमता का सबसे बड़ा आघात 'व्यक्ति' जीवन पर होता है। मुंबई जैसे महानगर में अभाव में जी रहे स्त्री-पुरुषों के अनेक चित्र कवि ने उपस्थित किये हैं। इस संदर्भ में मर्ढेकर की इस संग्रह की कुछ कविताएँ द्रष्टव्य है- 'कुणि मारावे, कुणि मरावे', 'गणपत बनिया बीड़ी पीते समय', 'संडासातील घाण जिरावी' आदि कविताओं में विषमता-बोध को दर्शाया गया है। 'गणपत बनिया बीड़ी पीते समय'

कविता में मनुष्य की स्वप्नभंग की अवस्था का बखूबी वर्णन आया है। विशेषतः एक आदमी का सपना ही क्या होता है कि उसका अपना खुद का घर हो, किन्तु यह सपना भी सपना ही बनकर रह जाता है। आर्थिक विषमता ने व्यक्ति की कमर तोड दी है। इसी विषमता के चलते कोई स्त्री अपने शरीर को बेचने के लिए विवश है। महानगरों में व्याप्त इस विषमता ने मनुष्यों को हाडमांस के पुतले बनाकर रख दिया गया है। कवि समाज में गरीबी देखकर व्यथित होता है। किसे के हिस्से में सोना है तो किसी के हिस्से में पत्थर। विषमता ने मनुष्य-मनुष्य के बीच आर्थिक दूरियाँ निर्माण हुई है, जिसका स्वाभाविक चित्रण इस संग्रह की कविताओं में हुआ है। 'संडासातील घाण जिरावी' कविता में भी किसी के हिस्से में घी रोटी है, तो किसी के हिस्से में केवल पसीना बहाने का कर्म रह गया है। कवि मनुष्य जीवन में आयी आर्थिक विषमता के अनेक चित्र अंकित करता है। 'गणपत बनिया बीड़ी पीते समय' नामक कविता की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य है-

"सपनों पर धुआँ गिरता
कभी बीड़ी का तो कभी दीये का
धीमे-धीमे जलना और लेटना
पढ़ते हुए गाथा श्री तुकारामजी की।"[40]

5. ´ÖÝµÖ ²ÖÖ-Ö :

मर्ढेकर की इस संग्रह की कविताओं में मृत्यु के बारे में गहरा चिंतन अभिव्यक्त हुआ है। मृत्यु सनातन है, शाश्वत है किन्तु मनुष्य के मन में मृत्यु को लेकर बराबर भय बैठा हुआ है। इस संदर्भ को दर्शानेवाली मर्ढेकर की तीन कविताएँ उल्लेखनीय हैं, 'फुटेल (होती वेडी आशा), 'मनास पडली जर खिंडारे' तथा 'जरा असावी मरणाची ही', 'कणा मोडला निश्चलतेचा'। इसमें जो पहली कविता है, 'फुटेल (होती वेडी आशा) कविता में एक 'महात्मा' के निधन पर श्रद्धांजलि अर्पित की गयी है। किसी की मृत्यु अब हमें विचलित नहीं करती बल्कि उसमें भी मात्र औपचारिकता बची हुई है। केवल 'आह' उपजी और फिर सबकुछ रुटिन। हालांकि 'महात्मा' का जीना जितना प्रेरणादायी हो सकता है उतनी ही उनकी मृत्यु भी। यह कविता 'गांधी' जी के निधन पर लिखी गयी है, मृत्यु विषयक गहरा चिंतन प्रस्तुत करनेवाली कविता है। 'मनास पडली जर खिंडारे' कविता में भी मृत्यु के बारे में भयमिश्रित चिंतन अभिव्यक्त हुआ है। जीवन में आयी अर्थशून्यता, उदासी की वजह से मन दुभंग जाता है। अपने आसपास मनुष्य निरंतर अंधेरे को घेरे देखता है। परिणामतः उसी अंधेरे में से आकस्मिक मृत्यु का संकेत उसे मिलने लगता है। मृत्यु और अंधेरे का भय इस कविता में पूरी जीवंतता के साथ वर्णित हुआ है। उनकी एक और कविता है- 'जरा असावी मरणाची ही (थोड़ा रहने दो मृत्यु के बारे में)। यह एक लघुकविता है किन्तु आशय की दृष्टि से बड़ी गंभीर बातें कही गयी है। मनुष्य के मन में मृत्यु के

बारे में थोड़ा-सा भय होना आवश्यक है क्योंकि, उससे जीने की अभिलाषा और प्रखर होगी।

6. ´Ö´Ö †Ö¸ü ´Ö´ÖêŸÖ¸ü ÃÖ²ÖÓ¬Ö :

मर्ढेकर की कविता में ममेतर के प्रति गहरा रागबोध है। कवि के मन में 'परमतत्व' के प्रति कुतुहल का भाव है। मनुष्य मन की दुर्बलता, असहायता, परायापन, अकेलापन और अपूर्णता की वजह से वह अनाम की ओर आकर्षित होता है। उस ममेतर के बारे में जिज्ञासा का भाव कवि के मन में जाग उठता है। उसी की अभिव्यक्ति उनकी इस संग्रह की कुछ कविताओं में हुई है। द्रष्टव्य है- 'तुझ्यासाठी देवा','भंगु दे काठिन्य माझे','राहु दे जीवंत', 'ठायी, ठायी रुप तुझे' और 'अंधाऱ्या जगाची'। इन चारों कविताओं में परमशक्ति, परमात्मा के प्रति आसक्ति का भाव रेखांकित हुआ है। अकेलेपन के बोध की वजह से ज्ञान-अज्ञान के बीच चल रहे द्वंद्व की वजह से, जन्म-मृत्यु के बारे में अभिव्यक्त होने वाले खेद को लेकर, मनुष्य जीवन की नियति, विज्ञान की सामर्थ्य और सीमाओं की वजह से, कवि ने मम और ममेतर के रागात्मक संबंधों का बारीकी से वर्णन उपर्युक्त कविताओं में किया है। द्रष्टव्य है, उनकी कविता 'तुझ्यासाठी देवा' (तेरे लिए परमात्मा) कविता में एक भक्त की आर्त पुकार सुनी जा सकती है। परमात्मा से मिलन की उत्कंठा यहाँ व्यक्त हुई है। कवि खुद को क्षुद्र बताता है और ममेतर के विराट, विशाल रुप में वह विलीन होना चाहता है। यही भाव इस कविता में व्यक्त हुआ है।

7. दुःख बोध :

इस संकलन की कविताओं में मानवीय जीवन में व्याप्त सनातन दुःख का मार्मिक वर्णन हुआ है। आम मनुष्य के हिस्से में आए हुए दुःख का कवि ने सूक्ष्म अंकन किया है। मर्ढेकर की कविताओं में 'दुःख' के अलग-अलग रुप व्यक्त हुए हैं। स्वात्मबोध गहरे तक प्रभावित करते जाता है। किन्तु कवि का मानना है कि, दुःख ही मनुष्य को ताकत देता है। द्रष्टव्य है उनकी कविताएँ- 'ह्या दुःखाची, कढई गा' और 'अस्थाईवर स्थायिक झालो'। महात्मा की मृत्यु का दुःख (फुटेल होती वेडी आशा) आदि कविताएँ उल्लेखनीय हैं। विशेष उल्लेखनीय उनकी कविता है, 'ह्या दुःखाची कढई गा' नामक, इस कविता में कवि ने दुःख को सहन करने की क्षमता निर्माण होने की बात कही है। कवि कहता है कि, लोहे का पतेला निरंतर जलता है, जलने से आग को सहने की क्षमता निर्माण होती है। एक अर्थ में यह कविता दुःख सहन करने की प्रतिज्ञा है। मर्ढेकर प्रस्तुत कविता के द्वारा यही बताते हैं कि, दुःख ही मनुष्य की ताकत होती है।

8. प्रकृति-चित्रण :

मर्ढेकर में प्रकृति के प्रति गहरी आसक्ति दिखायी देती है। प्रकृति के अनेक रूपों का वर्णन इस संग्रह की कविताओं में आया है। विशेष संदर्भित कविताएँ हैं- 'अभी भी आती है खुश्बू फूलों से' (अजुन येतो वास फुलांना), 'झोपली ग खुळी बाळे' 'आला आषाढ श्रावण (आया आषाढ-सावन),

'ओसकनों में आयी हो प्रातः काल (दवात आलीस भल्या पहाटे), 'पांडुर संध्या चौथ्या प्रहरी' आदि।

मर्ढेकर की कविता में प्रकृति के अनेक रुपों की अभिव्यक्ति हुई है। इन प्रकृति चित्रण की कविताओं में ग्रामीण, शहरी आदि के संकेत नहीं है। निसर्ग की अनेक छटाएँ कवि अंकित करता है। शहरी वातावरण में पले होने के कारण मर्ढेकर ने प्रकृति के अनेक बिंबों का अत्यंत मर्मग्राही चित्रण किया है। मानवी जीवन में घटित घटनाओं का अक्स प्रकृति में देखा जा सकता है। कहीं-कहीं बालकवि (अनिल बापूजी ठोंबरे) की याद दिलाने वाले अनेक चित्र कवि ने उपस्थित किये हैं।

'पांडुर संध्या चौथ्या प्रहरी' कविता में एक गर्भवती का चित्रण है। दिन के चौथे प्रहर का मनोहारी रूप कवि ने प्रस्तुत किया है। सुबह, दोपहर और शाम और रात की अनेक छटाएँ कवि ने अंकित की है। 'ओसकणों में आयी हो प्रातःकाल' कविता में ओसकणों से भीगे हुए पैरों से आयी हुई प्रेमिका का, पहट का आकर्षक रुप, सुबह, दोपहर की अवस्था में रमणीय होता है। शुक्रतारा का आगमन, चराचर सृष्टि में हो रहे सूक्ष्म परिवर्तन आदि को कवि ने इस कविता में पकड़ा है। 'आया आषाढ-सावन (आला आषाढ-श्रावण) कविता में सावन की धारासार वर्षा के लिए आतुर मन, उल्हासमय मन अंकित हुआ है। आकाश में उभरते सप्तरंग, उसकी भूमि पर पड़नेवाली प्रतिच्छाया, भीगे हुए घर, भीगी हुई गली, मुहल्ले के कोने-कोने, बारिश की टपकती बूंदे आदि का अत्यंत कलात्मक चित्रण प्रस्तुत कविता में हुआ है। 'अभ्रांच्या या कुंद अफूने' कविता में भी आषाढ के पहले की स्थिति का वर्णन किया है। बारिश होगी कि नहीं मालूम, किन्तु मन बेचैन है। इसलिए यह पुनश्च कहना मुनासिब होगा कि, कवि मर्ढेकर 'बेचैनी का दर्शनशास्त्र 'गढ़ते हैं। मन में उठ रहा अनिश्चितता का भाव, सृजन के पूर्व की अनिश्चितता को कवि शब्दबद्ध करता है। 'आया आषाढ-सावन' में गली-गली में चिथड़ों का भिगना इन हालातों में भी विषमता को दर्शाने का काम करते हैं। मतलब प्रकृति चित्रण में भी कवि व्यक्ति की आंतरिक पीड़ा को अंकित करता है। 'अभी भी आती है खुश्बू फूलों से' कविता में एक नया आशावाद प्रस्फुटित हुआ है। युद्ध, भूकंप, स्पर्धा, अहंकार, महत्वाकांक्षा के चलते फूलों में आज भी गंध आती है। मर्ढेकर प्रकृति चित्रण के आधार पर मनुष्य में व्याप्त अनिश्चितता, विषमता का चित्रण करते हैं। 'होते आभाळ पेंगत' नामक कविता भी प्रकृति के इसी अलग रुप को दर्शानेवाली कविता है।

कुल मिलाकर मर्ढेकर ने प्रकृति चित्रण की कविताओं में अपनी सौंदर्यबोधी धारणाओं की अभिव्यक्ति की है। कवि ने प्रकृति में छिपी शक्ति के दर्शन कराये हैं। कवि प्रकृति से एकरूप हो जाता है। कवि मर्ढेकर निसर्ग के प्रादेशिक रुपों को दर्शाते हैं, विशेषतः खानदेश के अनेक रंग, रुप, गंध इन कविताओं में सजगता से उभरे हैं। तात्पर्य यह है कि, मर्ढेकर प्रकृति प्रेमी जीव रहे। प्रकृति के अनेक चित्र उनकी कविताओं में अलग-अलग संदर्भों के साथ उद्‌घाटित हुए हैं। कवि ने प्रकृति के

अनेक बिंब (पंक्चर हुई हो भले ही रात), नये बिंब प्रस्तुत किये हैं। इसलिए ये कहा जा सकता है कि मर्ढेकर प्रकृति के अनुरागी रहे हैं।

मर्ढेकर की असंकलित कविताएँ : एक मूल्यांकन

इन तीन काव्य-संग्रहों के अलावा मर्ढेकर की समय-समय पर लिखी गयी अनेक अप्रकाशित, असंकलित कविताएँ हैं जिन पर दृष्टिक्षेप डालना आवश्यक है। असंकलित कविताओं में 09 कविताओं का समावेश होता है। जिनमें आशा-निराशा का धूपछाँही खेल, अपनी पूर्व प्रेमिका से उसके पति के साथ हुई भेंट, कवि माधव जुलियन पर लिखी गयी कविता 'माधवराव पटवर्धन' नामक कविता, आया आषाढ़-सावन, फकत तेरी अगर पथरीली भौंह (फक्त तुझी जर दगडी भिवयी) जैसी अलग संवेदना को व्यक्त करने वाली कविता, मृत्यु के बारे गहन चिंतन करने वाली कविता तथा आम मनुष्य के जीवन की क्षुद्रता को दर्शाने वाली कविताओं का समावेश होता है। इन नौ कविताओं में विषय-वैविध्य, काव्य-दृष्टि, युग दृष्टि और वैयक्तिक चिंतन की छाया नजर आती हैं। असंकलित कविताओं में सबसे उल्लेखनीय कविता है- 'फकत तेरी अगर पथरील भोंह' नामक कविता आधुनिक मनुष्य की प्रश्नाकुलता और संवादात्मकता के बोध को दर्शाती है। इन तमाम कविताओं में कवि की एक अलग दृष्टि अभिव्यंजित होती है।

बा. सी. मर्ढेकर की इस संपूर्ण काव्य-यात्रा पर दृष्टिक्षेप डालने के पश्चात कुछ तथ्य उभरकर सामने आते हैं। अर्थात् इन तीनों कविता संग्रहों और असंकलित कविताओं के आधार पर 'संवेदना' के विविध सूत्र प्राप्त होते हैं, जो निम्न रूप में हैं-

मर्ढेकर की कविता का भावगत एवं कलागत मूल्यांकन :

1. चिंतनशीलता :

मर्ढेकर के तीनों कविता संग्रहों के मूल में गहरा चिंतन है। यह कविता दो महायुद्धों के बीच लिखी गयी कविता है। प्रारंभ में स्वच्छंदतावाद का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। किन्तु परंपरागत परिपाटी का निर्वाह करना कवि की धारणा रही होगी।

वैश्विक मंदी, युद्ध की पृष्ठभूमि, भारत में उभरता हुआ मध्यवर्ग, यंत्र संस्कृति का आगमन, महानगर मुंबई की दशा और दिशा, विज्ञान और प्रौद्योगिकी की विकास प्रक्रिया में बदलते जीवनमूल्य, मुंबई में उदित होता कामगार वर्ग, दैनिक जीवन के लिए संघर्ष करती स्त्रियाँ, मजदूर वर्ग, मूल्यों का टूटन, कुछ खो जाने के मोह में कुछ भी न पाने की स्थिति, मनुष्य जीवन की क्षुद्रता, लघुमानव, मानवनिष्ठ संवेदना, अनुभूति का बदलता स्वरुप, बदलते विश्व के नये पैमाने, मनुष्य जीवन में आयी अनिश्चितता, परात्म भाव, नये अर्थतंत्र की देन-विषमता, मनुष्य जीवन की असहायता, यांत्रिकता, नये प्रश्न, नयी स्थिति, बौद्धिकता लाचारी, सांस्कृतिक दरिद्रता, अपूर्णता, अतृप्ति, संबंधहीनता,

भयंकर निराशा, अर्थशून्यता, स्वप्नभंग की स्थिति, स्त्री जीवन की दुर्दशा, अकेलापन, परमतत्व के प्रति जिज्ञासा (रहस्यभावना), ज्ञान और अज्ञान के बीच उभरता द्वंद्व, जन्म-मृत्यु के बारे में खेद, जीवन की क्षणभंगुरता, मृत्यु का भय, माँ, माटी और मृत्यु के प्रति कुतुहल, दु:खी मनुष्य का मानसिक जगत, बदलते रिश्ते-नाते, कालभाव, मूल्यभाव, असंतोष, निषेध, वेश्याओं का जीवन, प्रकृति के प्रति गहरा रागबोध, नयी काव्य दृष्टि, ऐतिहासिकता का भान, प्रश्नाकुलता, स्वात्मभाव, मनोविज्ञान की आधारमूलक स्थिति, पूंजीवाद का शोषणमूलक रुप, धर्म, द्वेष की वजह से मनुष्य-मनुष्य में दूरियाँ, नेताओं की मनोवृत्ति, प्रेमभाव (रोमँटिकता) आदि मर्ढेकर के काव्य की चिंतनभूमियाँ रही हैं। मर्ढेकर के तीनों काव्य संग्रहों में कवि की चिंतनशीलता के दर्शन होते हैं। यूरोपीय सभ्यता और भारतीय समाज मन को समझने का प्रयास कवि करता है। विशेषत: कवि मर्ढेकर ने भाषा, शैली और शिल्प में नूतन प्रयोग किये। प्रयोगशीलता की उनकी वृत्ति आधुनिकता की सूचक बनती है। मर्ढेकर एक ओर अपनी पूर्ववर्ती कविता से ग्रहण कर रहे थे तो दूसरी ओर अपनी उत्तरवर्ती कविता पर प्रभाव भी डाल रहे थे।

मर्ढेकर की चिंतनशीलता में फ्रायड बसा हुआ है। व्यक्ति मन के दमित कोनों को खंगालने का काम कवि ने किया है। फ्रायड का मनोविज्ञान मर्ढेकर की अनेक कविताओं में लक्षित होता है। मनुष्य की दमित भावनाओं, वासनाओं का जीवंत रुप कवि ने अंकित किया है। किन्तु ये बात भी सही है कि मर्ढेकर की कविताओं में मात्र चिंतनशीलता ही नहीं प्रगल्भता के भी दर्शन होते हैं। परिस्थिति बोध, जीवनबोध और मूल्यबोध के कारण कविता लौकिक जीवन के अनेक चित्र उपस्थित करने में सफल हुई है। यह चिंतनशीलता कवि के भीतर समादृत अनुभव संपन्नता और अभिव्यक्ति की कुशलता का प्रमाण बन जाती है। यही कारण है कि, मर्ढेकर एक नयी चिंतनभूमि पर खड़े होकर समकालीन मनुष्य और उसके जीवन के रोएँ-रेशे उधेडने का काम करते हैं। प्रस्तुत है- मर्ढेकर की कविता में उभरते चिंतन के दो अलग-अलग चित्र -

1. "प्रेम के पटेरे
सौंदर्य का नयापन
खोजूँ,
†ÖÃÖ¯ÖÖÃÖ, “ÖÖ¸Ö †Ö¸ì
मूर्दों की राशि।"[41]

2. "कांदेवाडी (मुंबई) जहाँ
ठाकुर द्वारा को थोडी-सी टांग मारती है
जहाँ खडखडाट होती है ट्रेन तिरछी

पैदल चलनेवालों की जहाँ कमर टूटती है
और तार जहाँ चाटते हैं पैरों को,
उस नाके पर एक तंग हवेली
उत्साह से, थिगली चोलियाँ पहन
बैठी हुई भोथरे, बासी, स्तनाग्रों को
x”ÏÖÖŸÖ Æü<…"[42]

2. लघुमानव :

मर्ढेकर की कविता में लघुमानव के बारे में चिंतन है। मर्ढेकर मध्यवर्गीय व्यक्ति का असहाय जीवन चित्रित करते हैं। मनुष्य जीवन की क्षुद्रता को बताते हैं। यंत्र संस्कृति के आगमन ने मनुष्य का जीवन कितना अस्तव्यस्त और अर्थशून्य हुआ है, इसकी अभिव्यक्ति कवि करता है। द्रष्टव्य हैं उनकी कविताएँ- 'चालला हा बंदीवान', 'मैं एक चिंटी', 'पीप में मरें', 'पंक्चर हुई हो रात भले ही', 'खप्पड बसली फिक्कट गाल', ' बन बांबूचे' नामक रचनाएँ उल्लेखनीय हैं।

इन उपर्युक्त कविताओं में मनुष्य जीवन की असहायता, क्षुद्रता, निरर्थकता, अर्थशून्यता, महानगरीय जीवन की अस्तव्यस्तता, यांत्रिकता, सांस्कृतिक दरिद्रता, मूल से उखड़ जाने का दर्द तथा प्रश्नाकुलता को लेकर जीने की वृत्ति दिखलाई देती है। कवि ने मनुष्य को केंद्र में रखकर उसे समग्र रुप में देखने का प्रयास किया है। व्यक्ति के भीतर छिपे हुए स्वात्मभाव को अंकित करने की सफलतम कोशिश यहाँ हुई है। अर्थात् बिगड़ते सामाजिक पर्यावरण में सांस लेते हुए मनुष्य के कई चित्र कवि अंकित करता है। वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो कवि ने अपनी अनुभूति की ईमानदारी से अभिव्यंजित करने का प्रयास किया है। इसलिए ये कहा जा सकता है कि, मर्ढेकर की कविता लघुमानव के सरोकार का उद्‌घाटन करती है।

3. कालबोध :

मर्ढेकर की कविता में काल बोध गहरे रुप में अंकित हुआ है। यहाँ अतीत और वर्तमान के बीच, स्मृति और समसामयिकता के बीच, ऐतिहासिकता और समकालीनता के बीच, अज्ञान और ज्ञान के बीच निरंतर द्वंद्व लक्षित होता है। द्वंद्व के अनेक रुप मर्ढेकर की कविता में उजागर होते हैं। इस संदर्भ को व्यक्त करने वाली कुछ कविताएँ द्रष्टव्य हैं- 'आळसली बघ जीवंतता', 'काळ मारुनी, गेला टपली, सुख दुःखाचे गळे कापुनी', 'घडल्या गोष्टी' आदि कविताओं में कालबोध व्यक्त हुआ है। दूसरी एक महत्वपूर्ण कविता है, 'छोटी उम्र की थी कल परसों तक' नामक कविता में भी 'कालबोध' की अभिव्यक्ति हुई है। प्रस्तुत कविता में स्त्री की सृजनक्षमता की अभिव्यक्ति हुई है। अतीत, वर्तमान और भविष्य का चित्र यहाँ उकेरा गया है। उपर्युक्त कविताओं में कवि ने अपने

आत्मबोध को जागृत करते हुए अनेक द्वंद्वों को झेला है। बदलते परिवेश को आंकते हुए कवि ने 'कालबोध' का जायजा लेने में सफलता पायी है। द्रष्टव्य हैं कविता की पंक्तियाँ -

"और कल की प्यास मर गई
गले में शुष्कता दूसरी आज
व्यर्थ नहीं है वहाँ अँजुली पुट
शरीर सारा कहता है पिला।"[43]

4. स्त्री के बारे में गहरा रागबोध :

मर्ढेकर के मन में स्त्री के प्रति गजब का श्रद्धाभाव रहा है। अर्थात् स्त्री के विविध रुप इनके तीनों कविता संग्रहों में दृष्टिगोचर होते हैं। अपने आरंभिक कविता संग्रह 'शिशिरागम' में स्त्री को प्रेमिका के रुप में चित्रित किया है। 'सुहास' (अज्ञात प्रेमिका) को संबोधित कर अनेक कविताएँ लिखी गयी हैं। यहाँ शारीरी प्रेम या भाव नहीं, बौद्धिक प्रेम का सूचन है। जाहिर है, मर्ढेकर की प्रारंभिक कविताओं पर रोमांटिसिजम का गहरा प्रभाव लक्षित होता है। अपनी अनाम प्रेयसी से कवि लगातार संवाद करता हुआ नजर आता है। 'प्रेम के पटेरे (प्रेमाचे लव्हाळे) कविता में एक ओर रोमांटिक भाव है तो दूसरी ओर समकालीन यथार्थ का बोध भी। पर वास्तविकता ये है कि कवि मर्ढेकर ने प्रथम कविता-संग्रह में 'प्रेयसी' को संबोधित करके अनेक कविताएँ लिखी हैं। जैसे - 'प्रेम के पटेरे', 'जाओ, जाओ, अब मूडकर हंसती हो क्यों?','प्रीति की यह दुनिया, सुहास', हाँ, रुक, रुक, नहीं सुहास', 'जाना है तो सुख से जाओ' आदि कविताओं में 'प्रेमिका' के दर्शन होते हैं। मर्ढेकर की अपनी अनाम प्रेमिका को संबोधित करते हुए लिखी हुई कविताओं में प्रणयभाव की अनेक छटाएँ लक्षित होती हैं। प्रस्तुत कवितासंग्रह की कविताओं में स्त्री के माता रुप का वर्णन आया है। माँ के प्रति अटूट श्रद्धाभाव कवि व्यक्त करता है। माँ के अस्तित्व का होना बच्चों के लिए बड़ा आधार होता है। कवि माँ के प्रति कवि भावुकता से नहीं यथार्थ दृष्टि से सोचता है। किन्तु धीरे-धीरे कवि के भावविश्व में वैविध्य, विस्तार और विलक्षणता के दर्शन होते हैं। 'कुछ कविताएँ' और 'कुछ और कविताओं' में स्त्री जीवन के विविध रुप दिखाई देते हैं। वेश्या रुप का अनेक कविताओं में कवि ने वर्णन किया है। स्त्री की असहायता, विवशता और परवशता का मार्मिक अंकन कवि ने किया है। जैसे - 'कोलाहल से भरी तथा संकरी', 'कांदेवाडी' (मुंबई) जहाँ', 'फसफसून येतो सोडयावरती गार' (झाग बनकर सोडे पर उठता हुआ ठंडापन) आदि कविताएँ। इन कविताओं में स्त्री की वेश्या बनने की विवशता का मर्मग्राही अंकन किया है। मुंबई की पृष्ठभूमि पर लिखी गई इन तीनों कविताओं में महानगरी मुंबई में स्त्री को वेश्या बनने के लिए कैसे मजबूर होना पड़ रहा है, इसका जीवंत चित्रण इन कविताओं में आया है। रोजी-रोटी के लिए, जीवन निर्वाह और परिवार चलाने के लिए इस प्रकार अनचाहे स्थिति

का सामना उसे करना पड़ रहा है। द्रष्टव्य है कविता की कुछ पंक्तियाँ -

"कांदेवाडी (मुंबई) जहाँ
ठाकुर द्वारा को थोडी-सी टांग मारती है
जहाँ खड़खड़ाट होती है और ट्रेम तिरछी
पैदल चलनेवालों की यहाँ कमर टूट जाती है
और तार जहाँ चाटते हैं पैरों को,
उस नाके पर एक तंग हवेली
उत्साह से, थिगनी चोलिया पहन
बैठी हुई भोथरे, बासी स्तनाग्रों को
x”¯ÖÖŸÖ Æü< …"[44]

गर्भवती स्त्री के अनेक चित्र मर्ढेकर की कविता में उभरे हैं। मर्ढेकर अपनी कविताओं में एक ओर स्त्री जीवन की दुर्दशा का चित्रण करते हैं तो दूसरी ओर करुणा भाव, श्रद्धा भाव भी अंकित करते हैं। कली का खिलना, माँ रुप में परिवर्तित होना, सृष्टि के इस अनुठी जैविक क्रिया के बारे में कवि के मन में भयंकर कुतुहल है। 'छोटी उम्र की थी कल परसों' तथा 'पांडुर संध्या चौथा प्रहरी', 'बाळगुनी हा पोटी इवला' (गर्भ में छोटा-सा) आदि कविताएँ उल्लेखनीय हैं। इन कविताओं में कवि ने गर्भवती स्त्री के अनेक चित्र उकेरे हैं। कवि स्त्री के प्रति पूरी तरह से श्रद्धाभाव रखता है। 'छोटी उम्र की थी कल परसों तक' कविता की कुछ पंक्तियाँ -

"छोटी उम्र की भी
कल परसों तक
रुक, कल की माँ
तीर्थ तेरो पैंरो का लेने तक।"[45]

इसके अलावा कवि ने स्त्री जीवन की दुर्दशा को अनेक कविताओं में शब्दबद्ध किया है। संकरी गलियों में कोलाहल भरे हालात में जी रही स्त्रियाँ, जो हड्डियों के पुतले बन चुकी है। उसकी इसी शारीरिक, मानसिक स्थिति का चित्रण कवि ने अनेक कविताओं में किया है। स्त्री की दुर्दशा, लाचारी को लेकर कवि चिंतीत है। यही चिंताभाव, करुणा भाव, श्रद्धाभाव उनकी अनेक कविताओं में उद्‌घाटित होता है। जैसे- 'अशीच होती नकटी एक', 'अर्धपोट', 'बडवीत टिन्र्या' (पीटती पार्श्वभाग और अधभूखी) आदि कविताओं में स्त्री जीवन की लाचारी, दुर्दशा को कवि ने रेखांकित किया है। किन्तु यह भी सच है कि कवि ने 'स्त्री और स्मृति' के अंतःसंबंधों का बड़ा मार्मिक अंकन 'ओसकणों में आयी हो प्रातः काल' नामक कविता में बड़े अनुठे ढंग से वर्णित किया है। प्रस्तुत कविता की कुछ

¯ÖÛŒÖµÖÖ ¦ÌÂ™¾µÖ Æü-

"ओसकणों में आई हो प्रातः काल
बदलियों की शोभा में एक बार
पास से गुजरी हो बोते हुए
धीमें पैरों की गंध को।"

कुल मिलाकर कवि मर्ढेकर ने अपनी कविताओं में स्त्री जीवन, संघर्षमय स्थिति, दुर्दशा, करुणा, कुतुहल, प्रेम प्रधानता, रोमांटिकता आदि दृष्टियों से चित्रण किया है, जो उल्लेखनीय बन ¯Ö›Ö Æü…

5. यंत्रयुग के आरंभ का सूचन :

औद्योगिक प्रगति ने यंत्रयुगीन परिवेश को जन्म दिया। भौतिक प्रगति, यंत्रसंस्कृति का आगमन और देश में उभरता मध्यवर्ग इन सबके बीच सांस लेता हुआ मनुष्य कवि की जिज्ञासा का विषय रहा है। ज्ञान-विज्ञान की प्रगति ने कामगार वर्ग का उदय हुआ। रोजी-रोटी का प्रश्न हल हुआ किन्तु इस नये परिवेश ने नये प्रश्नों को जन्म दिया। यंत्र पर काम करते-करते मनुष्य का जीवन यंत्रवत बनता गया। यंत्र ने मनुष्य जीवन का ताबा ले लिया। कवि मर्ढेकर देख रहे थे कि विज्ञान युग के मनुष्य जीवन पर कितने दूरगामी परिणाम हो रहे हैं। विशेषतः विपरित परिणाम। संवेदनशील कवि मन इस पूरी स्थिति पर नजर रखे हुए हैं। परिणामतः मानवीय संबंधों का असहज होते जाना, स्त्री जीवन की दुर्दशा, मनुष्यता का धीरे-धीरे ऱ्हास होते जाना तथा भयग्रस्तता का प्रवेश करना आदि चीजों को कवि देख रहा था, महसूस कर रहा था। इसी भयग्रस्तता ने मनुष्य के जीवन में अकेलापन, परायापन, असुरक्षिता, निरर्थकता का उत्कट एवं प्रभावी अविष्कार मर्ढेकर अपनी कविता में करते हैं। विशेषतः दो महायुद्धों की पृष्ठभूमि में इसे देखना होगा। इन महायुद्धों का मनुष्य जीवन पर प्रतिकुल परिणाम हुआ। परिणामतः श्रद्धाविहीनता, विज्ञान और प्रौद्योगिकी का मनुष्यता रहित विकास आदि के कारण मनुष्य जीवन प्रभावित होता गया। एक ही भाव मनुष्य जीवन में भरने लगा कि सबकुछ अनिश्चित है। इस पूरे परिवेश ने काल, मनुष्य अस्तित्व और स्पेस की अवधारणा में परिवर्तन लाया। ज्ञान-विज्ञान के शोधों ने औद्योगिक क्रांति को बढ़ावा दिया। यंत्र संस्कृति ने शांति भंग की। बाहर भी अशांति और भीतर भी। इसीलिए हर्बर मार्क्यूज ने कहा था, 'यहाँ की शांति युद्ध के दबाव में जीती है। यहाँ का भौतिक विकास संभावनाओं के दबावों में पलता है। इसी प्रकार दबावों में, यातनाओं में जीते हुए समाज को हम मर्ढेकर की कविता में देख सकते हैं। क्या मनुष्य यंत्र का पूर्जा मात्र बनकर रह जाएगा? मनुष्य का व्याधिग्रस्त, अकेला और असहाय जीवन दिखाई दिया, जिसे मर्ढेकर ने बखूबी अंकित किया। इसलिए यह कह सकते हैं कि मर्ढेकर की कविता आत्मकेंद्री नहीं

व्यक्तिकेंद्री हैं, व्यक्ति को समग्रता में पकड़ने की कोशिश करती है।

मढेकर के तीनों कविता संग्रहों में विशेषतया 'कुछ कविताएँ' और 'कुछ और कविताएँ' में यंत्र संस्कृति के आगमन की, उसके भयावह परिणामों की सूचना प्राप्त होती है। जैसे- 'सतेल तांबुस पट्ट्या, दणकट दंडस्नायु जैसे, पिपात मेले ओला उंदीर (पीप में मरे गीले चूहे) आदि कविताओं में प्रस्तुत संदर्भ प्राप्त होते हैं। 'दंडस्नायु जैसे' कविता की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य है-

"यंत्रयुगातिल नवनृत्याचा
स्थाणुभाव हा प्रगटे येथे
मनोज्ञ मुद्रा शिल्पित एक
संगमरवरी मांसामध्ये।"

अर्थात् यंत्रयुग ने मनुष्य जीवन को कहाँ तक और किस रुप में प्रभावित किया है, मनुष्य का शिल्प में रुपांतर होना, मन मुद्रा में अंकित होते जाना अर्थात् दोनों की स्थिति को कवि ने इन पंक्तियों के द्वारा दर्शाया है। मनुष्य को चूहे के रुप में चित्रित करना, मनुष्य जीवन की क्षुद्रता को दर्शाता है। कवि ने यंत्र युगीन सभ्यता के मनुष्य जीवन पर होनेवाले प्रतिकू ल प्रभावों का मर्मग्राही चित्रण उपर्युक्त कविताओं के द्वारा किया है, जो विशेष उल्लेखनीय है।

6. प्रश्नाकुलता :

कवि बा. सी. मर्ढेकर के मन में अपने अतीत, वर्तमान और भविष्य के बारे में अनेक प्रश्न हैं। कवि का मन मनुष्य जीवन में व्याप्त निरर्थकता को देखकर बेचैन हो उठता है। अपने समय, इतिहास और यंत्र संकृति के प्रति कवि का मन प्रश्नाकुल है। अपने समकालीन जीवन बोध को लेकर कवि जिज्ञासु है। वस्तुतः प्रश्नाकुलता आधुनिकता की ही देन है। आधुनिकता प्रखर बौद्धिकता और तर्कवाद को पुरजोर तरीके में स्वीकारती है। अपनी जीवनानुभूति के प्रति कवि आत्मनिष्ठ है। कवि एक ओर अपने भीतर चल रही हलचलों को अंकित करने का प्रयास करता है तो दूसरी ओर बाह्य स्तर पर नेताओं के द्वारा डाली जा रही फूट को लेकर भी चिंतामग्न है। **'ŒµÖÖ ´Ö“ÖÖ ¸ÆÍ ÆÖ ±ú™ß... क्यों खराब कर रहे हो स्वतंत्रता की कापी। स्वजनों के रक्त से हमेशा। लपलपानाः'** यह कवि का नेताओं को प्रश्न है। अपनी स्वतंत्रता के प्रति वह अत्यंत जागरुक है, इसलिए फूट डालनेवाले नेताओं की वृत्ति पर वह प्रहार करता है।

'प्रश्नाकुलता' नवीन सभ्यता और नव समाज की देन है। बदलते वैश्विक परिदृश्य में मानवी जीवन कितना संकुल, व्याकुल और असहाय स्थिति में है, उसके प्रति कवि के मन में जिज्ञासा है। इस संदर्भ को दर्शानेवाली मढेकर की जो कविताएँ संदर्भित हैं। 'बडवित टिऱ्या', (पीटते हुए पार्श्वभाग), 'फलाटदादा', 'झोपली ग खुळी बाळे (सो गये बावले बच्चे) तथा 'किती वितींचे जीवन

माझे (कितनी इंच का जीवन मेरा) आदि कविताओं में प्रश्नाकुलता के दर्शन होते हैं। 'बडवित टिऱ्या' (पीटते हुए पार्श्वभाग) कविता में कवि ने भीख मांगते हुए बालक का चित्र प्रस्तुत किया है। उसके साथ उसकी लाचार माता भी है। कवि ने प्रश्न पूछा है कि, विज्ञान की इतनी प्रगति, इतना भौतिक विकास होने के बाद भी प्रस्थापित व्यवस्था में किसी को भीख मांगने की नौबत ही क्यों आई? क्या यह मनुष्यता पर लगा हुआ कलंक नहीं है? या भीख देनेवाला और भीख मांगनेवाले के मध्य जो औपचारिकता उधर रही है, एक अर्थ में मनुष्यता का ऱ्हास हो रहा है। मर्ढेकर की कविता में उभरे हुए प्रश्न समाज को संबोधित करते हुए पूछे गये हैं। इन प्रश्नों में कवि का विद्रोही स्वर भी अभिव्यक्त हुआ है। 'फलाटदादा' कविता में एक ग्रामीण के द्वारा पूछे गये प्रश्नों का अभिव्यंजन है। प्लॅटफॉर्म की भीड, गाड़ियों की आवाजाही, मुंबई जैसा विशाल जन सागर वाला शहर और लोगों का भीड में तब्दील होते जाना आदि चीजों को लेकर कवि मन प्रश्न पूछ बैठता है। इस कविता में आये हुए तमाम प्रश्न कवि मर्ढेकर के हैं। रेल प्लॅटफॉर्म ने कितने लोग देखें?, कितनी प्रवृत्तियों के, प्लेटफॉर्म क्या सोचता है? वहाँ की हलचलों को लेकर कवि अनेक प्रश्न पूछता है। कवि के प्रश्न बौद्धिक नहीं, भावनिक अधिक है। 'झोपली ग खुळी बाळे' (सो गये बावले बच्चे) कविता में कवि ने सामान्य मनुष्य के जीवन में जो घुटन है, संत्रास है, अकेलापन है, एकरसता है, निराशा है आदि के बारे में कुछ गहन सवाल पूछे हैं। कवि का यही मानना है कि मनुष्य के जीवन में इतनी रिक्तता, सूनापन आया कहाँ से है? सोचने के लिए बाध्य करनेवाला प्रश्न है। 'किती वितींचे जीवन माझे' (कितनी इंच का जीवन मेरा) कविता में भी कवि का मन प्रश्नाकुल है। कवि ने मनुष्य जीवन की नश्वरता को व्यक्त करते हुए आत्ममंथन किया है। किन्तु साथ ही 'स्व' की तलाश का प्रयास इस कविता में दृष्टिगोचर होता है।

कुल मिलाकर मर्ढेकर अपनी कविताओं में भावनिक, बौद्धिक और व्यावहारिक प्रश्न पूछते हैं। उद्‌देश्य एक ही है मनुष्य जीवन की एकरसता को कैसे तोड़ा जाए? और साथ ही उसे अधिक गतिमान कैसे करें।

7. कविता में मृत्यु का झांकना :

मर्ढेकर की कविताओं में मृत्यु के बारे में गहरा चिंतन अभिव्यक्त हुआ है। यह मृत्युबोध अपने आरंभिक कविता संग्रह से शुरु होता है और आगे के दोनों कविता संग्रहों में उसकी झांकी मिलती है। आखिर 'अन्तः सत्य' की बात करनेवाला कवि 'मृत्युबोध' का पाठ क्यों पढ़ता है? क्या कारण है कि मर्ढेकर बार-बार अपनी कविताओं में मृत्यु का राग आलापते हैं? इस मृत्युबोध के साथ कहीं व्यक्तिगत संस्पर्श तो जुड़ा हुआ नहीं है? या समकालीन परिवेश में इसके अन्तः सूत्र जुड़े हुए हैं।

मर्ढेकर की कविताओं में मृत्यु के बारे में जो दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है, उसके मूल में दूसरे-तीसरे दशक की वैश्विक स्थिति और पारिवारिक स्थिति कारणीभूत है। प्रथम और द्वितीय महायुद्ध में

भयंकर मात्रा में जीवित हानि हुई। जिस वैज्ञानिक प्रगति का हम जय-जयकार कर रहे थे, उसी ने मनुष्य हानि में बड़ी भूमिका निभायी। कल तक मनुष्य ये समझ रहा था कि विज्ञान ने मनुष्य को भौतिक सुख दिये, समृद्धि दी, स्थैर्य और सुरक्षितता प्रदान की। किन्तु दूसरे महायुद्ध के पश्चात मानवीय जीवन भयंकर असुरक्षित हुआ। विज्ञान का पूर्णता का दावा ही गलत साबित हुआ। बुद्धिवादी धारणा छोटी लगने लगी। ठीक उसी समय वैश्विक स्तर पर आड्स हक्सले अपनी कविताओं में अध्यात्म की संवेदना लेकर आये। धार्मिकता का नया अर्थ प्रतीत होने लगा। ग्रॅहम ग्रीन, ख्रिस्टफर इशरवुड आदि लेखकों में भी अध्यात्म की वृत्ति अभिव्यक्त होने लगी।

पहले और दूसरे महायुद्ध में मर्ढेकर ने मनुष्य की मृत्यु का भीषण तांडव देखा। उन्हें लगने लगा कि मृत्यु रोमँटिक कल्पना नहीं है। परिणामतः मृत्यु के बारे में, मृत्यु को लेकर विचारमंथन शुरू हुआ। मनुष्य के अस्तित्व का स्वरुप, जीवन की क्षणभंगुरता, विश्व रचना में मनुष्य का स्थान, इच्छाशक्ति का स्वरुप, निर्णय स्वतंत्रता का महत्व, इस प्रकार का नया बोध होने लगा, जिसमें बौद्धिकता के साथ भावनाएँ भी जुड़ी हुई थी। मृत्यु विषयक गहन चिंतन मर्ढेकर करने लगे। मर्ढेकर कुछ आध्यात्मिक प्रश्न लेकर आये। धीरे-धीरे मृत्यु के बारे में वस्तुनिष्ठ पद्धति से सोचना शुरू किया। 'देवा, माझी हाडे खाऊनी गिधाडे तृप्त व्हावी'।

मृत्यु के बारे में अभिव्यंजना जिन कविताओं में हुई हैं। वे इस तरह से हैं- 'कणा मोडला निश्लतेचा', 'जरा असावी मरणाची ही', 'केला थोडा रोजगार' (किया मैंने थोड़ा रोजगार) आदि। इन कविताओं में कवि ने मृत्यु विषयक गहरा चिंतन किया है। 'कणा मोडला निश्चलतेचा' (रीढ टूट गई धैर्य की) कविता में किसी शव को देखकर कवि मन प्रतिक्रिया दे रहा है। मृत्यु का भय सनातन है। यही सनातनी वृत्ति 'भय' के रुप में मनुष्य में विराजित है। भय का अनुभव, आशा का अंत, असुरक्षितता और मुक्ति की आस आदि में लिपटा हुआ है मृत्य-कवि ने मृत्यु के बारे में ॲन्टि-रोमँटिक होकर अपनी बात रखी है। कवि मनुष्य के जन्म मृत्यु को लेकर एकत्रित करके सोचता है। मृत्यु के बारे में कवि उसकी क्षणभंगुरता को बताने की कोशिश करता है। मृत्यु का भय और जीवन की क्षणभंगुरता को लेकर कवि अपनी मृत्यु विषयक धारणा व्यक्त करता है। 'किया मैंने थोड़ा रोजगार' कविता में भी कवि ने एक महत्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित किया है। मृत्यु याने क्या? और दूसरा प्रश्न मृत्यु के बाद क्या? तात्विक स्तर पर इन दो प्रश्नों की तलाश एक अलग अर्थ में इस कविता में हुई है। प्रस्तुत है कुछ पंक्तियाँ - "आज पाहिले मरण। गेला थांबावून प्राण,

माझ्या ज्ञानाचे कुंपण। श्मशानात।"

(अर्थात् आज मैंने मृत्यु को देखा और देखकर बेचैन हुआ। मुझे पहली बार पता चला कि मृत्यु के बारे में मेरा ज्ञान कितना अपूर्ण है, अल्प है।) जन्म मृत्यु का निन्यावे का फेर खत्म होनेवाला

नहीं है।

अंततः कवि इस निष्कर्ष पर आता है कि मृत्यु एक सनातन सत्य है। विज्ञान भी मृत्यु को रोक नहीं सकता। वह भी अपने स्तर पर अपूर्ण है। 'मृत्युबोध' की इन कविताओं के साथ मर्ढेकर के अपने व्यक्तिगत संदर्भ भी जुड़े हुए है। सन् 1940-45 के बीच पहले उनकी माता और तत्पश्चात पिता की मृत्यु ने कवि मर्ढेकर को भयंकर अकेला कर दिया। मृत्यु की दो घटनाओं को उन्हें एक साथ झेलना पड़ा। शायद इन वैयक्तिक घटनाओं का भी अचेतन मन पर गहरा असर हुआ होगा। तात्पर्य यही है कि, मर्ढेकर अपनी कविताओं में 'मृत्यु' के बारे में मूलभूत चिंतन करते हैं।

8. कविता में मुंबई :

कवि बा. सी. मर्ढेकर पर मुंबई ने बौद्धिक एवं सांस्कृतिक संस्कार किये हैं। मुंबई से तात्पर्य है, कविता के केंद्र में मुंबई। दूसरा संदर्भ मुंबई के साथ में जुड़ता है - महानगरीय बोध। मर्ढेकर की अधिकांश कविताएँ (तीनों संकलन और असंकलित कविताएँ) मुंबई जैसे महानगर के अनेक सजीव चित्र पेश करती है। मर्ढेकर की जीवन दृष्टि, कविदृष्टि और मूल्यदृष्टि को इस महानगर ने प्रभावित किया है। यंत्र संस्कृति का आगमन, औद्योगिक क्रांति का परिणाम, उभरता मध्यवर्ग और जीवन व्यापी आपाधापी से गुजरता हुआ मनुष्य-यही कुछ भावधाराएँ हैं, जो मर्ढेकर की कविता में बार-बार झलकती है। कवि इस महानगर के तमाम अंतर्विरोधों, रंग-रुप, स्थितियाँ और गतियाँ आदि को शब्दबद्ध करता है। मर्ढेकर को तमाम प्रकार के जीवनानुभव इसी शहर ने दिये। इस शहर के प्रातः काल, दोपहर, शाम और रात के अनेक चित्र कवि उपस्थित करता है। अर्थात् मनुष्य को संवेदना की अभिव्यक्त करने के लिए कवि शहरी बिंबों, प्रतीकों की लड़ी पिरोता है, जिसके अनेक रुपक उनकी कविताओं में प्राप्त होते हैं।

मुंबई में उभरता हुआ कामगार वर्ग, उनकी गंदगी, बदबू से भरी हुई बस्तियाँ, आर्थिक विषमता, यंत्रमय जीवन, इन कामगारों में उभरता असंतोष, निषेध, धीरे-धीरे जीवन में आयी हुई अर्थशून्यता-कुल मिलाकर एक उभरती नयी दुनिया को कवि अपनी कविता में उभारता है। इस संदर्भ को दर्शाने वाली उनकी एक महत्वपूर्ण कविता है- 'काळया बंबाळ अंधारी' (घनघोर काला अंधेरा)। इस कविता में मुंबई जैसे महानगर में कितनी आर्थिक विषमता पैर पसार रही है, उसे कवि ने अभिव्यक्त किया है। ठीक इसी तरह मुंबई की तंग गलियाँ, मुहल्ले, वहाँ का मध्यवर्गीय और कामगार वर्ग, उनका यांत्रिक दैनंदिन जीवन, को भी रेखांकित किया है। इस दृष्टि से मर्ढेकर की एक कविता अत्यंत मार्मिक अंकन करती है। कविता का शीर्षक है- 'कोलाहल से भरी तथा संकरी' प्रस्तुत कविता में कवि ने गिरगाव की गलियाँ, वहाँ के लोग, उनका अंधकारमय जीवन, यंत्रवत जीने का अभिशाप, परिस्थिति से परेशान आदि रुपों का प्रभावी चित्रण किया है। मुंबई जैसे महानगर को केंद्र

में रखकर मर्ढेकर ने अनेक कविताएँ लिखी हैं। जिसमें 'जिथे मारते कांदेवाडी' (कांदेवाडी (मुंबई) जहाँ), 'मी एक मुंगी' (मैं एक चिंटी), 'न्हालेल्या जणु गर्भवतीच्या' (नहाई हुई जैसी गर्भवती), 'पांडुर संध्या चौथ्या प्रहरी', 'अशीच होती नकटी एक', 'पंक्चरली जरी रात्र दिव्यांनी' (पंक्चर हुई हो रात दीयों से), 'बन बांबुचे', 'केला थोड़ा रोजगार' (किया मैंने थोड़ा रोजगार), 'फलाटदादा' आदि कविताओं में महानगर मुंबई के अनेक चेहरे अंकित हुए हैं। 'नहाई हुई गर्भवती जैसी' कविता में कवि ने मुंबई का दृश्यरुप प्रस्तुत किया है तो 'कांदेवाडी मुंबई जहाँ' कविता में मुंबई की तंगगलियों में चल रही वेश्या वृत्ति का, उनकी विवशता का प्रभावी चित्रण किया है। जीवन की आपाधापी, कोलाहल, यांत्रिकता, असहायता, अर्थशून्यता, निरर्थकता तथा विसंगतियों को कवि सूक्ष्मता से देखता है, उसे प्रस्तुत किया गया है। मुंबई शहर का परंपरागत जीवन, स्वत्वहीनता, रोगग्रस्तता, मूल से उखड़ जाने का दर्द, उदासी, मध्यवर्गीय मनुष्य की यंत्रवत जिंदगी, वेश्याओं का दर्दनाक जीवन, गर्भवती स्त्रियों की असहायता, जीवन की क्षूद्रता, अकेलापन, लाचारी, सांस्कृतिक दरिद्रता, आध्यात्मिक जीवन से दूर जाने की पीड़ा, भूख और विषमता के विविध रुप आदि संवेदनाओं की अभिव्यक्ति इन कविताओं में हुई है। कविता की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

"मरे पीपे गीले चूहें,
गर्दन गिरी, जैसे लचक गई हों,
    ÆÖšÖ ¯Ö¸ü ÆÖšü ×´Ö»Ö,
    गर्दन गिरी बिना आसक्ति के।
गरीब बेचारे बिलों में जीए
पीप में मरे, हीचकी बंधकर
    दिन चला गया कंजई आँखें,
    गात्रविंग और धो लेकर।"[46]

या उनकी 'मैं एक चिंटी' कविता अधिक प्रभावित करती है। जिसमें मनुष्य को 'चिंटी' के रुप में अंकित किया गया है। चूहा, चिंटी, बंदर आदि सारे प्रतीक मनुष्य जीवन की क्षुद्रता को दर्शाते हैं। कुल मिलाकर मर्ढेकर की कविताएँ महानगरीय जीवन बोध का उत्कट साक्षात्कार कराती हैं।

9. कविता में निसर्ग (प्रकृति) :

मर्ढेकर को प्रकृति के प्रति अनुराग रहा है। 'शिशिरागम' की अनेक कविताओं में निसर्ग के प्रति प्रेमभाव व्यक्त हुआ है। प्रकृति के अनेक चित्र कवि ने उद्घाटित किये हैं। विविध ऋतुओं के आगमन निगमन के संकेत उनकी कविताओं में प्राप्त होते हैं। एक ओर शहरी संवेदना तो दूसरी ओर निसर्ग संवेदना लेकर यह कविता सर्जनशीलता में संलग्न होती है। इन दोनों अनुभवों को एकात्म

करने का प्रयास उनकी कविता में मिलता है। शहरी संवेदनाओं में निसर्गानुभव को तादात्म्य कर लेना, यह मर्ढेकर के व्यक्तित्व की गुणात्मक विशेषता है।

मर्ढेकर की अनेक कविताएँ हैं, जिसमें प्रकृति की अनेक छटाएँ, अनेक संदर्भ प्राप्त होते हैं। जैसे- 'काळया बंबाळ अंधारी', 'देवाजी ने करुणा केली', 'गोंधळलेल्या अन् चिंचोळया' आला आषाढ़ श्रावण', अभ्रांच्या या कुंद अफूने', 'होते आभाळ पेंगत', 'पांडुर संध्या चौथ्या प्रहरी', 'समेयाच्या जंजाळामधि' आदि कविताएँ उल्लेखनीय हैं। 'काळया बंबाळ अंधारी' (घनघोर काला अंधकार), 'देवाजीने करुणा केली' (ईश्वर ने करुणा की) और 'गोंधळलेल्या अन् चिंचोळया' (कोलाहल से भरी तथा संकरी) आदि कविताओं में 'सुबह, दोपहर शाम और रात के प्रहरों का वर्णन' आया है।

इस वर्णन में शहरी, मजदूर और मध्यवर्गीय जीवन की झांकियाँ प्राप्त होती हैं। इन तीनों कविताओं में मजदूर, मध्यवर्गीय और शहरी व्यक्ति के जीवन को अनेक प्रतीकों के द्वारा उजागर किया गया है। मुंबई शहर में उत्पन्न कोलाहल, गडबड, यांत्रिकता, गंदगीभरी गलियाँ, घेर लेती निराशा, भूखे, परेशान, बेचैन लोग आदि के जीवंत चित्र उपस्थित किये हैं। यहाँ प्रकृति के अनेक चित्र जीवन की असाहयता, विकलता, निराशा, उदासी, यांत्रिकता और अकेलेपन को दर्शाने के लिए किये गये हैं। मर्ढेकर की निसर्ग कविता में ग्रामीण, शहरी ऐसा अंतर नहीं है। ग्रामीण अर्थात् रोमँटिक भी नहीं, निसर्ग उनकी कविता में व्यापकता को लेकर आता है। निसर्ग के सान्निध्य में रहकर उन्होंने उसके अनेक बिंबों को शब्दबद्ध किया है। बीच-बीच में बालकवि (अनिल बापूजी ठोंबरे) की याद दिलाते हैं। 'आला आषाढ-श्रावण' (आया आषाढ-सावन) कविता में मर्ढेकर शहरी परिवेश के दर्शन कराते हैं, तो 'अभ्रांच्या या कुंद अफूने' कविता में निसर्ग और मनुष्य के श्रांत, क्लांत जीवन का एकमएक रूप चित्रित हुआ है। बैसाख महिने में उभरती गर्मी से परेशान मनुष्य का चित्रण कवि ने किया है।

कवि मर्ढेकर विशुद्ध निसर्गप्रेमी नहीं हैं। बल्कि प्रकृति के माध्यम से मनुष्य जीवन को अनेक संदर्भों में प्रस्तुत करने का उनका प्रयास अत्यंत सराहनीय है। उनकी कविता में आये हुए प्रकृति के बिंब, मनुष्य जीवन में आयी विषमता, अनिश्चितता को दर्शाते हैं। 'होते आभाळ पेंगत' और 'पांडुर संध्या चौथ्या प्रहरी' कविता में विषमता (आर्थिक सामाजिक) के अनेक चित्र उपस्थित किये हैं। निसर्ग और मनुष्य में अटूट नाता है, रिश्ता है ऐसा कवि का कहना है। कवि मर्ढेकर प्रकृति के बारे में अधिक वास्तववादी, संदेहवादी हैं। इस संदेह के पीछे उनकी बुद्धिवादी दृष्टि एवं गहरी विज्ञाननिष्ठा काम करती हुई नजर आती है। मर्ढेकर की कविता में निसर्ग के अनेक रुप प्रतीकात्मक स्तर पर वर्णित हुए हैं। 'शहरी निसर्ग' और 'प्रादेशिक निसर्ग' ऐसे दो भाग उनके निसर्ग चित्रण में आते हैं। किन्तु एक बात निश्चित है कि, मर्ढेकर का निसर्ग से अटूट रिश्ता रहा है। फूल, पौधे, पत्ते, आकाश,

हवा, पानी, ग्रह, नक्षत्र, टेकोब्राम्ही (खगोलशास्त्रज्ञ) आदि के संदर्भ उनकी निसर्ग कविताओं में प्राप्त होते हैं। प्रातः काल का एक दृश्य स्मरणीय है- "ओसकणों में आयी हो प्रातःकाल

शुक्र की अकड में एक बार

पास से गुजरी हो बोते हुए

अपने पैरों की शोभा।"[47]

कुल मिलाकर मर्ढेकर की कविता में निसर्ग की सौंदर्यबोधी एवं यथार्थोन्मुख छटाएँ लक्षित होती हैं। भूतकाल की स्मृतियाँ, अनंत यादें, प्रकृति का अनुभव, सौंदर्योन्मुख दृष्टिबोध उनकी कविताओं में बराबर अंकित होता है।

10. ¯Ö¸ú´ÖŸÖŸ¾Ö Ã Ö Ã Ö¾ÖÖ¤ü :

मर्ढेकर की काव्य-यात्रा 'शिशिरागम' से शुरू होती है और वहीं से परमतत्व से संवाद भी। उनकी अनेक कविताओं में 'तू' (तुम) विशेषनाम का संबोधन आया है। मर्ढेकर के लिए 'तू' पारंपारिक, सगुण, साकार ईश्वरी रुप नहीं है। कवि 'तू' में निर्गुण, निराकार शक्ति के संदर्भ में देखता है। 'तू' (तुम) को कवि ने 'राघव' 'माधव', 'मुरारी' के विशेषनाम से संबोधित किया है। कवि 'तू' को विशिष्ट धर्म की चौखट में बंदिस्त करके नहीं देखता है। इसी कारण उनकी कविता में 'राम' के साथ 'अल्लाह' और 'येशू ख्रिस्त' के साथ 'कृष्ण' का उल्लेख आया है। मर्ढेकर की कविताओं में 'परमतत्व' से संवाद में श्रद्धा और अश्रद्धा का स्वर अंकित हुआ है। उनकी आध्यात्मिक यात्रा श्रद्धा से अश्रद्धा की ओर नहीं जाती बल्कि इसके साथ भावनिक वैचारिक संदर्भ जुड़े हुए हैं। धीरे-धीरे श्रद्धा अधिक सजग होती नजर आती है। मर्ढेकर के अनुभव विश्व का ये भी एक कोना है।

कवि ने अपनी अनेक कविताओं में परमतत्व से संवाद किया है। जैसे- 'निर्घृण प्रभो' (निष्ठुर ईश्वर), 'आता अंत कशास पाहसी?' (अब अंत क्यों देख रहे हो?), 'आरामाचा राम' (आराम के राम), 'राव, सांगता देव कुणाला?' (ईश्वर किसे बताते हो?), 'अजुन येतो वास फुलांना (अभी भी आती है खुश्बु फुलों से), 'राहु दे जिवंत' (रहने दे जिंदा), 'ठायी ठायी रुप तुझे' (कण कण में तेरा ही अस्तित्व), 'ओंठावर आली पूजा' (होठों पर आयी प्रार्थना), 'अंधाऱ्या जगाची' (अंधेरे विश्व की) आदि कविताएँ द्रष्टव्य हैं। असंकलित कविताओं में एक महत्वपूर्ण कविता है- 'फक्त तुझी जर दगडी भिवयी (फकत तेरी अगर पथरीली भौंह) कविता अधिक उल्लेखनीय है। 'रहने दे जिंदा' कविता में परमतत्व से यही मांगा है कि, मेरे भीतर बेचैनी बनी रहने दें। मर्ढेकर भक्ति का रुढ़ मार्ग अपनाते नहीं, कर्मकांडों को भी स्वीकारते नहीं किन्तु सर्वशक्तिमान के प्रति श्रद्धा भाव जरुर व्यक्त हुआ है। 'ठायी ठायी रुप तुझे' (कण कण में तेरा ही अस्तित्व) कविता में परमशक्ति से संवाद है। अपने अहंकार को समाप्त कर परमतत्व से एकत्व होने की अभिलाषा अभिव्यक्त हुई है। 'ओठावर आली पूजा' (होठों

पर आयी प्रार्थना) में भक्त के बाहरी व्यक्तित्व और आंतरिक स्थिति में जो द्वैत है, उस भेद को मिटाने की बात कही गई है। कवि खुद को निर्व्याज, निस्वार्थी भक्त मानता है। इसलिए उस भक्त से जो भ्रष्टता, पाप का अपराध बोध है उसका चित्रण कवि करता है। उपरोक्त कविताओं में कवि की आध्यात्मिक एवं लौकिक अनुभवों की अभिव्यक्ति हुई है। 'निर्घृण प्रभो' (निष्ठुर ईश्वर) कविता में कवि ईश्वर के करुणा सागर, न्यायी रुप को नकारने का आशय देता है। अपराध मालूम न करके ही न्याय सुनाने वाला ईश्वर सामान्य है। उलटा मनुष्य ईश्वर से श्रेष्ठ है, ऐसा कवि का मानना है। 'आरामाचा राम' (आराम का राम) और 'आग अंधाराची जीवा' नामक कविताओं में ईश्वर विषयक अश्रद्धा का वैयक्तिक संदर्भ समाप्त होकर सामाजिक संदर्भ प्राप्त होने लगता है। 'राव, सांगता देव कुणाला' (ईश्वर किसे बताते हो?) कविता में ईश्वर पर गहन श्रद्धा रखनेवाले को प्रश्न करते हैं। उनका कहना है कि, ईश्वर तो 'शतुरमुर्ग' के समान है। तूफान के समय शतुरमुर्ग जिस तरह से चोंच छिपा लेता है, ठीक उसी तरह मनुष्य जब संकट में होता है, तो वह मुँह चुरा लेता है। तो 'अजुन येतो वास फुलांना' (अभी भी आती है खुश्बु फूलों से) कविता में मनुष्य और ईश्वर के बीच जो रिश्ता है, उसका वर्णन आया है। कवि का कहना है कि ईश्वर मनुष्य पर विजय पाना चाहता है और मनुष्य अपने ही सनातन अहंकार में लीन है। प्रस्तुत है कविता की कुछ पंक्तियाँ -

"±ú¢Ö¸ÖŸÖ»ÖÖ ¤ü¾Ö ¯ÖÆÖŸÖÖ
कुठे जाहली माझी फत्ते,
        माणुस म्हणतो चिरंतनाचे
        मनात माझा अस्सल कित्ते
पत्थर का भगवान देखता,
कहाँ हुई मेरी फतह?
        मनुष्य कहता चिरंतन के,
        मन में मेरे असली किस्से।"[48]

कवि हाथ में निराशा आने के बाद भी परमतत्व से संवाद खत्म नहीं करता। उसका कारण यही है, अपनी बुद्धि में निर्माण हुए प्रश्नों को छुडाने के लिए अज्ञात शक्ति के पास ही जाना पड़ेगा। मृत्यु के बाद मनुष्य का क्या होता है? जिसमें चिरंतन का पूत विराजित है, वह 'अद्‌भूत इमारत' कहाँ है? ईश्वर तूने मनुष्य को भूख क्यों दी? आदि प्रश्न है। ये सारे आध्यात्मिक, तात्विक प्रश्न है। प्रश्नों की एक श्रृंखला ही उनकी कविता 'फक्त तुझी जर दगडी भिवयी' (फकत तेरी अगर पथरीली भौंह) कविता में अभिव्यक्त हुई है। मनुष्य में अज्ञान होने के कारण कई प्रश्न पैदा हो रहे हैं। जीवसृष्टि, चराचर, परिवेश को लेकर कई सारे प्रश्न कवि मन में पैदा होते हैं। वे इस कविता में इस प्रकार

उपस्थित करते हैं- जैसे, पृथ्वी का जन्म कब हुआ? पृथ्वी, आप, तेज, वायु और आकाश का रहस्य क्या है? मन की व्याख्या कैसे करें? आदि प्रश्न हैं। उस चेतना का शोध कैसे करें? पर कवि को घोर विश्वास है कि मनुष्य की बुद्धि इन प्रश्नों के उत्तर पाने में एक न एक दिन सफल होगी। पर अंततः कवि के मन में परमतत्व के प्रति श्रद्धा भाव है, जो उपर्युक्त कविता में अभिव्यक्त हुआ है। यही शरणभाव इन पंक्तियों में व्यक्त हुआ है-

"डांटकर मैंने ही दी तुझे गालियाँ,
ŸÖÖ ³ÖÖß ŸÖ¸üi ÆÖß ¯Ö¸üÖ ¯Ö¸üi †ÖµÖÖ Æü »ÖÖ™üŸÖ
मुट्ठी में पकडकर नाक, लगाया मैंने
तेरी आँखों से मेरी आँखें जलती हुई।"[49]

कुल मिलाकर ये कह सकते हैं कि, मर्ढेकर की अनेक कविताओं में परमतत्व के प्रति जिज्ञासा, प्रश्नाकुलता, शरणताभाव, श्रद्धाभाव, नकार का साहस तथा अनुभव जन्य दार्शनिकता †Û³Ö¾µÖÖŒŸÖ Æü‡Ô Æü…

11. प्रयोगशीलता : (नये तेवर की कविता)

कवि बा. सी. मर्ढेकर की कविता की आंतरिक लय पकड़ने का प्रयास हमने अब तक किया। उनकी कविता में कौन-से अन्तः सूत्र मिलते हैं, इस पर काफी विचार-विमर्श अब तक हमने किया है। किन्तु उनकी कविता की बाह्य प्रकृति को समझना भी उतना ही आवश्यक है। क्योंकि, कविता का बाह्यरंग कहीं न कहीं कविता की आंतरिकता को प्रभावित करता है। विशेषतः ये दोनों ही कविता के ऐसे अंग हैं, जिनके आधार पर कविता को गहराई से समझने में सहायता मिलती है। मर्ढेकर की कविता आंतरिकता की दृष्टि से जितनी क्लिष्ट लगती है, उतनी ही क्लिष्टता या दुर्बोधता उनकी कविता के बाहरी सौंदर्य को लेकर प्रतीत होती रही है। कविता के आशय-सौंदर्य के पश्चात कविता का शिल्प सौंदर्य समझ लेना नितांत आवश्यक है। वस्तुतः मर्ढेकर मराठी कविता की परंपरा में 'नवकविता' के प्रवर्तक माने जाते हैं। यह 'नवता' उनकी 'प्रयोगशीलता' में अधिक लक्षित होती है।

मर्ढेकर की कविता पर मुख्य रुप से तीन आक्षेप या आरोप लगाये जाते हैं। मर्ढेकर की कविता दुर्बोध है, दूसरा अश्लिलता (न्यायालय में याचिका भी दायर की गयी थी, किन्तु फैसला कवि के पक्ष में आया) और तीसरा वाचक प्रिय न होना। ये सही है कि, मर्ढेकर की कविता में रंजनप्रधानता, अभिदार्थता और रोमँटिकवृत्ति से पाठक को आकर्षित करने वाली शैली प्रधानता का अभाव है। क्योंकि मर्ढेकर ने पूर्व परंपरा को नकारते हुए कविता के लिए एक नयी राह चुनी और बनायी भी। आशय एवं अभिव्यक्ति में यह कविता अपनी पूर्ववर्ती कविता का अनुसरण नहीं करती बल्कि इन दोनों क्षेत्रों में 'नवता' का दामन पकड़कर अनुभूति के नये क्षेत्र की खोज करती है। रहा सवाल

आक्षेपों और आरोपों का तो, ये कहा जा सकता है कि मर्ढेकर की कविता यंत्रयुगीन संस्कृति की देन है। उनकी जीवन दृष्टि महानगरीय जीवन मूल्यों से आक्रान्त है, साथ ही तत्कालीन समय में कवि की जो बुनावट हुई उसका असर उनकी कविता में दिखाई देता है। 'दुर्बोधता' आधुनिक कविता का प्रमुख लक्षण है और अनेकार्थ-सूचकता उसके सामर्थ्य की पहचान। यह कविता बौद्धिक है, विचार प्रवण है और अनुभूति की सूक्ष्मता को दर्शाने वाली है इसी कारण दुर्बोध है। रहा सवाल अश्लिलता का, मर्ढेकर की कविता निश्चित ही अश्लिल नहीं है। उनकी कविता में स्त्री देह के जितने भी वर्णन आये हैं, उनमें स्त्री की असहायता, यांत्रिकता, समाज और जीवन की वास्तविकता, मनुष्य सभ्यता का यथार्थ रुप दर्शाने के लिए कवि ने बिंबात्मकता, प्रतीकात्मकता और दैहिक अंग-प्रत्यंगों का वर्णन किया है। इस वर्णन में स्त्री का गौरव, उसकी विवशता, उसके प्रति करुणा, दुर्दशा का स्वर और श्रद्धाभाव अंकित हुआ है। तीसरा आक्षेप है, 'वाचकप्रिय न होना'। वस्तुतः वाचकप्रिय न होने कारण यही है कि, समकालीन समीक्षकों ने, पाठकों ने उस पर दुर्बोधता का ठप्पा लगाया। कविता के गहरे में जाने की, युगीन संदर्भों को समझने, मूल्यांकन करने की जहमत नहीं उठाई। यही कारण 'वाचकप्रिय न होने' का आक्षेप उनकी कविता पर लगाया गया। उनकी कविता में प्रयोगशीलता के कौन-से नये तेवर हमें दिखाई देते हैं। संवेदना, भाषा और शिल्प के क्षेत्र में ये कविता कौन-से नये आयाम गढ़ती है, जिसके आधार पर इस कविता की पृथकता, नवता अभिव्यंजित होती है। मर्ढेकर की आरंभिक कविता में सांकेतिकता, वर्णनात्मकता और उत्प्रेक्षा अलंकार को प्राथमिकता मिलती है। किन्तु धीरे-धीरे अनुभव संपन्नता, भावों की प्रगल्भता जैसे-जैसे आती गई, कविता के संवेदन स्वर में भी बदलाव आता गया। मर्ढेकर की सबसे बड़ी विशेषता उसके 'प्रतीक' संगठन में दिखाई देती है। नये प्रतीक, नये बिंब, नये मिथक गढ़कर कवि ने युगीन संदर्भो की तलाश की। प्रतीक निर्माण में पाश्चात्य प्रतीकवादी कवियों का प्रभाव उन पर रहा है। उनकी कविता में चिकित्साशास्त्र, शल्यचिकित्साशास्त्र के अनेक प्रतीक आते हैं। 'इंजेक्शन, क्ष-किरण, सीसा आदि प्रतीकों का आधुनिक जीवन की स्थिति और गति दर्शाने के लिए उपयोग हुआ है। वस्तुतः मर्ढेकर की संपूर्ण बुनावट विज्ञान युग में हुई है। विज्ञान की अनेक अवधारणाएँ, अनेक संदर्भ उनकी कविता में प्राप्त होते हैं। मर्ढेकर की प्रतीक-व्यवस्था में उनका अध्ययन जितना आधारबिंदू रहा है उतना ही निरीक्षण भी। यह प्रतीक उनकी बचपन की स्मृतियाँ, आसपास का परिवेश, प्रकृति में छिपे सौंदर्यमूलक भाव आदि की वजह से अंकित हुए हैं। द्रष्टव्य है उनकी 'फलाटदादा' कविता। इस कविता में रेल 'प्लॅटफॉर्म' का मानवीकरण करते हुए नयी प्रतीक व्यवस्था की अभिव्यंजना की है। इंजिन, विमान, सिग्नल, रडार, रोबो आदि प्रतीकों का सार्थक उपयोग हुआ है। संगीत का भी अध्ययन होने से उस क्षेत्र के भी अनेक प्रतीक मर्ढेकर की कविता में अभिव्यंजित हुए हैं। निसर्ग प्रतीकों का उत्कृष्ट उदाहरण 'अभी भी आती है खुश्बू फूलों से'

कविता रही है। प्रस्तुत है कुछ काव्य पंक्तियाँ -

"आसमान में भगवा रंग
और सामने नंगा बच्चा
अभी भी डुलकियाँ लेते गिर रहा है
इन दोनों के अंतर को ढोर।
भूकंप का इधर धक्का
और उस ओर युद्ध नगाड़े
चारों ओर एक ही शोर
पुराने प्रेतों पर नई आग।"[50]

नये प्रतीकों की व्यंजना करने वाली कुछ कविताएँ द्रष्टव्य हैं- 'पंक्चर हुई ही रात भले ही', 'पीप में मरे गीले चूहे', 'बन बांबूचे' आदि कविताएँ। मर्ढेकर की कविता में 'यात्री' का प्रतीक बार-बार आया है। वस्तुतः प्रवास, भ्रमण मनुष्य का आदिम अनुभव रहा है। कवि की यात्रा जन्म से शुरू हुई है और निरंतर नये-नये पड़ावों से गुजरते हुए- कभी अस्थिरता, अतृप्ति से शरीर में थकावट आती है। मर्ढेकर के भीतर बैठे हुए यात्री इन सारे अनुभवों को महसूसते हैं। इसलिए 'शिशिरागम' में सौंदर्यासक्ति, 'कुछ कविताओं' में अपराध बोध और 'कुछ और कविताएँ' में अस्थिरता, अतृप्ति की भावाभिव्यंजना हुई है। मर्ढेकर की कविता में 'पंछी' और 'गर्भवती' के अनेक दृश्य अंकित हए हैं। जिसमें कवि ने नये संदर्भों की तलाश की है। पंछी यात्री का, गर्भवती सृजनशीलता का, भावनिक, बौद्धिक प्रतीकों की अभिव्यक्ति कवि ने अनेक कविताओं के माध्यम से की हैं।

'भाषा' मर्ढेकर की कविता का सबसे प्रबल पक्ष रहा है। अनेकार्थ सूचकता, बिंबात्मकता, प्रतीकात्मकता और गेयता और नाटयात्मकता के आधारों को लेकर भाषा अधिक अर्थवाही बनी है। 'मैं एक चिंटी' कविता में गेयता के साथ-साथ नाट्यात्मकता के भी दर्शन होते हैं।

'व्यंग्य' मर्ढेकर की कविता का शक्तिशाली अंग रहा है। उनकी अनेक कविताओं में व्यक्ति जीवन की विद्रूपता, समाज जीवन की विसंगतियाँ और सत्ता-व्यवस्था के अंतर्विरोधों पर जबरदस्त व्यंग्य के प्रहार किये गये हैं। मनुष्य जीवन की क्षुद्रता को दिखाने के लिए कवि ने व्यंग्य का जबरदस्त उपयोग किया है। मनुष्य की असहाय, निरर्थक, अर्थशून्य, यांत्रिक जीवन की स्थिति को अभिव्यक्त करने के लिए व्यंग्य के अस्त्र का सार्थक उपयोग किया गया है। इसके लिए कवि के पास सार्थक भाषा का होना नितांत आवश्यक होता है। कवि ने प्राचीन मिथकों (द्रोपदी, सीता, रावण, कृष्ण) का समुचित उपयोग किया है। वस्तुतः भावों की संपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए हमेशा काव्य भाषा अपूर्ण ही होती है, मर्ढेकर को भी यही लगता था। इसलिए भाषा में शब्द-योजना, अर्थ योजना, ध्वनि योजना,

वक्रोक्ति योजना, अलंकार योजना और शिल्प योजना पर विशेष ध्यान देना आवश्यक होता है। मर्ढेकर ने इस पर मूलभूत काम किया है। इसलिए उनकी कविता में संस्कृत की तत्सम प्रधान शब्दावली के साथ-साथ देशज, निर्मित शब्द, मिश्रित शब्द (अंग्रेजी-मराठी), लिप्यंतरित शब्द आदि का अत्यंत सघन उपयोग किया है। कविता की वाक्य रचना, उच्चार प्रक्रिया और शब्दों में आरोह-अवरोह पर काफी काम किया है। अंग्रेजी-मराठी, फ्रेंच, इतालियन और हिंदी भाषा के जानकार होने के कारण इन तमाम भाषाओं के शब्द उनकी कविताओं में आए हैं। अंग्रेजी-मराठी सम्मीश्रण के शब्द-पंक्चरलेली, डाक्तर, फलाटदादा, शिंगल, हपीस आदि। तो शुद्ध अंग्रेजी शब्द जैसे- ब्रेक, रोबो, पायलन, कॉकटेल, पिष्टन, पंक्चर, पॉलिश, पंप आदि।

मर्ढेकर की कविता में छंद वैविध्य भी विपुल मात्रा में दिखाई देता है। 'शिशिरागम' की अधिकांश कविताओं में शार्दुलविक्रीडित, मंदारमाला, दिंडी, वसंततिलिका आदि छंदों का सार्थक उपयोग हुआ है। 'कुछ कविताएँ' संग्रह में 'ओवी', 'अभंग', 'देवीदार' आदि। मर्ढेकर की सबसे बड़ी ताकत उनकी शब्द-योजना में दिखाई देती है। अप्रतिम शब्दयोजना, भाव व्यंजना, कविता में कटाक्ष (Irony) की वजह से कविता अनेकार्थी बनी हैं। इसी वजह से कभी-कभी मूल अर्थ पकड़ पाने में असफलता मिलती है। किन्तु मर्ढेकर की संपूर्ण प्रतिभा उनकी भाषा योजना में दिखाई देती है, जो विशेष उल्लेखनीय है। कुल मिलाकर कवि मर्ढेकर ने कविता के क्षेत्र में जिस प्रयोगशीलता का परिचय दिया हैं, वह अपने आप में उनकी प्रतिभा-संपन्नता को दर्शाता है। इसलिए मराठी काव्य परंपरा में उनकी एक अलग काव्यदिशा दृष्टिगोचर होती है। साथ ही 'नवकविता' के प्रवर्तन, विकास और उपलब्धि को सफलता में बदलने में उनकी महती भूमिका रही है, जिसे मराठी जगत् कदापि नहीं भूल सकता।

उपर्युक्त विवेचन में कवि मर्ढेकर की ग्यारह प्रमुख संवेदनागत, शिल्पगत विशेषताओं को हमने प्रस्तुत किया है। इसके अलावा भी कुछ गौण विशेषताएँ नजर आती है, जिनका यहाँ उल्लेख हम करेंगे। निराशा बोध, मूल्यबोध, वैयक्तिकता, अकेलेपन की पीड़ा, 'स्व' की तलाश, संतकाव्य का संस्कार, अनेकार्थ सूचकता एवं दुर्बोधता, मुक्तछंद का समर्थन, आत्मपरीक्षण एवं आत्मनिष्ठता का भाव आदि। पर वास्तविकता ये है कि, मर्ढेकर ने अपनी प्रतिभा के बलबूते पर मराठी काव्य परंपरा में 'मर्ढेकर युग' का निर्माण किया। इतना ही नहीं अपनी उत्तरवर्ती कविता को दिशा देने का काम इस कवि ने किया है। इसलिए मराठी काव्य परंपरा में इस कवि का स्थान अत्यंत स्पृहणीय रहा है, जिसे किसे भी आलोचक को नजरअंदाज करना मुनासिब नहीं होगा।

क) अज्ञेय और मर्ढेकर की कविताःतुलनात्मक अध्ययन (संवेदना, भाषा और शिल्प के परिप्रेक्ष्य में)

1. अज्ञेय और मर्ढेकर की कविता में संवेदनागत साम्य-वैषम्य : (आधुनिकता के संदर्भ में)

आधुनिक हिंदी-मराठी साहित्य में अज्ञेय और मर्ढेकर ने अपनी प्रतिभा से एक नये युग का निर्माण किया। हिंदी में सन् 1940 ÃÖ 1987 तक 'अज्ञेय युग' का स्पष्ट प्रभाव एवं प्रचलन दृष्टिगोचर होता है तो मराठी में सन् 1940 ÃÖ 1956 तक 'मर्ढेकरी' कविता का एक नया युग स्थापित हुआ। जिसका प्रभाव परवर्ती कविता पर ही नहीं, आज तक की मराठी कविता पर स्पष्ट देखा जा सकता है। यूँ तो कवि अपने समय और समाज की उपज होता है। समाज की पारिस्थितिकी में जैसे-जैसे बदलाव के चिह्न अंकित होने लगते हैं वैसे-वैसे कवि और कविता की प्रवृत्ति में बदलाव की सूचना प्राप्त होती है। अपने युगीन परिवेश का पुनर्पाठ ही एक तरह से प्रतिभाशाली कवि करता है। युगीन अंतर्विरोध, स्थितियाँ और गतियाँ, समाज का बदलता का तापमान आदि को कवि रेखांकित करता Æî...

अज्ञेय और मर्ढेकर- दो भिन्न भाषा, दो भिन्न संस्कृति, दो भिन्न सामाजिक-आर्थिक परिवेश में पले-बढ़े कवि रहे हैं। दोनों के व्यक्तित्व और कृतित्व में अनेक सम-विषम रेखाएँ परिलक्षित होती है। दोनों की साहित्य, जीवन और कलाविषयक मान्यताओं में भी अनेक साम्य-वैषम्य दिखाई देते हैं। दोनों के पारिवारिक एवं साहित्यिक परिवेश में भी भिन्नता दिखाई देती है। किन्तु यह सच है कि दोनों समकालीन हैं। अपने समय और समाज के प्रति बड़े गंभीर और सतर्क है। हालांकि किसी भी दो व्यक्ति या कवि में व्यक्तित्व और जीवनगत दृष्टिकोण में वैषम्य का होना अधिक लाजिमी होता है। किन्तु संयोग कहिये या साहित्य और कला और जीवन के बारे में देखने के दृष्टिकोण में अनेक समानताएँ इन दोनों में लक्षित होती है।

अज्ञेय और मर्ढेकर की कविता में जो सम-विषम रेखाएँ हैं, उसे कुछ बिंदुओं के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है। दोनों कवियों के काव्य में प्राप्त 'संवेदनागत' प्रवृत्तिविशेष को केंद्र में रखकर तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। विशेषतः दोनों की कविता जिस 'आधुनिकता' के परिप्रेक्ष्य में निर्मित हुई, विकसित हुई और अपनी-चरमसीमा पर पहुँची, उसका आकलन निम्नांकित बिंदुओं के आधार पर किया जा सकता है।

अज्ञेय और मर्ढकर की कविता में संवेदनागत साम्य :

व्यक्ति एवं समाज का चित्रण :

व्यक्ति समाज की एक महत्वपूर्ण इकाई है। व्यक्ति और समाज एक-दूसरे के पूरक भी है विरोधी भी। व्यक्ति और समाज में सदियों से संघर्ष चलता आया है। यह संघर्ष अनेक कवियों की

कविता में भिन्न-भिन्न रूप में उभरा है। व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध, व्यक्ति स्वतंत्रता, व्यक्ति चेतना, सामाजिक बाध्य, वैयक्तिकता का आग्रह, समाजोन्मुख होने की प्रवृत्ति दोनों कवियों में कम-अधिक मात्रा में दिखाई देती है। अज्ञेय का संपूर्ण काव्य व्यक्ति चेतना का अविष्कार करता है। उनका मानना है कि व्यक्ति विकास के साथ समाज विकास जुड़ा हुआ है। वे वैयक्तिकता का आग्रह करते हैं, तुलना में सामाजिकता के। व्यक्ति का अन्तःसत्य ही सर्वोपरि है, ऐसा अज्ञेय का कहना है। वे व्यक्ति के बाह्य अंग की अपेक्षा व्यक्ति स्वतंत्रता और व्यक्ति सत्य को उजागर करते हैं। उनका दृष्टिकोण समाजोन्मुख व्यक्तिवाद है। अज्ञेय की इसी संवेदनागत चेतना को ध्यान में रखते हुए शशि शर्मा लिखती है, "अज्ञेय ने अपने चिन्तन में व्यक्ति की गरिमा को आधुनिक, वैज्ञानिक अन्वेषक की दृष्टि से लगातार प्रतिष्ठापित करने का प्रयत्न किया है।"[51] अर्थात् व्यक्ति चेतना ही अज्ञेय के आधुनिकता बोध के केंद्र में है। इसी आधुनिकता बोध के चलते कवि अज्ञेय व्यक्ति के आभ्यन्तरिक यथार्थ का प्रभावी चित्रण करते हैं। मनुष्य के भीतरी मनोवेगों का विश्लेषण करते हैं। यह कवि व्यक्ति को अनेक संभावनाओं का पूंज मानता है। व्यक्ति की समस्त क्षमताओं और सीमाओं को अज्ञेय बताते हैं। इसलिए अज्ञेय का व्यक्ति धीरे-धीरे समष्टि की ओर पथक्रमण करता है। यही कारण है कि विश्वंभर मानव लिखते हैं, "उनका व्यक्ति अपना पृथक अस्तित्व रखकर ही सामूहिक को पुष्टि करनेवाला है क्योंकि, उसका लक्ष्य ही लोक कल्याण है।"[52] किन्तु यह भी वास्तविकता है कि, अज्ञेय व्यक्ति की गरिमा के प्रबल समर्थक होते हुए भी पश्चिम से जो व्यक्तिवादी विचारधारा आ रही थी उसे पचाकर भारतीय व्यक्तिवाद को एक नया रुप देते हैं। संवेदना का एक नया संसार गढ़ते हैं। किन्तु अज्ञेय व्यक्ति को समाज की ओर प्रयाण करते हुए दिखाते हैं, पर समाज में पल रहे अन्याय-अत्याचार का समर्थक नहीं विरोधी रुप में उसे खड़ा करते हैं। अर्थात् अज्ञेय की कविता में व्यक्ति के बहाने समाज आता है। व्यक्ति और समाज के द्वंद्व को कवि अंकित करता है। अज्ञेय जी की लोक कल्याणकारी व्यक्तिवादी चेतना उनकी कविता 'अन्धकार में जागने वाले' नामक कविता में प्रखर रुप से उभरकर आयी है-

> "मेरा अकेलापन एक समूह में विलय हो जाता है,
> जिसके हर सदस्य का एक बंधा हुआ कर्तव्य है,
> जिनसे हमारा देश पलता है।"[53]

वस्तुतः मर्ढेकर की कविता में भी व्यक्ति और समाज का सजग चित्रण दिखाई देता है। मर्ढेकर ने औद्योगिक सभ्यता में पल रहे, यंत्रयुग में सांस ले रहे, दो भीषण महायुद्धों के बीच असुरक्षा में जी रहे 'व्यक्ति' का चित्रण किया है। मर्ढेकर ने अपनी अनेक कविताओं में व्यक्ति जीवन की क्षुद्रता का चित्रण किया है। मनुष्य जीवन की असहायता, अकेलापन, अर्थशून्यता और पीड़ामय जीवन जी

रहे 'व्यक्ति' का चित्रण वे करते हैं। मर्ढेकर की कविता में व्यक्ति के प्रति आस्था है। अकेलापन, रुढ़िग्रस्त जीवन जी रहे मनुष्य की अभिव्यक्ति कवि करता है। उनकी कविता आत्मकेंद्रित नहीं है, व्यक्ति केंद्रित हैं। जिसके अनेक उदाहरण उनकी कविता में मिलते हैं। पर मर्ढेकर 'व्यक्ति' में अधिक नहीं रमें। क्योंकि, समाज को लेकर यह कवि अत्यंत संवेदनशील प्रतिक्रिया देता है। मर्ढेकर समाज के बहाने व्यक्ति की बात करते हैं। वे अनुभूति के नये सरोकार से पाठकों को जोड़ते हैं। जहाँ 'मी एक मुंगी' (मैं एक चींटी) कविता में व्यक्ति जीवन की क्षुद्रता को दर्शाते हैं, वहीं वे समाज जीवन की भयावह वास्तविकता से भी हमें अवगत कराते हैं। समकालीन यथार्थ से हमें परिचित कराते हैं। इसलिए उनकी कविता में 'कालबोध' और 'मूल्यबोध' बराबर लक्षित होता है। यही बोध कवि को आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में एक बड़े कवि के रुप में सिद्ध करता है। महानगरीय जीवन बोध और प्रश्नाकुलता से कवि जुड़ा हुआ है, जिसकी सजग अभिव्यक्ति उनकी कविता में हुई है। द्रष्टव्य है उनकी कविता जो समाज में फूट डाल रहे नेताओं को संबोधित करते हुए लिखी है।

"Œµöö ´ö“öö ¸Æ Æö ±ú™...
क्यों खराब कर रहे हो स्वतंत्रता की कापी
स्वजनों के रक्त से हमेशा।
लपलपाना।"[54]

या इसी कविता में एक और संदर्भ प्राप्त होता है, जो साम्प्रदायिकता के चेहरे को कवि बेनकाब करता है। "अरे! हिंदू-मुसलमान। प्राण देश पर कुर्बान परंतु आपस की यह लड़ाई है लांछनास्पद। अल्लाह- हे राम।"[55]

कुल मिलाकर ये कह सकते हैं कि अज्ञेय और मर्ढेकर का व्यक्तिवाद समाजोन्मुख हैं। दोनों के दृष्टिकोण में भिन्नता जरुर है किन्तु लक्ष्य एक ही है- लोक कल्याण। दोनों कवियों में यह विश्वास पाया जा सकता है कि व्यक्ति ही समाज का मूलाधार है। व्यक्ति सत्य को अभिव्यक्त करना दोनों की कविता का लक्ष्य है। अर्थात् दोनों कवियों ने अपने संपूर्ण काव्य में व्यक्ति से समष्टि तक का दौर अंकित किया है। व्यक्ति की गरिमा को बचाए रखते हुए समाज के सृजनशील मानस को टटोलने का प्रयास दोनों ने किया है। अर्थात् 'वैयक्तिकता' और 'व्यक्ति स्वतंत्रता' आधुनिकता की दो मुख्य प्रेरणाएँ हैं। जिसकी वजह से उभय कवियों को आधुनिक हिंदी-मराठी साहित्य के प्रणेता के रुप में देखा जा सकता है।

महानगरीय जीवन-बोध :

अज्ञेय और मर्ढेकर की कविता में महानगरीय जीवन-बोध के अनेक चित्र अंकित हुए हैं। कवि अज्ञेय ने रोमाँटिक कविता से छुटकारा पाने के बाद नगरीय बोध की अभिव्यक्ति कविता में की

है। कवि जीवन यथार्थ से टकराता है। कवि ने अपनी अनेक कविताओं में नगर सभ्यता में पल रही विसंगतियों को उजागर किया है। नगर जीवन की यांत्रिक सभ्यता, खोखलापन, मानवीय सम्बन्धों में तनाव, जीवन में अनिश्चितता, असहायता आदि का सजग चित्रण किया है। कवि ने सभ्यता के नाम पर मनुष्य का हो रहा दोहन चित्रित किया है। अज्ञेय की 'उषाःकाल की भव्य शान्ति', 'साँप' तथा 'हरी घास पर क्षण भर' कविता संग्रह की अनेक कविताएँ इसका साक्ष्य देती है। कवि ने आधुनिक सभ्यता के संदर्भ में नर-नारी के प्रणय संबंधों की नयी व्याख्या की है। यहाँ नगर सभ्यता के प्रति गहरा व्यंग्य अभिव्यक्त हुआ है। यंत्र वैज्ञानिक सभ्यता ने मनुष्य को कितना अकेला और असहाय बना दिया है, इसका सजीव चित्रण कवि करता है। नगर सभ्यता ने प्रेम सम्बन्धों को जैसे नये ढंग से देखने के लिए बाध्य किया है। उपर उद्धृत कविताओं के अलावा 'हवाई यात्रा' और 'दफ्तर शाम' जैसी कविताएँ यांत्रिक सभ्यता के विषय को अभिव्यक्त करनेवाली कविताएँ है। नयी काव्यभूमि से परिचित कराने का श्रेय अज्ञेय को देते हुए डॉ. नंदकिशोर आचार्य लिखते हैं, "हरी घास पर क्षण भर की कविताओं में अज्ञेय की संवेदना ने एक निश्चित स्वरुप ही ग्रहण नहीं किया, हिंदी को भी नयी काव्यभूमि से परिचित करवाया। संवेदना व शिल्प, भाषा सभी दृष्टियों से इस संग्रह का परवर्ती कविता पर स्थायी प्रभाव पड़ा। यांत्रिक सभ्यता और नगर-बोध की जितनी अभिव्यक्ति परवर्ती हिंदी काव्य में हुई उसका प्रारंभ इस काव्य संग्रह में देखा जा सकता है।"[56] अलावा इसके 'इन्द्रधनु रौंदे हुए ये शीर्षक यंत्रसभ्यता के आक्रमण का संकेत करता है। 'इन्द्रधनु' सौंदर्य का प्रतीक है। यंत्र ने सौंदर्य चेतना को जड़ बना दिया है। 'ऊँची उड़ान', 'पश्चिम के जनसमूह' और 'साँप' जैसी कविताएँ उनकी इसी चेतना की अभिव्यक्ति है। 'साँप' कविता में कवि का यही कहना है कि नगर सभ्यता ने व्यक्ति को सहानुभूतिहीन ही नहीं, विषैला बना दिया है। नगर सभ्यता के प्रति वितृष्णा का भाव कवि में बार-बार उभरता है। 'हमारा देश' नामक कविता में उस शहरी सभ्यता पर व्यंग्य है जिसके कारण सांस्कृतिक विघटन होता जा रहा है। सांस्कृतिक विघटन के इस दौर में कवि व्यक्ति की निजता को असूरक्षित महसूस कर रहा है। इसी बात को केंद्र में रखते हुए डॉ. नंदकिशोर आचार्य लिखते हैं, "आज के नागर जीवन, विशेषतः महानगरों के जीवन के प्रति अज्ञेय में वितृष्णा का भाव इसीलिए है कि, वहाँ निजता की सुरक्षा दुभर है, वहाँ की कृत्रिमता और मृषा संस्कृति की अनिवार्यतः विरोधी Æ..."[57] इसी संदर्भ को दर्शाने वाली अज्ञेय की काव्य पंक्तियाँ कुछ इस प्रकार है-

'बड़े शहर के ढंग और हैं,
हम गोटे हैं वहाँ
दाँव गहरे हैं, उस चौपट के।'

या 'बावरा अहेरी' संकलन की इसी शीर्षक की कविता द्रष्टव्य है-

'वही जो तारे हैं वही आकाश है।
किन्तु यहाँ आसपास
घुमड़न है, त्रास है
मशीनों की गड़गड़ाहट में
भोली (कितनी भोली) आत्माओं की
अनुरणन की मोहमयी प्यास है।"

अर्थात् कवि अज्ञेय ने औद्योगिक सभ्यता, यंत्रयुग और भौतिक विकास की आपाधापी में असहाय मनुष्य को बड़े मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त किया है। इसलिए नगरबोध उनकी कविता की एक मुख्य प्रवृत्ति के रुप में उभरी है।

कवि बा. सी. मर्ढेकर ने भी अपनी कविता में 'महानगरों' में सांस ले रहे आम इन्सानों के अनेक चित्र उपस्थित किये है। मर्ढेकर का यह मानना है कि विज्ञान युग के कई प्रतिकूल परिणाम मनुष्य जीवन पर हुए हैं। मुंबई जैसे महानगर में जीते समय इसका अनुभव बड़ी तीव्रता से होता है। मानवीय संबंधों का टूटते जाना, स्त्रियों की दुर्दशा, मानवता की पल प्रति पल हो रही हत्या, अकेलापन और भय से आप्लावित मनुष्य जीवन आदि का मार्मिक अंकन कवि करता है। मर्ढेकर की कविता में 'महानगर मुंबई' बार-बार उभरता है। कवि ने मुंबई के यंत्रवत विद्रुप, अशांत जीवन का अत्यंत जीवंत चित्रण किया है। यांत्रिकता, औद्योगिकरण और मशीनी सभ्यता को कवि बेहद संजीदा तरीके से व्यक्त करता है। महानगरीय जीवन में व्याप्त कोलाहल, रिक्तता, अकेलापन, परायापन आदि भावों की अभिव्यक्ति कवि ने की है। कवि महानगर के तमाम अंतर्विरोधों, विडंबनाओं तथा यातनाओं को चित्रित करता है। साथ ही इस महानगर की तंग गलियाँ, मुहल्ले, वहाँ का मध्यवर्ग, कामगार वर्ग, वेश्याओं की बस्तियाँ, उनका यांत्रिक जीवन आदि का मर्मग्राही अंकन कवि करता है। इस संदर्भ को दर्शानेवाली अनेक कविताएँ मर्ढेकर ने लिखी है। 'गोंधळलेल्या अन् चिंचोळया' (कोलाहल से भरी तथा संकरी) 'जिथे मारते कांदेवाडी' (कांदेवाडी मुंबई), 'मी एक मुंगी' (मैं एक चिंटी), 'न्हालेल्या जणु गर्भवतीच्या' (नहाई हुई जैसी गर्भवती), 'पंक्चरली जरी रात्र दिव्यांनी' (पंक्चर हुई हो रात दीयों से), 'फलाटदादा' आदि कविताएँ संदर्भित हैं। 'गोंधळलेल्या अन् चिंचोल्या' (कोलाहल से भरी तथा संकरी) कविता में कवि ने गिरगांव की गलियाँ, वहाँ के लोग, उनका अंधकारमय जीवन, यंत्रवत जीने का अभिशाप, परिस्थिति से परेशान आम मनुष्य आदि का प्रभावी चित्रण कवि ने किया है। मुंबई जैसे महानगर में चल रही वेश्या वृत्ति, स्त्री की असहाय एवं बेबस स्थिति और जीवन में व्याप्त एकरसता, नीरसता का चित्रण कवि ने किया है। इस शहर में उभर रहा आर्थिक विषमता का भयावह चित्र, भूख और बदहाली का मंजर, मूल से उखड़ जाने का दर्द, लाचारी,

सांस्कृतिक दरिद्रता, मध्यवर्गीय जीवन में व्याप्त असहायता, अर्थशून्यता का प्रभावी चित्रण कवि ने किया है। मर्ढेकर की एक महत्वपूर्ण कविता है, जो इसी संदर्भ को दर्शाती हैं, 'पिपात मेले ओल्या उंदीर' (पीप में मरे जो गीले चूहे)। प्रस्तुत कविता द्रष्टव्य है-

"मरे पीप में गीले चूहे,
गर्दन गिरी, जैसे लचक गई हों,
ÆöŠö ¯ö¸¡ ÆöŠ¡ ×´ö»ö,
गर्दने गिरी बिना आसक्ति के।
गरीब बेचारे बिलों में जीए
पीप में मरे हीचकी बंधकर
दिन चला गया कंजई आँखे,
गात्रविंग और धो लेकर।"[58]

कवि की एक और महत्वपूर्ण कविता है, जो महानगरीय बोध को व्यक्त करती है। कविता का शीर्षक है- 'मी एक मुंगी' (मैं एक चींटी)। प्रस्तुत कविता में कवि ने मनुष्य को 'चिंटी' की प्रतीकात्मकता में पेश किया है। 'चिंटी' क्षुद्रता का प्रतीक है। मर्ढेकर मनुष्य जीवन की क्षुद्रता को ¤¡¿ööŸö Æ¡...

तात्पर्य यही है कि, अज्ञेय और मर्ढेकर की कविता में नगरीय बोध के अनेक दृश्य उपस्थित हुए हैं। मर्ढेकर शहरी जीवन के प्रॉडक्ट है। अज्ञेय ने भी नगर जीवन में व्याप्त अंतर्विरोधों को बड़े मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त किया है। अर्थात् उभय कवियों की कविता में नगरीय संस्कृति के परिणाम स्वरुप अभिव्यक्त जीवन का अत्यंत मार्मिक चित्रण हुआ है। यह महत्वपूर्ण साम्य दोनों में दिखाई देता है।

भावुकता एवं बौद्धिकता का चित्रण :

हिंदी के दार्शनिक कवि अज्ञेय और मराठी नवकविता के अग्रणी मर्ढेकर ने कविता के क्षेत्र में पूर्ववर्ती परंपरा को नकारते हुए खुद की राह बनायी। दोनों कवियों ने रोमांटिक काव्यधारा के विरुद्ध खड़े होकर एक नयी काव्यभूमि का प्रवर्तन किया। परिणामतः काव्य जनजीवन के निकट आया। यहाँ आकर कवि मनुष्य जीवन की यथार्थ संवेदनाओं को व्यक्त करने लगा। विशेषतः अज्ञेय व्यक्ति के आभ्यन्तरिक यथार्थ का बखुबी चित्रण करने लगे। भावुकता को नकारते हुए (निर्जल नकार) इन दोनों कवियों ने बौद्धिकता का दामन पकड़ा। वस्तुतः 'बौद्धिकता', 'तर्क बुद्धिवाद', 'विवेकधर्मिता' तथा 'प्रखर वैचारिकता' आधुनिकता के पहचान बिंदू हैं। इन दोनों कवियों ने 'बौद्धिकता मूलक यथार्थ दृष्टिकोण' अपनाया। अर्थात् बौद्धिकता के आग्रह ने भावुकता की काव्यभूमि को नकारना शुरू किया। परिणामतः कविता के क्षेत्र में एक नयी काव्य प्रवृत्ति का उदय हुआ।

वस्तुतः अज्ञेय और मर्ढेकर जिस सामाजिक, राजनैतिक परिवेश में कविता लिख रहे थे, उस काल की स्थितियों का कायदे से विश्लेषण कर रहे थे। वे तत्कालीन परिस्थिति के भीतर पैठकर अपनी सघन अनुभूति को अभिव्यक्त करते हैं। युद्ध के भीषण प्रभाव, औद्योगिक विकास की प्रक्रिया से उदित पूंजीवादी सभ्यता, वैज्ञानिक युग की त्रस्तता, चिड़चिड़ापन, यांत्रिकता आदि बातों के कारण भावुकता का स्थान बौद्धिकता ने ले लिया। धीरे-धीरे कविता में भावना के स्थान पर बुद्धि तत्व विराजित होता गया। इसी बौद्धिकता की वजह से कविता में प्रामाणिक एवं वास्तविक दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति होने लगी।

अज्ञेय की प्रारंभिक कविताओं में 'भावुकता' के दर्शन होते हैं। 'इत्यलम्' तक छायावादी संस्कारों में ही कवि पलता रहा। किन्तु ' प्रथम तारसप्तक' सन् 1943 के प्रकाशन के पश्चात कवि ने भावुकता को त्यागकर बौद्धिकता का आग्रह शुरू किया। इस परिवर्तन की सूचना 'तारसप्तक' के सम्पादकीय वक्तव्य में मिलती है। किन्तु यह सच है कि अज्ञेय में कई बार भावुकता हावी होती हुई नजर आती है।

बा. सी. मर्ढेकर की काव्य-यात्रा में भी लगभग यही स्थिति दिखाई देती है। 'शिशिरागम' और 'प्रेमाचे लव्हाळे' (प्रेम के पटरे) में कवि की भावुकता, स्वच्छंदतावादी वृत्ति की झांकी मिलती है। किन्तु 'कांही कविता' (कुछ कविताएँ) और 'आणखी कांही कविता' (कुछ और कविताएँ) के प्रकाशन के पश्चात कवि बौद्धिकता का आग्रह पकड़ने लगता है। मर्ढेकर की बौद्धिकता में मनुष्य प्रेम अभिव्यक्त होता है। वे बौद्धिकता के माध्यम से मनुष्य समाज की ओर देखने का सशक्त प्रयास करते हैं। अर्थात् कहीं-कहीं बौद्धिकता आध्यात्मिक संवेदना में परिवर्तित होती हुई दिखाई देती है। तात्पर्य यही है कि, उभय कवियों ने अपने सृजन-कर्म में भावुकता को त्यागकर तर्क बुद्धिवाद को ´ÖÆüŸ¾Ö x¤üµÖÖ...

समग्र जीवन-बोध :

आधुनिकता समग्रता को महत्व देती है। वह जीवन की ओर अनेक आयामों से देखने का एक स्पष्ट दृष्टिकोण है। मर्ढेकर के काव्य में जीवन संपूर्ण आयामों को लेकर उपस्थित हुआ है। उनका काव्य जीवन का विस्तृत ब्यौरा प्रस्तुत करता है। मर्ढेकर के काव्य में आधुनिक मनुष्य की पीड़ा है। जीवन के प्रति मर्ढेकर का दृष्टिकोण समग्र है। कवि एक साथ कितने आयामों से देखता है, इसका प्रमाण उनकी अनेक कविताएँ हैं। मध्यवर्गीय मनुष्य का स्वप्नभंग, मोहभंग, कामगार वर्ग की पीड़ा, श्रमिकों की व्यथा, वेश्याओं का जीवन, गर्भवती स्त्री की वेदना, महानगरों का गंदगीपूर्ण जीवन, परिस्थिति का शिकार मनुष्य, अकेलेपन, यांत्रिक जीवन जीता हुआ मनुष्य, आध्यात्मिक अनुभूति, प्रेम की अनुभूति, दुःख के क्षण, विरह के क्षण तथा मनुष्य की असहाय स्थिति का मर्मग्राही

चित्रण कवि मर्ढेकर करते हैं। वस्तुतः वे जीवन को 'क्षण' के रुप में नहीं, विस्तृत एवं विशद रुप में देखते हैं। वे अपनी कविता में जीवन के विविध पहलुओं की पहल करते हैं। उनकी अनेक कविताएँ इसके प्रमाण हैं। जैसे- 'फलाटदादा', 'गोंधळलेल्या अन् चिंचोळया', 'पांडुर संध्या चौथ्या प्रहरी', 'न्हालेली जणु गर्भवती', 'अजुन येतो वास फुलांना' आदि कविताएँ इसके सुंदर उदाहरण हैं।

इसके विपरित कवि अज्ञेय क्षणवादी हैं। वे क्षणानुभूति को महत्व देते हैं। वे जीवन को समग्रता में नहीं, टूकड़ों में, क्षणों में बांटकर देखते हैं। अर्थात् अज्ञेय मनुष्य जीवन में व्याप्त 'क्षण' बोध को प्रभावी रुप में प्रस्तुत करते हैं। अर्थात् क्षणानुभूति के महत्व को प्रतिपादित करते हुए वे लिखते हैं-

> "एक क्षण होने का, अस्तित्व का, अजस्रअद्वितीय क्षण।
> होने के सत्य का, सत्य के साक्षात का, साक्षात के क्षण।
> क्षण के अखंड पारावार का
> आज हम आचमन करते हैं।"

मर्ढेकर की कविता में जीवन का विस्तार है, किन्तु वह विस्तार हम अज्ञेय में नहीं पाते। क्योंकि अज्ञेय के काव्य में प्रकृति, अध्यात्म और वैयक्तिकता को अधिक महत्व दिखाई देता है। मर्ढेकर जीवन को बांटकर नहीं, समग्रता में देखते हैं। किन्तु अज्ञेय में क्षण के आग्रह में क्षणिकता का भाव नहीं हैं, बल्कि अनुभूति की प्राथमिकता का आग्रह है।

प्रश्नाकुलता :

अज्ञेय और मर्ढेकर की कविता मनुष्य जीवन के विविध अंगों पर प्रकाश डालती है। बेचैन, संत्रस्त, असहाय मनुष्य के प्रति ये दोनों कवि जवाबदेह हैं।

भारतीय समाज में तीसरा दशक अनेक प्रश्नों को लेकर आता है। राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक परिस्थिति के चलते अनेक प्रश्न उपस्थित हुए। यंत्रयुग का आरंभ, राजनीतिक गुलामी, सांस्कृतिक विघटन, दो महायुद्धों की बर्बरता, अकेलेपन की यातना, लघुमानव का अस्तित्व तथा व्यक्ति के मानसिक उलझाव के परिप्रेक्ष्य में उभय कवियों की कविता नये प्रश्न पैदा करती है। विशेषतः अज्ञेय की कविता में प्रश्नाकुलता का भाव बार-बार लौट आता है। कवि अज्ञेय अपने समय, समाज और संस्कृति की बुनियादी चिंताओं से जुड़े हुए हैं। वे अपनी कविता में मनुष्य मात्र की चिंता करते हैं। यथार्थ से मुठभेड़ करते हैं। इसलिए अज्ञेय की कविता के बारे में यह कहा जा सकता है कि, 'यह कविता अस्तित्व के जड़ों से फूटती है।' समकालीन प्रश्नों से रू-ब-रू होती है। 'व्यक्ति' को केंद्र में रखकर सार्वभौम सत्य का प्रकाशन करती है। वस्तुतः यह प्रश्नाकुलता आधुनिक काल की देन है।

कवि अज्ञेय ने 'इन्द्रधनु रौंदे हुए ये' कविता संग्रह की अनेक कविताओं में 'प्रश्नाकुलता' की अभिव्यक्ति की है। व्यक्ति, उसका मानसिक जगत, जीवन का सार्वभौम सत्य, नवरहस्यवादी स्वर और आसपास फैले, बिखरे जीवन सत्यों के प्रति कवि प्रश्नाकुल है। यही भाव उनकी अनेक कविताओं में लक्षित होता है। जैसे-

'¯µÖÖ¸ ÆÖ ‹x³Ö¿Ö¯ÖŸÖ,
तुम कहाँ हो नारि?'

µÖÖ

'स्मृतिहीन, अपेक्षाहीन वर्तमान। ऐसा वर्तमान क्या
वर्तमान है- वही क्या?'

µÖÖ

'तुम-तुम सागर क्यों नहीं हो?
मेरी आँखों में ज्यों प्रश्न उभर आया,
अपनी फहरती लटों के बीच से वह
पलकें उठाये हुए,
उसे नकारती हुई पर अपने उत्तर से,
मानों मुझे फिर से ललकारती हुई'

तात्पर्य यही है कि, अज्ञेय की कविता में समकालीन प्रश्नों की गूंज सुनाई देती है। केवल इतना ही नहीं स्वयं कवि जीवन यथार्थ से आकुल, संकुल और संतप्त भी है। इसी वजह से डॉ. रमेशचंद्र शाह लिखते हैं, "निश्चय ही अज्ञेय जैसे साहित्यकार बिरले ही होते हैं जो अपनी जमीन पर मजबूती से पैर जमाए रखकर दार्शनिक, भौतिकीविद और मनोविश्लेषक की दुनियाओं से वास्तविक सहानुभूति और वास्तविक अभिज्ञता के आधार पर मुठभेड़ कर सकें और समग्र मनुष्य के विखंडन से संबंधित वे बुनियादी सवाल उनसे पूछ सके, जो कोई और शायद उनसे नहीं पूछता।"[59]

ठीक इसी तरह मर्ढेकर की कविता में 'प्रश्नाकुलता' का भाव नजर आता है। कवि ने समाज जीवन के अनेक प्रश्नों को छूते हुए जीवन यथार्थ से मुठभेड़ की है। कवि युद्ध की भीषणता, महानगरों के अंतर्विरोध, जीवन में व्याप्त विद्रुपताएँ, कोलाहल से भरी संकरी जिंदगी, स्त्री जीवन की दुर्दशा, असहायता, बेबसी और लाचारी के अनेक चित्र उपस्थित किये हैं। द्रष्टव्य है-

"प्रेम के पटेरे
सौंदर्य का नयापन
खोजूँ?

†ÖÃÖ¯ÖÖÃÖ,“ÖÖ¸Ö †Ö¸ü,
मुर्दों की राशि,
मशीन से आग,
गोलियों के पराग,
विमानों का आक्रमण,
बेचिराग मिले,
खून के ढेर
विकलांग चीख।"[60]

या 'फलाटदादा' कविता में भी प्रश्नाकुलता अभिव्यक्त हुई है। प्रश्नाकुलता के माध्यम से कवि अपने युग को टटोलता है, 'स्व' की तलाश भी करता है। यह खोज मर्ढेकर की कविता में निरंतर दिखाई देती है। यही कारण है कि, मर्ढेकर अपनी कविता के माध्यम से वर्तमान से टकराते हैं, युगीन संदर्भों की पडताल करते हैं।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि अज्ञेय और मर्ढेकर में प्रश्नाकुलता का भाव बड़ी तीव्रता से उजागर हुआ है।

प्रकृति-चित्रण :

अज्ञेय और मर्ढेकर में प्रकृति के प्रति विशेष अनुराग भाव नजर आता है। अज्ञेय जब कविता के क्षेत्र में आए, तब छायावादी कविता अपने उफान पर थी। जाहिर है प्रारंभिक दौर में अज्ञेय पर छायावादी कवियों के प्रकृति चित्रण का प्रभाव लक्षित होना। किन्तु छायावादी कविता का प्रभाव धीरे-धीरे कम होता गया। अर्थात् यहाँ प्रकृति कवि पर नहीं, कवि प्रकृति पर हावी होने लगी। अपनी अनुभूति को अभिव्यक्त करने के लिए अज्ञेय ने प्रकृति को आधार बनाया। किन्तु वास्तविकता ये है कि कवि बौद्धिकता, यथार्थ और सहज दृष्टिकोण का आग्रह करने लगा, जिससे उसके भीतर प्रकृति के प्रति मानवीय दृष्टि विकसित होती गयी। कवि ने नंदादेवी के प्रकृति सौंदर्य को देखकर अनेक कविताएँ लिखी हैं। जिसमें एक ओर प्रकृति के मनोहारी रुपों का वर्णन है तो दूसरी तरफ उजड़ते वनों को देखकर कवि 'इकॉलॉजी' की चिंता करता है। द्रष्टव्य है काव्य पंक्तियाँ -

'ऊपर तुम नन्दा
कटगिरे वन की चिटी-पट्टियों के बीच से
नये खाने-यंत्र की
भट्टी से उठे फन्दे का धुआँ।"[61]

कवि अज्ञेय प्रकृति सौंदर्य में खो नहीं जाते, बल्कि प्रकृति के प्रति एक प्रकार की रागात्मक

तटस्थता भी रखते हैं। कवि प्रकृति में मुक्त जीवन का सुख प्राप्त करना चाहता है। वह नगर सभ्यता के कोलाहल से दूर प्रकृति सौंदर्य में अपनी प्रिया को तलाशना चाहता है। यांत्रिक दबावों के बीच जी रहे मनुष्य को 'निजता' के क्षणों में जाना चाहता है। 'हरी घास पर क्षण भर' काव्य-संग्रह की अनेक कविताएँ इसके प्रमाण हैं।

अज्ञेय प्रकृति में रहस्यात्मक सत्ता की अवस्थिति पाते नहीं, किन्तु प्रकृति के द्वारा उन्मत्त स्थिति को अवश्य प्राप्त करते हैं। उनकी 'उन्मत्त' कविता इसका सहज प्रमाण दिलाती है।

मराठी कवि मर्ढेकर ने भी अपनी अनेक कविताओं में प्रकृति के अनेक चित्र उपस्थित किये हैं। मर्ढेकर भी प्रकृति के अनुरागी कवि हैं। उन्होंने 'शिशिरागम' की अनेक कविताओं में प्रकृति की अनेक छवियाँ अंकित हैं। 'झोपली ग खुळी बाळे', 'अजुन येतो वास फुलांना' तथा 'आला आषाढ़-श्रावण' शीर्षक से लिखी गयी कविताओं में प्रकृति की अनेक रुपाकृतियाँ उभरी हैं। कवि मर्ढेकर प्रकृति के माध्यम से जीवन यथार्थ को अंकित करने का प्रयास करते हैं। 'अजुन येतो वास फुलांना' कविता में कवि ने जीवन आस्था का परिचय दिया है। द्रष्टव्य है काव्य पंक्तियाँ -

"अजुन येतो वास फुलांना
अजुन माती लाल चमकते
खुरट्या बुंध्यावरती चढुनि
अजुन बकरी पाला खाते."

निष्कर्षत: अज्ञेय और मर्ढेकर की काव्य संवेदना में प्रकृति बोध पूरी तरह से अंकित हुआ है। जहाँ उभय कवियों ने प्रकृति को सहचरी के रुप में अंकित किया है।

आधुनिकता बोध :

अज्ञेय आधुनिक हिंदी कविता के प्रणेता हैं। तीसरे दशक की तमाम घालमेल, विडंबना, उठापटक को पचाते हुए कवि आधुनिक मनुष्य को अपनी कविता में अंकित करता है। यंत्रयुग का आगमन, औद्योगिक सभ्यता के परिणाम, सामंती व्यवस्था का पटाक्षेप और पूंजीवादी व्यवस्था के आगमन ने समाज मानस को प्रभावित किया। कवि अज्ञेय आधुनिक मनुष्य का अकेलापन, जड़ों से कटने का दर्द, यंत्रवत, भयावह जिंदगी तथा कुण्ठाओं से भरी मानसिकताएँ, इसी पृष्ठभूमि में उन्होंने कविता के क्षेत्र में कदम रखा। इस आधुनिकता बोध में वे आधुनिक मनुष्य की जटिल, चुनौतिपूर्ण जिंदगी को करीब से देख रहे थे। मनुष्य की जटिल, यंत्रवत एवं कुंठाग्रस्त (मानसिक) जीवन के चलते कवि इन तमाम अनुभूतियों को व्यक्त करता है। अर्थात् इसके पूर्व समाज के बाह्य जीवन पर प्रकाश डाला जा रहा था। अज्ञेय व्यक्ति सत्य और व्यक्ति की दमित कुंठाओं को लेकर आते हैं। व्यक्ति को बाह्य की अपेक्षा भीतर से अंकित करने का प्रयास करते हैं। इसलिए उन्होंने संवेदना,

भाव, भाषा, शैली के प्रति विद्रोह किया। नयी संवेदनाएँ, नयी भाषा और नव्य शैली का प्रवर्तन किया। अनुभूति का विशाल क्षेत्र लेकर वे आये। कवि प्रकृति में अधिक देर तक नहीं रमा। रौमँटिसिज्म के प्रभाव को झाड़कर 'प्रयोगशीलता' का दामन पकड़ लेता है। जहाँ से अनुभूति में दर्शन को घुलाने की राह निकालता है। साहीजी के शब्दों में 'त्रासजनित विवेक' को प्रस्फुटित करने का प्रयास करता है।

अर्थात् मराठी साहित्य में भी बा. सी. मर्ढेकर 1940 तक आते-आते 'नवकविता' का प्रवर्तन करते हैं। आधुनिकता के मूल्य को लेकर सटीक भाष्य करने लगते है। मर्ढेकर ने संत्रस्त, परिस्थिति की मार झेलता मनुष्य, यंत्रवत जीवन, अनुभूति का नया सरोकार स्वात्मबोध, प्रश्नाकुलता और युगीन जीवन संदर्भो की तलाश कवि करने लगता है। 'कांही कविता' (कुछ कविताएँ) और 'आणखी काही कविता (कुछ और कविताएँ) इन दो संकलनों में संग्रहित कविताओं में आधुनिकता के कई आयाम खुलते नजर आते हैं। कवि ने महानगरों की दुर्दशा, कामगारों की दुर्व्यवस्था, महिलाओं की बेबसी, यंत्रों का मनुष्य को संवेदनहीन बनाना, तर्कप्रधानता और व्यक्ति की भीतरी क्षमताओं का प्रस्फुटन- जहाँ व्यक्ति जीवन की क्षुद्रता का भी आयाम होता है। मर्ढेकर ने आधुनिक मनुष्य की विडंबनामय जिंदगी के अनेक चित्र उकेरे हैं। विशेषत: दो महायुद्धों की विभिषिका को झेलता हुआ मनुष्य, तमाम अभावों के बीच सांस लेता हुआ मनुष्य, यथार्थ से टकराते हुए परिस्थिति परवशता में जीता हुआ मनुष्य तथा संकरी, विडंबनामय जिंदगी जीने के लिए विवश मनुष्य का चित्रण मर्ढेकर ने किया।

अर्थात् उभय कवि विविध संवेदनाओं की अभिव्यक्ति देनेवाले कवि हैं। इनमें रहस्य, समाज, आत्मान्वेषण के भावों की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। दोनों की कविता में 'प्रकृति' और 'प्रेम' भाव का सजग रुप दिखायी देता है। दोनों में प्रगतिशीलता के तत्व परिलक्षित होते हैं। इसलिए आधुनिक हिंदी-मराठी कविता के प्रणेता के रुप में दोनों को देखा जाता है।

अस्तु, इन दोनों कवियों की कविता का अवलोकन करने के पश्चात ये महत्त्वपूर्ण तथ्य लक्षित होता है कि उभय कवियों ने आधुनिक मनुष्य की संतप्त जिंदगी को कविता में स्थान दिया है। आत्मान्वेषण, सृजन, प्रयोग और अकेलापन का बोध दोनों की कविता में नजर आता है, जिसकी वजह से दोनों की कविता में आधुनिकता की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है।

अनेकार्थसूचकता एवं क्लिष्टता :

निस्संदेह अज्ञेय और मर्ढेकर के काव्य में अनेकार्थसूचकता एवं क्लिष्टता के दर्शन होते हैं। दोनों के काव्य में अनेकार्थबोध होता है। पर क्लिष्टता के अलग-अलग कारण हैं। अज्ञेय के उत्तरवर्ती काव्य में नव्यरहस्यवाद के स्वर ने आध्यात्मिक अनुभूति की अभिव्यक्ति की। जिसकी वजह से

दार्शनिक विचार कविता में संलग्न हो पाते हैं। परिणामतः कविता की भाषा जनसामान्य से दूर जाती है। दूसरी वजह है, विदेशी संस्कृति, संदर्भो एवं प्रतीकों का प्रयोग। साथ ही कविता आत्मबोध, आत्मान्वेषण और व्यक्ति के मानसिक जगत के चित्रण में अधिक रमी है। यही कारण है कि कविता अतिसूक्ष्म भावों, सूक्ष्म सौंदर्यबोध और मनोविश्लेषणशास्त्र के सिद्धांतों का निरुपण करती दिखाई देती है। उदाहरण के लिए अज्ञेय का 'अरी ओ करुणा प्रभामय' की अधिकतर रचनाएँ।

लेकिन मर्ढेकर की कविता में अनेकार्थसूचकता एवं दुरुहता या क्लिष्टता के अलग कारण हैं। उनका मानना है कि, यंत्र संस्कृति के आगमन ने व्यक्ति के जीवन को जटिल बनाया, अनुभूति में सहजता की अपेक्षा द्वंद्वमय जीवनाभुतियाँ अधिक रही। साथ ही आधुनिक मनुष्य की आपाधापी, अकेलापन, असहायता और संत्रास ने उसकी संवेदना में गहराई आती गयी। परिणामतः कवि जिन बिंबों, प्रतीकों और उपमाओं का प्रयोग करता है, उनमें उलझाव अधिक है। परिणामतः कविता समझने में, संदर्भों को तलाशने में क्लिष्ट लगती है। अर्थात् दोनों कवियों की कविता में अनेकार्थ सूचकता (वस्तुतः यह कविता की सबसे बडी ताकत है) और क्लिष्टता का भाव नजर आता है।

प्रणयानुभूति का भाव :

अज्ञेय और मर्ढेकर की कविता प्रेमिल हृदय की अनुरागपूर्ण संवेदनाओं से ओतप्रोत है। वैयक्तिक प्रेमभाव के अनेक चित्र दोनों कवियों ने अंकित किए हैं। यह प्रेम कभी लौकिक तो कभी अलौकिक स्तर पर अभिव्यक्त होता है। अज्ञेय के काव्य में प्रणय की ऋजुता और आर्द्रता और सौंदर्य हैं। वैयक्तिक प्रेम संवेदना, कल्पना का वायवीलोक और आध्यात्मिक उदात्त भावना का अविष्कार कवि ने किया है।

अज्ञेय वस्तुतः प्रेम के चितेरे रहे हैं। स्वच्छंदतावादी कवियों के प्रभाव ने उनकी आरंभिक कविता में प्रणय का भाव सहज रुप में अंकित हुआ है। किन्तु उत्तरवर्ती प्रेम संबंधी कविताओं में जटिल मनःस्थिति का सम्मिलन हुआ है। अर्थात् आलोचकों का मानना है कि, यही रोमँटिक चेतना तत्पश्चात रहस्यवाद का रुप धारण कर लेती है। किन्तु सच्चाई यही है कि कवि की साधनात्मक प्रवृत्ति आत्मा के सत्य की ओर उन्मुख हुई है।

मर्ढेकर ने अपनी आरंभिक कविताओं में प्रणय भावना की स्वतः स्फुर्त अभिव्यक्ति की है। 'शिशिरागम' तथा 'प्रेमाचे लव्हाळे' (प्रेम के पटेरे) में कवि अपनी अज्ञात प्रेमिका 'सुहास' को संबोधित करते हुए अनेक कविताएँ लिखता है। दोनों कवियों के अपनी प्रेमिका से संबोधित दो चित्र-

†-Öµö -

"जिसे कुछ भी, कभी कुछ से नहीं सकता मार
वही लो, वही रक्खो सांज सँवार

वह, कभी न बुझने न वाला
प्यार का अंगार।"[62]

मर्ढेकर - "हां हां थांब! नको सुहास,
गमवूं तोंडातली मौक्तिके,
देवाच्या घरचाच न्याय असला!
प्रश्नास दे उत्तर
झाला खेळ अता पूरे!
वद असे धिक्कारुनी कौतुके"[63]

तात्पर्य यही है कि उभय कवियों ने अपनी कविता में 'प्रणयानुभूति' के भाव को सशक्त †x³Ö¾µÖÛŒÝÖ ¤ß Æî...

कुल मिलाकर डॉ. नंदकिशोर आचार्य के शब्दों में ये कहा जा सकता है कि, "वस्तुतः अज्ञेय हिंदी के प्रथम समर्थ कवि हैं, जिन्होंने अपनी संवेदना को विज्ञान के अधुनातन शोधों एवं दर्शन की समस्त पूर्वी और पश्चिमी परंपरा से निरंतर संस्कारित किया है और इस प्रभाव ग्रहण को मुक्तमन से स्वीकार भी किया है।"[64] यही बात संवेदना की दृष्टि से मर्ढेकर पर भी लागू होती है। मर्ढेकर ने अपनी कविता में संवेदना की वैविध्यता को महत्व दिया है। कवि खुलकर विविध संवेदनाओं की अभिव्यक्ति करता है। इसलिए डॉ. केशव सद्रे ने मर्ढेकर को 'अभिजात संवेदनाओं का कवि' कहा है। इसलिए उनकी कविता में प्रकृति सौंदर्य, आधुनिक मनुष्य के जीवन में आई असम्बद्धता, निरर्थकता, भय, अकेलापन, विज्ञान और मनुष्य की बुद्धि में द्वैत भाव आदि संवेदनाओं की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है।

भाषा की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन :

अज्ञेय और मर्ढेकर ने हिंदी-मराठी कविता में भाषा की दृष्टि से अद्‌भूत प्रयोग किये हैं। दोनों नवकाव्य के प्रवर्तक होने से, दोनों ने नयी भाषा, सर्जनशील भाषा का संवेदनानुकूल प्रयोग किया है। 'अज्ञेय ने अनुभव की भाषा लिखी, तो मर्ढेकर ने भी जीवनानुभव को केंद्र में रखते हुए भाषिक सर्जनशीलता का परिचय दिया।' स्वयं अज्ञेय ने 'तीसरा सप्तक' की भूमिका में स्पष्ट निरुपण किया है कि, "आधुनिक कवि की प्रयोगशीलता के प्रमुखतः तीन आयाम रहे हैं, भाषा, वस्तु और शिल्प।" अर्थात् अज्ञेय की कविता में भाषा का ताजापन देखने को मिलता है। इसलिए अज्ञेय ने अपनी कविता में भाषा और शिल्प को अत्यधिक महत्त्व दिया है।

कविता में 'सम्प्रेषण' के महत्त्व ने कविता को मानवीय पहचान दिलायी है। उनकी यह धारणा 'भाषा पहचान' कविता में द्रष्टव्य है-

"हम सभी भिखारी है। भाषा की शक्ति। यह नहीं कि

उसके सहारे सम्प्रेषण होता है। शक्ति उसमें है कि उसके
सहारे। पहचान का वह सम्बन्ध बनता है जिसमें।
सम्प्रेषण सार्थक होता है।"[65]
"बड़े काम की चीज है भाषाः। उसके
सहारे। एक से दूसरे
तक जानकारी पहुँचायी जा सकती है। वह सामाजिक
उपकरण है।"[66]

कवि अज्ञेय को विद्यानिवास मिश्र ने 'सन्नाटे का छंद' कहा है। कारण यही है कि, यह कवि मौन विभावन, क्षणानुभूति का आग्रह आदि को कविता में अभिव्यक्त करता है। अज्ञेय के लिए कवि-कर्म सहज, सरल प्रक्रिया नहीं है, वह आन्तरिक अनुशासन, आन्तरिक नैतिकता का प्रश्न है।

अज्ञेय ने कविता की भाषा को अधिक अर्थवाही बनाया। वे भाषा में अर्थवत्ता को अधिक महत्त्व देते हैं। एक ओर द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता और छायावादी भाषा का प्रभाव उन पर लक्षित होता है, तो दूसरी ओर वे प्रभावशील और गतिशील भाषा के पैरोकार के रुप में उभरते हैं। वे लिखते हैं, "इसमें गुंजाइश है कि कवि संस्कार ग्रहण करता हुआ और शब्द के संस्कार बदलता चले और भाषा की रुढ़ि से मुक्त होता चले। हर अच्छा कवि यही करता है। यही भाषा का आर्ष प्रयोग है। यहाँ भाषा की रुढ़ि टूट गई है पर शब्द का संस्कार समृद्ध हो गया है।"[67]

हमने पहले ही कहा है कि अज्ञेय ने अनुभवों की भाषा सृजित की। किन्तु यह बहुत बड़ी सच्चाई है कि अज्ञेय की काव्य भाषा में शब्दों की खोज है।

"मुझे तीन दो शब्द। कि मैं कविता कह पाउँ। एक शब्द
वह जिससे कह सकूं। किन्तु दर्द मेरे से जो छोटा पड़ता
हो। और तीसरा : खरा धातु। पर जिसको पाकर पूछूं।
क्या न बिना इसके भी काम चलेगा? और मौन रह,
जाऊँ। मुझे तीन दो शब्द कि मैं कविता कह पाऊँ।"[68]

भाषा मनुष्य की अभिव्यक्ति का सशक्त अविष्कार है। परंपरागत भाषा जब अनुभूति को सशक्त रुप में प्रस्तुत करने में असमर्थ होती हे, तब शैल्पिक रुप में नये प्रयोग करना निहायत जरुरी बन जाता है। उनमें अर्थ परिवर्तन की संभावना बनी रहती है। इसलिए अज्ञेय ने कहा था, पुराने उपमान मैले हो गये हैं, देवता प्रतीकों से कर गये हैं कुच।

अज्ञेय ने इसलिए भाषा के क्षेत्र में नित नये प्रयोग किये। उनकी दृष्टि से भाषा की मुख्य समस्या सम्प्रेषण की थी। इस दृष्टि से उन्होंने ऐतिहासिक काम किया और उस दिशा में अपने युग की

सीमाओं को ध्यान में रखते हुए नई भाषा का निर्माण किया। भाषा सम्पदा को बढ़ाने के लिए वे लोक भाषा तक गये। इसलिए अज्ञेय की कविता में संस्कृत के तत्सम शब्द, लोक भाषा के शब्द, अंग्रेजी शब्दावली तथा शब्द संगम का अद्‌भूत सौंदर्य विराजित है। अस्तु, अज्ञेय की शब्द चेतना में सूक्ष्मतर ध्वनियों की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। उनकी विशिष्टता की सही पहचान भी उनकी कविता में हो ¯ÖÖµÖê Æï…

भाषा के क्षेत्र में अज्ञेय की महती उपलब्धि रही है। लोकभाषा का आधार, नगरभाषा की अभिव्यंजना और भाषा की मुद्रा में विविधता के दर्शन होते हैं। ये विविध भाषागत मुद्राएँ उनकी कविता में अभिव्यक्त होती है। इसलिए कवि अज्ञेय की साहित्यिक एवं भाषागत विशेषता को दर्शाते हुए रमेशचंद्र शाह लिखते हैं, "अचूक मात्रा-ज्ञान, भाव संयम और आत्मानुशासन अज्ञेय के साहित्य की सबसे बड़ी खूबी और सबसे बड़ी चारित्रिक पहचान है।"[69] अर्थात् हिंदी के आधुनिक भारतीय कवि होने के नाते उनमें अभिव्यक्ति की प्रबलता, ठहराव और प्रभावशीलता दिखाई देती है। इसी कारण नंदकिशोर आचार्य लिखते हैं, "यह सही है कि अज्ञेय की भाषा में ठहराव है, जिसका सम्बन्ध उनकी विशिष्ट बौद्धिक दार्शनिक अनुभूति से है, पर अज्ञेय की कोशिश मितकथन की है।"[70] मितकथन की वृत्ति ने अज्ञेय में शब्द-संयम का अद्‌भूत अविष्कार किया है।

मराठी के कवि बा. सी. मर्ढेकर ने भी भाषा के क्षेत्र में प्रयोगशीलता का परिचय दिया है। कवि को भाषा का सूक्ष्म परिचय है। बचपन में सुनी हुई मराठी, भाषा में देशी स्पर्श, स्वनिर्मित शब्द योजना, स्वभाषा पर अंग्रेजी का प्रभाव, परिणामतः काव्यशैली में विशिष्टता के दर्शन होते हैं। मर्ढेकर की काव्य भाषा में मराठी और अंग्रेजी भाषा का मिश्रण दिखाई देता है। आलोचकों ने ये स्वीकार किया है कि मर्ढेकर की भाषा में विविधता लक्षित होती है। शब्द योजना में संयम का भाव, वाक्यरचना में पृथकता, आशय में सहजता और वक्रोक्तिपूर्ण अभिव्यक्ति से कविता अधिक विविधमुखी बनी। कहीं-कहीं इसी वृत्ति के कारण दुर्बोधता आती हुई दिखाई देती है। पर मर्ढेकर ने विशिष्ट पृष्ठभूमि में, भाषा में वैविध्य, विस्तार और गहराई लाने का सफलतम प्रयास किया है।

मर्ढेकर ने अपनी काव्य भाषा में 'संवाद' तत्व को सर्वाधिक महत्त्व दिया है। यह कविता संवादी है। संवाद की वृत्ति ने कविता को अधिक जीवनोन्मुखी बनाया। वह व्यक्ति और समाज जीवन के अनेक अंतर्विरोधों को अभिव्यक्त करने का प्रयास करती रही। संवाद तत्व ने कविता को विस्तार देने में महती भूमिका निभायी। कवि अनछूए, अनगढ़ मानवीय संबंधों की नयी, पुनर्व्याख्या करने लगता है। इस संपूर्ण प्रक्रिया में अंग्रेजी शब्द योजना और लिप्यंतरण की वृत्ति का प्रभाव नजर आता है। पंक्चरलेली रात्र (पंक्चर), प्लॅटफार्म शब्द का 'फलाटदादा' आदि शब्दों का प्रयोग उनकी प्रयोगशीलता को दर्शाता है। मर्ढेकर ने अपनी कविता में भाषायी चमत्कार का परिचय दिया है। कवि

संवेदनानुकूल, परिवेश के अनुकूल भाषा का संयोजन करता है। शहरी जीवन, ग्राम्य जीवन तथा लोकसमूह को लुभानेवाली, अंतर्मुख कर देखनेवाली भाषा का उपयोग कवि ने किया है। अर्थात् शहर और ग्रामीण जीवन के अनेक बिंबों, प्रतीकों, मिथकों एवं छंदों की योजना की हैं।

मर्ढेकर की आरंभिक कविताओं में अपने पूर्ववर्ती कवि गोविंदाग्रज, बालकवि और माधव जूलियन की काव्यभाषा का संस्कार नजर आता है। कवि की भाषा में गेयता, नाट्यात्मकता और संवादात्मकता के दर्शन होते हैं। मर्ढेकर ने अपनी भाषाविषयक भूमिका एवं काव्यविषयक चिंतन अपनी कविता 'इरेस पडलो जर बच्चमजी' कविता में इस प्रकार किया है-

"‡¸ÃÖ ¯Ö>»ÖÖ ¯Ö¸ ²Ö““Ö´Ö •Öß
ŸÖ¸ ³ÖÖÂÖ“Öß <¿ÖßŸÖ¿Öß
उलटीसुलटी करीन मी ही
भव्य भयानक विराट कपबशी।"

कवि ने अपनी भाषा में संपन्नता लाने के लिए प्रचलित छंदों, शब्द योजना, वाक्य योजना (रीति सम्प्रदाय) तथा पुराने शब्दों में नया अर्थ भरने का सशक्त प्रयास किया है। अर्थात् जिस तरह अज्ञेय ने 'अनुभव की भाषा लिखी' ठीक उसी तरह मर्ढेकर ने भी अपनी भाषा को समकालीन बनाने हेतु अनुभवों का सजग प्रयोग किया। जिस प्रकार अज्ञेय पर पश्चिमी साहित्य और भाषा का प्रभाव पड़ा, ठीक उसी तरह मर्ढेकर पर भी हॉपकिन्स एवं इलियट की भाषिक प्रेरणाओं का प्रभाव दिखाई देता है। मर्ढेकर ने भाषा में नये शब्द गढ़े, उच्चार प्रक्रिया, उतार-चढ़ाव और वाक्लय को बहुत अधिक महत्त्व दिया, यही बात हम अज्ञेय में भी देखते हैं। अज्ञेय और मर्ढेकर की काव्य भाषा पर अंग्रेजी भाषा का भी गहरा प्रभाव रहा। अज्ञेय तो यायावर थे, उन्होंने अनेक भाषाएँ सीखी थी। अनेक भाषाओं का साहित्य पढ़ा था। मर्ढेकर ने भी अंग्रेजी, फ्रेंच और इतालियन भाषाएँ अवगत की थी। परिणामतः इन भाषाओं के शब्दों का प्रयोग उन्होंने किया।

मर्ढेकर की कविता में अंग्रेजी-मराठी शब्दों का सम्मीश्रण (हपीस, डाक्तर, फलाटफार्म, शिंगल आदि) लक्षित होता है। कवि ने अंग्रेजी के शब्दों को भी सीधे काव्य भाषा में उपयोग किया है। जैसे-रोबो, पायलन, कॉकटेल, पिस्टन, पंक्चर, पॉलिश और पंप। पर साथ ही अंग्रेजी भाषा के शब्दों का मराठीकरण करने की सफलतम कोशिश की है। जैसे-पंकचर-पंक्चरणे, पंप-पंपणे, पॉलिश-पॉलिशणे आदि।

मर्ढेकर ने अपनी कविता में रुढ़ शब्दों के प्रयोग के अलावा अरुढ़ एवं अप्रचलित शब्दों का भी प्रयोग किया। विशेषतः प्रचलित भाषा में जो शब्द रुढ़ नहीं थे, उनके नये रुप बनाकर उपयोजन किया है। शब्दयोजना में विलक्षणता का परिचय मर्ढेकर ने दिया। साथ ही भाषा में कटाक्ष (Irony)

को महत्त्व दिया है। कवि कटाक्ष को लेखन की शैली के रुप में नहीं विचार शैली के रुप में अपनाता है और प्रयोग करता है। 'प्रेमाचे लव्हाळे' (प्रेम के पटेरे) नामक कविता इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। प्रस्तुत कविता में कवि ने प्रेम और सौंदर्य मूल्य पर अलग दृष्टि से 'कटाक्ष' किया है। मर्ढेकर ने अपनी काव्य भाषा में अलंकारों को सशक्त रुप में प्रतिपादित किया है। विशेषतः अनुप्रास, यमक, रुपक और उपमा अलंकारों का प्रयोग विचारणीय हुआ है। कवि ने ओवी, अभंग और देवीवर (मराठी छंद प्रकार) छंदों के प्रयोग में प्रयोगशीलता एवं वैविध्य का परिचय दिया है।

कुल मिलाकर अज्ञेय और मर्ढेकर ने अपनी काव्यभाषा में विविधता, प्रयोगशीलता, सर्जनशीलता और शब्द संयम का अद्‌भूत परिचय दिया है।

प्रतीक योजना :

काव्य में प्रतीकों का प्रयोग भावों में 'गहराई' लाने के लिए किया जाता है। प्रतीकों का उद्देश्य अर्थ को उसकी तह तक सम्प्रेषित करना है। अज्ञेय ने अपनी कविता में प्रतीकों की नयी व्यंजना की है। प्रतीकों की इसी नूतन व्यंजना ने जीवन को परिभाषित किया। 'नाव' जीवन का, दीपक-आशावाद का, खद्योत-लघु प्रेमी का, तिमिर-निराशा का, मछली-अस्तित्व का, जिजिविषा का, हारिल-अस्तित्व का, उड़ने की आकुलता का आदि प्रतीकों की व्यंजना अत्यंत कलात्मक ढंग से की हैं।

वस्तुतः अज्ञेय के सभी प्रिय प्रतीक मुक्ति और स्वातंत्र्य की खोज से जुड़े हुए हैं। उनकी कविता में 'मुक्ति' शब्द का प्रयोग बहुत बार हुआ है। अर्थात् 'मुक्ति' कवि मन की मुक्ति-लालसा की अभिव्यंजना करता है। अज्ञेय की कविता में 'अहेरी' एवं 'शिशिर' का प्रतीक के रुप में कई बार उल्लेख आया है। 'अहेरी' सूर्य का प्रतीक है। खंडहर उनके अन्तस् का प्रतीक है और अनी किरणों का प्रतीक है। जैसे-

> "बावरा अहेरी रे। ......लो मैं खोल देता हूँ कपाट सारे आलोक अनी से
> मेरे इस खंडहर की शिरा-शिरा छेद दे।
> अपनी।"[71]

ठीक इसी तरह 'शिशिर' अवसाद का नहीं भविष्य के प्रति आशावादिता का प्रतीक बन जाता है। कवि लिखता है-

> "मेरे प्राणसखा हो बस तुम एक, शिशिर।
> वैसी ही प्राणों में रहे अनबुझी आशा,
> झिपती चाहे जावे, किन्तु न बुझने पावे।"

कवि ने शिशिर के अलावा बन्दी, सागर, चिड़िया, यात्री आदि प्रतीकों की विलक्षण योजना की है। 'नदी के द्वीप' कविता तो प्रतीकात्मक ही है। यहाँ नदी समष्टि का, तो द्वीप व्यष्टि का प्रतीक

है। 'यह दीप अकेला', 'सोन मछली', 'जीवन छाया', 'कितनी नावों में कितनी बार', 'रेंक', 'साँप' तथा 'चक्रांतशिला' कविताएँ इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। 'गधा' आत्मप्रेमी लोगों का, सांप-मनुष्य की शहरी असभ्यता का, सागर-विशाल जीवन का, नदी, ताल, कुआँ उसके आंशिक अनुभूति के क्षणों का आदि प्रतीकों की सार्थक अभिव्यंजना अज्ञेय ने की है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि, अज्ञेय प्रतीकवादी (शिवदानसिंह चौहान) कवि नहीं है, प्रतीकधर्मी कवि हैं, बिंबवादी नहीं, बिंबधर्मी कवि हैं। अर्थात् अज्ञेय ने अर्थो की व्यंजना करने के लिए प्रतीकों की सशक्त योजना की है। इस प्रतीक व्यवस्था में अनुभूति का दबाव ही काम करता हुआ दिखाई देता है। इसलिए अज्ञेय सशक्त प्रतीकों की अभिव्यंजना कर पाये।

मर्ढेकर ने भी अपनी कविता में नये-नये प्रतीकों की सशक्त व्यवस्था की है। कवि ने आधुनिक जीवन की उलझी हुई अनुभूति को अभिव्यक्त करने के लिए विविध क्षेत्रों से प्रतीक चुनें। विशेषतः कवि प्रकृति के पास जाता है। प्रकृति के सान्निध्य में प्रतीकों की कल्पना उसे मिलती है। 'पीपात मेले ओल्या उंदीर' (पीप में मरे गीले चूहे) कविता में चूहा, अजून येतो वास फूलांचा (अभी भी आती है खूश्बू फूलों से) कविता में निसर्ग प्रतीक, 'पंक्चरली जरी रात्र दिव्यांनी' (पंक्चर हुई हो रात भले ही दीयों से) कविता में 'रात' और 'कुत्ता', यात्री, पंछी आदि प्रतीकों की योजना विचारणीय हैं। कवि ने इन प्रतीकों के द्वार खोले हैं। वस्तुतः मर्ढेकर की कविता में चिकित्साशास्त्र, वैद्यकशास्त्र, गणित विज्ञान, अंतरिक्ष विज्ञान, यंत्रयुगीन प्रतीक, धर्म परंपरा, कला, संगीत कला, प्रकृति सौंदर्य, नई प्रतीक योजना (निर्मित) आदि क्षेत्रों से प्रतीक लिए गये हैं। इन तमाम कविताओं में 'गर्भवती स्त्री' का प्रतीक कई बार, कई संदर्भों में आया है, जो सृजनशीलता, निर्मिति का प्रतीक बनकर आता है। कवि ने निसर्ग प्रतीकों की अनुठी व्यंजना की है। द्रष्टव्य है काव्य पंक्तियाँ -

"अजून येतो वास फूलांना
अजून माती लाल चमकते
खुरट्या बुंध्यावरती चढुनि
अजुनि बकरी पाला खाते।"

तो यंत्रयुग का संदर्भ लेकर अनेक कविताएँ लिखी गयी हैं। जिसमें 'विशाल पट्‍टे', 'सतेल तांबुस', 'राहु दे जीवंत' कविताएँ संदर्भगत हैं। उल्लेखनीय है, 'विशाल पट्टे', 'सतेल तांबुस' कविता -

"x¾Ö¿ÖÖ»Ö ¯Ö¼Ö ÃÖÝÖ»Ö, ÝÖÖ²ÖÃÖ,
जरा सैल अन् मऊ ; कातडी ;
सिलिंडरावर गरगर फिरती
किती वेगाने! - जणु सालडी

काळाची, जी प्रकाश कापित

गिरगिरती ह्या पृथ्वीवरती."

मर्ढेकर की कविता यंत्रयुग, वैज्ञानिक शोधों और धर्मपंथ और ललित कलाओं में संचार करती है। इस संचार प्रक्रिया में वह नये-नये प्रतीकों की खोज करती है। वस्तुतः कवि ने इस संपूर्ण प्रतीक योजना में आशय से तादात्म्य स्थापित करते हुए अपने व्यक्तित्व के संस्पर्श से नये प्रतीकों का निर्माण किया है। कवि अनुभव के संस्कार लेकर आता है। इस अनुभव की दुनिया में वह नये प्रतीकों का अविष्कार करता है। इसलिए यह कहना अधिक युक्तिसंगत होगा कि कवि मर्ढेकर ने प्रतीकों की सर्जना में अपनी समस्त प्रतिभाशीलता का परिचय दिया है।

कुल मिलाकर ये कह सकते हैं कि, अज्ञेय और मर्ढेकर ने अपनी कविता में प्रतीक बहुलता का परिचय दिया है। संवेदनानुकूल प्रतीकों की योजना, प्रतीकों का चुनाव प्रकृति से, विदेशी प्रतीक एवं प्रतीकार्थो का प्रयोग दोनों के काव्य की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। मौन विभावन का विशेष प्रयोग, औद्योगिक सभ्यता के आगमन और यंत्रयुगीन सभ्यता से जुड़े प्रतीकों की व्यंजना दोनों ने की है। दोनों की भाषा अभिजात्य संस्कार से युक्त परिलक्षित होती है। दोनों की काव्य शैली नाटकीय, सहजता का भाव शैली में अभिव्यंजित होता है। काव्यलय, वाक्लय को महत्त्व देते हुए दोनों कवियों ने कविता की भाषा को समृद्ध बनाने में महती भूमिका निभायी है।

बिंब योजना :

अज्ञेय और मर्ढेकर ने अपनी कविता में बिंब-विधान को अत्यधिक महत्त्व दिया है। कवि अज्ञेय की कविता में बिंब-विधान में विविधता नजर आती है। जिस दौर में छायावादी कविता रुढ़ हो चली थी, उस दौर में अज्ञेय ने कविता लिखना आरंभ किया था। परिणामतः छायावादी कविता के बिंब-विधान का प्रभाव अज्ञेय की कविता में दिखाई देता है। कवि ने प्रकृति से बिंब चुनें। कवि ने यौन बिंबों का भी सशक्त रुप में प्रयोग किया है। प्रकृति का बिंबात्मक चित्रण अज्ञेय की कविता की प्रमुख विशेषता है। द्रष्टव्य है काव्य पंक्तियाँ-

"तालों के जाल। घने, कही लदे छदे। कहीं ठूंठ।

केलों के कुंज बने, सीसम की मेड़ बंधे।"[72]

"सूप-सूप भर। धूप कनक यह सूने नभ में गयी बिखर।

चौंधया बीन रहा है। उसे एक कुटर।"[73]

अज्ञेय ने अपनी कविता में प्रकृति के सभी ऋतु, सभी अवस्थाएँ और सभी दशाओं का स्वाभाविक चित्रण किया है। जैसे- शरद, वसंत, वर्षा, ग्रीष्म। पेड़-पौधे, पशु-पक्षी आदि काव्य में प्रकृति बिंब बनकर उभरे हैं। उषःकाल, संध्या, रात आदि के कई बिंब अज्ञेय की कविता में मिलते है।

पक्षियों में चिड़िया का बिंब, यौन बिंबों का खुला प्रयोग, 'असाध्यवीणा' जैसी कविता में बिंबों की श्रृंखला का प्रयोग किया है। कवि की ये विशेषता है कि, बिंब योजना में वे अपनी संपूर्ण कल्पना शक्ति और सूक्ष्म सौंदर्यबोध को उंडेलता है। इसलिए यह कहना अधिक युक्तिसंगत होगा कि अज्ञेय ने बिंबों की सर्जना की, प्रकृति से बिंबों को ग्रहण किया। बिंब के माध्यम से व्यक्ति के भीतरी और बाहरी परिवेश को चित्रित किया है।

कवि मर्ढेकर ने भी अप्रतिम बिंबों की सशक्त व्यंजना की है। मर्ढेकर ने भी प्रकृति के अनेक बिंबों की सर्जना की है। कवि निसर्ग बिंब, पशु-पक्षी, यंत्र सभ्यता, औद्योगिक विकास की परिणति, यौन बिंब आदि में खोया हुआ है। मर्ढेकर ने अपने आसपास फैले हुए, पसरे पड़े हर उस चीज से बिंब ग्रहण किये, जो कविता में अंकित शब्दों को अर्थवाही बनाने में सफल हुए। उनकी कविता में आये हुए बिंब- 'पिचे अंधार पोकळ', 'गोंधळलेल्या अन् चिंचोळया', 'विश्रांतिस्तन', 'अशीच होती नकटी एक' तथा 'शिशिरागम' की अनेक कविताएँ इसके साक्ष्य देती है। 'शिशिरागम' में प्रकृति बिंब, 'कांही कविता' में यंत्रयुग से मिले हुए बिंब तथा 'आणखी कांही कविता' में यौन बिंबों की सशक्त अभिव्यंजना हुई है। कुल मिलाकर ये कहा जा सकता है कि अज्ञेय और मर्ढेकर ने बिंब योजना में अपनी प्रतिभाशीलता, कल्पनाशीलता और प्रयोगशीलता का अद्भूत परिचय दिया है।

छंद योजना :

अज्ञेय और मर्ढेकर ने अपनी कविता में मुक्त छंद को प्रधानता दी है। भावों की मुक्त एवं सहज अभिव्यक्ति के लिए छंदों के बंधन को नकारने का काम अज्ञेय ने किया। अनुभूति का खरापन अभिव्यंजना में लाने के लिए दोनों ने यही प्रयास किया है।

अज्ञेय ने अपनी कविता में छंदों का आन्तरिक अनुशासन, यात्रावर्णन, गुरु, लघु के बन्धनों को नकारकर अनुभूति को मुक्त होकर अभिव्यक्त किया है। विशेषतः कविता में अर्थलय को महत्त्व देते हुए छंद के बन्धनों को कवि नकारता है। द्रष्टव्य हैं काव्यपंक्तियाँ -

"‡Ãö ´öµÖö¤üÖŸÖ®ÖŸÖö
अधर के अंतरीप पर खड़ा मैं
आवाहन करता हूँ,
†ö†ö ³ÖÖ‡!
राजा जिसके होगे, होगे :
मैं तो नित्य उसी का हूँ जिसको
स्वेच्छा से दिया जा चुका।"[74]

कवि मर्ढेकर ने भी अपनी कविता में छंद योजना पर ध्यान केंद्रित किया है। शार्दुलविक्रीडित,

मंदारमाला, वसंततिलीका के अलावा अभंग, ओवी, देवीवर आदि छंदों का सार्थक उपयोग किया है। कवि छंद योजना की दृष्टि से संत कवियों का अनुकरण करता हुआ दिखाई देता है। रामदास, तुकाराम आदि संतों की छंद योजना का उन पर प्रभाव लक्षित होता है। मर्ढेकर ने छंद के बंधन को स्वीकारा। उसका मूल कारण उनकी कविता के प्रति अभिजात्यवादी दृष्टि। 'इरेस पडलो' कविता में तो उन्होंने मुक्तछंद लिखनेवालों की चेष्टा की है। अर्थात् मर्ढेकर पर एजरा पाउंड, इलियट के छंद विषयक विचारों का प्रभाव दिखाई देता है। उनकी छंद योजना ने कविता में अभिव्यक्त आशय को अधिक सशक्त बनाया। पर मर्ढेकर की खासियत शब्द-योजना में दिखाई देती है। तत्सम शब्द, पुराने मराठी शब्द, खास मराठी शब्द, नवनिर्मित शब्द और अरुढ़ शब्दों का प्रभावपूर्ण उपयोग किया है।

कुल मिलाकर अज्ञेय और मर्ढेकर ने कविता में छंद योजना को लेकर अलग-अलग दृष्टिकोण अपनाया है। किन्तु दोनों की कविता भाषासौंदर्य की दृष्टि से प्रभावशाील बनी हैं। अर्थात् दोनों की छंद योजना में सादृश्यता की अपेक्षा विसादृश्यता अधिक दिखाई देती है।

नाटकीयता तत्व :

अज्ञेय और मर्ढेकर की शैली में नाटकीयता को प्रधानता है। दोनों की अभिव्यंजना की शैली के रुप में यह विशेषता दिखाई देती है। विद्रोह, व्यंग्य और बौद्धिकता की प्रखरता ने उन दोनों की काव्यशैली में वर्णनात्मकता की अपेक्षा नाटकीयता को स्थान मिला है। अज्ञेय ने अनेक स्थानों पर व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग किया है तो मर्ढेकर ने भी व्यंग्यात्मकता के साथ चेतनाप्रवाही शैली को अपनाया हैं। दोनों की यह शैली वार्तालाप प्रधान शैली है......इस संदर्भ में अज्ञेय की 'तो क्या' कविता द्रष्टव्य है। तो मर्ढेकर ने भी अपनी मराठी कविता 'इरेस पडलो जर बच्चम जी' कविता में इसी अभिव्यंजना की अभिव्यक्ति की है।

इस प्रकार अज्ञेय और मर्ढेकर की कविता का संवेदना, भाषा और शिल्प के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। दोनों की काव्य-प्रवृत्तियों का संवेदना, भाषा और शिल्प की दृष्टि से जो मूल्यांकन विवेचनात्मक दृष्टि से हुआ है, उससे तुलनात्मक रुप में निम्नलिखित निष्कर्ष सामने आते हैं.......

अज्ञेय और मर्ढेकर की कविता में सादृश्यता :

हिंदी के प्रतिभा संपन्न कवि अज्ञेय और मराठी के मूर्धन्य कवि बा. सी. मर्ढेकर की कविता में अंतर्भूत सादृश्यता को निम्नांकित बिंदुओं के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है।

1. अज्ञेय और मर्ढेकर की प्रारंभिक दौर की कविता में 'रोमांटिसिज्म' का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। अज्ञेय-भग्नदूत-1933, ‡Ÿµ»´-1945, तो मर्ढेकर का 'शिशिरागम' और 'प्रेमाचे लव्हाळे' (प्रेम के पटेरे)- 1943 शीर्षक से प्रकाशित रचनाओं में रोमानीयत का भाव अभिव्यक्त

Æ†Ö Æ…

2. कवि अज्ञेय अपनी पूर्ववर्ती कविता 'छायावाद' की अतिसूक्ष्मता, वायवी एवं रोमानीपन के विरोध में खड़े हुए, परंपरागत भाषाभिव्यंजना को चुनौती देते हैं। ठीक इसी समय मर्ढेकर मराठी साहित्य में 'स्वच्छंदतावादी' प्रवृत्ति के परंपरागत पैटर्न पर प्रश्नचिह्न निर्माण करते Æ…

3. उभय कवियों ने अपनी-अपनी साहित्य परंपरा में नई काव्य प्रवृत्ति को जन्म दिया। अज्ञेय 'प्रयोगवाद' और 'नयी कविता' के प्रणेता बने। तो ठीक इसी समय मर्ढेकर ने मराठी में 'नवकविता' का प्रवर्तन किया।

4. उभय कवियों में 'प्रयोगशीलता' की वृत्ति विद्यमान हैं। भाव, भाषा, शैली एवं शिल्प के क्षेत्र में दोनों ने नूतन प्रयोग किये।

5. अज्ञेय और मर्ढेकर-दोनों समकालीन कवि हैं। अज्ञेय का प्रथम कविता-संग्रह 1935 ´Ö प्रकाशित हुआ तो मर्ढेकर का पहला काव्य-संग्रह 'शिशिरागम'-1939 में प्रकाशित हुआ। अर्थात् दोनों कवियों ने दो भिन्न भाषाओं में लगभग एक ही समय में कविता लिखना शुरू किया। अर्थात् साहित्य की पृष्ठभूमि भिन्न थी किन्तु सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ एक-सी रही है।

6. उभय कवियों की कविता में, काव्य चिंतन पर टी. एस. इलियट के 'निवैयक्तितावाद' एवं येट्स के काव्य चिंतन का गहरा प्रभाव परिलक्षित होता है। एजरा पाऊंड की धारणाओं का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है।

7. हिंदी में 'आधुनिकता' की शुरुआत 'तारसप्तक' - 1943 से मानी जाती है, जिसके पुरोधा कवि अज्ञेय बनें। ठीक इसी समय मराठी में मर्ढेकर 'प्रेमाचे लव्हाळे' (प्रेम के पटेरे) - 1943 के माध्यम से 'आधुनिक मराठी कविता' का एक नया आयाम खोलते हैं।

8. उभय कवियों ने 'आत्मसंवादी' कविता लिखी। कविता में संवादात्मकता, वैचारिकता को स्थान और महत्व दोनों ने दिया।

9. आधुनिकता के दो महत्वपूर्ण मूल्य होते हैं- 1. ¾µÖÖŒÖ¾ÖÖ¤ 2. विचारों की स्वाधीनता। µÖê दोनों मूल्य अज्ञेय और मर्ढेकर की कविता में देखें जा सकते हैं।

10. अज्ञेय और मर्ढेकर की कविता में व्यक्ति, समाज और संस्कृति के अंतः संबंधों का समांतर विश्लेषण नजर आता है।

11. उभय कवियों ने मानव केंद्रित दृष्टिकोण को व्यक्त करने वाली कविता लिखी।

12. अज्ञेय और मर्ढेकर ने अनुभूति और काव्यभाषा के गहरे अंतः संबंध को रुपायित किया।

13. उभय कवियों ने व्यक्ति की अस्मिता और आस्था को पिरोने का काम किया है।

14. अज्ञेय और मर्ढेकर की कविता में 'महानगरीय जीवन बोध' की स्पष्ट झांकी मिलती है।

15. उभय कवियों ने सौंदर्यबोध के नये एवं सार्थकआयामों की तलाश अपनी कविता के माध्यम से की। दोनों ने काव्यचिंतन और कलाचिंतन प्रस्तुत किया है।

16. उभय कवियों ने कविता को रोमँटिक भूमि से उतारकर व्यक्ति सत्य के प्रांगण में खड़ा करने का महत्वपूर्ण कार्य किया है।

17. अज्ञेय और मर्ढेकर की कविता पर वैज्ञानिक अस्तित्ववादी दर्शन का, चिंतन का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।

18. प्रखर बौद्धिकता और प्रश्नाकुलता नामक तत्व की स्पष्ट अभिव्यक्ति दोनों ने अपनी कविता के माध्यम से की है।

19. उभय कवियों ने कविता में 'स्वात्मबोध' और 'अनुभूति की प्रामाणिकता' को सर्वाधिक महत्व x¤¦µÖÖ Æî… अस्तु ये कहा जा सकता है कि, दोनों की कविता में 'आधुनिकता' के अनेक लक्षण समान रुप में परिलक्षित होते हैं।

20. प्रणय के प्रति अज्ञेय और मर्ढेकर का दृष्टिकोण सूक्ष्म, ऋजु और श्रद्धापूर्ण है।

21. अज्ञेय और मर्ढेकर द्वारा अन्वेषित जीवनमूल्य मानवीय, मानववादी हैं।

22. अज्ञेय और मर्ढेकर की कविता का असाधारण गुण है- 'असाधारण काव्यसंयम।'

23. काव्य में दुर्बोधता, अनेकार्थसूचकता- ये दोनों तत्व अज्ञेय और मर्ढेकर में पाये जा सकते हैं।

24. 'मुक्तछंद' का अवलंब दोनों की विशिष्टता को दर्शाता है। अर्थात् दोनों ने कविता में 'छंदों से मुक्ति' का आग्रह पकड़ा।

25. अज्ञेय और मर्ढेकर ने कविता की भाषा को नयी अर्थवत्ता एवं सृजनात्मकता देने का महत्वपूर्ण कार्य किया है।

26. उभय कवियों ने कविता में 'लयतत्व' को महत्व देने और उसे चरितार्थ करने का प्रयास किया Æî…

27. उभय कवियों ने परंपरागत भाषा के प्रति विद्रोह किया।

28. दोनों कवियों ने 'काल चिंतन' पर लेखनी चलायी है। इससे पता चलता है कि, दोनों कवि समसामयिकता के प्रति सतर्क हैं।

29. 'शब्दसंयम समर्थ कवि का प्रधान लक्षण होता हैं', यह विशेषता उभय कवियों में मिलती है।

30. नये बिंब, नये प्रतीक, नयी शब्दावली दोनों सृजनधर्मी होने के साथ-साथ कल्पना का सुंदरतम प्रयोग अपनी कविता में करते हुए दिखाई देते हैं।

31. भाषा, लय, छंद, तुक, मति, गति का संस्कार और पुनर्निर्माण उभय कवियों ने किया। इसी कारण दोनों ने प्रयोगशीलता के नये आयाम खोले।

32. अज्ञेय तमाम विचारधाराओं का अतिक्रमण कविता के माध्यम से करते हैं। ठीक उसी तरह मर्ढेकर भी।

33. भयंकर निराशा का भाव मर्ढेकर की कविता में अभिव्यक्त हुआ है। ठीक इसी तरह अज्ञेय की कविता में निराशा बोध व्यक्त हुआ है।

34. उभय कवियों ने हिंदी-मराठी दो भाषाओं के साहित्य को समृद्ध, संपन्न, प्रभावपूर्ण एवं संवेदनागत वैविध्य से परिपूर्ण बनाया।

35. अज्ञेय और मर्ढेकर ने संवेदना के अनुकूल नये प्रतीकों की योजना की।

36. अज्ञेय जी का काव्य-व्यक्तित्व आदर्श एवं अव्यक्त किन्तु मर्ढेकर का काव्य-व्यक्तित्व ÃÖ¿ÖŒÝÖ ¹ý¯Ö ´Ö †×³Ö¾µÖŒÝÖ Æü†Ö Æü...

37. अज्ञेय नीतिपरक, अध्यात्मवादी, मर्ढेकर में भी ईश्वरी सत्ता के प्रति आकर्षण का भाव दिखाई देता है।

38. पीड़ितों के प्रति सहानुभूति का भाव अज्ञेय और मर्ढेकर में लक्षित होता है।

39. तत्सम शब्दों की बहुलता के कारण अज्ञेय की काव्यभाषा जनभाषा से दूर, ठीक उसी तरह मर्ढेकर की काव्य संवेदना पर अश्लिलता और घोर वैचारिकता का आक्षेप लगाया गया।

40. स्वातंत्र्योत्तर परिवर्तित संवेदना की सशक्त अभिव्यक्ति दोनों कवियों ने पूरी क्षमता से की।

41. प्रकृति अज्ञेय के प्रतीकों का प्रमुख क्षेत्र, मर्ढेकर ने भी अनेक नये प्रतीक प्रकृति से ही चुने।

42. अज्ञेय की कविता में आस्था और विद्रोह का वादी-संवादी स्वर सुनाई देता है, मर्ढेकर ने भी अपनी कविता में इसी स्वर को आलापा है।

43. वर्तमान का बोध-दोनों कवियों की कविता में सजग रुप में लक्षित होता है।

44. उभय कवियों की कविता में सूक्ष्म सौंदर्य बोध व्यक्त हुआ है।

अज्ञेय और मर्ढेकर की कविता में विसादृश्यता :

कवि अज्ञेय और मराठी कवि मर्ढेकर की कविता में अंतर्भूत विसादृश्यता को निम्नांकित बिंदूओं के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है।

1. अज्ञेय की कविता में व्यक्ति, व्यक्ति सत्य, व्यक्ति चेतना और व्यक्तिवाद का बोलबाला रहा। किन्तु मर्ढेकर की कविता में व्यक्ति समाज के बहाने आता है। समाज, संस्कृति और लोक जीवन के अनेक चित्र मर्ढेकर उकेरते हैं।

2. अज्ञेय अहंवादी, मर्ढेकर समाजोन्मुख।

3. अज्ञेय अंतः सत्य, व्यक्ति की दमित वासनाएँ, कुंठाओं को व्यक्त करते हैं। मर्ढेकर बाह्य सत्य की बात करते हैं।

4. अज्ञेय व्यक्ति के अस्तित्व की चिंता का अवगाहन करते हैं, मर्ढेकर व्यक्ति और समाज के सत्यों का मार्मिक प्रकाशन करते हैं।

5. अज्ञेय की कविता में नागर और ग्रामीण जीवन के संस्कार बराबर नजर आते हैं। किन्तु मर्ढेकर विशुद्ध शहरी जीवन के प्रॉडक्ट हैं।

6. अज्ञेय अपनी कविता के माध्यम से महानगरीय जीवन और मशिनी संस्कृति का संकट बताते हैं। मनुष्य जीवन की सीमाओं को बताते हैं। किन्तु मर्ढेकर महानगर में जी रहे मनुष्य जीवन की क्षुद्रता और असहायता का वर्णन करते हैं। अज्ञेय मनुष्य जीवन को 'क्षुद्र' नहीं कहते।

7. अज्ञेय पर पश्चिमी चिंतन का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है, वे पश्चिमी चिंतन का कई बार अनुकरण करते दिखाई देते हैं। पर मर्ढेकर के काव्य में पश्चिमी चिंतन का स्पष्ट (प्रत्यक्ष) प्रभाव नहीं देखा जा सकता।

8. अज्ञेय कलावादी, रुपवादी हैं। मर्ढेकर कलावाद के साथ जीवनवाद बनाम मानववाद का रास्ता अपनाते हैं।

9. अज्ञेय को लंबी आयु मिली। उनकी काव्य-यात्रा का दौर काफी लंबा रहा। उनके तेरह काव्य संग्रह प्रकाशित हुए। मर्ढेकर को अल्पायु प्राप्त हुई। केवल तीन काव्य संग्रह और कुछ असंकलित कविताएँ कवि मर्ढेकर की मराठी साहित्य को देन है। केवल तेरह वर्षों का काव्य-जीवन मर्ढेकर जी सके।

10. अज्ञेय कविता में आदर्शोन्मुख यथार्थवादी रहे। मर्ढेकर कविता में यथार्थवादी अधिक नजर †ÖÝÖ Æ…

11. अज्ञेय की कविता में जीवन द्वंद्व का अभाव परिलक्षित होता है, पर मर्ढेकर के काव्य में जीवन द्वंद्व के अनेक चित्र पाये जा सकते हैं।

12. अज्ञेय कविता में वर्णनात्मक शैली के स्थान पर नाटकीय शैली का अवलंब करते हैं, पर मर्ढेकर में वर्णनात्मकता एवं दृश्यात्मकता की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है।

13. अज्ञेय की तुलना में मर्ढेकर जीवनवादी, मानववादी दिखाई देते हैं।

14. अज्ञेय के संपूर्ण, सृजन-चिंतन की केंद्रीय समस्या है- 'आत्म' और 'अन्य' के रिश्ते की तलाश, किन्तु मर्ढेकर इस संवेदना सूत्र में रमे नहीं। उन्होंने व्यक्ति और समाज, व्यवस्था और व्यक्ति तथा समय और व्यक्ति के गहनतम रिश्तों की तलाश की।

15. अज्ञेय की कविता में प्रकृति दोहन का स्वर उभरा है। यहाँ कवि इकॉलॉजी की चिंता करता है। मर्ढेकर प्रकृति चित्रण करते हैं किन्तु प्रकृति के दोहन की चिंता कहीं नहीं दीखती।

16. अज्ञेय ने भारतीयता, सामाजिकता, आत्मबोध, आत्मान्वेषण और आधुनिकता इन पांचों को एक विलक्षण ढंग से साधा है। किन्तु मर्ढेकर आधुनिकता, सामाजिकता और आत्मान्वेषण की प्रक्रिया को सर्वाधिक ´ÖÆÏÜ¾Ö ¤ÏÜÖ ÆîÖ…

■ ■ ■

ÃÖ¤³Ö ÃÖ“Öß :

1. अज्ञेय : एक अध्ययन, भोलाभाई पटेल, गुजरात युनिर्वसिटी, अहमदाबाद, पृ. 3
2. अज्ञेय की काव्यतितीर्षा, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, संस्करण 2001, ¯Ö. 35, 36
3. ¾ÖÆß, ¯Ö. 37
4. ¾ÖÆß, ¯Ö. 47
5. ¾ÖÆß, ¯Ö. 104
6. अज्ञेय और अडिग के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. परिमला अंबेकर, पृ. 51
7. ¾ÖÆß, ¯Ö. 53
8. अज्ञेय काव्य साधना, पृ. 115
9. अज्ञेय और अडिग के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. परिमला अंबेकर, पृ. 57
10. आलोचना और आलोचना, पृ. 95
11. अज्ञेय, महावृक्ष के नीचे, पृ. 68
12. अज्ञेय, डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, संस्करण 2002, ¯Ö. 24
13. नये प्रतिनिधि कवि, पृ. 133
14. स.ही.वा. अज्ञेय, सदानीरा भाग-1, सागर तट की सीपियाँ, पृ. 304
15. सदानीरा भाग-1, कवि हुआ क्या फिर, पृ. 233-234
16. डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय, संवाद, पृ. 30
17. अज्ञेय, विद्यानिवास मिश्र, पृ. 34
18. सदानीरा, भाग - 2, †–ÖµÖ, ¯Ö. 71
19. ¾ÖÆß, ¯Ö. 167
20. ¾ÖÆß, ¯Ö. 93
21. समकालीन हिंदी कविता :अज्ञेय और मुक्तिबोध के संदर्भ में, डॉ. शशि शर्मा, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण-2008
22. सदानीरा, भाग-2, †–ÖµÖ, ¯Ö.265
23. ¾ÖÆß, ¯Ö.50
24. ¾ÖÆß, ¯Ö.259
25. सदानीरा भाग-1, †–ÖµÖ, ¯Ö. 232
26. ¾ÖÆß, µÖ¨ ×¾Ö¸Ö´Ö, ¯Ö.155
27. भवन्ती, अज्ञेय, पृ. 14

28. सदानीरा भाग-2, †–ÖµÖ, ¯Ö. 59

29. सदानीरा भाग-2, अज्ञेय, कलगी बाजरे की, पृ. 240

30. सदानीरा भाग-2, अज्ञेय, महानगर : रात, पृ. 288

31. सदानीरा भाग-1, †–ÖµÖ

32. सदानीरा भाग-2, †–ÖµÖ, ^¬ÖÖ¸ü, ¯Ö.120

33. मर्ढेकर की कविता, बाळ सीताराम मर्ढेकर, मौज प्रकाशन गृह, मुंबई, प्रथम आवृत्ति 1959, पुनर्मुद्रण (पांच) 1994, अनुवाद-डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे

34. ¾ÖÆüß, ¯Ö. 15

35. वही, अनुवाद-डॉ. रणसुभे, पृ. 4

36. मर्ढेकर की कविता : स्वरुप और संदर्भ, मौज प्रकाशन गृह, मुंबई, सं.2008

37. कविता में आधुनिकवाद, शब्दालय प्रकाशन, श्रीरामपुर, द्वितीय संस्करण 2013, ¯Ö. 60

38. मर्ढेकर की कविता, बा. सी. मर्ढेकर, मौज प्रकाश गृह, सं. पुनर्मुद्रित, 1994, ¯Ö.24

39. कविता में आधुनिकवाद, शब्दालय प्रकाशन, श्रीरामपुर

40. मर्ढेकर की कविता, मर्ढेकर, पृ. 81

41. मर्ढेकर की कविता, कविता क्र. 1

42. मर्ढेकर की कविता, कविता क्र. 3, अनु. डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे

43. मर्ढेकर की कविता, बा.सी. मर्ढेकर, कविता क्र.27, ¯Ö.98

44. कुछ और कविताएँ, बा. सी. मर्ढेकर

45. कुछ कविताएँ, मर्ढेकर, कविता क्र. 45

46. कुछ कविताएँ, मर्ढेकर, कविता क्र. 21, अनु. डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे

47. मर्ढेकर की कविता, मर्ढेकर, कविता क्र. 25, अनु. रणसुभे

48. मर्ढेकर की कविता, मर्ढेकर, कविता क्र. 32, अनुवाद डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे

49. मर्ढेकर की कविता, मर्ढेकर, कविता क्र.7, असंकलित कविताएँ, अनु. डॉ. सू. रणसुभे

50. मर्ढेकर की कविता, बा. सी. मर्ढेकर, कविता क्र. 32, अनुवाद डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे

51. समकालीन हिंदी कविता अज्ञेय और मुक्तिबोध के संदर्भ में, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण-2008, ¯Ö. 46

52. आत्मनेपद, अज्ञेय, अन्तिम पृष्ठ

53. सदानीरा भाग-2, †–ÖµÖ, ¯Ö. 262

54. मर्ढेकर की कविता, मर्ढेकर, कविता क्र.6, ¯Ö. 29

55. ¾ÖÆüß, ¯Ö. 29

56. अज्ञेय की काव्य तितीर्षा, पृ. 47

57. अज्ञेय की काव्य तितीर्षा, पृ. 55-56

58. कुछ कविताएँ, बा. सी. मर्ढेकर, कविता क्र. 21, अनु. डॉ. रणसुभे

59. अज्ञेय का कवि-कर्म, रमेशचंद्र शाह, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र.सं. 2012, ¯Ö. 60

60. कुछ कविताएँ, बा. सी. मर्ढेकर, कविता क्र.21, अनु. डॉ. रणसुभे

61. स. ही. वा. अज्ञेय, सदानीरा भाग-2, नन्दादेवी-2, ¯Ö. 308

62. स.ही.वा. अज्ञेय, सदानीरा भाग-2, अंगार, पृ. 154

63. मर्ढेकरांची कविता, मर्ढेकर, पृ. 11

64. अज्ञेय की काव्य तितीर्षा, पृ. 30

65. सदानीरा भाग-2, †–ÖµÖ, ¯Ö. 374

66. सदानीरा भाग-2,†–ÖµÖ, ¯Ö. 17

67. भवन्ती, अज्ञेय, पृ. 64

68. सदानीरा भाग-2, †–ÖµÖ, ¯Ö. 59

69. अज्ञेय का कवि कर्म, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ. 38-39

70. अज्ञेय की काव्य तितीर्षा

71. सदानीरा भाग-1, †–ÖµÖ, ¯Ö.241

72. सदानीरा भाग-2, †–ÖµÖ, ¯Ö. 177

73. सदानीरा भाग-2, †–ÖµÖ, ¯Ö. 177, ¯Ö. 325

74. सदानीरा भाग-2, अज्ञेय, प्रातः संकल्प, पृ. 130

■ ■ ■

“ÖŸÖ£Ö †¬µÖÖµÖ

अज्ञेय और मर्ढेकर के उपन्यास : तुलनात्मक अध्ययन

(आशयद्रव्य, भाषा, शैली और शिल्पगत अध्ययन)

“ÖŸÖ£Ö †¬µÖÖµÖ

4.1 अज्ञेय के उपन्यास : एक मूल्यांकन

4.1.1 आशय की दृष्टि से

4.1.2 भाषा की दृष्टि से

4.1.3 शैली की दृष्टि से

4.1.4 शिल्प की दृष्टि से

4.1.5 निष्कर्ष

4.2 मर्ढेकर के उपन्यास : एक मूल्यांकन

4.2.1 आशय की दृष्टि से

4.2.2 भाषा की दृष्टि से

4.2.3 शैली की दृष्टि से

4.2.4 शिल्प की दृष्टि से

4.2.5 निष्कर्ष

4.3 अज्ञेय और मर्ढेकर के उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन

(आशय, भाषा, शैली और शिल्प की दृष्टि से)

4.4 निष्कर्ष

4.1 अज्ञेय के उपन्यास : एक मूल्यांकन

प्रस्तावना :

आधुनिक हिंदी कविता के शिखरपुरूष अज्ञेय वस्तुतः एक श्रेष्ठ कथाकार भी रहे हैं। जितने श्रेष्ठ उपन्यास वात्स्यायन जी ने लिखे हैं, उतनी ही श्रेष्ठ एवं मर्मस्पर्शी कहानियाँ भी। पिछले अध्याय में हमने कवि अज्ञेय के रचना-कर्म पर प्रकाश डाला है। प्रस्तुत अध्याय में उपन्यासकार वात्स्यायन के आलोकतम व्यक्तित्त्व एवं चिंतन पर विचार करना अभीष्ट होगा। वस्तुतः अज्ञेय मुख्य रूप से कवि के रूप में विख्यात हुए। किन्तु अनुठे उपन्यासकार, मर्मस्पर्शी कहानीकार, गजब की निरीक्षण क्षमता के यायावर (यात्रा वृत्तकार) एवं समय-समय लिखी गई समीक्षाओं के कारण उदित हुए समालोचक आदि भूमिकाओं में नजर आते हैं। प्रस्तुत अध्याय में उपन्यासकार अज्ञेय पर विचार मंथन अपेक्षित हैं।

आधुनिक हिंदी गद्य के प्रगल्भ शिल्पी के रूप में सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अपनी अलग पहचान रखते हैं। वात्स्यायन जी ने वस्तुतः तीन ही उपन्यास लिखे। किन्तु इन तीनों उपन्यासों ने हिंदी उपन्यासों की परंपरा में एक विलक्षण बोध का अहसास कराया। शेखरः एक जीवनी (¯ÖÆü»ÖÖ भाग - 1941), शेखर : एक जीवनी (दूसरा भाग - 1944), दूसरा उपन्यास 'नदी के द्वीप' (1951) और तीसरा और अंतिम उपन्यास है- 'अपने अपने अजनबी' (1961), अज्ञेय के दो असमाप्त उपन्यास भी इला डालमिया जी ने प्रकाशित किये हैं। वे है- 'बीनू भगत' और 'छाया मेखल'। किन्तु 'बारहखम्भा' शीर्षक से एक प्रयोगशील उपन्यास भी अपने नौ मित्रों को लेकर लिखा है, जिसे 'उपन्यास प्रयोग' कहा गया है। अज्ञेय लब्धप्रतिष्ठ हुए अपने आरंभिक उपन्यासों की वजह से। ये तीनों उपन्यास हिंदी की महती उपलब्धि है। 'शेखर : एक जीवनी' जैसी रचना तो मील का पत्थर साबित हुई। अज्ञेय नयी रचनागत बुनावट, नयी तकनीक, अभिव्यंजना की नयी शैली, भाषा का नया कलेवर एवं कथ्य की नयी अभिव्यक्ति के कारण चर्चित हुए। दो महायुद्धों के बीच स्थित समय-समाज, बदली हुई सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और उभरते हुए नये जीवनमूल्यों के परिप्रेक्ष्य में अज्ञेय का लेखक उभरता है। अज्ञेय अनुभव के नये विश्व को लेकर आए। पूर्व और पश्चिम की टकराहट की अनुगूंज उनकी रचनाओं में सुनी जा सकती है। विश्वमंच पर उभर रहे नये जीवनदर्शन, जीवन प्रणाली और जीवनमूल्यों ने उन्हें भीतर तक झकझोर डाला। मनुष्य के अस्तित्त्व से संबंधित प्रश्न, मनुष्य के सूक्ष्म मानसिक जगत की हलचलों (सिद्धांतों) के परिप्रेक्ष्य में उभरती हुई नयी सभ्यता, बदलते स्त्री-पुरूष संबंध, अनुभव के नये संसार के आलोक में लेखक अज्ञेय का रचनासंसार उघड़ता चला जाता है। स्वातंत्र्योत्तर उभरते परिवेश के बीच अज्ञेय ने मनुष्य के जीवन में आया एकाकीपन, अजनबीपन, संत्रास और घुटनभरी जिंदगी के बेलौस चित्र खींचे हैं। कथात्मक संवेदना,

चरित्र और तकनीक के क्षेत्र में लेखक ने एक नया कथा-पाठ रचा है। व्यक्तिवादिता की सूक्ष्म अभिव्यक्ति उनकी रचनाओं में यत्र-तत्र हुई है। नए प्रतिमानों के काव्यशास्त्र ने उपन्यास का पूरा शिल्प और चरित्र ही अज्ञेय ने बदल दिया। उपन्यास साहित्य की पुरानी सीमाओं को तोड़कर परंपरागत ढाँचे को त्यागकर नया पैटर्न निर्मित करने का श्रेत्र अज्ञेय को ही जाता है।

अज्ञेय की उपन्यास यात्रा का यह सच है कि, लेखक आत्मकथात्मक शैली में अपूर्व प्रयोग करते हुए आधुनिकता का प्रथम उठान करता है। अज्ञेय ने सरल सामाजिक यथार्थ के स्थान पर जटिल सामाजिक यथार्थ को वरीयता दी। मनोविश्लेषणात्मक प्रविधियों को अपनाते हुए चरित्र के अंतर्मन को खोलने का उपक्रम अज्ञेय करते हैं। जटिल मनोभावों-मनोविकारों को व्यक्त करने का जोखिम भी उठाते हैं। अज्ञेय का व्यक्ति के बाहय परिवेश पर नहीं, आंतरिक प्रक्रियाओं, द्वंद्वों, तनावों और विरोधाभासों की हलचलों पर ध्यान केंद्रित हैं। इसलिए वे व्यक्ति को गहरे तक खोलते हैं उसके भीतर का अन्वेषण करते हैं। उनकी नयी दृष्टि व्यक्ति केंद्रित हैं। व्यक्ति सत्य को समाजसत्य में तब्दिल करते हुए अपने अनुभूत सत्य तक वे पहुँचना चाहते हैं। अज्ञेय का अभिजात्य और पैनी संवेदनशीलता से उत्पन्न जन्मजात विद्रोही व्यक्तित्त्व परंपरा से विद्रोह करता है। अपने खुद के कमाये हुए सत्य की बात करता है। अज्ञेय का जीवन और साहित्य समांतर चलते हुए नजर आते हैं। इसलिए उनके जीवन की छाया साहित्य में और साहित्य उनके जीवन की अनुकृति बनते दिखाई देता है। क्रांतिकारी आंदोलन, पत्रकारिता का अनुभव जगत, पाश्चात्य पद्धति की शिक्षा का प्रभाव, किसान आंदोलन की सक्रियता आदि ने उनकी जीवनेच्छा एवं जीवनानुभूतियों को प्रभावित किया। यही प्रभाव उनके उपन्यास साहित्य में नजर आता है। लेखक का रचना-पाठ मुक्ति चेतना पर केंद्रित है। यहाँ मुक्ति अनेक रूपों का संकेत देती है। मुक्ति के बाद संकेतित लेखक के भाव, अनुभाव, विभाव रचना की अंतर्वस्तु को बदल देते हैं। अंतर्वस्तु के संकेत प्रतीकों, बिंबों, मिथकों, उद्धरणों, रूपाकारों से व्यंजक शब्दों-वाक्यों के बहुलार्थक पाठ का अनुशासन रचते हैं। उपन्यासकार अज्ञेय का रचना विधान इन्हीं उपादानों से अभिव्यक्त हुआ है। इस संपूर्ण पृष्ठभूमि में उपन्यासकार अज्ञेय का उपन्यास साहित्य सृजित हुआ है। विशेषतः उनके उपन्यासों में गहरी चिंतनशीलता भी उभरती है। इसलिए अज्ञेय के उपन्यासों में हमें गहरी बौद्धिकता और वैयक्तिकता के आग्रह का साक्ष्य मिलता है।

4.1. अज्ञेय के उपन्यास : एक मूल्यांकन

4.1.1 शेखर : एक जीवनी (आशय की दृष्टि से)

अज्ञेय की उपन्यास यात्रा का आरंभिक पायदान होते हुए उनकी कीर्ति का शिखर कलश है- शेखर : एक जीवनी (1941)। कुल चार खण्डों (उषा और ईश्वर, बीज और अंकुर, प्रकृति और ¯ÖºþÂÖ †Öî¸ü ¯ÖºþÂÖ †Öî¸ü ¯Öx¸ÛÃ£ÖxŸÖ) ´Öë x¾Ö³ÖÖx•ÖŸÖ <¾Ö 226 पृष्ठों में अंकित यह आत्मकथात्मक

उपन्यास है। यह शेखर की जीवनी है। व्यक्ति शेखर और कलाकार शेखर के व्यक्तित्त्व की सूक्ष्म झांकी प्रस्तुत रचना की उपलब्धि है। इस आत्मकथात्मक उपन्यास का प्रकाशन 1941 ´Ö ÆË†Ö… प्रकाशन के साथ हिंदी उपन्यास साहित्य में भूचाल-सा आया। अपने नवीनतम कथ्य, संवेदना की नयी बुनावट और शिल्प की तराश ने अपने समकालीनों को बहुत प्रभावित किया।

शेखर : एक जीवनी (खण्ड 1) के आशय पर प्रकाश डालने से पूर्व प्रस्तुत उपन्यास की भूमिका से लेखक अज्ञेय के तीन उद्‌धरणों को पेश करना चाहूँगा। अज्ञेय लिखते हैं, "शेखर घनीभूत वेदना की केवल एक रात में देखे हुए Vision को शब्दबद्ध करने का प्रयत्न है।"[1] "शेखर जो केवल एक जीवन ही नहीं, एक व्यक्ति के अपने मुँह कही हुई जीवनी है, उसके लेखक की जीवनी नहीं मान ली जायेगी।"[2] शेखर निस्संदेह एक व्यक्ति का अभिन्नतम निजी दस्तावेज (a record of personal suffering) है, यद्यपि वह साथ ही उस व्यक्ति के युग-संघर्ष का प्रतिबिंब भी है। इतना और ऐसा निजी नहीं है कि उसके दावे को आप एक आदमी की निजू बात कहकर उड़ा सके, मेरा आग्रह है कि उसमें मेरा समाज और मेरा युग बोलता है कि वह मेरे और शेखर के युग का प्रतीक है।"[3]

इन तीनों उद्‌धरणों के माध्यम से लेखक अज्ञेय की सृजनशील मानसिकता को समझा जा सकता है। पहले उद्धरण में आत्मानुभूत सत्य का उद्‌घाटन है। दूसरे उद्धरण में शेखर के व्यक्ति जीवन की अर्थच्छटा का परिपाक मिलता है। (व्यक्ति के विद्रोह, शक्ति की गाथा) तीसरे उद्धरण में यह अहसास होता है कि "प्रस्तुत रचना में एक संवेदनशील विद्रोही युवक की मानस गाथा नहीं है बल्कि व्यक्ति के साथ युगीन संदर्भ भी जुड़े हुए हैं। लेखक को लगता है कि एक व्यक्ति की निजी बात कहकर उड़ा देना असंगत है। क्योंकि प्रस्तुत रचना में मुक्ति की खोज है, स्वाधीनता आंदोलन की चेतना है, व्यक्तित्व और अस्मिता के प्रश्नों की तलाश है, भारतीय नवजागरण से उत्पन्न बौद्धिकता ने इस कृति को अपने आप में अपने समय का प्रतिमान बना दिया है। विशेषतः शेखर एक आधुनिक उपन्यास है। यह आधुनिक इसलिए है कि शेखर का विद्रोह इसी अर्थ में सार्थक और आधुनिक है कि वह उस संवेदना का जन्मदाता है जिसके संदर्भ में समस्त पूर्वनिर्मित और पूर्वनिर्धारित मूल्य तथा नैतिक बोध, अजनबी हो जाते हैं....... इसी अर्थ में शेखर आधुनिकता की दिशा का आभास देनेवाला पहला उपन्यास है।"[4]

प्रस्तुत रचना की आशयगत उपलब्धि क्या है? क्या यह उपन्यास आधुनिकता की कसौटि पर खरा उतरता है? क्या यह उपन्यास हिंदी उपन्यास की परंपरा को मोड देनेवाला है? क्या प्रस्तुत कृति मात्र मनोविश्लेषण का आख्यान मात्र रह गयी है? आदि प्रश्नों पर विचार करने से पूर्व प्रस्तुत रचना के वस्तु पक्ष पर संक्षेप में प्रकाश डाला जाय।

'शेखर : एक जीवनी' के प्रथम खंड में वर्णित स्थूल घटनाएँ एवं मार्मिक स्थितियों का अंकन

कुछ इस प्रकार से है- उपन्यास के प्रथम भाग में शेखर के परिवार, उसका बचपन, पढ़ाई, स्कूल, पड़ोस, स्थानांतरण, लखनऊ में आई बाढ़, प्रथम महायुद्‌ध, स्वाधीनता आंदोलन, उसके जीवन में आई स्त्रियाँ, माता-पिता का व्यवहार, कश्मीर का प्राकृतिक सौंदर्य, अमृतसर की यादें, जीवन में समझ-असमझ के बीच द्वंद्व, सृष्टि, ईश्वर, जैविक निर्मिति से संबंधित कुछ सनातन प्रश्न (जिज्ञासाएँ), यौवनावस्था, अत्ती, पुरूष और प्रकृति का चित्र, कविता का सुख, सरस्वती की लज्जा, शान्ति के आँसू, सावित्री का मौन, माँ का निरंतर सहते जाना, शशि का आग्रह, शारदा का कम्पन, शान्ति की असमय मृत्यु आदि का समग्र चित्रण, मद्रास के कॉलेज जीवन तथा केरल की जिंदगी के कुछ अनूठे चित्र, हॉस्टेल के अनुभव, समलिंगी आकर्षण, अछूतों के प्रति करूणा भाव, बहुत कुछ पाने की लालसा में सबकुछ छूट जाने का भय, शारदा के देश से विदा आदि प्रसंगों की सजग, साफ, µÖ£ÖÖ£Ö †Ö¸¡ ¯Ö³ÖÖ¾Ö¿ÖÖ»ÖÖß †×³Ö¾µÖÛŒÖ Æü‡Ô Æü…

तो उपन्यास के दूसरे खंड में लाहौर के कॉलेज परिवेश के अनुभव, काँग्रेस अधिवेशन, जेल जीवन, प्रकाशकों की दुनिया (कलाकार शेखर का संघर्ष), लाहौर के सामाजिक जीवन के कुछ उत्कट चित्र, गुप्त क्रान्तिकारियों की कार्यप्रणाली इन तमाम चित्रों से यही स्पष्ट होता है कि यह उपन्यास एक व्यक्ति का निजी दस्तावेज नहीं है बल्कि अपने युग का आख्यान भी रचता है। शशि का दर्दनाक अंत, व्यष्टि और समष्टि के द्वंद्व के अनेक प्रसंग, बनते बिगड़ते जीवनानुभव, सृजनशील मानस की अंतः प्रक्रियाएँ, काम भाव के अनेक दृश्य, मृत्यु की छाया में जीवन के प्रति आसन्न उत्कटता के अनेक चित्र प्रस्तुत खंड में उभरे हैं।

'शेखर : एक जीवनी' के प्रथम खंड में आसन्नमृत्यु की छाया में एक युवक की छटपटाहट को अभिव्यक्त किया गया है। जीवन के अंतिम पड़ाव पर पहुँचकर अपने अतीत के आख्यान को लेखक शेखर के माध्यम से रचता है। शशि की स्मृतियाँ (दूर की बहन) रह-रहकर उछाले मार रही है। शशि प्रेरणा है। अपने बचपन की यादों में खोए हुए शेखर का चित्रण है। जिसका बचपन लखनऊ और श्रीनगर में बिता। शेखर की स्मृतियों में, अर्धस्मृतियों में शैशव, बचपन, किशोर अवस्था की यादें गहरी बैठी है। मानव जीवन का अनुशासन करनेवाली तीन महत् प्रेरणाओं का उल्लेख है, जिनकी वजह से किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्त्व का संवर्धन और संरक्षण होता है। वे प्रेरणाएँ हैं- अहंता, भय और सेक्स। शैशव अवस्था से ही शेखर में विद्रोही भाव नजर आता है। मास्टर के साथ बर्ताव, शशि के साथ बहनापा, सरस्वती (बहन) के प्रति आकर्षण, ईश्वर के अस्तित्व से संबंधित जिज्ञासाएँ अर्थात ईश्वर के अस्तित्त्व का नकार आदि घटनाएँ इसका साक्ष्य देती है। किशोर अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते जीवन में आई निरूद्देश्य भटकन, गांधी आंदोलन और गांधी के प्रति श्रद्धाभाव जागृत हो जाता है। वयः संधि के काल में कुछ अनचाही घटनाएँ घटित हो जाती है। बहन सरस्वती के

प्रति आकर्षण ने मानसिक जगत में अलग ही हलचलें मचायी हैं। किशोर विश्व में सरस्वती के आगमन से स्त्री के प्रति आकर्षण का भाव जाग उठा है। अचानक सरस्वती की शादी तय हो जाने से शेखर के सन्न रह जाने की घटना बड़ी मार्मिकता के साथ अंकित हुई है। शेखर का भटकाव जारी है। दक्षिण निवास में शारदा से भेंट हो जाती है। शारदा से प्रेम हो जाता है। किन्तु मैट्रिक की परीक्षा देने शेखर को लाहौर जाना पड़ता है। शारदा से आक्रांत शेखर के जीवन में शशि का आगमन होता हैं। धीरे-धीरे शादी के बारे में बोध का अहसास होने लगता है। वय:संधि (पंद्रह वर्ष की आयु) का आगमन और महाविद्यालयीन जीवन के अनुभवों ने शेखर के अचेतन मन में काम भावना जागृत हुई। नतीजतन विपरित लिंगी भाव भी पनपते गया। कुमार के प्रति समलैंगिक आकर्षण के कुछ दृश्य लेखक ने चितारे हैं। वस्तुतः शेखर के मन में अनेक चीजों को लेकर बचपन से विद्रोह भाव रहा है। जिसका असर ब्राह्मणों का होस्टल छोड़कर अछूतों के होस्टल में प्रस्थान के प्रसंग में हम देखते हैं। युवावस्था में समाज परिवर्तन की आकांक्षा जागती है। रात्रि पाठशाला, नारी गौरव प्रस्थापना एवं एंटीगोनम क्लब की स्थापना इसी बात को दर्शाता है। शेखर मद्रास से त्रिवेंद्रम के लिए निकल पड़ता है। त्रिवेंद्रम में शारदा से भेंट हो जाती है। शारदा के नकार ने शेखर को आहत किया। अंततः शारदा के देश से विदा होता है। पहले भाग का शीर्षक संघर्ष है। शेखर के जीवन-संघर्ष की प्रमुख घटनाओं का समावेश प्रथम खंड में होता है।

दूसरे खंड की कथा उत्थान शीर्षक से होती है। यह शेखर के जीवन का निर्माणकाल है। अब तक सत्रह वर्षीय शेखर के जीवन की कथा कही गई है। दूसरे खंड का प्रारंभ शारदा के देश से अर्थात् मद्रास से विदा होने की कथा से होता है। शेखर मद्रास से पढ़ाई हेतु लाहौर आता है। परीक्षा खत्म होते-होते खबर मिलती है कि शशि के पिता का देहांत हुआ है। शशि के इस दुखद प्रसंग में शेखर शशि को सहारा देता है। धीरे-धीरे शेखर और शशि आप से तुम तक आते हैं। इसी दौरान राष्ट्रीय काँग्रेस के अधिवेशन में घटित घटना ने शेखर के जीवन को नया मोड़ दिया। स्वयंसेवकों द्वारा सी. आई. डी. को पिटने के मामले में हवालात में बंद किया जाता है। शेखर दस महिने जेल में रहा। इस दौरान स्वाधीनता का अर्थ समझने की कोशिश वह कर रहा था। जीवन जगत, स्वाधीनता को लेकर कई सारी जिज्ञासाएँ मन में हैं। जेल में क्रांतिकारी मदनसिंह, मोहम्मद मोहसिन का परिचय होता है। इनके सान्निध्य में जीवन दृष्टि ही बदल जाती है। जेल की यातनामय जिंदगी से छुटकारा पाने के बाद शेखर सीधे शशि से मिलने जाता है। शेखर और शशि में धीरे-धीरे रागात्मक संबंध विकसित होते गये। उपन्यासकार ने शशि और शेखर के मध्य स्थापित स्नेहपूर्ण संबंधों का बारीकी से आलेखन किया है। यहाँ से कलाकार शेखर के उत्थान की कथा कहीं गयी है। अनुभूत सत्य को व्यक्त करने के लिए उकसाने वाली शशि, शेखर के लेखन की प्रेरणा बन जाती है। प्रकाशकों से मिले खराब

अनुभव से शेखर आत्महत्या की स्थिति तक पहुँच जाता है किंतु शशि बचा लेती है। शेखर क्रांतिकारियों के सम्पर्क में आता है। क्रांतिकारियों का साथ देता है, उन्हें सहायता करता है। पेंटर का काम भी करता है। क्रांतिकारी जीवन के कुछ मार्मिक प्रसंगों का लेखक ने अंकन किया है। इधर पति के संदेह की वजह से शशि को घर-बाहर किया जाता है।अत्याचार को झेलती हुई असहाय शशि को आधार देने का काम शेखर करता है। लाहौर के असुरक्षित माहोल में शशि को आधार देने का काम शेखर करता है। लाहौर के असुरक्षित माहौल में शशि और शेखर का जीवन चलता है। वे दोनों दिल्ली आते हैं। शशि और शेखर में अन्तरतम सख्य स्थापित होता है। शारीरिक और मानसिक जख्मों को सहते-सहते एक दिन शशि शेखर का साथ छोड़ देती है। अंतः शेखर लाहौर के लिए प्रस्थान करता है। ये हैं स्थूल घटनाएँ, प्रसंग जो 'शेखर : एक जीवनी' में वर्णित हुई हैं।

इस संपूर्ण वस्तु-पक्ष की पृष्ठभूमि में प्रस्तुत उपन्यास के आशय पक्ष का मूल्यांकन करना होगा। हिंदी के अनेक समीक्षकों ने इस उपन्यास को किस दृष्टिकोण से देखा है, उस पर हम दृष्टिपात डालेंगे। मूल्यांकन के अंतर्गत विभिन्न विद्वानों के मतों को केंद्र में रखते हुए हम इस रचना के आशय पक्ष को समझने की कोशिश करेंगे। डॉ. भोलाभाई पटेल : 'शेखरः एक जीवनी' हिंदी का प्रथम आधुनिक उपन्यास है और उसका नायक शेखर हिंदी उपन्यासों के नायकों की श्रेणी में आधुनिकता का प्रथम प्रतिभू है।"[5] तथा यहाँ सर्जक के बनने की (Artist in making) प्रक्रिया ही उपन्यास का विषय है। क्रांतिकारी कैसे बनते हैं? उसकी खोज में अज्ञेय चले हैं लेकिन कलाकार कैसे बनता है, उसकी बात 'शेखर : एक जीवनी' में अधिक कही गयी है।"[6] डॉ. चंद्रकांत बान्दिवडेकर - 'मुक्ति की खोज' शेखर की आंतरिक इच्छा थी। मुक्ति की खोज में सबसे पहले वह उन वस्तुओं से उलझा, जो स्थूल थी। जिन्हें वह देख सकता था और उनसे हारकर वह कल्पना के क्षेत्र में आ गया, वहाँ से निराश होकर वह फिर यथार्थ में, स्थूल और प्रत्यक्ष में लौट आया।"[7] ŸÖ£ÖÖ "¯Öx¸¾ÖÖ¸¡, •ÖÖxŸÖ¾ÖÖ¤¡ मध्यवर्गीय मानस की रूढ़िग्रस्तता, स्त्री-पुरूष संबंधों का यथार्थ, लेखनजीवी दुनिया, राष्ट्रीयता इत्यादि ऐसे यथार्थ के अंग हैं जिनके माध्यम से भारत की खण्डित युग चेतना प्रकट होती है।"[8] >¡Ö. इन्द्रनाथ मदान ने इसमें आधुनिकता की चुनौती को वस्तु-शिल्प के धरातल पर अधिक गहरे में स्वीकारा है। "जहाँ तक इसकी वस्तु का सवाल है। इसमें आस्था-अनास्था, नैतिकता-अनैतिकता, हिंसा-अहिंसा के सवालों पर खुलकर सोचा गया है।"[9] डॉ. नन्दकुमार राय के अनुसार, "उपन्यासकार ने अपने कथानायक (पात्र) शेखर के अचेतन और अवचेतन मन को विश्लेषित करने का प्रयास किया है।"[10] तथा "शेखर : एक जीवनी को रोमॅन्टिक विद्रोह का उपन्यास कहना अधिक उपयुक्त तथा अर्थ-संगत जान पड़ता है।"[11] लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का कथन है- "इस चरित्र-प्रधान उपन्यास में शेखर के अनुभवों के जो वृत्तांत आये हैं, वे वैयक्तिक होते हुए भी नितांत व्यक्तिगत नहीं है और

उनकी सामायिकता में कोई संदेह नहीं प्रकट किया जा सकता।"[12] डॉ. भारतभूषण अग्रवाल के कथनानुसार एक "भाव-प्रवण युवक की जीवन गाथा के माध्यम से शेखर में भारतीय नवजागरण का, युगीन परिस्थितियों का, दार्शनिक जिज्ञासा और सामाजिक संघर्ष का एवं पारिवारिक संबंधों के खोखल तोड़कर एक महत्त्वाकांक्षी व्यक्तित्त्व के विन्यास और वैयक्तिक प्रेम की अतिशयता और उदात्तता का एक ऐसा सर्वांगीण, मार्मिक एवं प्रभावपूर्ण प्रक्षेपण है कि यह अपूर्ण कृति भी वीनस की मूर्ति की भाँति अनन्य सौंदर्य से गठित हो गयी है।"[13] डॉ. देवकृष्ण मौर्य के अनुसार "शेखर : एक जीवनी" शिशु तथा बालमानस की तरंगों, कौतुहल और जिज्ञासाओं, सहजात प्रवृत्तियों को उस पर पड़नेवाले प्राणी, प्रकृतिगत परिवेश के सूक्ष्म प्रभावों और माँ-बाप, शिक्षकों आदि के अमनोवैज्ञानिक दुर्व्यवहारों से उत्पन्न विकारों की कथा है।"[14]

डॉ. विजयमोहन सिंह के कथनानुसार- "वस्तुतः हिंदी कथा साहित्य में आधुनिकता का विकास तथाकथित मनोरंजन से दूर जाने का क्रम है। लेकिन अपनी घोषणा के बावजूद प्रेमचंद के अधिकांश उपन्यास (आचार्य नलिन विलोचन शर्मा ने केवल 'गोदान' को अपवाद माना है।) मनोरंजन के ही वाहक है। शेखर का विद्रोह इसी परंपरा में, के विरूद्ध पहला विद्रोह है। शेखर का रूप, वस्तुविन्यास सभी कुछ हिंदी उपन्यास की तत्कालीन परंपरा के विरूद्ध विद्रोह है।"[15] डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल- "एक संवेदनशील विद्रोही युवक की मानसगाथा, स्वाधीनता आंदोलन की चेतना, व्यक्तित्त्व और अस्मिता के प्रश्न, भारतीय नवजागरण से उत्पन्न बौद्धिकता ने इस कृति को अपने समय का प्रतिमान बना दिया है।"[16] गोपाल राय - "शेखर : एक जीवनी प्रधानतः चरित्र प्रधान उपन्यास है। इसकी मनोवैज्ञानिकता पात्रों के चरित्र निर्माण तक सीमित है, पर इस दृष्टि से यह हिंदी का अद्वितीय उपन्यास है।"[117]

इसके अलावा भी कई सारे विद्वान हैं जिन्होंने 'शेखर : एक जीवनी' उपन्यास को समझने-समझाने की कोशिश की है। इन तमाम मतों को केंद्र में रखकर ये कहा जा सकता है कि, भोलाभाई पटेल प्रस्तुत कृति को आधुनिकता का प्रथम उदगार मानते हैं, साथ ही क्रांतिकारी बनने की कथा के संदर्भ को उल्लेखित करते हुए एक कलाकार की संघर्ष कथा को देखते हैं। डॉ. बान्दिवडेकर ने प्रस्तुत कृति में 'मुक्ति की खोज' इस सूत्र को पाया है। साथ ही प्रस्तुत रचना युगीन जीवन संदर्भों की पड़ताल कैसे करती है, इसका मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है। डॉ. इन्द्रनाथ मदान ने प्रस्तुत कृति में आधुनिकता की चुनौती को परखने का प्रयास किया है। वे मानते हैं कि प्रस्तुत रचना चौथे दशक की आस्था-अनास्था, नैतिकता-अनैतिकता, हिंसा-अहिंसा के प्रश्नों से मुठभेड़ करती है। अर्थात् आधुनिक मनुष्य के भीतरी द्वंद्व को रेखांकित करने का प्रयास इसमें हुआ है। डॉ. नंदकुमार राय प्रस्तुत कृति को मनोविश्लेषणात्मक प्रविधि का सशक्त पाठ मानते हैं। चेतन-अवचेतन मन की

स्थितियों का बेबाक चित्रण करना लेखक का उद्देश्य है, ऐसा राय जी का कहना है। साथ ही इस रचना को रोमॅन्टिक विद्रोह की सशक्त अभिव्यक्ति के रूप में वे देखते है। डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने प्रस्तुत रचना को चरित्र प्रधान उपन्यास मानते हुए व्यक्तिवादिता के आक्षेप को नकारा है। उनका कहना है कि यह रचना सामाजिकता के आशय के साथ जुड़ी हुई है। अर्थात् व्यक्ति के बहाने समूह की सत्ता का आख्यान किया गया है, ऐसा वार्ष्णेय जी का मानना है। डॉ. भारतभूषण अग्रवाल ने प्रस्तुत कृति में भारतीय नवजागरण के बीज का उल्लेख करते हुए युगीन जीवन संदर्भों की तलाश की है। यह रचना दार्शनिक जिज्ञासाओं के साथ सामाजिक, पारिवारिक संबंधों की खोखल तोड़ने का प्रयास है, ऐसा अग्रवाल जी का मानना है। डॉ. देवकृष्ण मौर्य ने प्रस्तुत रचना के आशय को केंद्र में रखते हुए इसे शेखर के व्यक्तित्त्व का सजग पाठ बताया है। साथ ही प्रकृति-परिवेश के प्रभावों को झेलते हुए मनोवैज्ञानिक सत्य को अभिव्यक्त करने का प्रयास माना है। तो डॉ. विजय मोहन सिंह ने प्रस्तुत कृति में आधुनिकता के लक्षणों को प्राप्त करते हुए प्रस्तुत रचना मनोरंजन की वाहक नहीं है बल्कि परम्परा के प्रति विद्रोह माना है। डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल ने युगीन संदर्भों की पडताल करते हुए अस्मिता, बौद्धिकता, मानस बोध और व्यक्तित्त्व की जटिलता का बोध कराया है। अर्थात् यह रचना इसी बोध के कारण अपने समय का प्रतिमान बनती है, ऐसा पालीवाल जी का मानना है। डॉ. गोपाल राय ने इसे 'चरित्र प्रधान' उपन्यास मानते हुए इसे चौथे दशक की अद्वितीय कृति माना है। अर्थात् इन तमाम मतों को केंद्र में रखते हुए ये कहा जा सकता है कि अज्ञेय की प्रस्तुत कृति में 'मुक्ति की खोज', 'स्वाधीनता की चेतना', 'सामंती बोध के प्रति नकार', 'व्यक्ति का अंतरद्वंद्व', 'अकेलापन', 'असहायता', 'छटपटाहट' आदि का मनोग्राही अंकन हुआ है। साथ ही बंधन का अस्वीकार, 'स्व' की तलाश, मानवीय स्थितियों का बेबाक चित्रण करना लेखक का उद्देश्य रहा है।' अर्थात् अज्ञेय ने व्यक्ति को केंद्र में रखते हुए समाज की ओर सजगता से देखने का प्रयास किया है। यहाँ व्यष्टि और समष्टि का मात्र द्वंद्व नहीं है बल्कि वे दोनों एक-दूसरे के पूरक कैसे बन सकते हैं आदि को लक्ष्य बनाया है।

इसलिए ये कहना अधिक तर्कसंगत एवं युक्तिसंगत होगा कि 'शेखर : एक जीवनी' एक व्यक्ति के जीवन संघर्ष की गाथा नहीं है, अपने समय-समाज का दस्तावेज भी है, जिसमें तत्कालीन युग बोलता है। अपने युग, अपने आसपास के लोग, अपने समय के प्रति तीखी प्रतिक्रिया यह रचना देती है। जिसमें गहन मृत्युबोध, समयबोध और जीवनबोध की अभिव्यक्ति हुई है। अपने युगीन जीवन संदर्भों की तलाश करता हुआ शेखर अपने आपको बेहद अकेला असहाय और निरूपाय पाता है। जीवन के प्रति उसका नजरिया स्वस्थ, संतुलित है किन्तु अपने हाथों से सबकुछ फिसलते जाने का दर्द भी - माँ, शान्ति, शारदा और अंततः शशि। अज्ञेय ने अपने आगमय जीवन संघर्ष को पूरी

शिद्दत और क्षमता के साथ कलात्मक ढंग से अंकित किया है। इसलिए अंत में यह कहा जा सकता है कि 'सत्य की खोज', ज्ञान की खोज, मुक्ति की खोज तो सुनी थी, सौंदर्य की खोज करने वाला जिज्ञासु शेखर पहला ही था।' पर रचना यहाँ तक आकर ही नहीं रूकती, स्त्री-पुरूष (शशि-शेखर) संबंधों की नयी व्याख्या भी करती है, जो आनेवाले समाज को चिंतन के लिए प्रेरित करती है।

नदी के द्वीप : (आशय की दृष्टि से)

अज्ञेय की उपन्यास यात्रा का दूसरा पड़ाव है- 'नदी के द्वीप'। सन् 1941 में प्रकाशित इस उपन्यास ने अनुभूति के नये क्षितीज को स्पर्श किया। प्रस्तुत उपन्यास कुल 317 पृष्ठों में अंकित एवं ग्यारह खण्डों (प्रकरण) में विभाजित है। ग्यारह में से आठ खण्ड पात्रों के नाम से हैं, प्रत्येक पात्र के नाम पर दो खण्ड हैं। जिसमें भुवन, चन्द्रमाधव, गौरा, रेखा, भुवुन, चन्द्रभमाधव, रेखा और गौरा के नाम से हैं। दो खण्ड अन्तराल और अन्तिम एक 'उपसंहार' शीर्षक से है। प्रस्तुत रचना अपने अनूठे आशय की वजह से चौंकाती हैं, विचार-मंथन के लिए आमंत्रित करती है, साथ ही व्यक्ति के बहाने समाज की ओर देखने का सशक्त प्रयास करती है।

प्रस्तुत उपन्यास के आशय पर चर्चा करने से पूर्व उपन्यास की भूमिका में उद्धृत अज्ञेय के कुछ वक्तव्यों को प्रस्तुत करना चाहूँगा। 'नदी के द्वीप : क्यों और किसके लिए' शीर्षक के अंतर्गत अज्ञेय ने प्रस्तुत रचना का आख्यान कुछ इस प्रकार किया है। वे लिखते हैं "नदी के द्वीप' व्यक्ति चरित्र का उपन्यास हैं। ......व्यक्ति अपने सामाजिक संस्कारों का पुंज भी है, प्रतिबिंब की, पुतला भी, इसी तरह वह अपनी जैविक परंपराओं का भी प्रतिबिंब और पुतला है- जैविक सामाजिक के विरोध में नहीं है, उससे अधिक पुराने और व्यापक और लम्बे संस्कारों को ध्यान में रखते हुए।"[18] अर्थात् प्रथम वक्तव्य में अज्ञेय ने इसे व्यक्ति चरित्र का उपन्यास माना है। साथ ही व्यक्ति को जैविक परम्पराओं का पुतला मानते हुए उसे एक संस्कारवान सामाजिक प्राणी के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया है। अज्ञेय ने इसे घटना प्रधान उपन्यास न मानते हुए चरित्र प्रधान ही माना, चरित्र के उद्घाटन करनेवाली कृति के रूप में देखा है। दूसरे वक्तव्य में वे कहते हैं "नदी के द्वीप चार संवेदनाओं का अध्ययन है। उसमें जो विकास है, वह चरित्र का नहीं, संवेदना का ही है।"[19] लेखक अज्ञेय ने प्रस्तुत उपन्यास को चार संवेदनाओं (आधुनिक) का विकास माना है। मनुष्य की आधुनिक संवेदनाएँ जिस रूप में चौथे दशक में विकसित हो रही थी, उसका प्रतिबिंब हम प्रस्तुत रचना में देख सकते हैं। तीसरे और महत्त्वपूर्ण वक्तव्य में अज्ञेय लिखते हैं, "नदी के द्वीप समाज के जीवन का चित्र नहीं है, एक अंग के जीवन का है, पात्र साधारण जन नहीं है, एक वर्ग के व्यक्ति हैं और वह वर्ग भी संख्या की दृष्टि से अप्रधान ही है, लेकिन कसौटी मेरी समझ में यह होनी चाहिए कि क्या वह किस भी वर्ग का चित्रण है, उसका सच्चा चित्र है?"[20] अर्थात् तीसरे वक्तव्य में लेखक ने प्रस्तुत कृति को संपूर्ण

समाज का चित्र नहीं, उसके एक अंग की अभिव्यक्ति माना है। साथ ही प्रस्तुत रचना को वर्गीय दृष्टि से देखना चाहिए, ऐसा लेखक का मानना है। इन तीनों वक्तव्यों का सारांश यही है कि लेखक अज्ञेय ने प्रस्तुत कृति को किस दृष्टिकोण से देखना चाहिए, इसकी अभिव्यक्ति दी है। पहले वक्तव्य में प्रस्तुत रचना को वे 'व्यक्ति-चरित्र' का उपन्यास मानते हैं- दूसरे में चार संवेदनाओं का विभाजित रूप ही प्रस्तुत कृति का आशय है, यह मानते हैं। तीसरे वक्तव्य में प्रस्तुत रचना की ओर 'वर्गीय' दृष्टि से देखा जाना चाहिए, ऐसा लेखक का मंतव्य है। अर्थात् प्रस्तुत रचना को समझने के लिए जरूरी नहीं है कि लेखक द्वारा प्रदत्त चश्मे का इस्तेमाल किया जाए, क्योंकि वर्तमान युग 'पाठकवादी आलोचना' का है। कृतिकार क्या कह रहा है इसकी अपेक्षा कृति क्या बोल रही है, को महत्त्व देता है। बावजूद इसके प्रस्तुत उपन्यास के भूमिका वक्तव्य में अज्ञेय ने जो कहा है उसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता'।

प्रस्तुत उपन्यास के 'वस्तु पक्ष' पर प्रकाश डाला जाय, तभी रचना की अंतर्वस्तु एवं आशय का पता चल सकेगा। यह रचना चार प्रमुख पात्रों (भुवन, रेखा, गौरा और चन्द्रमाधव) एवं 112 गौण पात्रों के माध्यम से अपने युगीन जीवन संदर्भो की पडताल करती है। प्रमुख चार पात्र, चार संवेदनाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। चारों की अपनी-अपनी जीवनदृष्टि है। भुवन-विज्ञान, रेखा-बुद्धिमती नारी, भावनाप्रधान नहीं तर्क प्रधानता, गौरा-एकान्तिक भक्तिभावना बनाम कला के प्रति गहरी आसक्ति और चन्द्रमाधव-भुवन के प्रति-गुणों का प्रतिनिधि, पत्रकार, सनसनी की खोज में दौड़नेवाले आधुनिक मनुष्य जो सौंदर्यलोलुप, स्वार्थकेंद्रित एवं उखडे हुए व्यक्तित्व की आखरी छटपटाहट का प्रतीक बन जाता है। यह सच है कि प्रस्तुत उपन्यास मात्र चरित्र-प्रधान उपन्यास नहीं है वह प्रेमप्रधान उपन्यास है। प्रेम जीवन का स्थायी मूल्य है। मूल्य-मूल्य चुकाने की उम्मीद रखते हैं। अज्ञेय ने मानवीय रिश्तों के बनते-बिगड़ते चित्र उकेरे हैं। ये चारों पात्र अपने प्रति पूरी तरह सजग, आश्वस्त एवं सचेत हैं। यह रचना व्यक्ति के अंतरंग सत्य को उजागर करती है। चारों पात्र जीवनोन्मुखी हैं। चारों एक-दूसरे से जुडे हुए भी हैं, और पृथक अस्तित्व भी रखते हैं ठीक द्वीप की तरह। मनुष्य के भीतर छिपी हुई 'स्वाधीनता की चेतना' का प्रस्फुटन इस रचना के माध्यम से हुआ है। 'शेखर' में जहाँ मुक्ति की खोज का स्वर सुनायी देता है वहीं 'नदी के द्वीप' में 'वरण की स्वतंत्रता' की अभिव्यक्ति हुई है। उपन्यासकार ने क्षणवाद, दुःखवाद, नियतिवाद और स्वाधीनता बोध को दर्शाने के लिए पात्रों एवं शिल्प का सजग गठन किया है। चरित्र प्रधानता के साथ दर्शन प्रधानता प्रस्तुत रचना की प्रधान विशेषता है। प्रत्येक पात्र बौद्धिक बहसों, चर्चाओं, दार्शनिक मंथन में डुबा हुआ है। इसलिए यह रचना उच्चमध्यवर्गीय या मध्यवर्गीय जीवन का उद्घाटन करती है। बाहय सत्य से जुझते-जुझते अंतरंग सत्य तक पहुँचने का प्रयास कृतिकार का साफ उद्देश्य दीखता है।

चार पात्र, चार जीवन दृष्टियाँ और चार संवेदनाओं का बौद्धिक चतुष्क इस रचना में उभारा गया है। प्रखर बौद्धिकता एवं दर्शनप्रधानता इस रचना को विशेष बनाती है। दु:ख सबको माँजता है सूत्र ने दु:खवाद का मंडन किया है। अर्थात् यह दु:खवाद या पीड़ावाद छायावादी जीवन दृष्टि का प्रभाव है, ऐसा कहना अधिक तर्क संगत होगा। चारों पात्र संभ्रांत समाज से आते हैं। वैज्ञानिक, बुद्धिजीवी, कला एवं पत्रकारिता के क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करते हुए ये पात्र अपने अनुभव के विश्व को खोजते हैं। परिणामत: भारतीय एवं पश्चिमी दर्शन के अनेक आयाम इस रचना में लक्षित होते हैं। रवीन्द्रनाथ, शेले, डी. एच. लॉरेन्स, ब्राउनिंग आदि के वक्तव्य, पंक्तियाँ, उद्धरण अनेक स्थानों पर उद्धृत हुए हैं। परिणामत: टकराहट की अनुगूंजे सुनायी देना स्वाभाविक ही जान पड़ता है।

यह उपन्यास क्षण का महत्व, मृत्यु बोध, मानवीय रिश्तों की अनगढ़ता को उजागर करते हुए दु:खवाद को स्थापित करता है। बार-बार क्षणवादी दृष्टि का चित्रण प्रस्तुत रचना की जीवनदृष्टि को स्पष्ट करने में सार्थक भूमिका निभाता है। लेखक मानवीय संबंधों के उलझावों को, जटिलता को उजागर करने में काफी हद तक सफल हुआ है। दु:खवाद के उद्घाटन में मनोविज्ञान का मूलभूत आधार प्रस्तुत रचना की अद्वितीय शक्ति है। यह रचना जीवन की नदी में अनुभूति के द्वीप को गाड़ने ´Ö ÃÖ±úÖ»Ö Æü‡Ô Æü…

पर ये भी वास्तविकता है कि यह रचना परंपरागत मान्यताओं पर आघात करती है। आधुनिक मनुष्य के जीवन में आया हुआ ढोंगीपन, ढकोसले की वृत्ति एवं परंपरागत दृष्टि से संबंधों का निर्वाह करना आदि बातें काल विपर्यय को दर्शाती है, ऐसा लेखक का मानना है। प्रस्तुत उपन्यास में उद्धृत इन दो उद्धरणों के द्वारा इस बात को समझा जा सकता है। "गिरस्ती का आइडिया ही असल में झूठ है, वह काल विपर्यय है, उस वर्ग जीवन का प्रतीक है, जो वर्ग ही आज मर रहा है। क्यों हम उसके द्वारा स्वीकृत एक परिपाठी को मानते हुए चलें, जबकि स्वयं उसमें ही हमारी आस्था नहीं है।"[21] †Ö¸ü ¤üÃÖ¸ü वक्तव्य में भी इस प्रकार परंपरागत मान्यता पर आघात पहुँचाया है- "दूसरे इस क्लेश ने मुझे यह सिखा दिया है कि हमारी अधिकतर मान्यताएँ ढकोसला है- हमारे जीवन को, हमारे वर्ग स्वार्थों को, वर्ग से मिलनेवाली सुविधाओं को बनाये रखने के लिए रचा गया भारी प्रपंच और यह प्रपंच देख लेने के बाद उसी प्रपंच में फंसे रहना संभव है।"[22] अर्थात् रचनाकार अज्ञेय ने नर-नारी संबंधों के बीच पनपते ढकोसले को तोड़ते हुए निर्बाध प्रेम की अभिलाषा व्यक्त की है। निश्चित ही यह रचना अपनी बुनावट, भाषा, शैली और शिल्प के अनूठेपन से आशय का अविष्कार करने में सफल हुई है।

'नदी के द्वीप' रचना पर अनेक समीक्षकों ने लेखनी चलायी है। मतवैभिन्य के होते हुए यह रचना अपने समय की विवादग्रस्तता को कैसे पालती है, इसका अहसास होता है। प्रत्येक कालखंड के समीक्षक ने इस रचना के आशय को समझने-समझाने का प्रयास किया है। इन समीक्षकों के मत-

मतांतरों को ध्यान में रखते हुए इस रचना के आशय पक्ष पर दृष्टिपात करेंगे।

डॉ. इन्द्रनाथ मदान ने प्रस्तुत रचना पर भाष्य करते हुए लिखा- "नदी के द्वीप' में नर और नारी के संबंध को उजागर करने से लारेन्स की जीवन-दृष्टि है, विपरीत लिंगी व्यक्तियों में एक-दूसरे पर विजय पाने की होड।"[23] अर्थात् मदान जी प्रस्तुत रचना में नर-नारी संबंधों के आख्यान को देखते हैं। लारेन्स ने एक पश्चिमी प्रत्यय दिया था, जिसका अनुकरण इस रचना में हुआ है, ऐसा मदान जी का कहना है। किन्तु गोपाल राय 'पीड़ावाद' के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत रचना को देखते हैं। वे लिखते है, "दर्द में भी जीवन में आस्था, जीवन का आश्वासन और दर्द से मंजकर व्यक्तित्त्व का स्वतंत्र विकास, ऐसा स्वतंत्र कि दूसरों को भी स्वतंत्र करें- ये दोनों सूत्र उपन्यास की कथा में विद्यमान है।"[24] जीवन के प्रति गहरी आस्था एवं स्वाधीनता का बोध ये दोनों व्यक्तित्व विकास के लक्षण हैं, ऐसा राय जी का मानना है, जो वास्तविक लगता है। डॉ. विजयमोहन सिंह प्रस्तुत रचना के आशय पर दृष्टिपात डालते हुए लिखते हैं- "नदी के द्वीप' दु:ख या पीड़ा के स्वतः वरण का दर्शन है। पीड़ा का यह वरण भुवन और रेखा के द्‌वारा होता है जिसमें परोक्ष रूप से गौरा भी भाग लेती है। केवल चन्द्रमाधव ही उससे पृथक रहता है, क्योंकि वह एक प्रकार के भोगवाद का प्रतीक बनाया गया है- इस 'पीड़ावाद' के महत्व को बढ़ाने के लिए दु:ख सबको माँजता है, इस सूत्र की पुष्टि उपन्यास का ^§¿µÖ Æ..."[25] अर्थात् विजयमोहन सिंह ने प्रस्तुत कृति में 'पीड़ावादी' दर्शन की छाया देखी है। किन्तु 'दु:ख सबकों माँजता है' सूत्र से वे हमें जोडते हैं। अर्थात् यह एक प्रतीकात्मक उपन्यास है, ऐसा विजयमोहन जी का मत है। किन्तु हिंदी के विख्यात समीक्षक डॉ. देवराज 'नदी के द्वीप' को 'अशक्त कृति' मानते हैं। दो कारण-स्पष्ट, प्रखर, आदर्श अथवा जीवन दर्शन का अभाव, उपन्यास का कोई भी पात्र सशक्त रूप में हमारे सामने खड़ा नहीं होता।" तो जैनेन्द्रकुमार खेदपूर्वक घोषित करते हैं कि "मैं नहीं भीगा।' इससे विपरीत प्रतिवाद करते हुए भगवतशरण उपाध्याय लिखते हैं- "दोनों बार मैं भीगा, गहरा भीगा।' ठीक उसी समय रामस्वरूप चतुर्वेदी प्रस्तुत रचना में पश्चिम के अस्तित्ववादी संकट के समक्ष भारतीय आस्था की दृष्टि लेखक ने प्रस्तुत की है, ऐसा उनका मानना है। नेमिचंद्र जैन 'नदी के द्वीप' में एक अलग आशय को देखते हैं। वे लिखते हैं "इसीलिए आश्चर्य की बात नहीं कि नदी के द्वीप स्त्री-पुरूष संबंधों के विषय में समाज की खोखली, मिथ्या मान्यताओं के प्रति व्यक्ति के तीखे विद्रोह को व्यक्त करता है।"[26] पर जैन जी इस रचना के शिल्प में बड़ी समस्या देखते हैं। विशेषतः स्थान-स्थान पर अंग्रेजी तथा बंगला कविताओं की पंक्तियाँ पाठक के आस्वादन में बाधा बनती है, ऐसा उनका कहना है। डॉ. चन्द्रकांत बान्दिवडेकर प्रस्तुत रचना को व्यापक अर्थों में समझने की कोशिश करते हैं। वे रचना के युगीन संदर्भों की पड़ताल करते हुए लिखते हैं, "नदी के द्वीप' में विवाह, साधना, जीवन में परिवार का एक सीमा तक महत्त्व, परिवार और व्यक्ति के संबंध,

युद्ध और विज्ञान की नैतिकता, प्रेम, ईर्ष्या, मित्रता, सभ्यता इत्यादि जीवन के महत्त्वपूर्ण प्रश्नों को सशक्त रूप में उठाया गया है।"[27] अर्थात् प्रस्तुत उपन्यास तत्कालीन प्रश्नों को व्यापक अर्थों में उद्घाटित करने में सफल हुआ है, ऐसा बांदिवडेकर जी का मत है। इनके अलावा डॉ. नंदकुमार राय, कृष्णदत्त पालीवाल तथा डॉ. देवराज ने प्रस्तुत कृति के आशय पर सम्यक दृष्टिपात डालने का प्रयास किया है।

उपरोक्त मत-मतांतरों में कुछ प्रश्न हैं, कुछ जिज्ञासाएँ हैं, कुछ तत्कालीन जीवन संदर्भों की पड़ताल है, तो कुछ समीक्षक प्रस्तुत रचना में आधुनिकता की चुनौती के रूप में देखते हैं। वस्तुतः किसी भी रचना की महानता इसी बात में होती है कि, वह रचना अपने समकालीन आलोचकों को भाष्य करने के लिए कितना आंदोलित करती है। समकालीन आलोचक उस चुनौती को स्वीकार कर उस रचना के विविध आयामों को कैसे उजागर करता है? इस निकष पर 'नदी के द्वीप' रचना खरी उतरती है। संवेदना का नया ताना‌बाना बुनती है। अर्थात् पुनः हमें अज्ञेय की तरफ जाना होगा। जिन्होंने लिखा है, "नदी के द्वीप' एक दर्दभरी प्रेम कहानी है।' आखिरकार प्रेम की चौखट को तोड़कर बनते त्रिकोण पर लेखक भाष्य करता है। प्रेम को एक शाश्वत मूल्य के रूप में अंकित करता है। क्योंकि हमारे समाज में प्रेम को कभी गंभीरता से नहीं लिया या तो उसका उदात्तीकरण हुआ या सीमित दायरे में रखने का प्रयास हुआ। इसलिए प्रेम की उँचाईयों का सम्यक आकलन होना आज की आवश्यकता Æ।...

कुल मिलाकर ये कहा जा सकता है कि 'नदी के द्वीप' उपन्यास अनेक परंपराओं का मूर्तिभंजन करता है, जीवन का नया अर्थसंदर्भ व्यंजित करता है। प्रेम के नये संदर्भों की अर्थोत्पत्ति का संदेश है। वास्तव में कथ्यगत अनेक सीमाएँ होते हुए भी प्रस्तुत कृति स्त्री-पुरूष संबंधों का जिस सूक्ष्म, पवित्र और स्पष्ट पाठ रचती है, वह अपने आप में महती उपलब्धि है। इसी कारण अंततः इस कृति के आशय के बारे में यह कहना अधिक अर्थ संगत होगा कि व्यक्ति, अस्मिता और अस्तित्व के उठे हुए प्रश्नों से यह रचना रू-ब-रू होती है। इन प्रश्नों को अस्तित्ववाद के दर्शन ने पैना बना दिया है, जो बड़ी वास्तविकता है।

अपने-अपने अजनबी : आशय की दृष्टि से

अज्ञेय का तीसरा और अन्तिम उपन्यास 'अपने-अपने अजनबी' अपने नवीनतम कथ्य, संवेदना का नया अनुभव और कलेवर के छोटेपन में जीवनानुभव की नयी सिद्धि का अहसास कराता है। 1961 में प्रकाशित 72 पृष्ठों में केन्द्रित यह उपन्यास मानवस्थिति एवं मानवनियति के सनातन प्रश्नों से मुठभेड़ करता है। अस्तित्ववादी चिंतन के दोनों पक्ष 'वरण की स्वतंत्रता' और 'मृत्युबोध' को प्रस्तुत उपन्यास नये कलेवर में बांधता है।

'अपने अपने अजनबी' उपन्यास तीन खण्डों में विभाजित हैं। तीनों खण्डों के शीर्षक पात्रों के नाम से हैं। योके और सेल्मा, सेल्मा, योके आदि तीनों खण्डों में तीन मनःस्थितियों के दृश्यांकन हैं। वस्तुतः प्रधान पात्र दो ही हैं किन्तु इन दो प्रकार के भिन्न व्यक्तित्वों के संघठन का विश्लेषण कुछ इस प्रकार हुआ है। अर्थात् हम प्रस्तुत उपन्यास के आशय पक्ष पर प्रकाश डालेंगे।

प्रस्तुत उपन्यास की वस्तु तीन खण्डों में विभाजित कुछ इस प्रकार है। पहले खण्ड में बर्फ से ढके हुए मकान का दृश्य है। दूसरे खण्ड में बाढ़ की विभीषिका में लगभग क्षत नदी के पुल पर बसे एक बाजार का दृश्य है। तीसरे दृश्य में जर्मन सैनिकों द्वारा पादाक्रांत एक बाजार का दृश्य है। विदेशी पृष्ठभूमि और पात्रों के विदेशी नामों ने प्रस्तुत रचना को पश्चिमी परिवेश का बखूबी चित्रण करने में सफलता पायी है। इस उपन्यास को लेकर कुछ प्रश्न उभरते हैं। इन प्रश्नों के आलोक में इस उपन्यास के आशय पक्ष को समझने की हम कोशिश करेंगे। क्या यह मृत्युबोध से आप्लावित उपन्यास है? (आक्रान्त भी?) क्या आधुनिक मनुष्य की नियति कैद होने में ही है? क्या मनुष्य के पास 'वरण् की स्वतंत्रता' नहीं है? क्या यह उपन्यास एक दार्शनिक उपलब्धि बनकर रह गया है? मृत्यु, ईश्वर, धार्मिक स्थितियाँ, मनुष्य के अस्तित्व से जुड़े प्रश्नों की पुनर्व्याख्या प्रस्तुत करना ही उपन्यासकार का उद्देश्य है? क्या उपन्यासकार भारतीय पृष्ठभूमि और भारतीय पात्रों के नामकरण से उपन्यास लिख नहीं सकता था? आदि अनेक ऐसे प्रश्न हैं, जो इस कृति के निहितार्थ को समझने में सहायक हो सकते हैं।

यह बहुत बड़ी वास्तविकता है कि यह एक दार्शनिक उपन्यास है। अज्ञेय ने पश्चिमी दर्शन को पढ़ा भी था, पचाया भी। मानवस्थिति और मानवनियति के प्रश्नों पर प्रकाश डालते हुए लेखक सेल्मा एकेलाफ और योके के माध्यम से आधुनिक मनुष्य के बीच बढ़ते अजनबीपन, एकतानता और अकेलेपन के बोध को दर्शाया है। वस्तुतः यह पांचवे दशक की देन है। दो महायुद्धों, भीषण संकट की स्थितियाँ, भीड़ में रहते हुए बढ़ता अजनबीपन, रिश्तों की टूटते-बनते छवियों, मृत्यु के गहरे बोध से भयभीत जीवन आदि कुछ स्थितियाँ रही है, जिसकी सशक्त अभिव्यक्ति अज्ञेय करते हैं। आधुनिक मनुष्य की यही नियति है कि जीवन उसके लिए कैद बन चुका है। (कितनी कैंदें?) कैद से छुटकारा मृत्यु और मृत्यु से छुटकारा आध्यात्मिक अनुभूति का अहसास-मनुष्य तमाम प्रकार की कैंदों में ¯Ö²ÖÃŸÖ Æî…

प्रस्तुत रचना का वैशिष्टय है कि दो भिन्न पात्रों की मनःस्थिति, जीवनगत प्रेरणाओं और दो विरोधी भावों (पूर्व और पश्चिम) की टकराहटों की अनुगूंज यहाँ सुनी जा सकती है। लेखक मानव जीवन के नये आयामों का नवोन्मेष करता है। दोनों पात्र मृत्यु से आक्रान्त है (शायद यही आधुनिक मनुष्य की नियति है।) दोनों की प्रेरणाएँ, दोनों की बुनावट भिन्न है। अर्थात् टकराहट होना स्वाभाविक है। क्षण का महत्त्व, स्वाधीनता की चेतना अर्थात् वरण की स्वतंत्रता के अभिलाषी दोनों पात्र हैं।

व्यक्ति के अंतर्द्वंद्व, तनाव और भीतरी छटपटाहट की सशक्त अभिव्यक्ति इस उपन्यास में हुई है।

आधुनिक मनुष्य जीवन जीने के लिए स्वतंत्र कहाँ है? वह संबंधों का वरण भी नहीं कर सकता। अनचाही स्थितियाँ, समय के तमाम दबावों को झेलते हुए आधुनिक मनुष्य मुक्ताकाशी जीवन जीने में असफल है। यही छटपटाहट उपन्यास के पन्ने-पन्ने पर दर्ज हुई है। बार-बार एक ही सवाल सताता है कि सेल्मा और योके के स्थान पर सावित्री और मीरा क्यों नहीं? किन्तु यह सच है कि उपन्यासकार को दो भिन्न मन:स्थितियों और पृष्ठभूमि के आलोक में कथ्य संरचना करनी थी। मनुष्य को जो जिंदगी मिली है, वह उसका भोक्ता मात्र है। उसके आसपास का परिवेश टुटते बनते रागात्मक संबंध या निर्मित होती स्थितियों के बीच बढ़ता अजनबीपन उसके जीवन के अंग है। वास्तव में कैंसर सेल्मा को नहीं हुआ है, कैंसरग्रस्त जिंदगी जीना आधुनिक मनुष्य की नियति है, यह लेखक को बताना है। दोनों पात्र 'वरण की स्वतंत्रता' के आकांक्षी है। किन्तु योके अधिक समर्थन करती है और अंततः मृत्यु को चुनती है। जहाँ जीवन चुनना हमारे हाथ में नहीं है, वही कम से कम हम मृत्यु को तो चुन सकते हैं, यह दृष्टिबोध योके के माध्यम से कराया गया है। उपन्यास के अन्य पात्र सहायक रूप में ही आते हैं। किंतु योके का वेश्या बनकर मृत्यु को चुनना बड़ा बेचैन कर देता है। वेश्या उसे बनाया गया। लाचार, असहाय, अकेलेपन की पीड़ा में जीने की अपेक्षा योके मृत्यु को चुनती है। उपन्यास में सेल्मा, योके, फोटोग्राफर आदि की मृत्यु हमें शोकात्मिका के दर्शन तक ले जाती है। उपन्यासकार अंधकार के सच को बताते-बताते जीवन की लाचार स्थिति का बोध कराता है। योके की मन:स्थिति को दर्शानेवाली उसकी अंतिम पंक्तियाँ यही बोध कराती है। वे कहती है "मैंने चुन लिया। मैंने स्वतंत्रता को चुन लिया। ....मैं बहुत खुश हूँ। मैंने कभी कुछ नहीं चुना। जब से मुझे याद है कभी कुछ चुनने का मौका मुझे नहीं मिला। लेकिन अब मैंने चुन लिया। जो, चाहा, वही चुन लिया। मैं बहुत खुश हूँ।"[28] यही है अपने-अपने अजनबी का तानाबाना। किन्तु हिंदी के अनेक आलोचकों ने प्रस्तुत रचना के आशय के शक्तिस्थानों और सीमाओं का सम्यक आकलन किया है। मतवैभिन्य होते हुए भी इन आलोचकों की धारणाओं को समझकर इस कृति का सही मूल्यांकन होगा।

मूल्यांकन के निकष :

बालकृष्ण राव लिखते हैं- "बौद्धिक विलास और पाण्डित्य प्रदर्शन, कथानक और भाषा में कृत्रिम और असहज, किसी यूरोपीय उपन्यास का अनुवाद सा लगता है। पात्र न प्रतीकात्मक न ठोस और विश्वसनीय, न मांसल न वायवी।"[29] गंगाप्रसाद पाण्डेय का मन्तव्य है- "उपन्यास की कल्पना पूर्णतः अभारतीय है। इस कारण सर्वथा असफल है।"[30] सुरेन्द्रपाल सिंह- "एक गंभीर पाठक के लिए भी इसमें दिमागी कसरत से अधिक कुछ नहीं मिलता। लेकिन वह भी अरोचक है। xxxx 'अपने

अपने अजनबी' की भाषा सहज लगती है, लेकिन उपन्यास पढ़ते समय कोई खास अर्थ नहीं निकलता।"[31]

डॉ. जगदीश गुप्त - "अज्ञेय का अस्तित्ववाद ईसाई आस्था के समीप है। वैसे उसके मूल में भारतीय दृष्टि भी है किन्तु वह जगन्नाथन के अच्छे आचरण के बावजूद उभरकर प्रस्तुत नहीं हो सकती। वास्तव में इस उपन्यास में अनुभव की शक्ति नहीं है। ऐसा लगता है कि अपरिपक्वता के कारण लेखक ने अपनी बौद्धिक अभिव्यक्ति के लिए एक रूपक कथा का सहारा लिया है।"[32] विजयदेव नारायण साही, "अपने अपने अजनबी तृतीय कोटि का उपन्यास है।"[33] उपेन्द्रनाथ अश्क, "अज्ञेय ने इस उपन्यास में जो (मृत्यु की) प्रतिक्रिया दिखाई है, वह ऊपर से लादी हुई जान पड़ती Æü..."[34] विश्वंभर मानव, "वस्तुतः यह आस्था का उपन्यास है।"[35] लक्ष्मीकांत वर्मा का कथन है "प्रस्तुत उपन्यास को भारतीय- अभारतीय सीमाओं में बांधकर नहीं देखना चाहिए। अज्ञेय के इस उपन्यास में जीवन की व्यापकता की कमी है। अतः उपन्यास असफल है।"[36] घनश्याम पंकज, "भाषा विकृत काव्य-भाषा है।"[37] डॉ. रघुवंश, "यह कहना गलत होगा कि अज्ञेय का दृष्टिकोण दार्शनिक है। लेखक की पूरी-पूरी दृष्टि सर्जनात्मक है।"[38] सत्यपाल चुघ, "अपने अपने अजनबी मृत्युभय की विशिष्ट परिस्थिति से उद्भूत जीवन बोध के आधार पर अजनबीपन या अकेलेपन की सभ्यता पर व्यंग्य करनेवाला चरित्र-प्रधान नया प्रयोग है।"[39] डॉ. भोलाभाई पटेल, "अपने अपने अजनबी दार्शनिक भूमिकायुक्त उपन्यास है।"[40] रामस्वरूप चतुर्वेदी, "विषय और वस्तु दोनों दृष्टियों से अपने अपने अजनबी मृत्यु के साक्षात्कार का आख्यान है।"[41] इन्द्रनाथ मदान, "अपने अपने अजनबी में जीवन को मृत्यु के माध्यम से पहचानने की कोशिश है- सांस की बाधा ही जीवन बोध है।"[42] विजयमोहन सिंह "अज्ञेय प्रस्तुत उपन्यास में अस्तित्ववाद के हाशिए पर भ्रमण करके पुनः पीड़ावादी कटघरे में वापस »ÖÖ™ü †ÖŸÖ Æü..."[43] कृष्णदत्त पालीवाल, "मृत्यु का आतंक दिखाना ही इस कृति का उद्देश्य नहीं है, बल्कि इसके गहरे निहितार्थ में स्वातंत्र्य की खोज ही है।"[44] डॉ. चन्द्रकांत बांदिवडेकर, "अपने अपने अजनबी में आज के वैश्विक-वैचारिक धरातल पर प्रवाहमान दो भिन्न जीवन-दृष्टियों का संघर्ष और उसकी परिणितियों का भव्य आख्यान कलात्मक स्तर पर प्रस्तुत हुआ है।"[45] डॉ. गोपाल राय, "अपने अपने अजनबी का केंद्रीय विषय है, मृत्युबोध, पीड़ाबोध, अजनबीपन, वरण की समस्या और जीवन के प्रति आस्था के प्रश्नों से जुड़ा हुआ है, यद्यपि प्रासंगिक रूप में कालबोध, ईश्वर और मृत्यु, अस्तित्वबोध आदि प्रश्नों पर भी बीच-बीच में विचार व्यक्त हुए हैं।"[46]

इन तमाम समीक्षकों की व्याख्याओं, विवेचनात्मक दृष्टियों से कुछ तथ्य उभरते हैं, जिन तथ्यों के आधार पर इस कृति के आशय को समझने का प्रयास किया जा सकता है। समीक्षकों के दो वर्ग हैं। एक वर्ग प्रस्तुत कृति को 'अशक्त', 'कमजोर' और ' असफल कृति' के रूप में देखता है। तो एक वर्ग इस कृति के शक्तिस्थानों को उजागर करने में अपनी कलम चलाता है, उसमें सार्थकता

मानता है। बालकृष्ण राव, गंगाप्रसाद पाण्डेय, सुरेन्द्रपाल सिंह, जगदीश गुप्त, विजयदेव नारायण साही, विश्वंभर मानव, घनश्याम, पंकज आदि समीक्षक प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। तो गोपाल राय, विजयमोहन सिंह, रामस्वरूप चतुर्वेदी, चन्द्रकांत बांदिवडेकर, डॉ. रघुवंश, सत्यपाल चुघ, कृष्णदत्त पालीवाल, इन्द्रनाथ मदान तथा भोलाभाई पटेल प्रस्तुत कृति के शक्तिस्थानों को रेखांकित करते हैं। अर्थात् किसी कृति पर इतने समीक्षकों द्वारा अपने मंतव्य रखना इस कृति के सामर्थ्य की चेतना को दर्शाता है।

कुल मिलाकर ये कहा जा सकता है कि 'अपने अपने अजनबी' में अस्तित्ववादी मनोविज्ञान का कलात्मक प्रयोग एवं कथ्य में सशक्त तकाजा है। अज्ञेय वस्तुतः अस्तित्ववादी, सार्त्रवादी नहीं हैं। वे वैचारिक सूत्रों का समन्वय साधते हैं। अर्थात् जो समीक्षक इसे अस्तित्ववादी रचना के रूप में सिद्ध करते हैं, वे इस उपन्यास में प्राप्त दार्शनिक, वैचारिक सूत्रों को भुनाते हैं। आलोचकों के एक वर्ग का कहना है कि, क्या स्वतंत्रता, वरण, विसंगति, मृत्यु का भय, अजनबीपन आदि अस्तित्ववादी शब्दावली नहीं है? अर्थात् इस सच्चाई को स्वीकार कर यह कहना सुसंगत होगा कि, अज्ञेय अस्तित्ववाद को परोसते नहीं। वे आधुनिक जीवन की सच्चाईयों का सजग बखान करते हैं। उनके चिंतन में अनुभव की भाषा बोलती है। विचारों की तार्किक अभिव्यक्ति है और संवेदना का एक निश्छल प्रवाह बहते हुए नजर आता है। इसी कारण इसे 'विचार' का उपन्यास कहना अधिक सार्थक होगा। क्योंकि इसमें मृत्यु का विचार, ईश्वर का विचार, वरण की स्वतंत्रता का विचार, पर के अस्तित्व का विचार, विजनता और अकेलेपन का विचार और विचार के साथ अनुभूति का आविष्कार होता है। इसी वजह से 'अपने अपने अजनबी' को आधुनिक भावबोध, आधुनिक रचनारीति का अवलंब करनेवाले उपन्यास के रूप में देखा जा सकता है।

निष्कर्षतः अज्ञेय के तीनों उपन्यास और दो असमाप्त उपन्यास 'बाहर खम्भा' एक प्रयोगशील उपन्यास पर दृष्टिक्षेप डालेंगे तो यह अहसास होगा कि अज्ञेय प्रेम, प्रयास, प्रभाव, प्रत्यय और प्रक्रिया के संदर्भ को लक्षित करनेवाले उपन्यासकार हैं। इनके तीनों उपन्यासों में आधुनिक रचना के लगभग सारे संदर्भ मिलते हैं। जिसमें स्वचेतनता, बौद्धिकता, गैररोमाण्टिक वृत्ति, भाषिक सर्जनात्मकता, दुर्बोधता नहीं वरण रचना के स्तर पर संघटित होना, मितकथन का प्रयोग, भाषिक अमूर्तन की प्रक्रिया और प्रयोगशीलता (अपारदर्शी) की सुंदरतम झांकियाँ मिलती है। अज्ञेय के उपन्यासों के आशय में 'प्रश्नाकुलता' निरंतर झांकती है। इसी कारण 'अज्ञेय कृतित्व में' अनुभवों के सातत्य और नैरंतर्य को समग्रतः पाया जा सकता है।

4.1.2 अज्ञेय के उपन्यास : भाषा की दृष्टि से

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' हिंदी के एक सर्जक कलाकार हैं। कथा-साहित्य में

आपकी सर्वोच्च 'धनात्मक देन' भाषा की रही है। वस्तुतः अज्ञेय ने 'अनुभव की भाषा' रची। वह भाषा जो अनुभूत सत्य के प्रकाशन में समर्थ रही है। उन्होंने अपने औपन्यासिक सृजन में भाषा को सर्वाधिक महत्व दिया। अज्ञेय का भाषा पर असाधारण अधिकार था। भाषा में सृजन बोल उठता है। कविता और संगीत, संगीत और चित्र, रेखात्मकता और सर्जनशीलता उनकी भाषागत वैशिष्ट्ये रहे हैं। पात्रों की सृष्टि, परिवेश का निर्माण, प्रसंगों का संयोजन, मनोजगत का विश्लेषण आदि को शब्दों के द्वारा मूर्त और सजीव बनाने में उनकी भाषा सक्षम है। विषय का प्रस्तुतीकरण, पात्रों के वार्तालाप, स्वगतालाप या अंतरवलोकन को वर्णित करने में उनकी भाषा सजग है।

अज्ञेय की कथा-भाषा रचनात्मक भूमिका निभाती है। अपने प्रथम उपन्यास 'शेखर : एक जीवनी' से लेकर 'अपने अपने अजनबी' तक लेखक पात्रों की बाह्य रूपरेखा, उनके परिवेश और मानसिकता का सूक्ष्म वर्णन करते हैं। किसी भी पात्र का कम से कम शब्दों में सजीव चित्र उपस्थित करने में उनकी भाषिक कला महारत हासिल किये हुए हैं। उनकी भाषा में अद्‌भूत सौंदर्य है, जिसमें कविता बिना लाग लपेट के बहती हुई नजर आती है। उनकी भाषागत सौंदर्य के दो उदाहरण, जो 'शेखर : एक जीवनी' से उद्धृत हैं- "अचूक दृष्टि से मैंने देखा, मेघाछन्न आकाश, प्रकाशहीन सायंकाल, पवन अचंचल, चंचला भी अदृश्य और उडते सहसा पंख टूट जाने से विवश गिरता हुआ अकेला ही एक पक्षी, जो गिरता है और फिर अपनी उड़ान, अपना स्थान पा लेने के लिए छटपटा रहा है..."[47] भाषागत सौंदर्य का दूसरा उदाहरण है। "समीर की शीतलता कम नहीं हुई है, किन्तु उसके भीतर मानो बड़ी दूर के किसी झूठे बसन्ती वामरे के रोमिल स्पर्श का भ्रम होने लगा, धुंध फीकी पड गई, दिन के वेग के साथ पंजे मिलाने में अंधकार का असुर प्रतिदिन कुछ ढिलाई करने लगा।"[48]

प्रथम उद्धरण में बिंबात्मकता, चित्रात्मकता एवं प्रतीकात्मकता की अभिव्यक्ति हुई है। 'पंख टूटे हुये पक्षी का बिंब' शेखर की अवस्था को दर्शाता है, असहाय, विवश और छटपटाहट को अभिव्यक्त करता है। दूसरे उद्धरण में नियति से लड़ता शेखर जो 'स्वातंत्र्य की खोज' में निकल पड़ा है, को दर्शाया गया है। साथ ही इन दोनों उद्‌धरणों की भाषा में अज्ञेय का कवित्व झलकता है। सजग भाषा रूप, कलात्मक व्यापक सौंदर्य का साक्षात्कार कराती है। इन पंक्तियों में लेखक का अद्‌भूत शब्द संयम, कवित्व की छाया, वर्णनात्मकता, विवेचनात्मकता और आत्मकथात्मकता के जरिये अनुभवों का सशक्त मंडन हुआ है। इसी कारण अज्ञेय के उपन्यासों की भाषा में डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर 'भाषा की लावण्य राशि' का अनुभव करते हैं। वे भाषा के क्षेत्र में अज्ञेय को सर्जक मानते हैं। एक सर्जक जिस तरह से इतिहास, विज्ञान, समाज, दर्शनशास्त्र, नाटककार और कवि की भूमिका में संचार करता है, उसी तरह अज्ञेय की भाषा विविध क्षेत्रों की सफल यात्रा कर मानवीय संबंधों की छानबीन करती है। वे लिखते हैं, "उपन्यासकार एक ही समय इतिहासकार की भाँति

इतिवृत्त वर्णित करता है। समाज वैज्ञानिक की तरह सामाजिक समस्याओं, स्तरों और वर्गों का विश्लेषण करता है, दार्शनिक की तरह गहराइयों में प्रवेश करता है। नाटककार की तरह विभिन्न चरित्रों के मानस में घुसकर उसकी प्रकृति, स्वभाव, वृत्ति, अभिवृत्ति और प्रसंग एवं स्थिति के अनुसार संवाद प्रस्तुत करने लगता है। कवि की भाँति अतिशय तरल भावभूमि पर नृत्य-विन्यास भी करता है।"[49] ये है अज्ञेय की भाषागत खूबी। वे प्रभाव को पैदा करने के लिए उपमानों, दृष्टांतों, बिंबों का सजग उपयोग करते हैं। इतना ही नहीं 'शेखर' में भाषागत सौंदर्य की अभिव्यक्ति अनेक स्थलों पर हुई है। विशेषतः उनकी भाषा में फक्कड़पन, मस्खरापना और बेलौसपन व्यक्त करने की अजब शक्ति हम 'मोहसीन' (पात्र) के चित्रण में देखते हैं। तो गंभीरता, चिंतनशीलता, अन्तर्मुखी वृत्ति के दर्शन, गंवार व्यक्ति का भोलापन और सादगी का भाव 'रामजी' (पात्र) में देखते हैं। शशि के सास-ससूर का गावदीपन जितनी ठसक के साथ व्यक्त हुआ है उतनी ही दक्षता से अभिजात्य संस्कारित व्यक्तित्त्व भी अभिव्यक्त हुआ है। अज्ञेय के यहाँ शब्दों के विशिष्ट प्रसंग में भाषा की अद्‌भूत व्यंजना दिखलाई देती है। विशेषतः 'अनझिप' शब्द के प्रयोग में यह विशिष्ट व्यंजना उपन्यास और कविता दोनों में व्यंजित हुई है।

'शेखर : एक जीवनी' में पात्रों की मानसिकता का चित्रण जिस सजगता, सूक्ष्मता और सहजता से हुआ है, वह अपने आप में विलक्षण है। उपन्यास के आरंभिक दृश्य में, फांसी की प्रतीक्षा में 'शेखर' की मनःस्थिति का किया गया वर्णन उनकी भाषिक क्षमता को उजागर करता है। "फाँसी! यौवन के ज्वार में समुद्र शोषण। सूर्योदय पर रजनी के उलझे हुए घनी छायाओं से भरे कुंतला शारदीय नभ की छटा पर एक भीम काय काला बरसाती बादल। इस विरोध में, इस अचानक खण्डन में निहित अपूर्व भैरव कविता में ही इसकी सिद्‌धि है।"[50] अज्ञेय की कथाभाषा में स्पष्टता, निश्चितता और तर्कसंगति है। किसी वाक्य का बार-बार प्रयोग मात्र आवृत्ति नहीं पैदा नहीं करता बल्कि पाठकों के मानस पर सशक्त बिंब निर्माण करता है। ('शादी के बाद रमा अपने पति के घर चली गयी।') लेखक प्रत्येक शब्द एक विशेष अर्थ में प्रयुक्त करता है। अज्ञेय की सबसे बड़ी खूबी वाक्य रचना और अनुच्छेद निर्माण में दिखाई देती है। नाटकीयता, लयात्मकता और पठनीयता को बनाये रखने में उनका शब्दसामर्थ्य अद्‌भूत परिचय देता है। द्रष्टव्य है निम्नलिखित उदाहरण- "साहित्य का निर्माण मानो जीवित मृत्यु का आह्वान है। साहित्यकार को निर्माण करके और लाभ भी तो क्या, रचयिता होने का सुख भी नहीं मिलता, क्योंकि काम पूरा होते ही वह देखता है, 'अरे यह तो वह नहीं है जो मैं बनाना चाहता था, वह मानों क्रियाशीलता का नारद है, उसे कहीं रुकना नहीं है- उसे सर्वत्र भड़काना है, उभारना है, जलाना है और अभी शान्त नहीं होना है- कहीं रूकना नहीं है।"[51]

अज्ञेय की भाषा में चिंतन प्रधानता है। वे अपने पात्रों को चिंतन की मुद्रा में डालकर उनकी

मन:स्थिति का सूक्ष्म वर्णन करते हैं। शेखर और शशि अनेकत्र चिंतनरत दिखाई देते हैं। ऐसे अनेक स्थल उपन्यास में हैं, जिसमें पात्रों के मनोजगत का अत्यंत मर्मग्राही वर्णन लेखक करता है। जेल में कैद शेखर की उद्विग्न मानसिकता का यह प्रसंग द्रष्टव्य है, "मैं इस बंधन को तोड़ना चाहता हूँ, मुक्त होना चाहता हूँ, क्योंकि किसी को मुझे कुछ कहना है और वह जानना मेरे लिए आवश्यक है, सुख से अधिक आवश्यक, शांति से अधिक आवश्यक, जीवन से अधिक आवश्यक, मेरे बल से पुरूषार्थ से भी अधिक आवश्यक......विवश, विवश, विवश, मूर्ख क्रोध व्यर्थ, उद्भांत अहंकार........।"[52] वस्तुतः अज्ञेय की भाषा में चिंतनप्रधानता के साथ काव्यात्मकता के कई स्थानों पर दर्शन होते हैं। विशेषतः शेखर और शशि, शेखर और शान्ति, शेखर और शारदा के प्रसंग में दिखाई देता है। इसी वजह से डॉ. इन्द्रनाथ मदान लिखते हैं, "अज्ञेय के गद्य का काव्यात्मक होना एक गुण है। वह मन की सूक्ष्म परतों को उघाड़ने के काम आता है, उपन्यास की वस्तु को उजागर करने की शक्ति से संपन्न है। अज्ञेय की आयास और अभिजात्य भाषाशैली इसे गरिमा भी देती है।"[53]

अज्ञेय के उपन्यासों में, विशेषतः 'शेखर' में भाषा के समस्त गुण लक्षित होते हैं। लेखक के पास खूब शब्द संयम है। शब्दों की योजना को लेकर सतर्कता है। साथ ही वह अपने अनुभवों से सिक्त भाषा का सजग प्रयोग करता है, मितव्ययिता उसकी प्रधान विशेषता है। इसी वजह से डॉ. विजयमोहन सिंह लिखते हैं, "विशेष वाक्य-विन्यास, विशेष निर्माण पद्धति, चित्र बहुलता, सांकेतिकता, गद्य तथा कविता की भाषा का समीकरण, भाषा में विचार एवं अनुभूतियों का संलग्न उन्मेष आदि भाषा के ये समस्त गुण जो आधुनिक भाषा के अनिवार्य और आंतरिक उपकरण हैं- वस्तुतः अज्ञेय के ´ÖÖ¬µÖ´Ö ÃÖ Æü ^¯Ö»Ö²¬Ö ÆüÖêÖ Æü…"[54] भाषा की इन तमाम विशेषताओं के कारण ही आलोचकों ने अज्ञेय को हिंदी का प्रौढ गद्यकार माना है। यह प्रौढ़ता उनके गद्य में दिखाई देती है। अनुभूति का विकास और विश्लेषण करने में यह भाषा समर्थ है। बिंबात्मकता, प्रतीकात्मकता और गीतात्मकता के कारण भाषा में सौंदर्य की वृद्धि हुई है। विशेषतः अज्ञेय की इस भाषिक क्षमता में संवेदनाओं के मिश्रण का अद्‌भूत सौंदर्य पाया जा सकता है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि इन समस्त गुणों में अन्वेषण की क्षमता का होना विशेष गुण हम देख सकते हैं। यह अन्वेषण की भाषा है। इसी कारण उसमें एक प्रकार की अनिश्चयात्मकता है। जिसकी तुलना 'जो' के प्रतीकवाद से की जा सकती है। इसी अनिश्चयात्मकता के कारण उनकी भाषा में संगीत की आवृत्ति, सांकेतिकता, अस्पष्टता आदि भाव उभरते हैं। इसी कारण शेखर की संपूर्ण भाषा प्रश्नों तथा अधूरे विरामचिह्नों की भाषा हो गयी है। कविता की अंतर्ध्वनियाँ अंकित करते-करते यह भाषा सर्जना के नये आयाम रचती है। यही भाव डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल अपने वक्तव्य में रखते हैं। लिखते हैं, "शेखर : एक जीवनी' ने 'वस्तु' और 'रूप' दोनों में बड़ी क्रांति की है। साथ ही एक नया सर्जनात्मक गद्य हिंदी को दिया है।"[55]

'नदी के द्वीप' उपन्यास में भी भाषा की अनेक छटाएँ देखी जा सकती है। पात्रों की बाह्य रूपरेखा, उसका अंतर्जगत, बाह्य परिवेश और मानसिकता का वर्णन अज्ञेय की उपलब्धि है। मितव्ययता अज्ञेय की विशेषता है। 'नदी के द्वीप' की प्रारंभिक पंक्तियाँ इस बात का प्रभाव जताती हैं- "गाड़ी जब प्रतापगढ़ से नहीं चली तब तक भुवन ने नहीं जाना कि उसे अपने बारे में कुछ सोचने की जरूरत है, और गाड़ी चलने पर भी ठीक इस रूप में ही उसने यह बात जानी हो, ऐसा भी नहीं; वह केवल हक्का-वक्का सा चलती गाड़ी का हैंडिल पकडे खड़ा रह गया, विस्मय से अपने मुक्त दूसरे हाथ की ओर देखता हुआ, मानो वह उसका नहीं, कोई पराया हाथ हो जो किसी रहस्यमय क्रिया से उसके शरीर के साथ लग गया हो और अब अपने और पराए के संधिस्थल उसकी कुहनी पर चुनचुनाहट हो रही हो।"[56]

उपरोक्त संपूर्ण अंश के अंत में पूर्णविराम है। यह केवल एक वाक्य है। बीच में दो सेमीकोलन है। इसका उद्देश्य स्पष्ट है लेखक को बिना किसी व्यवधान के एक चित्र निर्माण करना है। और उसमें उसे सफलता मिली है। क्रिया व्यापार, मानसिक अवस्था तथा दृश्यात्मकता का यह एक उत्कृष्ट नमूना है। पूरी जीवंतता के साथ लेखक पाठक के मन में हू-ब-हू चित्र अंकित करता है।

अज्ञेय के यहाँ शब्दों का सटीक चुनाव और उनकी ऐसी योजना है, जिससे पूरा परिदृश्य खड़ा करने में सहायता मिलती है। शब्द, वाक्य, लहजा और पाठक के मानसपटल पर स्थायी चित्र अंकित करने में यह भाषा सक्षम है। इन्हीं शब्द सामर्थ्य और भाषिक क्षमता के कारण अज्ञेय प्रस्तुत उपन्यास में एक किस्सागो की भूमिका निभाते हैं। भाषा सूचनात्मक और विवरण प्रधान होने के कारण लययुक्त बनी है। एक जीवंत उदाहरण देखा जा सकता है "रेखा की आयु लगभग सत्ताईस के लगभग होगी, वह विवाहित है, विवाह आठ वर्ष पहले हुआ था, पर विवाह के दो-एक वर्ष बाद ही दोनों अलग हो गये थे। कारण कोई ठीक नहीं जानता और रेखा से पूछने का साहस किसे है?"[57] पाठक से सीधे भीड़ने वाली, बातचीत का लहजा अपनाने वाली भाषा का प्रयोग अज्ञेय करते हैं।

अज्ञेय के उपन्यास जितने विचारात्मक हैं, उतने ही भावात्मक। भाव का चित्रण करने में लेखक सजग है। उपमाओं-रूपकों की लड़ी लेखक पिरोता है। भावों की सुंदर योजना करने में लेखक सफल हुआ है। भुवन-रेखा, भुवन-गौरा के अनेक प्रसंगों में भावों की सुन्दरतम अभिव्यक्त हुई है। भावों की अनुठी योजना बनाते हुए लेखक ने पात्रों के मनोजगत, अन्तः संबंध और परिचित-अपरिचित स्थितियों का बेबाक वर्णन किया है। अर्थात् अज्ञेय की भाषा 'तत्सम प्रधान' है। नये आलोचक अज्ञेय की भाषा पर कृत्रिमता का जो आरोप करते हैं, इसी वजह से। किन्तु लयात्मकता, सशक्त भाव व्यंजना प्रधानता, गत्यात्मकता के चलते यह भाषा पाठक को आनन्दित करती है।

चित्रात्मक भाषा रूप अज्ञेय की प्रधान विशेषता है। प्रकृति, परिवेश, प्रयास और परंपरा का

निर्वाह करते हुए अज्ञेय अनेक चित्र उभारते हैं। सृष्टि के सौंदर्य को उकेरने में उनकी भाषा अनुगामिनी बनी है। लेखक अनेकानेक चित्र-बिंब उभारता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है "हाँ, अगर सचमुच सेतु बन सके, तो दोनों ओर से रौंदे जाने से भी सुख है और रौंदे जाकर टुटकर प्रवाह में गिर पड़ने में भी सिद्धि। पर मैं तो कह रही हूँ कि मैं तो उतनी भी कल्पना नहीं कर पाती, मैं तो समझती हूँ, हम अधिक से अधिक इस प्रवाह में छोटे-छोटे द्वीप है, उस प्रवाह से घिरे हुए भी, उससे कटे हुए भी, पर प्रवाह में सर्वदा असहाय भी, न जाने कब प्रवाह की एक स्वैरिणी लहर आकर मिटा दे, बहा ले जाये, फिर चाहे द्वीप का, फूल-पत्ते का आच्छादन कितना ही सुंदर क्यों न रहा हो।"[58] भाषा सौंदर्य के भी अनेक चित्र प्रस्तुत उपन्यास में पाये जा सकते हैं। भाषा सौंदर्य में प्रकृति का मनोहारी अंकन प्रस्तुत कृति की ¿ÖÛŒÝÖ Æ…

अज्ञेय की भाषा में अपने समय का बोध है, वरण युग-बोध लक्षित होता है। 'शेखर' में 'स्वातंत्र्य की खोज', 'नदी के द्वीप' में 'मुक्ति का बोध' और 'अपने अपने अजनबी' में 'मृत्यु का बोध' व्यंजित हुआ है। मनुष्य तमाम प्रकार के बंधनों, परंपराओं, रूढ़ियों से मुक्त होना चाहता है, मुक्ति का यही भाव द्वीप की भाषा में अभिव्यक्त हुआ है। युगबोध को व्यक्त करते समय लेखक एक प्रौढ़, परिष्कृत, ललित, कलात्मक और निर्दोष भाषा की व्यंजना करता है। वस्तुतः 'नदी के द्वीप' की भाषा 'युग-बोध' का विजन ही है और यह विजन 'औपन्यासिक विजन' बनकर अज्ञेय में उभरता है। इसी कारण अभिव्यक्ति या सम्प्रेषण क्षमता में अज्ञेय की भाषा बेजोड है, हिंदी गद्य की अन्यतम उपलब्धि है। गद्य की इसी उत्कृष्टतम अभिव्यक्ति का संधान करते हुए डॉ. विजयमोहन सिंह लिखते है "अतः हमेशा की तरह 'नदी के द्वीप' की सफलता और उसका सौंदर्य अज्ञेय के 'प्रस्तुतीकरण' और उनकी भाषा में है। अनुभूतियों तथा स्थितियों को उनकी स्वाभाविक गतिमयता में ही पकड़ने का प्रयत्न और उनके अनुरूप ठीक विशेषण देने की सामर्थ्य का अज्ञेय ने अद्‌भूत विकास किया है। शब्दों की अनावश्यक काव्य-तरलता झर गयी है और एक ठीक वैज्ञानिक मायक्रोस्कोपिक गद्य का स्वरूप झलकने लगा है। कविता और विज्ञान का संतुलन इस भाषा में अधिक दिखाई पड़ता है। यद्यपि अपने कुछ पूर्वग्रहों तथा संस्कारों के कारण अज्ञेय 'नदी के द्वीप' में भी आधुनिक भाषा का निर्माण नहीं कर सके हैं- लेकिन हिंदी की आधुनिक भाषा के सभी छोर 'नदी के द्वीप' में मिल जाएँगे।"[59]

अज्ञेय में स्थित भाषिक गतिमयता की प्रशंसा है तो दूसरी ओर उसमें पायी जानेवाली कमी का भी अहसास कराया गया है। अर्थात् जहाँ विजयमोहन सिंह अज्ञेय की भाषा में व्याप्त शक्तिस्थानों और सीमाओं को दिखलाते हैं। वहीं रामस्वरूप चतुर्वेदी 'नदी के द्वीप' की भाषा को उपन्यास कला के लिए चुनौतिपूर्ण मानते हैं। डॉ. देवराज ने भी इस कृति की भाषा में 'विकास' का संकेत पाया है। तो नेमिचद्र जैन ने गद्य की सूक्ष्म अभिव्यंजना शक्ति को प्रतीक मानते हुए सौंदर्य बोध से आप्लावित

भाषा रूप माना है। साथ ही पश्चिमी देशों के उपन्यास साहित्य के समकक्ष बनाने में प्रस्तुत भाषा की अन्यतम उपलब्धि है ऐसा उनका मानना है।

अज्ञेय की भाषा 'संवेदना का विकास' करती है। जिसके अनेक दृश्य 'नदी की भाषा में सुकुमारता, संवेदनशीलता का अहसास होता है। अर्थात् प्रस्तुत उपन्यास की भाषा पढ़ते समय अहसास होता है कि अज्ञेय को 'चित्रकला' का गहरा ज्ञान था। इसी वजह से चित्रकला के अनेक आयामों को लेखक भाषिक वर्णन में उपलब्ध कर सका है, चित्रकला के मुहावरे की तुलना में अधिक दक्षता के साथ। इसी वजह से दृश्यात्मकता, चित्रात्मकता एवं अनुभुत्यात्मकता के दर्शन अज्ञेय की कथा-भाषा में होते हैं। इन्हीं शक्तिस्थानों को व्यंजित करते हुए राम स्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं- "खड़ीबोली का जो रूप अज्ञेय ने यहाँ निखारा है, उसमें ठेठ और अभिजात्य के मिश्रण ने या कि एक की भाषा-रूप में इन स्वरों की टकराहट ने अपूर्व अर्थशक्ति उत्पन्न की है, जिससे यथार्थ के अनेक पक्ष आलोकित हो सके हैं।"[60]

अज्ञेय के यहाँ अद्‌भूत शब्द चयन, संयम, मितव्ययिता, वक्रताओं, व्यंजनाओं और युक्तियों का अपूर्व रूप दृष्टिगोचर होता है। अज्ञेय ने प्रस्तुत उपन्यास में 'प्रेमभाव' को दर्शाने के लिए रोमँटिक बोध का सजग अंकन किया है। किंतु संकेतात्मकता, सर्जनात्मकता और स्वाभाविकता की अनेक दिशाएँ उनकी भाषा में मिलती है। बावजूद इसके अज्ञेय की गद्य भाषा में कुछ संरचनागत, शब्दगत दोष भी हैं, जिन्हें नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। कृत्रिमता, असहजता, अति काव्यात्मकता, अति बौद्धिकता आदि। अर्थात् अज्ञेय की भाषा 'बौद्धिकता से आक्रान्त' है, ऐसा भी आरोप लगाया गया है। किन्तु इन सारी बातों के बावजूद अज्ञेय ने एक उत्कृष्ट गद्य भाषा हिंदी को दी। शायद इसी बात को केंद्र में रखते हुए डॉ कृष्णदत्त पालीवाल लिखते है- 'नदी के द्वीप' का गद्य हिंदी गद्य की मूल्यवान सर्जनात्मक उठान है। अद्‌भूत उठान का उत्कर्ष और अनेक वक्रताओं, व्यंजनाओं, युक्तियों का अपूर्व प्रयोग, कभी पत्र शैली में, कभी डायरी शैली में, कभी काव्य उद्धरण की शैली में, कभी मित कथन की व्यंजक शैली में।"[61]

कुल मिलाकर 'नदी के द्वीप' की भाषा के बारे में यही कहा जा सकता है कि, अज्ञेय ने अद्‌भूत कला-कौशल का परिचय देते हुए एक 'सर्जनात्मक, अन्वेषणात्मक' भाषा गढ़ी है। जिसमें सौंदर्यबोध के साथ जीवन्तता का अहसास होता है। कविता और संगीत, विज्ञान और कविता तथा चिंतनशीलता और दर्शनशास्त्र का अद्‌भूत मिश्रण किया है। बौद्धिकता की गहरी पैठ को दर्शाते हुए लेखक संरचनागत संघटन का अद्‌भूत परिचय देता है।

अज्ञेय ने जहाँ 'नदी के द्वीप' में पात्रों की मन:स्थिति के अनावरण के लिए पत्रशैली का प्रभावी अवलंब किया है ठीक उसी तरह से 'अपने अपने अजनबी' में डायरी लेखन की प्रविधि को

अपनाया है। मूलतः डायरी अंतरंग मनःस्थिति का प्रभावी माध्यम होती है। योके द्वारा लिखे गये डायरी अंश उसकी आत्माभिव्यक्ति के सजग रूप हैं। वस्तुतः डायरी स्वान्तःसुखाय के लिए लिखी जाती है और डायरी लिखते समय व्यक्ति बड़ा तटस्थ होता है। डायरी की भाषा में सहजता और अकृत्रिमता होती है। योके द्वारा लिखे गये डायरी अंश इसी बात के दर्शन कराते हैं। योके आधुनिक, प्रखर बुद्धिमती, चिंतनशील युवती है, जिसकी छाया उनकी डायरी में दिखाई देती है। उदाहरण के लिए योके द्वारा लिखी गयी डायरी के एक दिन के अंश देखें- "एक अन्तहीन परिवर्तनहीन धुंधली रोशनी जो न दिन की है न रात की है न सन्ध्या के किसी क्षण की है- एक अपार्थिव रोशनी जो कि शायद रोशनी भी नहीं है, इतना ही कि उसे अन्धकार भी नहीं कहा जा सकता। हमेशा सुनती आयी हूँ कि कब्र में बड़ा अंधेरा होता है लेकिन यहाँ उसकी की असम्पूर्णता और विविधता है। शायद यही वास्तव में मृत्यु होती है, जिसमें कुछ भी होता नहीं, सब कुछ होते-होते रह जाता है। होते-होते रह जाना ही मृत्यु का एक विशेष रूप है जो मनुष्य के लिए चुना गया है जिसमें कि विवेक है, अच्छे बुरे का बोध है। यह उसके न होता तो उसका मरना संपूर्ण हो सका जो चुकता, वह संपूर्ण चुक जाता या जो रहता उसका बना रहना भी असंदिग्ध होता। यह हमारे युगों से सोचे हुए नीति बोध की सजा है कि हमारा मरना भी अधूरा ही हो सकता है- मर कर की कुछ हिसाब बाकी रह जाता है।"[62]

इस डायरी अंश में योके की मनस्थिति, जीवन से आशा छोड़ चुकी योके, आसन्न मृत्यु की सम्भावना, हताशा, निराशा और सेल्मा के प्रति आक्रोश का भाव व्यक्त हुआ है। शब्दों का सही चुनाव, सही क्रम, भाव और विचार का अद्‌भूत सामंजस्य, सटीक शब्द और वाक्य योजना को अत्यंत कलात्मक रूप में देखा जा सकता है।

'अपने अपने अजनबी' मृत्यु के साक्षात्कार का आख्यान है। एक बिलकुल नये विषय का प्रत्याख्यान, नयी भाषा और नयी अभिव्यंजना की शैली में करना आवश्यक था। अज्ञेय ने एक नये विषय को मात्र न्याय ही नहीं दिया, बल्कि नूतन विषय की परतों को खोलने का भी काम किया। परिणामतः कहीं-कहीं अभिव्यक्ति में असहजता या कृत्रिमता का दिखलाई देना स्वाभाविक है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं, "अपने अपने अजनबी में कहीं-कहीं भाषा के अतिसहज या कहिए कृत्रिम लगने का भी यही कारण है कि उपन्यास के तीनों तत्व-असाधारण विषय, मृत्यु से साक्षात्कार की साधारण तथा अनावृत्त वस्तु और अति सहज भाषा में कभी-कभी मेल नहीं खाता।"[63] शायद विषयवस्तु की असाधारणता की वजह से भाषा में अतिसहज भावों की अभिव्यक्ति हुई है। विख्यात समीक्षक भोलाभाई पटेल भी इसी बात की ओर संकेत करते हैं। उन्होंने यह माना है कि उपन्यास की भाषा विकृत, कृत्रिम और कमजोर है। बावजूद इसके अज्ञेय के भाषिक सम्प्रेषण में कहीं भी बाधा उत्पन्न नहीं होती।

उपर भाषा के अतिसहज पक्ष की ओर ध्यान खींचा गया है। किंतु अज्ञेय की भाषा में सहजता और सर्जनात्मकता के अनेक उदाहरण देखें जा सकते हैं, जहाँ अज्ञेय अपनी पूरी क्षमता से अनुभूति के नये तेवर पैदा करते हैं। अज्ञेय ने ठोस और जड़ हुए शब्दों को यथावश्यक तरल ढंग से प्रयुक्त किया है। उनकी भाषा संवेदन और सर्जन शक्ति को समृद्ध करती है। उदाहरण के तौर पर देखें, "बर्फ के नीचे दबकर यह जाना की मर जाना है। लेकिन वह दबकर मरना तो है। उसमें कार्यकारण की संगति तो है। लेकिन यह बिना दबे, बिना बर्फ को छुए भी अहेतुक मर जाना- यह मानो हमारे जीवन के अनुभव का अपमान करना है। और हम मरने पर भी अनुभव का खण्डन सहने को तैयार नहीं Æ..."[64] दूसरा दृश्य भाषिक संवेदन को उजागर करनेवाला है। देखें, "काले, गोरे और भूरे चेहरे, काले, लाल, पीले, भूरे, गेहूँए, सुनहले और धौले बाल, रंगपुते और रूखे-खड्डे चेहरे। चुन्नरदार, इस्तरी किए हुए और सलवार पडे कपडे, चमकीले और कीच-सने चरमराते या फटफटाते या झिरूटते हुए जूते। और चेहरों से आँखों में सिर से पैर तक हर अंग की क्रिया में निर्मम जीवैषणा का भाव-मानो वह दूकान सौदे सुलुफ या रसद की दूकान नहीं है बल्कि मानो जीवन की ही दूकान है।"[65]

अज्ञेय की भाषा की सबसे बड़ी खूबी चुस्त ओजस्वी वाक्य रचना है। 'अपने अपने अजनबी' में लेखक का शब्द संयम, वाक्य विन्यास का अद्‌भूत सम्मीश्रण और प्रवाही भाषा के अनेक चित्र देखें जा सकते हैं। एक पाठक की दृष्टि से विचार करेंगे तो पायेंगे कि अज्ञेय सूक्ष्म अनुभूतियों को, मनोवैज्ञानिक पैठ और सुनिर्धारित चिंतन को अभिव्यक्त करने में सफल हुए हैं। उनके यहाँ भाषा के प्रति अतिरिक्त सजगता दिखाई देती है। इसी कारण अज्ञेय की भाषा के बारे में कुंवर नारायण लिखते हैं, "एक भाषा है जो प्रत्यक्ष जीवन के अनुभव से मिलती है, एक और भाषा है जो उस स्थूल अनुभव के गहरे चिंतन से उत्पन्न होती है। अज्ञेय भाषा की दूसरी परंपरा में आते हैं।"[66]

अंत में अज्ञेय के अपूर्ण उपन्यास 'छाया मेखल' का एक उद्धरण। जिसमें अज्ञेय की भाषिक क्षमता का अद्‌भूत परिचय मिलता है। अज्ञेय की भाषा में वर्णनात्मकता जरूर है किन्तु किसी वस्तु, स्थान या पात्र की मन:स्थिति का वर्णन करते समय भाषा लड़खड़ाती नहीं। वह पूरी क्षमता से अपने आशय को व्यक्त करने में सक्षम है। उदाहरण देखे- "मिसेस नाथ नाम का चक्कर ..... सचमुच चक्कर! कब इससे उबरेगी वह- कब ऐसे किसी भी छद्म की जरूरत से उबरेगी? उसे सहेली की याद आयी, एकाएक उससे मिलने की तीव्र उत्कण्ठा भी उसमें जागी। अपने पहले, सरलतर जीवन के किसी साथी से मिलकर जैसे वह फिर उस सरलतट जीवन में पहुँच सकेगी, अपने को पा सकेंगी, वह हो सकेगी जो वह वास्तव में है.....पर वास्तव में वह कौन है, क्या है? सोमा कुमार? कुमार नाम से, उस नाम की परंपरा से जुड़ाकर क्या वह अधिक वह हो जाएगी जो वह है? क्या वीरेश्वर नाथ नाम में ही इसकी अधिक संभावना नहीं है, इसीलिए कि उसके लिए वीरेश्वर नाम का कोई-कोई चेहरा नहीं

है, कोई इतिहास नहीं है, किसी घटना, स्मृति में कोई साझा नहीं है, कोई अस्तित्त्व ही नहीं है? न यह बात तो ठीक नहीं हुई अस्तित्व तो है पर वह अनस्तित्त्व से ही शुरू होता है, इतिहास भी है जो मृत्यु के बाद से आरंभ हुआ, स्मृति की है जो एक चादर ढँकी देह की, मृत देह की है, हाँ चेहरा जरूर नहीं है अगर वह शोभा देवी के चेहरे को लेकर ही वीरेश्वर नाम के लिए स्वयं कोई चेहरा न गढ़ ले।" प्रस्तुत गद्य में भाषा की अद्‌भूत कलाकारिता है, लय है। प्रश्नाकुलता, मननशीलता, भावावेग आदि के दर्शन होते हैं। अज्ञेय की भाषा सादगी से परिपूर्ण है, यह सादगी ही उनकी नजाकत है।

कुल मिलाकर यह कह सकते हैं कि अज्ञेय की औपन्यासिक भाषा बंधे बंधाये घाटों को तोड़ती है, निर्माण के नये संकल्पों से सिद्ध है। अज्ञेय के गद्य में ठोस रूप में कुछ विशेषताएँ लक्षित होती है जो उनकी अपनी निजी विशेषताएँ हैं।

1. सजग वाक्य रचना और अनुच्छेद निर्माण -
2. सुक्तियों का कलात्मक प्रयोग -
3. औपन्यासिक विजन की अभिव्यक्ति का माध्यम -
4. सहजता और सर्जनात्मकता -
5. बिंबात्मकता एवं चित्रात्मकता -
6. चिंतनशील, मननशील भाषा रूप -
7. अनुभूति की भाषा -
8. प्रतीकवादी काव्यात्मक भाषा -
9. अन्वेषण की भाषा -
10. भाषा में युग बोध -
11. हिंदी गद्य का उत्कृष्टतम रूप -
12. अलंकारों की बहुलता उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि -
13. विशेषण वक्रता के प्रयोग -
14. संरचनात्मक दृष्टि से परिनिष्ठित गद्य रूप -
15. तत्सम प्रधानता -
16. विरामचिह्नों की लावण्य राशि -
17. आन्तरिक गहनता, सूक्ष्म संवेदना की बारीकी और अभिव्यक्ति की संश्लिष्टता को व्यक्त करनेवाली भाषा।

पर अज्ञेय के गद्य की कुछ सीमाएँ भी हैं, जैसे -

1. भाषा वैविध्य नहीं के बराबर हैं।

2. तत्सम प्रधानता के आधिक्य ने भाषा को अहसज, कृत्रिम बनाया।

3. प्रखर बौद्धिकता के कारण भाषा जनसामान्य से दूर जाती रही।

4. लोकोक्तियों का अभाव।

5. विकृत, कृत्रिमता और अरूढ़ शब्दों की भरमार।

6. अस्तित्ववादी दर्शन प्रणाली की वजह से बोझिलता का भाव।

अंत में डॉ. गोपाल राय के शब्दों में अज्ञेय की भाषिक उपलब्धि को स्वीकार किया जा सकता है। वे लिखते हैं, "अज्ञेय की भाषा का अपना निजी सौन्दर्य है, जो केवल बाहरी गठन से उद्‌भूत न होकर औपन्यासिक विजन की अभिव्यक्ति या सम्प्रेषण क्षमता की देन है।"

4.1.3 अज्ञेय के उपन्यास : शैली की दृष्टि से

उपन्यासकारअपनी अनुभूति को किसी विशिष्ट रूप (Form) में बांधता है। एक अनुशासन और कौशल से अपने अनुभूत सत्य को संरचित करता है। एक कुशल शिल्पी की तरह एक प्रविधि को अपनाता है। एक प्रविधि या अनेक प्रविधियों के सम्मीश्रण से एक ढाँचे में विन्यस्त करता है। उपन्यास के निर्माण में जिन अनेक पदार्थों का योग होता है, उसमें शैली को विशिष्ट महत्त्व है।

उपन्यासकार की एक ही समस्या होती है कि वस्तु का प्रस्तुतीकरण कैसे करें? वह किस प्रकार प्रस्तुत की जाय कि जिसमें इच्छित प्रभाव उत्पन्न करें। संकलित तथ्यों को कैसे परोसा जाय कि वे उस अर्थ को ध्वनित कर सके जिसे उपन्यासकार ने अनुभव किया है। इस संपूर्ण प्रक्रिया में अनेक उपादानों का सार्थक उपयोग उपन्यासकार करता है।

वस्तुतः उपन्यासकार के पास कहने, वर्णन करने के लिए शब्द ही माध्यम होता है। उस माध्यम का सर्वांगीण प्रयोग कर वह अपने अनुभवों को पाठकों तक पहुँचाना चाहता है। पात्रों के जीवन, मनःस्थिति, उसके इतिहास का अवलोकन तथा सर्वेक्षण करने हेतु विशिष्ट प्रविधि का अवलंब करता है। यह प्रविधि ही शैली है। आम तौर पर उपन्यास में एक आरम्भिक दृश्य, प्रत्यग्दर्शन और सारांश कथन की बहुप्रचलित प्रविधि का प्रयोग होता है। विद्वान पर्सी लब्बाक इन्हें दृश्यात्मक (सीनिक) और 'सर्वतोदृश्यात्मक' (पैनॉर्मिक) प्रविधि की संज्ञा देते है। दुनियाभर के कई लेखक 'आत्मकथात्मक प्रविधि' का प्रयोग करते हुए दिखाई देते हैं। बावजूद इसके कि यह प्रविधि स्वाभाविक, निरंकुश और क्रमहीन दीखती है। हिंदी में आत्मकथात्मक प्रविधि का सफल प्रयोग 'जैनेन्द्र' ने 'त्यागपत्र' उपन्यास में किया। इसके बाद तो हिंदी में यह प्रविधि बहुत ही प्रचलित हुई और अज्ञेय, हजारीप्रसाद द्विवेदी, नागार्जुन आदि ने इसे पूर्णता प्रदान की। 'शेखर : एक जीवनी' इस प्रविधि में लिखा गया उपन्यास है।

अज्ञेय ने 'शेखर : एक जीवनी' में अपनी अद्‌भूत शिल्प की बारीकी, कलासिद्धांत का

परिचय दिया है। 'शेखर' में करीब एक सौ बारह पात्र हैं। किन्तु अज्ञेय का उद्देश्य शेखर के जीवन को प्रस्तुत करना है। शेखर ही संपूर्ण उपन्यास का विषय है, उसके जीवन की खोज ही वर्ण्य विषय है। वस्तुतः अज्ञेय को शेखर की जीवनी कहनी नहीं है, लिखनी है। यहाँ शेखर जीवन का 'प्रत्यावलोकन' करता है। इसलिए यहाँ अतीत का प्रत्याख्यान है। कुछ स्मृतियाँ, कुछ चित्र और कुछ अतीत के भोगे हुए क्षणों की अभिव्यक्ति है। लेखक शेखर की स्वलिखित जीवनी प्रस्तुत करता है। अर्थात् अज्ञेय की यह सबसे बड़ी खूबी है कि जीवनी को उपन्यास में और उपन्यास को जीवनी में समांतर यात्रा करवाते Æ...

'शेखर : एक जीवनी' उपन्यास की शैलीगत विशिष्टता 'प्रत्यग्दर्शन प्रविधि' में दिखाई देती है। अज्ञेय ने 'शेखर' के प्रथम भाग में शेखर के सत्रह वर्ष की उम्र तक कहानी प्रस्तुत की है। विभिन्न स्मृतियाँ बचपन, कैशोर्य अवस्था के कुछ प्रसंगों का वर्णन किया है। आपत्ति वहाँ है, जहाँ अज्ञेय उन घटनाओं का भी ब्यौरेवार वर्णन करते हैं, जिनके वह प्रत्यक्ष साक्षी नहीं है। जो घटनाएँ पिता के मुख से सुनी दास्तान है। प्रथम भाग में उपन्यास की शुरूआत 'फाँसी' शब्द से और उस मनोभूमिका से होती है कि एक युवक जिसे कुछ घंटों में फांसी पर चढ़ना है। अर्थात् प्रारंभिक प्रसंग ही 'प्रत्यग्दर्शन प्रविधि' का अवलंब करते हुए वर्णित किया गया है। घटनाओं का अनुक्रम, वर्णन, संवाद, मार्मिक प्रसंग, उपकथाएँ आदि का मिलाजुला रूप 'शेखर' में देखते हैं। लेखक 'नाटकीय' और 'दृश्य' दोनों स्थितियों का मार्मिक अंकन करता है। उपन्यास का आरंभिक प्रसंग इसी बात का प्रमाण है। लेखक शेखर कहता है "जिसकी कहानी में निहित संदेश को मैं प्रकट करूँगा, वह 'वह' ही है। उसका नाम है शेखर, वह इस समय मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा है। उसी प्रतीक्षा में वह अपनापन व्यक्त किये जा रहा है, और मैं उसके जीवन के सत्यों को पढ़कर उनका निष्कर्ष निकाल कर और शब्दबद्ध करके छोड़े •ÖÖ ¸ÖÆÖ Æ..."

लेखक शेखर अपने जीवन का प्रत्यग्दर्शन कर रहा है, यह बात उपर्युक्त कथन से उजागर होती है। अज्ञेय ने इसी प्रविधि के अनुरूप 'अन्य पुरूष' की प्रविधि का प्रथम भाग में ठीक ही प्रयोग किया है। किन्तु दूसरे भाग में शैली की दृष्टि से अनेक आपत्तियाँ दिखाई देती है। जैसे -वे अन्तरालाप शैली में चरित्रों का वर्णन कर सकते थे। कहीं-कहीं आत्मकथात्मक शैली में असंगति पैदा हो गयी है। किंतु यह बहुत बड़ी वास्तविकता है कि 'चिन्तनशील, संवेगसम्पृक्त, अल्पाक्षरी शैली कभी भावना का प्रचुर उद्रेक लेकर भी रसायुक्त करती है, इसका प्रमाण 'शेखर' में मिल जाता है। इसमें अज्ञेय की कविता बड़ी योगदान करती है। 'शेखर : एक जीवनी' में ऐसे अनेक प्रसंग हैं, जहाँ अज्ञेय की कलाकारिता बड़ी सूक्ष्मता का परिचय देती है। एक अलग कोटि की मानसिकता जिसमें चिंतन, आवेग, संवेग घुलमिलकर एकाकार हो गये हैं.....शब्द विलक्षण शक्ति का परिचय देते हैं।" किन्तु

इसके आगे कहानी नहीं है, अनुक्रम नहीं है। जीवन ने अर्थ खो दिया है। यथार्थता, व्यवस्था, गति सब कुछ खो दिया है। निरा अस्तित्व एक क्षण से दूसरे क्षण तक एक अणु पुंज बने रहना वह भी मिट गया है। मैं एक छाया हूँ, एक स्वप्न, एक निराकार आक्रोश, एक वियोग, एक रहस्य.....भावना से भावना तक भटकता हुआ एक विचार....हर जगह आग देता हुआ और स्वयं ज्वाला में सुलगता हुआ, जल उठता हुआ, निरंतर उठता हुआ, उठता हुआ न बुझता हुआ, न मरता हुआ.... ।"

डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर अज्ञेय की शैली के बारे में लिखते हैं, "अज्ञेय की शैली में बाह्य अभिनय का सहज संकेत वस्तु को चित्रवत प्रस्तुत कर अनुभूति से भी द्रवित करता है।"[67] यह संकेत, चित्रवत प्रस्तुति निम्न उद्धरण में देख सकते हैं, "शशि की बंद गीली कांपती हुई पलकों को देखा...." "उसकी हथेली कनपटी पर शशि के नाडी स्पंदन का हल्का-सा अनुभव कर सकती थी..." वस्तुतः इस सहज संकेत और चित्रवत प्रस्तुत करने की शैली ने अंतर्मुखी बनाया है। यहाँ 'शेखर' में अज्ञेय ने 'व्यक्ति' शेखर को केंद्र में रखकर समाज की ओर देखने का प्रयास किया है। अपनी अनुठी भाषा और शैली में लेखक अपने युग की पड़ताल करता है।

अज्ञेय की यह खूबी है कि रचना में कलात्मक संगठन को वे बड़ा महत्त्व देते हैं। लेखक ना बोले, रचना बोले। रचना के भीतरी और बाहरी सौंदर्य को सृजित करने में शैली का बड़ा योगदान होता है। अर्थात् शैली के इस सौंदर्य को अधिक पुष्ट बनाने में जानकारी का कलात्मक उपयोग वे करते हैं। इसी बात को केंद्र में रखते हुए डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर लिखते है "जानकारी को कलाकृति के घटकों का स्थान देते समय भावनात्मकता, रसात्मकता, प्रभावकारिता, आकार या रूप सौंदर्य का खयाल बराबर रखा गया है। जानकारी को रेखात्मक कालक्रम में प्रस्तुत न करते हुए कभी फ्लैशबॅक, कभी निवेदक की अदलबदल, कविता के उपयोग आदि से तो कभी काल की रेखागत गति से क्रीड़ा करते हुए जानकारी को उपन्यास का द्रव्य बनाया गया है।"[68]

जैसे कि उपर कहा गया है, अज्ञेय ने प्रस्तुत उपन्यास में अनेक शैलियों को उभारा है। शेखर के माध्यम से व्यक्ति के प्रश्नाकुल मानस की पड़ताल वे करते हैं। ईश्वर, काम, स्त्री-पुरूष संबंध, अहंता के कुछ प्रश्न आदि को उभारते समय लेखक प्रतीक कथा, रेखाचित्रात्मक एवं संकेत शैली, प्रकृति दृश्यों का सहारा लेकर किया गया दृश्य-बिंबात्मक वर्णन अधिक सजीव हो उठा है। इसी कारण डॉ. देवकृष्ण मौर्य प्रस्तुत उपन्यास की शैलीगत प्रवृत्ति को दर्शाते हुए लिखते हैं, "ईश्वर और उसकी सृष्टि को लेकर प्रतीक कथा का भी उपयोग हुआ है। इनके अतिरिक्त रेखाचित्रात्मक एवं संकेत शैली का भी सहारा लिया गया है। रावी के तट पर क्रान्तिकारी तथा दो जनों की वासना शांति की घटना को भी रेखाचित्रात्मक तथा संकेत शैली में चित्रित किया गया है। प्रकृति दृश्यों का सहारा लेकर भी रेखाचित्रात्मक विवेचन हुआ है।"[69] 'धागे, रस्सियाँ, गुंझर' (शिक्षा, सभ्यता एवं संस्कार) में

प्रतीकात्मकता का सार्थक उपयोग हुआ है। इसलिए यह कहना अधिक युक्तिसंग होगा कि अज्ञेय ने विभिन्न स्थलों पर विभिन्न शैलियों के उपयोग से कथानक प्रवाहहीन होने से बचाया है। अर्थात् 'वह' और 'मैं' की शैली से भी कथानक अत्यधिक सशक्त हो गया है। शैली की इसी विशिष्टता के कारण कथानक में 'अर्थ गंभीरता' आ गयी है। बावजूद इसके यह कहना अधिक तार्किक होगा कि प्रस्तुत रचना 'प्रत्यग्दर्शन प्रविधि' के कारण अधिक सशक्त हो गयी है। इसलिए डॉ. गोपाल राय का यह मानना है कि "हिंदी उपन्यास में प्रत्यग्दर्शन प्रणाली का प्रयोग इतने बड़े पैमाने पर और इतने जटिल रूप में इसके पहले नहीं हुआ था और यह भी बड़े आत्मविश्वास के साथ कहा जा सकता है कि बाद में भी किसी उपन्यासकार ने इसका इससे अच्छा उपयोग नहीं किया है।"[70]

कुल मिलाकर 'शेखर : एक जीवनी' उपन्यास में अज्ञेय ने अनेक शैलियों का सशक्त उपयोग किया है। प्रत्यग्दर्शन प्रणाली, रेखाचित्रात्मक एवं संकेत प्रधान शैली, मनोविश्लेषणप्रधान शैली, चेतना प्रवाह पद्धति, 'वह' और 'मैं' की शैली, फ्लैशबॅक टेकनीक, फोटोग्राफी, चित्रकला, मूर्तिकला, कविता और विशेषतः मनोविज्ञान की 'मुक्त साहचार्य प्रक्रिया' (free association) का उतना ही जटिल और तर्क संगत उपयोग किया है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि अज्ञेय प्रस्तुत कृति में शैली विज्ञान के अनेक आयामों से हमें परिचित कराते हैं। अर्थात् उपन्यासकार अज्ञेय का इस क्षेत्र में जो योगदान है वह अत्यंत स्मृहणीय है।

'नदी के द्वीप' उपन्यास में अज्ञेय ने शिल्प के क्षेत्र में नये प्रयोग किये हैं। उपन्यासकार आरंभ से अंत तक पात्रों की रूपरेखा, परिवेश, इतिहास, कार्यकलाप, पात्रों का मनोजगत आदि का सूक्ष्म विवेचन करता है। बीच-बीच में अवलोकन बिंदू का प्रयोग करते हुए नये परिदृश्य को उभारने का काम करता है। वार्तालापरत पात्रों का दृश्यात्मक एवं परिदृश्यात्मक परिपाटी का अवलंब करते हुए विश्लेषण किया गया है। उपन्यास में अनेक दृश्यों और वर्णनों के मिश्रण से एक प्रकार की मूर्तता आ गयी है।

'नदी के द्वीप' उपन्यास ग्यारह खण्डों में बंटा हुआ है। इन अध्यायों के नाम उपन्यास के प्रमुख पात्रों भुवन, चंद्रमाधव, गौरा और रेखा के नाम पर हैं। प्रत्येक पात्र के लिए दो-दो अध्याय दिये गये हैं। इनका क्रम है, भुवन-चंद्रमाधव, रेखा, अंतराल, गौरा, उपसंहार। उपन्यास में बारी-बारी इन पात्रों को विभिन्न कोणों से देखा है। इन पात्रों की सूक्ष्म संवेदनाओं को उभारने का सशक्त प्रयास किया है।

अज्ञेय ने इस उपन्यास में किस्सागो शैली का प्रचुर मात्रा में उपयोग किया है। साथ ही प्रत्यग्दर्शन प्रणाली का कई स्थलों पर आवश्यक उपयोग किया है। परिदृश्यात्मक और दृश्यात्मक प्रविधियों का अवलंब करते हुए पात्रों के मानस जगत की गुत्थियों को सुलझाने का प्रयास किया है। अर्थात् प्रस्तुत कृति में भुवन जितना प्रत्यग्दर्शन करता है उतना अन्य पात्र नहीं करते। इस

उपन्यास का प्रत्येक पात्र प्रत्यवलोकन करता है। केवल अपवाद है चंद्रमाधव का। प्रस्तुत रचना की प्रमुख विशेषता है पत्र और डायरी लेखन का कलात्मक उपयोग। गौरा के माध्यम से इस शैली को अत्यधिक सहजता से प्रस्तुत किया गया है। 'डायरी' और 'पत्र-लेखन' की प्रविधि का प्रचुर मात्रा में उपयोग हुआ है। 'अन्तराल' शीर्षक के दो अध्यायों में पत्र शैली और डायरी लेखन प्रविधि का कलात्मक उपयोग हुआ है।

'नदी के द्वीप' में पत्रात्मक प्रविधि की जितनी सूक्ष्मता से प्रस्तुति हुई है, जो देखते ही बनता है। कथावर्णन की प्रणाली को नाटकीयता प्रदान करने की दृष्टि से इस शैली का सार्थक उपयोग हुआ है। वस्तुतः पत्र और डायरी के माध्यम से पात्रों के अंतस्थः भावों को समझा जा सकता है और इसमें उपन्यासकार को काफी हदतक सफलता प्राप्त हुई है। शैली की इसी विविधता को देखते हुए डॉ. नंदकुमार राय लिखते हैं, "उपन्यास के शिल्प विधान में अपेक्षाकृत अधुनातन मनोवैज्ञानिक विधियों जैसे पूर्वदीप्ति अथवा प्रत्यग्दर्शन प्रणाली (Flash Back style) चेतना प्रवाहांकन (Stream of consciousness) <¾Ö †ŸÖx“Ö¡ÖÖ (Inside Views) आदि का प्रायोगिक संधान किया गया है।"[71]

औपन्यासिक शैली संरचना में अज्ञेय ने हमेशा नये प्रयोग किये। पात्रों के मस्तिष्क में प्रवेश करते हुए पत्रों का सहारा लिया। डायरी के द्वारा उसके मनोजगत की हलचलों को अंकित किया गया है। विशेषतः विश्वसनीयता और प्रभावपूर्णता बनाने के लिए अपनी कलात्मक शैली का वे उपयोग करते है। अर्थात् अज्ञेय ने संवेदना के नाटकीयकरण की प्रणाली का बहुत सफल प्रयोग 'नदी के द्वीप' में किया है।

कुल मिलाकर यह कह सकते हैं कि अज्ञेय ने प्रस्तुत उपन्यास में पत्रात्मक प्रविधि का उपयोग जिस कलात्मकता के साथ किया है, वैसा उसके पूर्व, उसके बाद में भी नहीं हुआ है। अर्थात् प्रतिपाद्य विषय को न्याय देने के लिए जिस प्रकार की शैली की अपेक्षा होती है, उस प्रकार की शैली का सार्थक उपयोग अज्ञेय ने किया है। शैली में विभिन्न मिश्रणों को अपनाते हुए वे रचनाधर्मिता को बखूबी निभाते हैं। परिणामतः 'नदी के द्वीप' शैली की दृष्टि से अत्यंत प्रभावी उपन्यास बन पड़ा है।

'अपने अपने अजनबी' अज्ञेय का तीसरा और अंतिम उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास में 'अन्य पुरूष की वर्णनात्मक प्रविधि' का कलात्मक उपयोग हुआ है। उपन्यास का आरंभ ही सेल्मा और योके के संभाषण से है। अर्थात् बातचीत की शैली में कथाकार कथाबीज डालता है। उपन्यासकार अंतर्यामी बनकर पात्रों की मनःस्थिति को उघाड़ता है। और धीरे-धीरे पाठकों के मानस पर प्रभाव डालने लगता है।

उपन्यास में लेखक ने अनेक प्रविधियों का सशक्त उपयोग किया है। क्योंकि वर्णनात्मक प्रविधि अधिक देर तक काम नहीं देती। आठ पृष्ठों के बाद उपन्यासकार नाटकीय प्रविधि का

अवलंब करता है। 'डायरी प्रविधि' का जितना सशक्त समर्थ और सहज उपयोग प्रस्तुत उपन्यास में किया गया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। बर्फ के नीचे दबी हुई योके और सेल्मा का बारीकी से वर्णन आया है। बर्फ गिरने से तीन चार महिनों के लिए कैद की गयी योके और सेल्मा की दुनिया मात्र रसोईघर तक सीमित होकर रह जाती है। इस दमघोंटू परिस्थिति में योके डायरी लिखती है। डायरी लिखकर अपने मनोजगत को पेश करती है। सेल्मा और योके परिस्थितिवश साथ में हैं, दोनों एक-दूसरे के लिए अजनबी हैं। दोनों की मानसिकता एक-दूसरे से बिलकुल भिन्न है। इस स्थिति में अपने मन को खोलने के लिए योके के पास एक रास्ता बचता है, वह है डायरी लेखन का, वह लगभग प्रतिदिन डायरी लिखती है। मानसिक क्षोभ, मृत्यु, भय, निराशा, अवसाद, कुण्ठा, स्थिति के प्रति आक्रोश और विवश, क्रोध, ईश्वर के प्रति अनास्था, सेल्मा के प्रति अनास्था, अनवरत विरोध, सारे भाव डायरी में अंकित हुए हैं।

योके की डायरी में सेल्मा के व्यक्तित्त्व, सोच और जीवनगत धारणाओं का वर्णन आया है। सेल्मा की कथा अनेक अन्तरालों में, टुकडों-टुकडों में आयी है। वर्णनों और दृश्यों का एक अनवरत सिलसिला प्रस्तुत उपन्यास में आया है। कैंसरग्रस्त सेल्मा की मृत्यु के बाद योके के कार्यव्यापार और मानसिक तनाव का वर्णन लेखक बड़े कलात्मक ढंग से करता है।

अज्ञेय दृश्ययोजना में बड़े माहिर है। उपन्यास के अंतिम अध्याय में योके और जगन्नाथन की भेंट का दृश्य काफी कलात्मक बन पड़ा है। एक प्रभावशाली दृश्ययोजना का यह उत्तम नमूना है। योके के प्रलापों और जीवन की अंतिम सांसों को गिनते हुए कही गयी बातें उसकी मानसिकता को दर्शाती है। सर्वथा एक नाटकीय दृश्य है, जिसमें कथावर्णन की अद्‌भूत शैली का परिचय मिलता है। इसीलिए डॉ. गोपाल राय लिखते है "प्रस्तुत उपन्यास में प्रस्तुतीकरण के लिए किस्सागोई की कई विधियों का मिश्रण मिलता है। नाटकीय प्रविधि द्वारा तृतीय पुरूष की वर्णन प्रविधि को प्रबलित कर शिल्प की समस्या हल की है।"[72]

इस संपूर्ण विवेचन से यही निष्कर्ष निकलता है कि अज्ञेय औपन्यासिक शिल्प के क्षेत्र में शैली को अत्यधिक महत्त्व देते हैं। कथा वर्णन की सरल प्रविधियों को अपनाते हुए प्रभावकारी शिल्प प्रविधि का निर्माण करते हैं। शैली की जितनी विविधता अज्ञेय में मिलती है उतनी अन्य किसी आधुनिक उपन्यासकारों में नहीं। आधुनिक तकनीक का उपयोग करते हुए उपन्यासकार रिचर्डसन (क्लेरिसा) जेम्स ज्वायस की श्रेणी में जा बैठता है। हालांकि 'शेखर' और 'नदी के द्वीप' की तुलना में 'अपने अपने अजनबी' शिल्प संरचना की दृष्टि से कमजोर है। किन्तु ये तीनों उपन्यास 'आधुनिकता बोध' उत्पन्न कराने में महती भूमिका निभाते हैं। इसलिए हिंदी उपन्यासों की परंपरा में अपने प्रयोगों के कारण अज्ञेय हमेशा उल्लेखनीय बने रहेंगे।

4.1.4 अज्ञेय के उपन्यास : शिल्प की दृष्टि से

उपन्यास का रूप (Form) उपन्यास को वजूद देता है। किसी भी लेखक के सम्मुख यही चुनौती होती है कि वह अपनी बात को किस फॉर्म में रखे। रचनाकार का उद्देश्य मात्र कहानी कहना नहीं होता बल्कि उस कथा के माध्यम से अपनी जीवन दृष्टि का परिचय भी देना होता है। उपन्यासकार अपनी जीवन दृष्टि को किसी छाया में पकड़ना चाहता है, एक अनुशासन में बांधना चाहता है। अनुशासन की इसी वृत्ति का परिणाम शिल्प में अंकित होता है। रचनाकार अनेक शैलियों का अवलंब कर अपनी शिल्प सजगता का परिचय देता है।

अज्ञेय ने 'शेखर : एक जीवनी' में सर्वप्रथम प्रत्यग्दर्शन प्रणाली का जिस ढंग से अनुपालन किया है, वह उल्लेखनीय है। दृश्यात्मक तथा सर्वतोदृश्यात्मक प्रविधि को अपनाते हुए बालक शेखर, किशोर शेखर, युवक शेखर, फांसी पर झुलने के लिए तैयारी में क्रांतिकारी शेखर, शशि के प्रति घोर आसक्त शेखर तथा लेखक शेखर आदि रूपों की गहरी छानबीन की है। वस्तुतः अज्ञेय किस्सागोई शैली के विवेचन में अधिक सहज दीखते हैं। इसी शैली में शेखर के जीवन के अनेक प्रसंगों की समर्थ व्यंजना उन्होंने की है। कला सिद्धांत, शिल्प की बारीकियों, अभिव्यंजना की अनेक भावभंगिमाएँ अंकित करते हुए लेखक शेखर का चरित्र और शेखर के चरित्र की कलात्मक खोज करता है।

वस्तुतः अज्ञेय का प्रयास विद्रोही शेखर को प्रस्तुत करना रहा है। अहं, सेक्स और भय से पीड़ित शेखर की कथा कहना उनका उद्देश्य रहा है। शेखर के माध्यम से अपने जीवनसत्यों की पड़ताल अज्ञेय करना चाहते हैं। और अन्ततः वे निर्णय करते हैं कि वह शेखर की जीवनी लिखेंगे। क्रांतिकारी शेखर और कलाकार शेखर की जीवनी। जिसमें दोनों के भीतर जो टकराहट हैं, उसकी अनुगूंजे पाठकों को सुनने को मिलती है। अर्थात् अज्ञेय ने उपन्यास विधा के अंतर्गत जीवनी और आत्मकथा विधा की महीन रेखा लांघते हुए अपनी बात रखी है। इसलिए आधुनिकता बोध की दृष्टि से देखें तो जहाँ वे चिंतन के धरातल पर दर्शन को अनुभूति में घुला देने की राह निकालते हैं वही संरचना के स्तर पर आत्मकथा को जीवनी और जीवनी में आत्मकथा को घुलाने की समर्थ कोशिश करते हैं। बावजूद इसके कि आत्मकथा प्रविधि की अनेक कमजोरियाँ है। 'नाटकीय' और 'दृश्य' में सामंजस्य स्थापित करते हुए दृश्यात्मक परिदृश्यात्मक प्रविधि को सहज माध्यम बनाते हैं।

'शेखर : एक जीवनी' के प्रथम भाग में प्रत्यग्दर्शन प्रणाली के द्वारा शेखर के जीवन बिंदुओं की व्यंजना की है। उसी के अनुरूप अन्य पुरूष की प्रविधि को अपनाते हुए सुदूर अतीत के प्रसंगों को प्रस्तुत किया गया है। किन्तु एक प्रश्न बार-बार सताता है, फांसी की प्रतीक्षा करता हुआ शेखर 500 पृष्ठों की 'जीवनी' कैसे लिख डालता है। वस्तुतः 'शेखर : एक जीवनी' का तीसरा भाग भी

लिखा जाना था। ब्रिटिश शासन में इतने दिनों तक किसी क्रांतिकारी आतंकवादी को फांसी की प्रतीक्षा करनी पड़ती थी? या उसे लिखने के लिए इतने कागज, इतना समय या रोशनी की व्यवस्था की जाती थी? अर्थात् अतीत के प्रत्यावलोकन में अज्ञेय इन सारी बातों को नजरअंदाज कर गये हैं।

डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर प्रस्तुत उपन्यास के शिल्प में प्रत्यावलोकन को अधिक महत्त्व देते हैं। इसलिए लिखते हैं, "शेखर : एक जीवनी' विजन में प्राप्त अनुभव की चोट के प्रत्यावलोकन, व्याख्यायन, विशदीकरण, स्पष्टीकरण, आकलन, अन्वेषण का प्रयत्न है, इसमें बचपन से लेकर युवावस्था के विशिष्ट मोड तक काल प्रवाह का एक प्रत्यवलोकन है।"[73] प्रत्यवलोकन के इस प्रयास से शेखर अपनी बात कभी अपने मुँह से कहता है तो कभी दूसरे के मुँह से। अर्थात् रचनाकार वस्तुपरकता तथा आत्मपरकता में संतुलन बनाये रखते हुए उपन्यास के शिल्प विधान को विशिष्ट रूप प्रदान करता है। यही कारण है कि 'शेखर' सजगता की दृष्टि से अज्ञेय की सर्वोत्तम कलाकृति मानी जाती है।

'शेखर : एक जीवनी' का एक पक्ष प्रेम को भी व्यक्त करना रहा है। शेखर के जीवन में आनेवाली अनेक स्त्रियाँ इसी बात की प्रतीति कराती है। सरस्वती, शारदा, शीला, शान्ति, अत्ती और शशि ये सारी स्त्रियाँ शेखर के आसपास मंडराती हैं और शेखर उनके आसपास। इसलिए डॉ. विजयमोहन सिंह ने इस उपन्यास को 'प्रेम उपन्यास' की संज्ञा दी है। उनका कहना है कि "शेखर' प्रारंभ से अंत तक एक प्रेम उपन्यास ही रहता है। वह मूलत: प्रेम उपन्यास है भी। अज्ञेय की शैली और शिल्प को सर्वाधिक सफलता प्रणयचित्रों में ही मिली है- क्योंकि वही उनका प्रकृत क्षेत्र भी Æ..."[74] प्रणय दृश्यों की अनेक झांकियाँ प्रस्तुत उपन्यास में मिलती है। शेखर और शशि के बचपन में नहाने का प्रसंग, शान्ति के गले के उपर हाथ फेरता शेखर, शारदा के अपनापे के प्रसंग या अत्ती के देह अभिव्यंजन के प्रसंगों में लेखक बड़ी सूक्ष्मता से इन्हें उभारता है।

'शेखर : एक जीवनी' के शिल्प में अनेक कलाओं का अद्भूत मिश्रण देखने को मिलता है। चित्रकला, मूर्तिकला, वास्तुकला, काव्यकला का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। इसलिए डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल प्रस्तुत उपन्यास में कलाओं के एक साथ होनेवाले 'फ्यूजन की ज्ञानपीठिका' मानते हैं।

बावजूद इसके 'शेखर : एक जीवनी' के शिल्प की अनेक सीमाएँ भी हैं, जिन्हें नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। सूत्रात्मकता का आधिक्य, किताबी मनोवैज्ञानिकता का आख्यान, दर्शन प्रधानता के कारण वैचारिकता का आतंक, दृष्टि की रूढ़ नैतिकता, संकेतों की सूक्ष्मता का अभाव, प्रकृति चित्रों का आधिक्य आदि शिल्पगत कमजोरियों से उपन्यासकार अज्ञेय आक्रान्त हैं। बावजूद इसके 'शेखर : एक जीवनी' का शिल्प प्रविधि की नवीनता और प्रयोग की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण

Æ…

अज्ञेय के दूसरे उपन्यास 'नदी के द्वीप' में परंपरागत शिल्पविधि का प्रयोग किया गया है। यह प्रविधि दृश्यात्मक, परिदृश्यात्मक रूप में प्रयुक्त हुई है। पात्रों की मनःस्थिति, उनके कार्यकलाप, परिवेश, इतिहास, उनकी सोच को बारीकी से अंकित किया गया है। 'नदी के द्वीप' के पात्रों को, विशेष कर भुवन-रेखा, भुवन-गौरा के संबंधों को उपन्यासकार ने प्रत्यग्दर्शन की प्रणाली में प्रस्तुत किया है। चित्रात्मक भाषा के जरिये, दृश्यों की सुंदरतम योजना के द्वारा लेखक शिल्प का निर्माण करता है। पत्र और डायरी लेखन के माध्यम से पात्रों के अंतस्थ भावों को उभारा गया है। अर्थात् पत्रात्मक प्रविधि का जिस कुशलता से प्रयोग प्रस्तुत उपन्यास में हुआ है, वह अज्ञेय की महती ^¯Ö»Öû²-Ö Æ…

प्रस्तुत उपन्यास के शिल्प में समय-स्थल का संयोजन बड़ी कलात्मक ढंग से हुआ है। लेखक अपने काल-प्रवाह को ध्यान में रखते हुए घटनाओं, प्रसंगों की योजना करता है। अगर हम 'उपन्यास में समय' को परखें तो पायेंगे कि कुल ढाई साल का समय प्रस्तुत उपन्यास में आया है। अप्रैल 1940 ÃÖê †ŒÖ¯Ö´Ö²Ö¸ü 1942 के अंतराल की प्रस्तुत उपन्यास में अभिव्यंजना हुई है। इसलिए समय-स्थल की योजना में लेखक को काफी हद तक सफलता मिली है। इसी बात को डॉ. भोलाभाई पटेल ने इन शब्दों में पकड़ा है, "नदी के द्वीप' में समय-स्थल की योजना लेखक की शिल्प सजगता का प्रमाण Æ…"[75] अर्थात् समय-स्थल की योजना को अधिक सटीक रूप में प्रस्तुति मिली है। किंतु एक बात ध्यान रखनी होगी, अज्ञेय हमेशा नवीनता की तलाश में रहते हैं। यह नवीनता और प्रयोगधर्मिता उनके शिल्प संधान में लक्षित होती है। पात्रों के अंतः संबंधों को दर्शाने के लिए अनेक प्रविधि को अपनाते हुए उपन्यासकार अपनी प्रभावशीलता छोडता है। इसी वजह से डॉ. नेमिचंद्र जैन लिखते हैं, "वैसे शिल्प की दृष्टि से 'नदी के द्वीप' में बहुत नवीनता है और प्रौढ़ता भी। पत्र का प्रयोग पात्रों के परस्पर आदान-प्रदान हेतु चारों प्रमुख पात्रों को केंद्र बनाना विशिष्टता को दर्शाता है।"

अज्ञेय के उपन्यासों का शिल्प सजगता का परिचय देता है। साथ ही अनुकरणप्रियता को भी दर्शाता है, ऐसा डॉ. देवराज का कहना है। अज्ञेय ने समस्त पश्चिमी साहित्य को पढ़ा था, पचाया भी। पश्चिमी प्रत्यय से वे चालित भी रहे हैं। इसी कारण जेम्स ज्वायस के 'यूलिसीस' और अज्ञेय के 'नदी के द्वीप' की तुलना होती रही है। इसी बात को लक्ष्य करते हुए डॉ. देवराज उपाध्याय लिखते हैं, "जेम्स ज्वायस की उपन्यास कला की विशेष विवेचना करते हुए हॅरी लेविन ने कहा है कि जेम्स के उपन्यास के रूपविधान में युग के सारत्व का रहस्य बोल उठा है। चलचित्र की Montave, चित्रकला की Impressionsim, संगीत की Liet motif; मनोविश्लेषण की स्वतंत्र चेतना-साहचर्य पद्धति तथा दर्शन की Vitalism - इन सबसे कुछ अंश लेकर तथा अपनी ओर से कुछ और जोड़कर एकत्रित

मिश्रण घोलकर तैयार कीजिए और यही यूलिसीस की कला होगी। यही बात अज्ञेय के बारे में लागू ÆÖŸÖß Æ…"[76]

'नदी के द्वीप' का संरचना विधान अपने आप में अनूठा है। लेखक ने संयम और मितव्ययता का परिचय देते हुए कथा-सूत्र का संयोजन किया है। परिवेश के छोटे-छोटे ब्यौरे, रसोद्रेक में भावुक होने से बचाने की अनेक स्थितियाँ, मन की व्याकुलता के दृश्य, स्त्री-पुरूष के संबंधों को और प्रेम को सूक्ष्म मानसिक धरातल पर उभारने में अज्ञेय को काफी सफलता मिली है। डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने प्रस्तुत उपन्यास के रचना संघटन पर प्रकाश डालते हुए लिखा, "भाषा प्रयोग और रचना संघटन की दृष्टि से 'नदी के द्वीप' की कला अप्रतिम है। अपने प्रायः त्रुटिहीन विधान में यह उपन्यास अनेक वर्षों तक आनेवाले रचनाकारों के लिए चुनौती बना रहेगा।" अर्थात् चतुर्वेदी जी अनेक स्थानों पर प्रस्तुत रचना के कमजोर पक्षों को उघाड़ते हैं, वही उसके शिल्प की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं।

इतने सारे शक्ति स्थानों के बावजूद कुछ सीमाएँ भी हैं, जिन्हें नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। स्थान-स्थान पर अंग्रेजी तथा बंगला कविताओं को मूल रूप में रखना, पात्रों के माध्यम से दार्शनिकता को अभिव्यक्त करना (विचारों से आक्रांत) तथा कविताओं की भरमार कथाशिल्प की अन्य विशेषताओं से मेल नहीं खाती।

कुल मिलाकर अज्ञेय के उपन्यासों की अनेक शिल्पगत विशेषताएँ हैं, जिनका जिक्र उपर्युक्त विवेचन में आया है। रचनाकार अज्ञेय अपनी कृति के लिए विशिष्ट शिल्प की खोज करते हैं। जहाँ तक उपन्यास विधा की शिल्पविधि का प्रश्न है, विधियाँ तो सीमित हैं। किंतु रचनाकार परस्पर मिश्रण और आरोपण से उसके असंख्य रूप बनाता है। अज्ञेय ने अपना अलग 'मिश्रण' बनाया। वह विशिष्ट होने के साथ-साथ प्रतिपाद्य विषय के अनुकूल पड़ता है, यह कहना अधिक न्यायपूर्ण होगा।

'अपने अपने अजनबी' अज्ञेय का तीसरा और अंतिम उपन्यास है। 'छाया मेखल' तथा 'बीनू भगत' अपूर्ण है। प्रस्तुत उपन्यास में अज्ञेय ने 'अन्य पुरूष की वर्णनात्मक प्रविधि' का अवलंब किया है। सेल्मा और योके नामक पात्रों की बातचीत से उपन्यास का आरंभ होता है। अर्थात् कथाकार लेखक अन्तर्यामी बनकर पात्रों के मन की बातें पाठक को बताता है। धीरे-धीरे पात्रों की मनःस्थिति का प्रभाव पाठकों के मानस पर अंकित होने लगता है।

इस उपन्यास की शिल्पविधि की सबसे बड़ी विशेषता 'डायरी प्रविधि' का प्रयोग है। वर्णनात्मक प्रविधि जब अविश्वसनीय लगती है तब इस प्रकार की प्रणाली का अवलंब करना पड़ता है। अज्ञेय ने प्रारंभ वर्णनात्मक प्रविधि से किया गया है। किंतु कुछ पृष्ठों के बाद डायरी प्रविधि को अपनाया है। डायरी प्रविधि पात्रों के अंतस्थ भावों के प्रकाशन में अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। बर्फ के नीचे दबे मकान में तीन-चार महिनों के लिए कैद पात्रों की मनःस्थिति को दर्शाना इतना आसान भी

नहीं था। बाहरी दुनिया से कट चुके, दो कमरों और रसोईघर तक सीमित पात्रों की जीवनगत धारणाएँ, अनुभव का विश्व और भविष्योन्मुखी जीवनबोध को अंकित करने में 'डायरी' प्रविधि का बखूबी उपयोग किया गया है। जब दमघोंटू माहौल में अपनी बात रखने के लिए सम्प्रेषण के लिए कोई साधन नहीं बचता तब 'डायरी' ही माध्यम बच जाती है। योके लगभग प्रतिदिन डायरी लिखती है। मानसिक क्षोभ, मृत्यु-भय, जीवन की अनिश्चितता, अजनबीपन को, निराशा, अवसाद, कुढन, विवश, आक्रोश, क्रोध के प्रति अनास्था ये सारे मनोभाव डायरी प्रविधि में अंकित हुए हैं।

ऐसा नहीं कि डायरी में डायरी-लेखक की मनोवृत्ति का ही अभिव्यंजन होता है, बल्कि योके सेल्मा के बारे में, उसकी मानसिकता, जीवनगत धारणाएँ आदि को व्यक्त करने के लिए डायरी का उत्तम उपयोग उपन्यासकार अज्ञेय ने किया है। सेल्मा की अंतिम स्थिति का जितना कलात्मक वर्णन अज्ञेय ने किया है, वह अपने आप में विलक्षण है। मृत्युबोध से पीड़ित सेल्मा का 'व्यक्तिचित्र' अज्ञेय ने पूरी क्षमता से खड़ा किया है। सेल्मा की मृत्यु के बाद योके जिस मानसिक तनाव का अनुभव करती है, उसे भी बड़े कलात्मक ढंग से शब्दबद्ध किया गया है।

उपन्यास के अंतिम खण्ड 'योके' में जगन्नाथन और योके की भेंट का दृश्य प्रभावशाली दृश्ययोजना का उत्तम उदाहरण है। योके के उद्‌गारों में उसकी समग्र मानसिकता का दर्शन होता है। यह एक सर्वथा नाटकीय दृश्य है, जिसमें अज्ञेय ने कलात्मकता का परिचय दिया है। यह दृश्य प्रस्तुत उपन्यास में आयी कथावर्णन की प्रणाली की त्रुटियों को दूर करता है।

'अपने अपने अजनबी' उपन्यास के शिल्पविधान में वाक्य रचना और अनुच्छेद निर्माण को बड़ा महत्त्व है। प्रत्येक वाक्य अर्थपूर्ण, तर्कपूर्ण और भावी संभावनाओं के संकेत देता है। परिवेश को उभारने में इस वाक्य रचना और अनुच्छेद निर्माण ने बड़ा महत्त्वपूर्ण काम किया है। संयत शब्द योजना, वाक्यों का गठन, विरामचिह्नों का समर्थ प्रयोग, लय, प्रवाह और तार्किक संगति ने उपन्यास को कलात्मक बनाने में महती भूमिका निभायी है। बावजूद इसके कि प्रस्तुत उपन्यास के शिल्प विधान की अनेक सीमाएँ हैं। अंततः डॉ. गोपाल राय के शब्दों में प्रस्तुत उपन्यास की शिल्पविधि का जायजा लिया जा सकता है। वे लिखते हैं, "अपने अपने अजनबी' में भी अज्ञेय ने विषय के प्रस्तुतीकरण के लिए किस्सागोई की कई प्रविधियों का मिश्रण तैयार किया है तथा नाटकीय प्रविधि द्वारा तृतीय पुरूष की वर्णन प्रविधि को प्रचलित करके शिल्प की समस्या हल की है।"[77]

कुल मिलाकर अज्ञेय के उपन्यासों में शिल्पगत सजीवता का अहसास होता है। विषय के प्रतिपादन में, कथ्य के मण्डन में, अनुभव को मूर्त बनाने में अज्ञेय की शिल्पविधि कारगर है, ऐसा कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी।

निष्कर्ष :

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि अज्ञेय का औपन्यासिक शिल्प विधान में महत्त्वपूर्ण योगदान है। एक प्रयोगकर्त्ता के रूप में हमारे सम्मुख आते हैं। सीधी सरल प्रविधि का अवलंब करते हुए कथा की प्रस्तुति करते हैं। एक प्रभावशाली शिल्प निर्माण में अज्ञेय को काफी हद तक सफलता मिली है। शिल्प में जैसा और जितना वैविध्य अज्ञेय ला सके हैं, उतना शायद ही किसी आधुनिक हिंदी उपन्यासकार में हो। जिस प्रकार कविता के क्षेत्र में उनकी प्रयोगधर्मिता लक्षित होती है, ठीक उसी प्रकार उपन्यासों में प्रयोगशीलता नजर आती है। इसी कारण अज्ञेय उपन्यास साहित्य के शिल्प निर्माण में महती भूमिका निभाते हैं, जिसे स्वीकार करना युक्तिसंगत होगा।

4.2 मर्ढेकर के उपन्यास : एक मूल्यांकन

प्रस्तावना :

नवकविता या आधुनिक मराठी कविता के उन्नायक के रूप में मर्ढेकर ख्यातकीर्त रहे हैं। समीक्षक, गीति काव्य के रचयिता तथा उपन्यासकार एवं आकाशवाणी के अधिकारी के रूप में परिचित रहे हैं। उनकी साहित्यिक यात्रा का दौर कवि के रूप में शुरू हुआ। 1939 Ãö 1951 के बीच उनके तीन कविता संग्रह प्रकाशित हुए। कवि के रूप में उन्हें खूब लोकप्रियता भी मिली। साथ ही 'सौंदर्यशास्त्र' पर अपना स्वतंत्र चिंतन प्रस्तुत करते हुए समीक्षात्मक ग्रंथ लिखा। किन्तु यह बहुत बड़ी वास्तविकता है कि एक कवि के रूप में या समीक्षक के रूप में जिस तरह उन पर अध्ययन हुआ, चर्चा हुई, उस तरह उनके उपन्यासों पर चर्चा नहीं हुई।

उपन्यासकार बा. सी. मर्ढेकर ने 1942 Ãö 1948 के बीच तीन उपन्यास लिखे। 'रात्रीचा दिवस' (रात का दिन-1942), 'Ÿöö²ö>ß ´ööŸöß' (»öö»ö ×´ö¼ß-1943) तथा 'पाणी' (पानी-1948) नामक उपन्यासों ने अपने अलग आशयपक्ष, शैलीपक्ष तथा भाषावैभिन्य के कारण मराठी उपन्यासों की परंपरा में एक अलग स्थान निर्माण किया। ये तीनों उपन्यास अपने छोटे कलेवर, आशयगत वैविध्य और जीवनोन्मुखी दृष्टि के कारण महत्त्वपूर्ण रहे हैं। प्रस्तुत अध्याय में मर्ढेकर के तीनों उपन्यासों (कुछ समीक्षकों ने छोटे कलेवर की वजह से दो को दिर्घकथा कहा है।) का आशय, भाषा, शैली और शिल्प की दृष्टि से अध्ययन अपेक्षित हैं। इन तीनों उपन्यासों के मूल्यांकन से ही मर्ढेकर का उपन्यासकार के रूप में मराठी साहित्य परंपरा में स्थान निर्धारित हो पाएगा। वस्तुतः मर्ढेकर ने अपने समकालीन जीवनानुभवों को अत्यंत मार्मिकता से इनमें अभिव्यक्त किया है।

4.2 मर्ढेकर के उपन्यास : एक मूल्यांकन

4.2.1 आशय की दृष्टि से

उपन्यासकार बा. सी. मर्ढेकर ने 'रात्रीचा दिवस (रात का दिन - 1942) नामक पहला

उपन्यास लिखा। वस्तुतः यह एक लघु-उपन्यास है। कुछ मराठी समीक्षकों ने इसे 'दिर्घकथा' की संज्ञा दी है। 'रात्रीचा दिवस' (रात का दिन) इस उपन्यास में दिक्पाल नामक नायक के कुछ घंटों में व्यतीत जीवन का 'चेतनाप्रवाह' शैली में अंकन किया गया है। दिकपाल जो कि 'भारत' नामक पत्र का सहसंपादक है। उसके व्यक्तित्व के दो स्तरों (मनोजगत) का प्रभावी अंकन हुआ है। चेतन और अचेतन स्थिति का अत्यंत बारीकी से लेखक वर्णन करता है। दिकपाल का कार्यालय से शाम को लौटना, लौटने के बाद सोना तथा नींद से जगकर काम पर लौटने तक की अवस्था का 'चेतना प्रवाह' शैली में कलात्मक चित्रण किया गया है। इस चेतना प्रवाह के दो भाग हैं। एक चेतन अवस्था का तथा दूसरा अचेतन अवस्था में घटित प्रसंगों का मार्मिक अंकन किया गया है।

'भारत' अखबार के संपादक की कन्या 'हरिणी सेशाल' से दिकपाल इकतर्फा प्रेम करता है। पर अचानक उसकी शादी तय हो जाती है। छोटा-सा कथानक है किन्तु लेखक का उद्देश्य कोई कहानी नहीं कहना है, नायक के मानसिक जगत को उजागर करना है। चेतनाप्रवाह के पहले भाग में मार्क्सवाद, न्याय और दया, मार्क्सवाद की त्रासदी, विश्वविद्यालय में व्याप्त अनाचार, भाई भतीजावाद, पीएच-डी. शोध-प्रबंधों का सतहीपन आदि विषयों पर दिकपाल और मुलाम के बीच संवाद होता है। दिकपाल को हरिणी से प्रेम होता है। प्रथम भाग में दिकपाल के मानसिक जगत में उठ रही तरंगों, भावों, इच्छाओं का आदि का वर्णन आया है। 'दिकपाल' को केंद्रित करते हुए उपन्यास आगे बढ़ता है। किंतु इस उपन्यास की पृष्ठभूमि में द्वितीय विश्वयुद्ध की छाया निरंतर मंडराती हुई नजर आती है। महायुद्ध के भयावह परिणाम, महंगाई, मशीनी सभ्यता आदि का प्रभावी चित्रण लेखक करता है।

चेतना प्रवाह के दूसरे भाग के अंतर्गत स्वप्न अवस्था का चित्रण किया गया है। दिकपाल की स्वप्न अवस्था में महायुद्ध का चित्रण आया है। विश्वयुद्ध के परिणामों को झेलता हुआ वैश्विक मनुष्य। मशीनी सभ्यता का आगमन, कामगार वर्ग का उदय, उनका हो रहा निर्मम शोषण, व्यक्ति का रोबो बनते जाना आदि का मर्मग्राही अंकन किया गया है। अर्थात प्रस्तुत उपन्यास में 'दिकपाल' के मानसिक जगत का सूक्ष्म विवेचन किया गया है। मशीनी सभ्यता से मंडित शहरी सभ्यता में जी रहे नायक का प्रभावी चित्रण किया गया है। यहाँ लेखक मर्ढेकर दिकपाल के मन को खोजते-खोजते 'स्व' की तलाश कर लेते हैं। दिकपाल के मन में स्थित संघर्ष, तनाव, विसंगतियाँ आदि को लेखक ^3ÖÖ¸ÏÖÖ Æî...

बा. सी. मर्ढेकर द्वारा रचित इस उपन्यास को 'कथात्मक प्रयोग' कहकर संबोधित किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास में आधुनिक मनुष्य की यंत्रवत जिंदगी का तानाबाना बुना गया है। यंत्रयुग का आरंभ और आधुनिक मनुष्य की जिंदगी का रोबो बनते जाना, इसे 'फैंटसी' शैली में लेखक प्रयोगशील भाषा में उभारता है। दिकपाल के मन में अनेक विचार-तरंगे उठती हैं। व्यवहार जगत के कुछ प्रश्न

भी उसे सताते हैं, जिसका ऊहापोह प्रस्तुत रचना में हुआ है। ज्ञान से तात्पर्य क्या है? मार्क्स के जीवन दर्शन को हम कितना समझ पाये? सोशॅलिजम है क्या? ईश्वरशून्य समाज सत्तावाद की परिणति क्या है? उपन्यास में क्रोंचे द्वारा कल्पित मनुष्य मन के व्यवहार को चार भागों में विभाजित करने की चर्चा की गई है। तार्किकता, सौंदर्यनिष्ठता, नैतिकता और आर्थिकता ये चार भाग हैं। भौतिक सुविधाओं से वंचित मनुष्य जीवन (सडकों का अभाव), शिक्षा व्यवस्था, विश्वविद्यालयों में हो रहे शोध, गांधी दर्शन को लेकर प्रश्नचिह्न, आधुनिक मनुष्य का हर क्षेत्र में असंगत होते जाना आदि का कलात्मक चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में हुआ है। विशेषत: विश्वविद्यालयों में हो रहे सतही शोध के बारे में यह वक्तव्य हमें अंतर्मुख कर देता है- "आपल्याकडील सार्वजनिक संस्था म्हणजे किडलेल्या गांधील माशांची मोहोळ आणि युनिव्हर्सिटी त्याला अपवाद असायला पाहिजे, पण नाही."[78] (†£ÖÖŸÖ Æ´ÖÖ¸¡ यहाँ पर सार्वजनिक संस्थाएँ हो या विश्वविद्यालय वहाँ दीमक लगी हुई है। संस्थाओं का ठीक हैं किन्तु विश्वविद्यालय भी उसके लिए अपवाद नहीं रहे।)

मनुष्य की यंत्रवत बनती जिंदगी को लेकर लेखक के मन में चिंता है। यहाँ मनुष्य यंत्र का पूर्जा बनकर रहा गया है। युद्ध की पृष्ठभूमि में मनुष्य जीवन में आई हुई रिक्तता, खालीपन, आतंकित और भयभीत मनुष्य के जीवन का मार्मिक अंकन हुआ है। उपन्यासकार इसी बात का संधान करते हुए लिखता है- "रणगाडयांच्या या धुमश्चक्रीत चक्काचूर होऊन जायचा अन् भस्मासुराची राख, जाऊ द्या, विचार कशाला करा आताच। सध्या तर काय संथपणे तरंगतो आहोत हवेत। काय लोक लढाई करीत बसले आहेत मूर्खासारखे।"[79] अतीत और वर्तमान के बीच फँसी हुई जिंदगी का स्वाभाविक वर्णन प्रस्तुत उपन्यास में किया गया है। महायुद्ध के पश्चात मनुष्य की हुई असहाय स्थिति, जीवन में आई दिशाहीनता, मनुष्य का मशीन बनते जाना और मशीन का मनुष्य बनते जाना, नई-नई ज्ञानशाखाओं के उदय से निर्माण हुई विलक्षण स्थिति का बोध रचनाकार कराता है।

मनुष्य और मनुष्य के जीवन में आई यंत्रवत स्थिति का बोध लेखक कराता है। एक रूटिन जिंदगी का खाका अंकित करने में लेखक सफल हुआ है। उपन्यास में एक वक्तव्य है- "मनुष्याच्या जीवनातील किती तरी मोठा भाग केवळ यांत्रिक पद्धतीने पार पाडलेल्या क्रियांनी व्यापिलेला असतो नाही."[80] (अर्थात मनुष्य के जीवन में व्याप्त यांत्रिकता को लेखक प्रस्तुत कर रहा है।) अत: ये कहा जा सकता है कि 'रात्रीचा दिवस' उपन्यास चेतना प्रवाह शैली का उत्कृष्टतम रूप खड़ा करने में ÃÖ±ú»Ö ¸¡ÆÖ Æî…

प्रस्तुत उपन्यास के आशय पक्ष पर अनेक मराठी समीक्षकों ने दृष्टिपात किया है। उनके वक्तव्यों, भूमिकाओं को समझकर प्रस्तुत रचना के आशय पक्ष पर और प्रकाश डाला जा सकता है। जिससे रचना का अर्थ और संदर्भ लगने में आसानी होगी। यह रचना मनुष्य के जीवन में आयी

यांत्रिकता, तनाव, यंत्रयुग का सत्य प्रत्यय, ध्येयशून्यता, विफलता और अश्रद्धा का वर्णन आदि चीजों को उभारने में सफल हुई है। एक पत्रकार के जीवन के एक दिन में घटित कुछ घंटों का वर्णन करने में लेखक को अपूर्व सफलता मिली है। डॉ. यशवंत मनोहर प्रस्तुत रचना को 'शैली पक्ष की दृष्टि से महत्वपूर्ण कृति मानते हैं किन्तु यह रचना कुछ ठोस देने में असफल हुई है, ऐसा उनका मंतव्य है।"[81] पर इस रचना में व्यक्तिमन बुद्धि, समाज में उभरती हुई नयी संस्कृति आदि का विवेचन सूक्ष्म रूप में हुआ है। पुराने मूल्य टूट रहे हैं, नये मूल्य सम्मुख नहीं है, ऐसे एक विचित्र स्थिति में जी रहे मनुष्य का चित्रण इस उपन्यास की विशेषता है। दिकपाल का आंतरिक संघर्ष, बाह्य समस्याओं से जुझना, अपने समय से जुड़ न पाने की विवशता, अंतर्मन में द्वंद्व आदि का बोध लेखक कराता है। यह रचना ज्ञान और नीति के बीच पल रहा सतहीपन, मनुष्यों के प्रयासों की सीमाएँ, परिवर्तन का मार्क्सवादी दृष्टिकोण, जो कि अनेक अंतर्विरोधों से घिरा हुआ है, मनुष्य मनुष्य के बीच खत्म होते रागात्मक संबंधों को भी दर्शाना लेखक का उद्देश्य है। परंतु मराठी समीक्षक दि. के. बेडकर प्रस्तुत कृति को उपन्यास न मानते हुए 'दिर्घकथा' के रूप में स्वीकारते हैं। उनका कहना है कि 'मनोविश्लेषणात्मक विवेचन प्रस्तुत रचना का सामर्थ्य है।' व्यक्ति मन के भीतर झांकना लेखक का उद्देश्य नहीं है, बल्कि उसके अंतरतम के कोणों में व्याप्त तरंगों को व्याख्यायित करना रहा है। बेडेकर इस कृति को एक 'असफल कृति' मानते हैं। विशेषतः शैली के मोह के कारण। अर्थात अनेक संभावनाओं की सीमाएँ स्पष्ट दीखती है, ऐसा बेडेकर जी का कहना है।

डॉ. हरिश्चंद्र थोरात ने प्रस्तुत रचना के शैली पक्ष तथा आशय पक्ष पर अत्यंत विवेकपूर्ण ढंग से प्रकाश डाला है। उन्होंने 'चेतनाप्रवाह शैली' के शक्तिस्थानों और सीमाओं को बताते हुए प्रस्तुत उपन्यास का मूल्यांकन किया है। वे इस रचना के बारे में लिखते है- "खरे पाहिल्यास न कादंबरी (ॲन्टी नॉवेल), न-नायक, कथानकाचे किमान अस्तित्व खुलेपणा या सर्व गोष्टी 'रात्रीचा दिवस' ने 1942 सालीच टिपल्या होत्या मानवी व्यक्तीचा एकाकीपणाचा नव्हे तर त्याचा विखूरध्वंस 'रात्रीचा दिवस' ने मराठी वाचकांसमोर मांडला."[82] (अर्थात प्रस्तुत रचना का कथावस्तु विहीन होना, नायकविहीन होना तथा मनुष्य के जीवन में आए अकेलेपन के बोध को 1942 में ही मर्ढेकर अंकित करते हैं, मराठी पाठकों को परिचित कराते हैं।)

वस्तुतः 'रात्रीचा दिवस' (रात का दिन) उपन्यास मराठी में पहली बार आधुनिकतावादी चेतना को उजागर करता है। मनुष्य को बेचैन कर देनेवाली स्थितियों का मार्मिक अंकन लेखक करता है, जिससे मनुष्य जीवन का नया अर्थ हमें प्राप्त होता है। अपने ही अंतर्विरोधों से घिरे हुए मनुष्य का चित्रण करना लेखक का उद्देश्य दिखाई देता है, जिसमें उसे कामयाबी मिली है। केवल इतना ही नहीं मर्ढेकर अपने समय से आगे जाकर बताते हैं कि वर्तमान समय में मनुष्य का वस्तु में

रूपांतरण हो रहा है, जो चिंता का विषय है। इसलिए थोरात लिखते हैं- "आधुनिकीकरणाच्या प्रक्रियेमध्ये उत्पादन केले गेलेला हा पूर्ण यांत्रिक मानव, त्याचे जगणे, त्याच्या जगाचा अनुभव हे '¸Ö¡Öß“ÖÖ ×¤¾ÖÃÖ“Ö' †Ö¿ÖµÖÃÖ¡Ö †ÖÆ."[83] (अर्थात आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में उत्पादित किये गए यंत्र मानव उसका जीना, उसके अपने विश्व का अनुभव 'रात्रीचा दिवस' (रात का दिन) के आशयसूत्र में विद्यमान है।) थोरात प्रस्तुत उपन्यास में कथानक का अभाव, घटना या प्रसंग चित्रण को अलक्षित करना, समय और अनुभव के मध्य सामंजस्य स्थापित करना उद्देश्य रहा है, ऐसा मानते हैं। इसलिए यह कहना अधिक युक्तिसंगत होगा कि यह रचना अपने समय से संवाद करती है। किसी सिद्धांत या दर्शन का प्रतिपादन करना इस कृति का लक्ष्य नहीं है। पर आधुनिक जीवन के विविध आयामों, संदर्भों की जांच पडताल करती है। इसलिए डॉ. हरिश्चंद्र थोरात लिखते है- "रात्रीचा दिवस' ला आधुनिकतेकडे पहाण्याच्या दृष्टीमुळे एक वैश्विक परिमाण प्राप्त झाले आहे आणि तिच्यामधून जगाकडे पहाण्याचा गंभीर असा दृष्टिकोण व्यक्त होतो आहे."[84] (अर्थात प्रस्तुत उपन्यास में आधुनिकतावादी दृष्टि से बदलते जीवन संघर्ष को देखा गया है। यह दृष्टि विश्व की ओर देखने का नया गंभीर दृष्टिकोण हमें देती है।)

समीक्षक डॉ. अनिल उगले प्रस्तुत रचना की ओर नयी दृष्टि से नजर डालते हैं। उनका कहना है कि मर्ढेकर के उपन्यास विश्वयुद्धों की पृष्ठभूमि में उदित होते हैं। महायुद्धों ने व्यक्ति के सामाजिक जीवन और वैयक्तिक जीवन में मूलभूत परिवर्तन लाया है। वस्तुतः उसके भयंकर परिणामों को भूगतने की विवशता आधुनिक मनुष्य के सम्मुख है। एक पत्रकार को केंद्र में रखकर उसके मनोजगत को उघाडने का काम लेखक करता है। अर्थात यहाँ शहरी जीवन के बारे में दृष्टिपात डाला गया है। इसी कारण डॉ. उगले लिखते है- "रात्रीचा दिवस' कादंबरीतील दिकपालच्या अंतर्मनाचा वेध घेतलेला दिसून येतो. यंत्रप्रधान शहरी संस्कृतीमध्ये वावरणारा दिकपाल आपल्या भोवतालच्या वास्तवाचा आणि अबोध मनाचा सांधा जोडण्याच्या प्रयत्नात दिसतो."[85] (दिकपाल के अंतर्मन का चित्रण करना लेखक का उद्देश्य है। मशीनी सभ्यता में शहरी जीवन में सांस ले रहे दिकपाल का वर्णन आया है, जो अपने आसपास के वास्तव और अबोध मन को जोडने का प्रयत्न कर रहा है। आधुनिक मनुष्य स्वप्न में जैसे जीता है? उसके संघर्ष के बिंदू कौन-से है? जीने की अंतर-बाह्य छटपटाहट कैसे व्यक्त हो रही है आदि बातों का मर्मस्पर्शी अंकन मर्ढेकर करते हैं।)

मराठी के सुविख्यात समीक्षक नरहर कुरूंदकर प्रस्तुत उपन्यास की संरचना और आशयात्मक सौंदर्य पर स्वतंत्र रूप में प्रकाश डालते हैं। वे मर्ढेकर की मनोविश्लेषणात्मक दृष्टि की प्रशंसा करते हैं तो दूसरी ओर इस उपन्यास को एक 'अशक्त कृति' मानते हुए समीक्षा करते हैं। वे लिखते हैं- "रात्रीचा दिवस' या कादंबरीत जागृत मन आणि सुप्त मन, स्वप्ने आणि वर्तन व संभाषण इतक्या

घटकांनी ही कादंबरी बनली आहे."[86] अर्थात इस उपन्यास में अभिव्यक्त मनोविश्लेषणात्मक पद्धति का विश्लेषण करते हैं। मन की दोनों अवस्था का चित्रण जिस ढंग से इस उपन्यास में आया है, वह अपने आप में विलक्षण है। स्वप्न और व्यवहार, संभाषण और अचेतन जगत का चित्रण इस उपन्यास की उपलब्धि है। इसी कारण इस उपन्यास पर अनेकों ने अपने-अपने ढंग से चिंतन किया है।

कुल मिलाकर 'रात्रीचा दिवस' (रात का दिन) यह मर्ढेकर का पहला उपन्यास है। इस प्रथम कृति ने मराठी उपन्यासों की परंपरा में कथाविहीनता, नायकविहीनता को दर्शाया। इतना ही नहीं अपने समय की जुझ को व्यक्त करने में यह कृति सफल हुई है। आधुनिक मनुष्य की असहायता, विवशता और नियति का स्वाभाविक चित्रण लेखक करता है। पर वास्तविकता यह है कि दो महायुद्धों को झेल चुके मनुष्य की मानसिक स्थिति का उद्घाटन करना ही लेखक उद्देश्य रहा है। मशीनी सभ्यता के आगमन ने मानवी जीवन में, सामाजिक जीवन में जो क्रांतिकारी परिवर्तन आ रहे हैं, उसे अंकित करना भी लेखक का निहित उद्देश्य रहा है। एक आरंभिक कृति के रूप में (उपन्यास/ दिर्घकथा) मर्ढेकर की इस कृति को देखा जा सकता है। किन्तु मर्ढेकर की सबसे बड़ी खूबी इस उपन्यास के शैली पक्ष को लेकर रही है। क्योंकि 'चेतनाप्रवाह शैली' का मराठी उपन्यास में पहली बार सूत्रपात करने का श्रेय मर्ढेकर को ही जाता है।

मर्ढेकर का दूसरा उपन्यास है 'तांबड़ी माती' (लाल मिट्टी-1943)। सन 1943 में प्रकाशित मर्ढेकर का यह छोटा उपन्यास (दिर्घकथा) है। कुल 93 पृष्ठों में अंकित यह उपन्यास गाँव और शहर को जोड़ते हुए माटी की सौंधी खुश्बू को दर्शाता है। कुल 15 खण्डों में विभाजित यह कृति 'शिवा पहलवान' की कथा नहीं रचती बल्कि कई रंगों का मिश्रण घोलती है। उपन्यासकार ने प्रस्तावना में साफ लिखा है कि प्रस्तुत रचना के माध्यम से कोई क्रांतिकारी विचारधारा या समाज जीवन को उन्नति की राह पर विकसित करने हेतु किसी सिद्धांत का प्रतिपादन करना मेरा उद्देश्य नहीं है। पर जीते समय कुछ सादृश्य-विसादृश्य अनुभव मिले, उसे प्रस्तुत करना ही मेरी धारणा है।

प्रस्तुत उपन्यास के केंद्र में एक छोटा-सा देहात है। खेती करते किसान हैं। किसानों की अपनी कुछ परंपराएँ है। उनके अनुभव का एक अलग विश्व है। दूसरे महायुद्ध की पृष्ठभूमि तथा सीधी झांकी प्रस्तुत उपन्यास में मिलती है। प्रस्तुत उपन्यास में 'पळसखेड' गांव का चित्रण है। अखाडे में कुश्ती खेलनेवाले शिवा और सारजा की प्रेमकथा, शिवा-सारजा का विवाह, खानबहादूर मुहम्मद हुसैन की प्रेरणा से शिवा का सेना में भर्ती होना, द्वितीय महायुद्ध में शिवा का लड़ाई पर जाना, हॉस्पीटल में भर्ती किया जाना, वहाँ पर सुलभा लिखिते द्वारा सेवा, इधर शहरी जीवन में सांस ले रहे कम्यूनिस्ट भाईकुमार का पत्रकारिता जीवन, विधवा सुलभा लिखिते को फंसाना, कम्युनिजम के अंतर्विरोध, सुलभा द्वारा गर्भपात कराना, लड़ाई के मैदान से थका हारा घायल शिवा का गाँव

लौटना, किन्तु इसी दरमियान शिवा के पिता कोंडिबा की जमीन छीन लिये जाना, शहर में जाकर मिल में काम करना, सारजा का अपहरण, उद्ध्वस्त शिवा आदि दृश्य उपस्थित होते हैं। अंततः शिवा का लाल मिट्टी को नमन। क्योंकि 'लाल मिट्टी' संघर्ष की प्रतीक है। सोलह खण्डों में विभाजित कथावस्तु विविध भाव-भावनाओं के रंगों को बिखेरती है। उपन्यासकार गाँव और शहर को जोड़ते हुए दोनों के अंतरर्विरोधों को दर्शाने में सफल हुआ है। यह संपूर्ण उपन्यास 'मनुष्य के अस्तित्व की खोज' करता है। निवेदन शैली का अवलंब करते हुए लेखक एक साथ कई मोर्चों पर डटकर खड़ा Æ...

लेखक शहरों की जिंदगी, शहरी संस्कृति, मानवीय संबंध और मानवीय जीवन में स्थित अंतर्विरोधों को खुलकर वर्णित करता है। पात्र अनेक आये हैं। किन्तु पात्रों का विशेष वर्णन करना लेखक का उद्देश्य नहीं है। शिवा, सारजा, कोंडिबा, सुलभा लिखिते, भाईकुमार, व्हॉन्सी तथा अन्य पात्र अपने समय के साक्षी बनकर उभरते हैं। पंजाब के जेलों का वर्णन, कम्यूनिस्ट आंदोलन के चित्र, द्वितीय महायुद्ध की झांकी, शिवा का सैनिकी जीवन, गाँव से शहर पहुँचते-पहुँचते सारजा का अपहरण, सुलभा लिखिने का भाईकुमार द्वारा ठगना आदि नाट्यमय प्रसंगों की योजना लेखक ने की Æ...

प्रस्तुत उपन्यास में 'कुश्ती' क्रीड़ा प्रकार का वर्णन करते हुए गांव की संस्कृति, वहाँ का लोकजीवन, लोकसमूह की मानसिकता के दर्शन होते हैं। मर्ढेकर आधुनिक मनुष्य के अंतर-बाह्य संघर्ष को उभारते हैं। महायुद्धों की विभीषिका ने आधुनिक मनुष्य को असाह्य, विकलांग एवं बेबस बनाया है। अनेक मोर्चों पर उसे लड़ाई लड़नी है। इसी बात का संधान इन पंक्तियों से होता है- "रणांगणाची स्वरूप आणि स्थान बदलतात. कुठं पंचमहाभूतांशी दुर्दम्य झगडा असतो, तर कुठं यंत्रसज्ज शत्रुंशी सामना असतो. कुठं शस्त्रास्त्रांच्या खणखणाटात बेहद्द झुंज असते, तर कुठं मानसिक शक्तींचा निःशब्द संग्राम असतो."[87] (अर्थात इन पंक्तियों में युद्धजन्य स्थितियों, युद्ध का अंतर-बाह्य स्वरूप, शत्रु का बदलता चेहरा तथा बाह्य संघर्ष की अपेक्षा आंतरिक घालमेल को उभारा गया है।) लेखक अपने जीवनानुभवों से हमें सजग रूप में परिचित कराता है। लेखक व्यक्ति में चल रहे संघर्ष को अनेक आयामों को उद्घाटित करता है। एक किसान का भोलापन, उसके टूटते बनते जीवन मूल्य, उसके जीवन में आयी हताशा-निराशा, साथ ही परिस्थिति की मार को झेलता हुआ गांव आदि दृश्य को दृश्यमान करना लेखक की धारणा रही है। इसलिए एक अज्ञानी किसान, सैनिक की कथा के माध्यम से लेखक उसके भोलेपन, आत्ममग्न, श्रद्धा-अश्रद्धा, उसके भीतर चल रहा निरंतर द्वंद्व आदि को उघाडने में सफल हुआ है। इसलिए यह वक्तव्य बड़ा तर्कसंगत और युक्तियुक्त लगता है "हिंदुस्थानातल्या असंख्य अडाणी शेतकऱ्या पैकी शिवा एक होता. जीवनविषयक दृष्टिकोन वगैरे

भाषा त्याला सांगुनाही कळली नसती. त्याच्या मनातील कल्पना, विचार, भावना यांना तत्वज्ञानाचे पैलू पडलेले नव्हते, किंवा त्याच्या विवक्षित आकृतीनी जीवनाचा सलग असा भव्य नकाशा किंवा आराखडा तयार झालेला नव्हता."[88] (अर्थात इन पंक्तियों के द्वारा लेखक एक अज्ञानी किसान की व्यथा, संघर्ष, टूटते सपने और परिस्थिति की मार झेलते हुए किसान, सैनिक को खडा कर देता है।) साथ ही कम्यूनिज्म के अंतर्विरोध, प्रस्थापित व्यवस्था में स्त्री का ठगा जाना, सेवा ही मूल्य है, को दर्शाना हमें प्रेरणा देता है। पर वास्तविकता यही है कि किसान के लिए भूमि हमेशा माता के रूप में रही है। जमीन से बेदखली ने उसकी दुर्दशा हुई है। श्रद्धाओं का टूटते जाना, दर्द का अहसास इस उपन्यास में कराया गया है।

प्रस्तुत उपन्यास में ग्रामीण बोली भाषा का सार्थक उपयोग हुआ है। कुछ पात्रों के द्वारा हिंदुस्थानी भाषा का उपयोग और किसानी भाषा का इस्तेमाल बखूबी किया गया है। लेखक ने प्रस्तावना में ही लिखा है कि प्रस्तुत उपन्यास की भाषा में व्याकरणगत दोष हैं, वाक्यप्रचार की दृष्टि से भी। अस्तु, मर्ढेकर ने प्रस्तुत रचना में ग्रामीण बोलीबानी के परिवेश में उभरते आधुनिक मनुष्य के सौंदर्यबोध को अंकित किया है। विशेषतः आधुनिक मनुष्य के अकेले पड़ते जाने की व्यथा को उपन्यास पूरी क्षमता से अभिव्यक्ति देता है।

प्रस्तुत उपन्यास के आशय पक्ष पर अनेक आलोचकों ने भाष्य किया है। उनकी आलोचना दृष्टि का परिचय इसलिए जरूरी है कि प्रस्तुत कृति में निहित आशय की खोज की जा सके। विशेषतः अर्थसौंदर्य और भाषा सौंदर्य की दृष्टि से, शैली पक्ष की दृष्टि से भी गहन अध्ययन किया गया है।

मराठी के वरिष्ठ समीक्षक डॉ. हरिश्चंद्र थोरात ने प्रस्तुत उपन्यास के आशय पक्ष पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि "आधुनिकता और आधुनिकीकरण से संबंधित आधुनिकवादी आशय प्रस्तुत रचना में मिलता है।"[89] विशेषतः प्रस्तुत कृति का सृजन ही आधुनिकीकरण की पृष्ठभूमि में हुआ है, ऐसा थोरात का कहना है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से मानवी जीवन में आया हुआ विरूपण, मनुष्य के व्यक्तित्त्व और सामाजिक संस्थाओं का होता हुआ विघटन, पूँजीवादी व्यवस्था में मनुष्य जीवन की क्षुद्रता आदि संदर्भ इस रचना के साथ जुड़े हुए हैं। आधुनिकीकरण का असर जहाँ शहरों पर हो रहा है, वहीं गाँव भी उससे बच नहीं पाये हैं। आधुनिकीकरण के मनुष्य पर होते परिणामों की दखल इस उपन्यास में ली गयी है। इसलिए डॉ. थोरात आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत कृति के आशय का मूल्यांकन करते हुए लिखते हैं- "आधुनिकता सत्ताकांक्षा, वसाहतवाद, महायुद्धे यापूढे जाणाऱ्या विश्वचक्रामध्ये कोंडिबा, शिवा, सारजा यांच्या सारखी नव्हे तर खान बहादुर, सुलभा लिखिते यांच्यासारखी ही माणसे सापडतात. सर्जनाच्या अनुभवापासून दूर फेकली जातात. एकाकीपणाचा अनुभव घेऊ लागतात. आत्मप्रतिष्ठा, देवावरचा विश्वास नष्ट होवू लागतात. रितेपणाचा अनुभव,

व्यक्त जगाचे स्थैर्य नष्ट होणे, परिणामतः क्षणभंगूरतेचा प्रत्यय येतो."[90] (अर्थात आधुनिकता के परिणाम स्वरूप मनुष्य के जीवन और जगत में जो परिवर्तन आए हैं वे क्रांतिकारी हैं। उत्पादन व्यवस्था, सत्ता का बदलता स्वरूप, उपनिवेशवाद, महायुद्ध के फेर में फँसे हुए कोंडिबा, शिवा, सारजा दिखाई देते हैं। साथ ही शहरी पात्र सुलभा लिखिते, खानबहादुर भी इससे बच नहीं पाये।) ये सारे पात्र अकेलेपन का बोध लेकर जीने के लिए विवश हैं। खालीपन, श्रद्धा का टूटते जाना, विश्व में फैलती अस्थिरता आदि का चित्रण है।) मर्ढेकर आधुनिक मनुष्य को खड़े होने के लिए जमीन की तलाश कर रहे थे। किन्तु जहाँ भी पैर रखें, वहाँ कीचड़ और धंसते जाने का भय। व्यक्ति के 'स्व' को खड़ा करने में अनेक बाधाएँ हैं। मनुष्य व्यवस्था के चक्र में पूरी तरह फंसा हुआ है। एक अर्थ में लटका हुआ है। मर्ढेकर मनुष्य जीवन में आयी अस्थिरता, विवशता, असहायता को वर्णित करते हैं। उनके मन में मनुष्य के बारे में अनेक चिंताएँ हैं, जिनसे वे रू-ब-रू होना चाहते हैं। अपने समय की चुनौतियों को सहर्ष स्वीकार करना चाहते हैं। दि. के. बेडेकर 'तांबडी माती' (लाल मिट्टी) उपन्यास को 'दिर्घकथा' कहते हैं। वे इस रचना को एक अलग दृष्टिकोण से देखते हैं। वे लिखते हैं- "निरक्षर मराठा शेतकऱ्याच्या प्रेमळ मनाचे, मर्दूमकीचे व युद्धासारख्या 'साकाराला निराकार' करणाऱ्या भयानक अनाकलनीय घटकात होणाऱ्या मानवी जीवनाच्या वाताहतीचे मोठे कणखर व हळूवार चित्र या लहानशा कथेत मर्ढेकरांनी रेखाटले आहे."[91] (अर्थात एक अज्ञानी मराठा किसान, जिसके मन में निरंतर प्रेम निवास करता है, उसके शौर्य, युद्ध जैसी स्थितियों में जीवन का धीरे-धीरे खत्म होते जाना आदि को इस कहानी में उभारा गया है।) वस्तुतः मर्ढेकर आस्था के लेखक हैं। लाल मिट्टी में खड़े होकर अपने तमाम दुःखों और क्षणभर मिले हुए सुख का अनुभव यहाँ के पात्र से कराते हैं। उनके इसी गूढ़ एवं उलझे हुए जीवन संघर्ष को चित्रित करना लेखक का उद्देश्य दिखाई देता है। डॉ. अनिल उगले ने 'तांबडी माती' (लाल मिट्टी) उपन्यास की समीक्षा अलग ढंग से की है। उनका कहना है कि यह उपन्यास मनुष्य जीवन की शोधयात्रा का दूसरा नाम है। मनुष्य जीवन में आये हुए सादृश्य-विसादृश्य अनुभवों का विवेचन आया है। रचनाकार भाव-भावनाओं की अनूठी व्यंजना करते हुए संघर्षशील मनुष्य के हिस्से में आयी हुई हताशा, निराशा और टूटन का प्रभावी वर्णन करता है। यहाँ लेखक अपनी अनुभूति का तटस्थ चित्रण करता है। विशेषतः इस उपन्यास में मर्ढेकर मनुष्य और माटी के अन्योन संबंधों को दिखाने में सफल हुए हैं। किन्तु उपन्यास का अन्त जिस शोकात्म स्थिति में होता है, उसे देखते हुए वे लिखते हैं-"तांबडी माती' कादंबरीत मानवाच्या वाताहतीचे, अगतिकतेचे मोठे करूण व उदास चित्र लेखकाने काढलेले आहे. या जगात कोण कुणाचं असतं? असा एक कादंबरीच्या अणूरेणुतून फुलवला जातो."[92]

(अर्थात प्रस्तुत उपन्यास आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में मनुष्य जीवन की होती हुई दुर्दशा,

असाह्यता आदि का करूण चित्र खींचता है। विशेषतः एक प्रश्न जो इस उपन्यास केंद्र में है, हमें बेचैन कर देता है। इस विश्व में कौन किसका है? यही प्रश्न बार-बार उठाया गया है।) परिणामतः मनुष्य के शाश्वत प्रश्नों से यह रचना भीड़ती है। इसी कारण यशवंत मनोहर प्रस्तुत उपन्यास को 'मनुष्य और माटी के बीच उभरते संघर्ष का महाभारत बताते हैं। वस्तुतः 'लाल मिट्टी' संघर्ष का एक प्रतीक है। मनुष्य के सम्मुख कितनी भी चुनौतियाँ आए, वह डटकर सामना करता है, यही मर्ढेकर को बताना है। मर्ढेकर मानव और माटी के बीच रागात्मक संबंध स्थापित करना चाहते हैं। यह संबंध निरंतर बने रहेंगे, विकसित होंगे, ऐसी लेखक की प्रबल धारणा है।

डॉ. आशा सावदेकर ने 'तांबडी माती' उपन्यास पर अपना स्वतंत्र चिंतन प्रस्तुत किया है। उनका मानना है कि महायुद्ध की वेदना को झेलता हुए मनुष्य समाज और अपनी माटी के प्रति उतनी ही रागात्मकता को बनाये हुए हैं। इसी रागात्मकता के चित्र खींचना लेखक का उद्देश्य दिखाई देता है। परंतु सावदेकर उपन्यास के आशय पक्ष पर अलग ढंग से प्रकाश डालते हुए लिखती हैं- "तांबडी माती' कादंबरीत ग्रामीण संवेदनशील मनाचे चित्र आहे. त्यात भावनापेक्षा ही भर आहे अनुभवावर, त्यातून घडत जाणाऱ्या मानसिकतेवर."[93] (अर्थात ग्रामीण मनुष्य के संवेदनशील मन का चित्रण करते हुए लेखक भावनाओं की अपेक्षा अनुभव पर बल देता है। उससे निर्मित मानसिकता पर प्रकाश डालता है।) इस कृति के मूल में एक संदर्भ यह भी मिलता है कि मर्ढेकर एक मराठी परिवार को केंद्र में रखते हुए युद्ध की पृष्ठभूमि में उस परिवार की घसीटती जिंदगी को दिखाना लेखक का उद्देश्य है। वस्तुतः मर्ढेकर यह बताना चाहते हैं कि आधुनिक मनुष्य चुनौतियों का सामना किस प्रकार से कर रहा है? पुराने मूल्य खत्म हो रहे हैं, उसके स्थान पर नये मूल्य कैसे उभरते हैं, विशेषतः 'कौन किसका होता है' यह शिवा द्वारा खड़ा किया गया प्रश्न हमें अंतर्मुख बनाता है।

मराठी के विख्यात कवि तथा समीक्षक वसंत आबाजी डहाके ने प्रस्तुत उपन्यास के कथ्य पक्ष पर अपनी लेखनी चलायी है। डहाके ने ' तांबडी माती' उपन्यास को लेकर अपनी चिंतनशीलता का गहरा परिचय दिया है। वे लिखते हैं- "मर्ढेकरांच्या 'तांबडी माती' आणि 'पाणी' या कादंबऱ्यांना ग्रामीण जीवनाचा संदर्भ आहे. मात्र या दोन्हीं कादंबऱ्या ग्रामीण जीवनाचे अथवा प्रादेशिकतेचे वास्तवतावादी चित्रण करणाऱ्या नाहीत. प्रकृतीने त्या वस्तुनिष्ठतेकडून आत्मनिष्ठेकडे कललेल्या †¿ÖÖ“Ö †ÖÆüÖê."[94] (अर्थात् मर्ढेकर के 'लाल मिट्टी' तथा 'पानी' उपन्यासों में ग्रामीण जीवन के संदर्भ मिलते हैं। किन्तु ये दोनों उपन्यास ग्रामीण जीवन अथवा आँचलिकता का वास्तववादी चित्रण करने वाले नहीं है। इन उपन्यासों में आत्मनिष्ठा का भाव अभिव्यक्त हुआ हैं।) मर्ढेकर इस उपन्यास में अस्तित्ववादी दर्शन से प्रभावित दिखाई देते हैं। मनुष्य के अस्तित्व की खोज का स्वर आलापते हैं। अपने अनुभव की कसौटि पर नयी चिंतनशीलता को परखते हैं। अपने अनुभव को मार्क्स के चिंतन

का आधार लेकर समृद्ध करते हैं। विशेषत: युद्धोतर मनुष्य जीवन की बेबसी, लाचारी और अकेलेपन के दंश को वर्णित करते हैं। मढेकर उपन्यासों के क्षेत्र में इसी कारण नयी-नयी संभावनाओं की खोज करते हैं। वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण धीरे-धीरे आत्मनिष्ठ की ओर प्रवृत्त होने लगता है। अस्तु, इस दूसरे उपन्यास के कलेवर में आधुनिक मनुष्य की नियति को उभारने का काम लेखक करता है।

बा. सी. मढेकर का तीसरा और अंतिम उपन्यास है 'पाणी' (पानी)। यह उपन्यास 1948 ´Ö प्रकाशित हुआ। कुल 88 पृष्ठों में अंकित तथा दस खण्डों में विभाजित प्रस्तुत उपन्यास अपने छोटे कलेवर में एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक सरोकार को अभिव्यक्त करता है।

द्वितीय विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि में लिखा गया यह उपन्यास एक छोटे-से देहात 'भगतपुर' से लेकर जापान की युद्धभूमि तक फैला हुआ है। उपन्यासकार युद्धजन्य स्थितियों में गांवों की चूले हिलने के संकेत कुछ इस तरह देता है, "पहिलं महायुद्ध संपल्यानंतर आलेल्या महागाईच्या लोंढ्याबरोबर भगतपूरची माती विटांची घरं थोडी हादरली."[95] (अर्थात प्रथम विश्वयुद्ध के बाद फैली हुई महंगाई ने गाँव की चूलों को हिला दिया।) विकास के नाम पर नये-नये बांध बनवाने की योजनाएँ आयी। गाँव के गाँव उजड़ गये। पर उजड़ना हमेशा किसानों, गरीबों तथा उपेक्षितों के हिस्से में आया। आधुनिकीकरण के नाम पर विस्थापन का दर्द झेलना पड़ा। गाँव, मिट्टी, अपने लोगों से विस्थापन। मशीनी सभ्यता के आगमन ने विकास की नयी 'उजडाऊ' नीति का अवलंब किया, जिसके स्पष्ट संकेत इस उपन्यास में मिलते हैं। धीरे-धीरे मनुष्य-मनुष्य के बीच निहित रागात्मक संबंध भी टूटते गये। टूटते, विलगते और विस्थापन का दर्द इस उपन्यास में यत्र-तत्र मिलता है। एक रूप जहाँ विकास के नाम पर लोगों को बेदखल, बेघर और बेजमीन कर रहा है, वही मनुष्य का निर्मम शोषण उसका हथियार भी है।

भगतपुर नामक छोटे से देहात में जी रहे सदोबा, तुकोबा और विठोबा इन तीन पीढ़ियों की जीवनकथा को दर्शाया गया है। निपट देहाती जीवन, वहां के छोटे-छोटे प्रश्न, वहाँ का लोकजीवन और अनुभव का छोटा-सा उनका अपना विश्व आदि का मर्मग्राही अंकन इस उपन्यास में हुआ है। खेती, किसान और गांव से जुड़ी हुई तमाम चीजों को लेखक बारीकी से उभारता है। प्रथम विश्वयुद्ध का प्रभाव गाँव तक फैला हुआ है। गाँव का एक जवान तुकाराम अनेक अभावों को झेलते-झेलते सेना में भर्ती हो जाता है। शत्रु पक्ष से लड़ते हुए हाथ कट जाता है। विकलांग अवस्था में तुकाराम गाँव लौटता है। (शायद आधुनिक मनुष्य की नियति विकलांग होने में ही है।) सेना में भर्ती होने की मजबूरी और गांव लौटने की विवशता को लेखक कलात्मक ढंग से चित्रित करता है। 'दुनिया में मैं अकेला हूँ', अकेलेपन का बोध उसे निरंतर सालता है। मुंबई जाकर वहाँ मिल मजदूर बनकर काम करना शुरू कर देता है। वहाँ के जीवन के अनेक चित्र लेखक उभारता है। महंगाई, विस्थापन और बाहरी दबावों को झेलता हुआ गाँव हमारी आँखों के सामने उपस्थित होता है। ऐसे में व्यापारियों की

पूँजीवादी मनोवृत्ति 'लूटतंत्र' को बढ़ावा देती है। मुनाफा कमाना उनकी फितरत है। एक मराठी परिवार की घसीटती जिंदगी के दर्दनाक चित्र यहाँ उपस्थित किये गये हैं। उपन्यास के अंत में विठू का गांव लौटना हमें बेचैन कर देता है। युद्ध ने जहाँ मनुष्य में असुरक्षा, अस्तित्व पर प्रश्न और असहायता को जन्म दिया, वहीं 'विस्थापन की पीड़ा' उसके जीवन का अंग बनती गयी।

उपन्यास की भाषा में लयात्मकता, विविधता और संगीतात्मकता के दर्शन होते हैं। चेतनाप्रवाह शैली का प्रभावी चित्रण उपन्यास में हुआ है। आधुनिक मनुष्य के विडंबनामय जीवन का खाका खींचने में प्रस्तुत उपन्यास सफल हुआ है।

बावजूद इसके मराठी के अनेक समीक्षकों ने प्रस्तुत कृति पर, उसके आशय पक्ष पर कलात्मक भाष्य किया है। इन समीक्षाओं के आधार पर 'पाणी' उपन्यास के आशय पक्ष को समझने में सहायता होगी। वस्तुतः मर्ढेकर आधुनिक मनुष्य के जीवन की दुर्दशा को रेखांकित करते हैं। वे अपने समय के सजग लेखक हैं। इसी वजह से डॉ. हरिश्चंद्र थोरात प्रस्तुत कृति की समीक्षा करते हुए लिखते हैं, "उत्पादन व्यवस्थेतील संक्रमण 'पाणी'च्या केंद्रस्थानी आले आहे. धरण, त्यातून मिळणार असणारी ऊर्जा, त्यातून होणारा उद्योगधंद्याचा विकास, त्यानिमित्ताने दिली जाणारी खोटी आश्वासने, भौगोलिक अवकाशाचे बदलते परिमाण व त्यातून साधले जाणारे शोषण, माणसांच्या जगण्याला आणि त्यांच्या परस्पर संबंधांना आलेले बकाल स्वरूप या सर्वच गोष्टी 'पाणी' मध्ये अधिक गुंतागुंतीच्या आणि तीव्र झाल्या आहेत."[96] (अर्थात उत्पादन व्यवस्था में हो रहे बदलावों को प्रस्तुत 'पानी' उपन्यास के केंद्र में रखा गया है। पानी के बांध, वहाँ से मिलने वाली ऊर्जा, (बिजली) उसके बहाने उद्योगों का किया जाने वाला विकास, बांध के बहाने सत्ताधारियों द्वारा दिये जाने वाले झूठे आश्वासन, विकास के नाम पर सर्वजनों का हो रहा शोषण, मनुष्य जीवन में आयी विपन्नता आदि बातों को 'पानी' उपन्यास में अधिक उलझावों के साथ उभारा गया है।) मर्ढेकर बदलते परिवेश में अपनी अभिव्यक्ति दे रहे थे। वे भारतीय समाज में आ रहे भौतिक बदलावों को सूक्ष्मता से देख रहे थे। लटकता हुआ मनुष्य, मूल से उखड़ जाने का दर्द आदि बातों को मर्ढेकर पहली बार चित्रित कर रहे थे। बेचैन नायक, अपने अस्तित्व से वंचित, प्रताडित और निराशा से घिरा हुआ, ऐसा नायक खड़ा करने का पहला प्रयास मर्ढेकर करते हैं। मर्ढेकर समकालीन जीवनानुभवों को अत्यंत सूक्ष्म रूप से अंकित कर रहे थे। आधुनिक मनुष्य की घसीटती जिंदगी को वे खुली आँखों से देख रहे थे। मनुष्य की अवस्था उस मेंढक की तरह है, जो अपने आसपास के स्थानों को अपनी दुनिया समझता है। विनाश चारों ओर फैला हुआ है। हिंसा ने मनुष्य समाज को घेर लिया है। ऐसे हालात में भी मर्ढेकर आशा के स्वर लुप्त नहीं होने देते। सर्जन और संवाद से आधुनिक मनुष्य के सम्मुख उपस्थित सारे प्रश्न हल होंगे, ऐसा लेखक को विश्वास है।

डॉ. अनिल उगले 'पाणी' उपन्यास के सामाजिक, वैश्विक संदर्भों की गहरी पडताल करते हैं। वे लिखते हैं "दोन्हीं महायुद्धाच्या पार्श्वभूमीवर ही कादंबरी बांधली गेलेली आहे. खेडे व त्यातील सुखी जीवन जगणारी माणसे, त्यांच्यावर होणारे आधुनिकीकरणाचे परिणाम कसे होतात, हे त्या कादंबरीतून मर्ढेकर दाखवितात."[97] (अर्थात दो महायुद्धों की पृष्ठभूमि में यह उपन्यास अपनी बात रखता है। देहात और वहाँ का समृद्ध, संपन्न सुख का अनुभव लेने वाले ग्रामीणों पर आधुनिकीकरण के कैसे परिणाम हो रहे हैं, इसे बताना ही मर्ढेकर का उद्‍देश्य है।) यहाँ मर्ढेकर की एक विशेषता है कि नायक, नायिका, खलनायक आदि का त्रिकोण बनाकर स्थितियों को चित्रित करना लेखक का उद्देश्य नहीं है। मनुष्य, माटी और मानवी परिवर्तन के लिए जिम्मेदार इकाइयों का सूक्ष्म चिंतन लेखक करता है। यहाँ युद्ध, औद्योगिक प्रगति और बांध बांधने हेतु प्रयत्नशील प्रशासन का त्रिकोण स्थापित करते हुए आधुनिक मनुष्य के वास्तववादी तथा अस्तित्ववादी जीवन के चित्र उपस्थित किये गए हैं। मर्ढेकर इस उपन्यास में बांध से निर्वासित लोगों के प्रश्नों का ऊहापोह करते हैं। इसलिए यशवंत मनोहर कहते हैं, "'पाणी' जणु या कादंबरीची केंद्रवर्ती प्रतिमा आहे, असे वाटू लागते. कृष्णेचे पाणी, धरणाचे पाणी, समुद्राचे पाणी, नळाभोवती सोचलेले पाणी अशा पाण्याच्या पाकळयांनी कादंबरीचे कमळ फुललेले दिसून येते."[98] (अर्थात पानी उपन्यास के संपूर्ण केंद्र में 'पानी' है। कृष्णा (नदी) का पानी, बांध का पानी, समंदर का पानी, नल के आसपास का पानी, पानी की पंखुडियों से उपन्यास का कमल खिल गया है।)

डॉ. श्रीपाल सबनीस मराठी के वरिष्ठ चिंतक तथा साहित्यकार हैं। मर्ढेकर के साहित्य का गहरा अध्ययन आपने किया है। 'पाणी' उपन्यास के बारे में मूलभूत चिंतन आपने किया है। वे लिखते हैं "भगतपूरच्या कुशीतून तुटलेली नाळ धरण कामावर जुळून होती. नंतर मात्र माणसामाणसातील ही नाळ तुटून गेली. एखादा भौतिक प्रकल्प सिद्धिस गेल्यानंतर माणसाचे भावबंध उसकूटन जावेत, उद्धवस्त व्हावेत, ही विचित्र वास्तवता मर्ढेकर येथे दाखवू पहातात."[99] (अर्थात भगतपूर के आँचल से अलग होने के दर्द को बांध के निर्माण कार्य में जुडने की कथा अपनेपन-परायेपन के द्वंद्व को अंकित करती है। विशेषतः भौतिक विकास की कोई योजना लोगों को जोड़ने का काम करें, ऐसी धारणा है। किन्तु वास्तव कुछ अलग है। उद्‍ध्वस्त जीवन को अंकित करना लेखक का लक्ष्य दिखाई देता है।) वस्तुतः सबनीस प्रस्तुत उपन्यास में 'शोकात्म दर्शन' का भाव देखते हैं। अंध शाहीर का गायन, तुकाराम की विकलांगता, 'सू' नामक सुंदर युवती का विरह रूप आदि दृश्य शोकात्म भाव को दर्शाते हैं। 'पानी' उपन्यास के संदर्भ अनेक हैं। अनेकार्थता और समकालीनता को जोडने का काम यह उपन्यास करता है। डॉ. तु. शं. कुलकर्णी ने उपन्यास के शीर्षक की प्रतीकात्मकता को समझाया है। वे लिखते हैं "पाण्याखाली भगतपूरचे अस्तित्व संपून जाणे ही घटनाच विठूच्या दृष्टिकोनातून

धक्कादायक आहे. याच पाण्याच्या शक्तिसामर्थ्याची तुलना पहिल्या व दुसऱ्या महायुद्धासारख्या आंतरराष्ट्रीय पातळीवरील भीषण प्रक्रियेशी करता येते आणि कादंबरीच्या शीर्षकाची सार्थकता इथे पटू लागते."[100] तमाम प्रकार के संघर्ष के बीच मनुष्य जीना चाहता है, जीवनेच्छा प्रबल हो तो चुनौतियाँ आसान लगने लगती है। यह उपन्यास जीवन जीने की एक परंपरा तथा जीवन नष्ट करनेवाली दूसरी परंपरा के बीच उपस्थित द्वंद्व को उभारता है। मर्ढेकर जीवन की विराटता को देखते हैं, उसे नाट्यमय ढंग से पूरी क्षमता से अंकित भी करते हैं।

डॉ. आशा सावदेकर ने 'कादंबरीचा आशयवेध' पुस्तक लिखकर मर्ढेकर के उपन्यासों पर सूक्ष्म प्रकाश डाला है। वे 'पानी' उपन्यास के केंद्र में किसान, किसानी, परिवार उसके समग्र जीवन को देखती है। वे लिखती हैं, "पाणी' मधून शेतकरी जीवन, ग्रामीण कुटुंबबंध, श्रद्धा-माया-परंपरा यांचे जीवंत, साधे पण सखोल चित्र मर्ढेकरांनी रंगविले आहे. ग्राम जीवनातील माणूस जणू मातीतून उगवतो. आणि एखाद्या रोपटयासारखा निसर्गाच्या प्रतिकूलतेचे आघात सहन करीत जागा सापडेल तसा वाढत राहतो, हे त्यांना दाखवायचे आहे."[101] (अर्थात इस उपन्यास के केंद्र में किसान जीवन, ग्रामीण परिवार व्यवस्था, श्रद्धा, परंपरा का सच्चा चित्र अंकित हुआ है। ग्राम जीवन में सांस ले रहा मनुष्य मिट्टी में से उगता है। किसी छोटे से पौंधे के समान प्रतिकूलताओं के बीच भी वह पनपता है, जहाँ से जगह मिले वह एक विकसित होता है, यही मर्ढेकर को दिखाना है।) वस्तुतः मर्ढेकर शहर और गांव के मध्य चल रहे तनाव को संपूर्ण ताकत से उभारते हैं। युद्ध, औद्योगिकीकरण और विकास के नाम पर आम मनुष्य की जो लूट हो रही है, उसे दिखाना लेखक का लक्ष्य है। वस्तुतः मर्ढेकर ग्राम जीवन में स्थित सादगी, सच्चाई और मशीनी सभ्यता का सामना करते-करते निर्माण हुई घुटन को अंकित करते हैं। इन विपरित स्थितियों के बीच भी मानवता को बचाए रखना है, मूल्यों का पोषण करना है, ऐसे अनेक भावों को मर्ढेकर पूरी कलात्मकता से अभिव्यक्त करते हैं। वसंत आबाजी डहाके ने इसी भाव को आगे बढ़ाते हुए प्रस्तुत कृति की आलोचना की है। आधुनिकता, आधुनिकीकरण के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत रचना का मूल्यांकन वे करते हैं। वे लिखते हैं "पाणी' या कादंबरीत औद्योगिकरणाने आलेल्या आधुनिकतेचे हात किती लांबवर पोचत जातात. भगतपूर सारख्या संथ-शांत गावाचे जीवन कसे डहळून जाते, पिढयान पिढयाची वस्ती असलेले गांव सोडून स्थलांतर कसे करावे लागते याचे चित्रण येथे आहे.'[102] (अर्थात इस उपन्यास के केंद्र में पानी के बांध की वजह से विस्थापित गांव की व्यथा का अंकन है।) यह उपन्यास महायुद्धोत्तर भयावह स्थिति का जायजा लेता है। विशेषतः युद्ध, बांध, विस्थापन, अपनी ही भूमि में आया हुआ परायापन, मूल से उखड़ जाने का दर्द आदि बातों का मनुष्य के जीवन और व्यक्तित्व पर कैसे प्रभाव पड़ता है आदि का मर्मग्राही अंकन हुआ है।

वस्तुतः इस उपन्यास के केंद्र में गाँव है, ग्रामीण समाज जीवन है। यह समाज अपने अस्तित्व

के लिए संघर्षरत है। इस उपन्यास के संदर्भ में दि. के. बेडेकर ने अपना मंतव्य देते हुए लिखा, "पण ग्रामीण कथा असून रूढ़ ग्रामीण वाङ्मयात न बसणारी व ग्रामीण म्हणून नागर सुशिक्षित समाज जीवनाच्या चित्रणात न सामावणारी अशी ही नवी कादंबरी आहे."[103] (यह एक ग्रामीण कथा होते हुए भी प्रचलित ग्रामीण कथा में इसका समावेश नहीं हो सकता। नागरी समाज का अंग भी नहीं है। किन्तु यह एक नया उपन्यास है, जो अनुभव के नये छोर को अंकित करता है।) अर्थात बेडेकर प्रस्तुत रचना को उपन्यास के बजाय दिर्घकथा मानते हैं। यह न गाँव की है, न शहर की। यह युद्धोतर मनुष्य जीवन की दुर्दशा का चित्रण करती है।

निष्कर्ष : मराठी के उपन्यासकार बा. सी. मर्ढेकर के सृजन संसार का एक महत्त्वपूर्ण आयाम उनका उपन्यास साहित्य है। ये तीनों उपन्यास महायुद्ध, मनुष्य का बढ़ता अकेलापन, विस्थापन का दर्द, व्यक्ति की असहायता, लाचार जीवन और बेबसी का वर्णन करते हैं। वर्तमान की संकटमय स्थितियाँ और भविष्य के उज्ज्वल रूप की कामना यहाँ है। किन्तु व्यक्ति जीवन की दुर्दशा से भी वे भलीभाँति परिचित हैं, वे इससे हमें परिचय कराते हैं। विकास के नाम पर मनुष्यों की हो रही लूट को दर्शाते हैं। एक अर्थ में जीवन का गद्यमय महाकाव्य मर्ढेकर अंकित करते हैं। यह करते समय गाँव, किसान, किसानी, बदलता परिवेश, भौतिक प्रगति, व्यक्ति का अकेले पड़ते जाना तथा टूटते जीवनमूल्यों का समग्रदर्शी चिंतन यहाँ अभिव्यक्त हुआ है। आशय की दृष्टि से मर्ढेकर के उपन्यास गाँव को केंद्र में रखते हुए शहरों की गंदगीपूर्ण जिंदगी का भी खाका खींचते हैं। इतना ही नहीं उन अनुभवों से हमें परिचित कराते हैं जिनसे साहित्य संसार अलक्षित था। मर्ढेकर आशय और विषय में वैविध्य को रचते हुए अपनी 'समग्र दृष्टि' का यथार्थवादी परिचय देते हैं। जहाँ अनेक प्रकार के द्वंद्वों को उभारने में उन्हें ÃÖ±ú»ÖŸÖÖ ×´Ö»Öß Æîü...

4.2.2 भाषा की दृष्टि से

प्रस्तुत उपबंध के अन्तर्गत बा. सी. मर्ढेकर के उपन्यासों का 'भाषा की दृष्टि से' मूल्यांकन अपेक्षित हैं। भाषा अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम होती है। किसी भी विधागत सर्जना के लिए भाषा अनिवार्य माध्यम है। भाषा के द्वारा ही लेखक अपनी कल्पित, अनुभूत जीवन संवेदना का साक्षात्कार कराता है। भाषा के कारण ही लेखक अपने वास्तवदर्शी अनुभवों का मण्डन करता है। मर्ढेकर भाषा के क्षेत्र में 'प्रयोगशील' हैं। निरंतर नये भाषिक प्रयोग करना उनकी प्रवृत्ति रही है। विशेषतः चेतनाप्रवाह शैली के लिए भाषा में प्रयोगशीलता आवश्यक होती है। रूढ, अरूढ शब्दों का प्रयोग, नये निर्मित शब्द, पुराने शब्दों में नया अर्थ भरना, नये शब्दों में 'व्यंजना' के नये सामर्थ्य की प्रतीति कराना आदि का अत्यंत स्वाभाविक व्यवहार मर्ढेकर कराते हैं। लेखक जिन अनुभवों का भोक्ता होता है, उस प्रकार की भाषा उसकी रचनाओं में बिंबित होती है। वस्तुतः मर्ढेकर 'अनुभव की भाषा' रचते हैं।

अपने युगीन संदर्भों की पड़ताल करते हुए लोकवाणी की गोरजगंध यहाँ मिलती है। वस्तु, पात्र, युग, परिवेश, प्रसंगोचित भाषा का प्रयोग किसी सृजनधर्मी रचनाकार को करना पड़ता है। मर्ढेकर अपने गद्य (उपन्यास) में भाषा के विविध रूपों, विविध संदर्भों एवं भाषिक प्रयोजनशीलता का परिचय देते हैं। लोक व्यवहार, लोकमानस और लोकजीवन के विविध रंग यहाँ मिलता है। उनके उपन्यासों की भाषा को लेकर मंथन होना आवश्यक है।

बा. सी. मर्ढेकर का पहला उपन्यास है 'रात्रीचा दिवस' (रात का दिन 1942)। प्रस्तुत उपन्यास की प्रस्तावना में वे लिखते हैं "वाचकांना वाचणे आणि समजणे सुलभ व्हावे म्हणून संज्ञाप्रवाहांच्या जागृत थरांची नोंद जाड टाइपांत आणि अर्धजागृत किंवा सुप्त थरांची नोंद बारीक ™ÖÖ‡¯ÖÖŸÖÖ ”üÖ¯Ö»ÖÖß †ÖÆê."[104] (अर्थात पाठकों को पढ़ने और समझने की दृष्टि से सहज बने, इसलिए चेतना प्रवाह शैली में चेतन अवस्था के भावों को बड़े टाईप में तथा अचेतन या अवचेतन अवस्था का अंकन छोटे टाईप में छापा गया है।) स्वाभाविक है कि मर्ढेकर संप्रेषणीयता को महत्त्व देते हैं। चेतन और अवचेतन अवस्था को दर्शाने के लिए छोटे/बड़े टाईप का उपयोग करते हैं। इससे उनकी भाषिक समझ तथा पाठकों के प्रति उत्तरदायित्व का भाव लक्षित होता है।

प्रस्तुत उपन्यास में काव्यभाषा का आधिक्य नजर आता है। विशेषतः कविता की पंक्तियाँ स्थान-स्थान पर उद्धृत की गयी है। मर्ढेकर शब्दों के नये रूप निर्मित करते हैं। लय, ताल, सूर का ज्ञान लेखक को होने से जीवन संगति को ढूँढ़ने का प्रयत्न किया गया है। मनुष्य की चेतन और अचेतन अवस्था का मार्मिक अंकन यहाँ हुआ है। पात्रों की मनःस्थिति, परिवेश का चित्रण, समय बोध और भावावस्था को दर्शाने के लिए मराठी, अंग्रेजी कविता का प्रयोग किया गया है। कई स्थानों पर (रावी के उस पार सजनवा। रावी के उस पार सजनवा।।) जैसी हिंदी काव्य पंक्तियों का भी प्रयोग प्रसंगानुकूल किया गया है। तो कहीं-कहीं हिंदी मराठी शब्दों के सम्मीश्रण से काव्य पंक्तियों का उपयोग किया गया है। जैसे-

"सुंदरतेच्या सुमनावरचे दव चुंबुनि घ्यावे,
रावी के उस पार जाऊनी हरिणी ने गावे।"

कविता की पंक्तियाँ संदर्भ से जुड़ी हुई हैं। मर्ढेकर पात्रों की मनःस्थिति को दर्शाने के लिए इसका सार्थक उपयोग करते हैं। विशेषतः विशिष्ट भावावस्था को दर्शाने में यह पंक्तियाँ सफल हुई Æï...

मर्ढेकर के तीनों उपन्यासों में कम अधिक मात्रा में चेतनाप्रवाह शैली का अवलंब किया गया है। 'रात्रीचा दिवस' नामक संपूर्ण उपन्यास चेतना प्रवाह शैली में लिखा गया है। इस शैली का प्रतिपादन करने के लिए भाषा का अनुकूलन, समन्वयन और उचित ढंग से क्रियान्वयन होना

आवश्यक होता है। लेखक प्रस्तुत कृति में इस शैली के प्रतिपादन में अंग्रेजी, गुजराती और बंगाली शब्दों का स्थान-स्थान पर उपयोग करता है। भाषा का सम्मीश्रित रूप मर्ढेकर की विशेषता है। बोली बानी का उपयोग करते हुए विविध भाषाओं के शब्दों को लेखक अपनाता है। उसे अपनी भाषा में अनुकूलन करता है। यह करते समय लेखक की भाषिक, शब्दगत समझ का परिचय हो जाता है। विशेषतः मराठी के कुछ शब्दों का व्यतिक्रम बनाकर नये शब्द निर्मित किये गये हैं। इतना ही नहीं, नये शब्दों के निर्माण में अर्थनिर्णय को बड़ा महत्त्व देते हैं। मर्ढेकर द्वारा निर्मित कुछ मराठी शब्द, जिन्हें उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है। जैसे- 'केटरमालचा शंडचर्णा', 'उग्रलेख', 'बाल्कन टँगल' †Öxä ¿Ö2ä...

कुल मिलाकर 'रात्रीचा दिवस' उपन्यास में भाषा, शब्द और वाक्य रचना में कुछ विशिष्ट प्रयोग मर्ढेकर ने किये हैं। अंग्रेजी शब्दों एवं काव्य पंक्तियों का यथास्थान प्रयोग वे करते हैं। अपने अनुभव विश्व को खोलते समय इस भाषिक रूप का समर्थ प्रयोग करते हैं। भाषा के क्षेत्र में उनकी प्रयोगशीलता नजर आती है।

मर्ढेकर ने दूसरा महत्त्वपूर्ण उपन्यास लिखा है 'तांबडी माती' (1942)। प्रस्तुत उपन्यास की प्रस्तावना में वे लिखते हैं 'शेतकरी आणि हिंदुस्थानी भाषांचा उपयोग मी केवळ वातावरण उत्पन्न करण्याच्या उद्देश्याने केला आहे. त्यातील वाक्यप्रचार व व्याकरण याकडे वाचकांनी दुर्लक्ष करावे."[105] (अर्थात किसान और हिंदुस्थानी भाषा का उपयोग मैंने वातावरण निर्मिति के लिए किया है। उसमें आए हुए वाक्प्रचार और व्याकरण की ओर पाठकों को ध्यान नहीं देना चाहिए।) अर्थात उपन्यास के आरंभ में ही लेखक जिस भाषा का प्रयोग कर रहा है। उसकी उपयोगिता, प्रयोगशीलता के उद्देश्य को बताता है। साथ ही यह भी बताना नहीं भूलता कि इसकी वाक्य रचना और व्याकरणगत दोषों की ओर ध्यान न दें। ग्रामीण बोली भाषा, ग्रामीण परिवेश, हिंदुस्थानी और किसानी भाषा के प्रयोग से उपन्यास जीवंत हो उठा है।

इस उपन्यास की भाषा में एक लय है। सौंदर्य बोधी भाषा लिखने में मर्ढेकर को सफलता मिली है। वे पात्रों के भावजगत को खोलते समय भाषा के सूक्ष्म रूपों का परिचय देता है। विशेषतः बदलते हुए जीवन संदर्भ, बदलते जीवनमूल्य और बदलती हुई समय की माँग को देखते हुए मर्ढेकर ने ये भाषिक अनुप्रयोग किए हैं। यहाँ उनका भाषा के प्रति सतर्क रूप लक्षित होता है। किन्तु उनकी भाषा की कुछ सीमाएँ भी है। जिसकी ओर समीक्षक डॉ. अनिल उगले जी ने हमारा ध्यान आकर्षित किया है। वे लिखते हैं- "मर्ढेकर प्रतिमेच्या भाषेत लयबद्धतेने व चितभाषिकत्वाने लिहू जाणारा लेखक ही कांही ठिकाणी पाल्हाळिक भाषणबाजी विचारकरण अभावितपणे उभे करताना दिसतो."[106] (मर्ढेकर प्रतिमाप्रधान भाषा लिखते हैं, उसमें लय है। किन्तु कई जगह अनावश्यक विस्तार, भाषणबाजी

एवं वैचारिकता से आक्रांत भाषारूप दिखाई देता है।) बावजूद इसके मर्ढेकर प्रतीक, बिंब, मिथकों का यथास्थान प्रयोग करते हैं। वे सृजनधर्मी रचनाकार होने के कारण विविध भाषा रूपों को अपनाते हैं। प्रकृति, लोक व्यवहार, निर्मित शब्द एवं वाक्य योजना का अनुकरण करते हुए मर्ढेकर की भाषा नये सृजन-संदर्भ का परिचय देती है।

मर्ढेकर का तीसरा और महत्त्वपूर्ण उपन्यास है 'पाणी'। प्रस्तुत उपन्यास में भी भाषा के विविध रूप अंकित हुए हैं। काव्यभाषा, गद्यमय काव्यभाषा के साथ-साथ दृश्यात्मक भाषा का सजग रूप इस उपन्यास में वर्णित हुआ हैं। एक के बाद एक दृश्य, हमारी आँखों के सामने से चलचित्र-सी गति से उभरते हैं। द्रष्टव्य है, "शेतावरून परत येता येता रामजी पाटील गुलाब वाण्याशी बोलायला उभा राहत आहे, कंबरेला धोतर, गळयात जानवं, कपाळावर भस्म आणि हातात पळीपंचपाळ असा शंकरभटजी विठोबाच्या देवळातून बाहेर पडता पडता खंडू मास्तरांना नमस्कार करून घरी चालला आहे. ताज्या ताकाच भांड भरून सगुणाबाई यमुना काकुंकडे पोहचवीत आहे, गणु पांडू रस्त्यात भेटला म्हणून लाजून रस्त्यावर डोक्यावर पदर ओढून अधिक झपाटयाने घरी जाणारी मैना, विठोबाच्या देवळाच्या भिंतीवरील वाघाच चित्र रंगवीत असताना क्षणभर थांबून तंबाखूजर्दा हातात चोळून त्याचा बोकणा भरणारा रंगारी पितांबर; ही भगतपूरच्या रस्त्यातील दृश्य."[107] (अर्थात खेत से लौटते हुए रामजी पाटिल गुलाब वाणी से बात करने के लिए खडा है, कमर में धोती, गले में माला, माथे पर भस्म और हाथ में पूजा की सामग्री लेकर विठोबा के मंदिर से शंकर भटजी निकलते-निकलते खंडू मास्टर को नमस्कार कर घर जा रहा है, ताजा छांछ का पतेला लेकर सगुणाबाई यमुना चाची के यहाँ पहुँचाने निकली है, गणू पांडू को रास्ते में देख अपने सिर का आँचल खिसकाते हुए मैना तेज गति से जा रही है, विठोबा के मंदिर पर बाघ का चित्र उकेरते-उकेरते पल भर के लिए रूककर तमाखू मुँह में भरते हुए रंगारी पितांबर, ये भगतपुर के रास्ते पर के चित्र हैं।) प्रस्तुत गद्य में अंत में पूर्ण विराम है। मध्य में स्वल्प, अर्ध विरोमों का प्रयोग किया गया है। विशेषतः पूरे दृश्य को एक लय और दृश्यविधान में बांधने का काम लेखक करता है। प्रस्तुत दृश्य में पूरा ग्राम जीवन लक्षित होता है, साथ ही मानवीय संबंधों की सहजता का दर्शन होता है।

मर्ढेकर के उपन्यासों की भाषा में प्रवाहमयता है। यह भाषा विचारों का प्रस्फुटीकरण करती है। जीवन की समझ का विस्तार कर देती है। मर्ढेकर भले ही यह कहते है कि उन्हें किसी सिद्धांत या क्रांतिकारी विचार का प्रतिपादन करना नहीं है। किन्तु उनकी भाषा में जीवन का भाष्य लक्षित होता है। द्रष्टव्य है "तोच परवल सहयाद्रीच्या एका कुशीतील झाडाझुडपांना आणि दगडमातीला कुरवाळीत, अनेक नष्ट आणि अवशिष्ट संज्ञाशक्तीचा कानोसा घेत घेत, अनंत ज्ञात आणि अज्ञात सुख दुखांवर प्रेमाची गस्त घालीत घालीत, मेलेल्या वा न मेलेल्या, जन्मलेल्या वा न जन्मलेल्या अशा अलोट क्षुद्र

जीवांच संकलित क्षणभंगूरतेवर उदात्ततेच पांघरूण ओढीत ओढीत मराठमोळया पिंजलेल्या जीवनाची लक्तरं चैतन्याच्या कणखर सुई दोऱ्यान शिवत शिवत, विज्ञानाच्या भव्य आशावादी यंत्रावर दणकट मानसिक सामर्थ्यांचे पट्टे चढवून सहऱ्याद्रीच्या ललाटावर भाग्याच आशिर्वादचुंबन उमटवीत उतटवीत, अखंड दिक्कालाच अमर्याद पडदा एका इवल्याशा जवळ कस्पटासमान अशा जीवन परमाणुंवर दयेने सारीत सारीत, संथपणं, संथपणं, संथपणं येत येत मंद गतीने पाऊल उचलणाऱ्या विठूच्या संज्ञ ााशक्तीची किनार स्पर्शून गेला."[108] (सहऱ्याद्री के अंतः पुर में रहनेवाले पेड पौधों, पत्थर मिट्टी को स्पर्श करते हुए, अनेक नष्ट तथा अवशिष्ट, चेतना का अनुमान लेते हुए, ज्ञात, अज्ञात सुख दुःखों पर प्यार की छाया डालते हुए, मरे हुए या न मरे हुए, जन्म ले चुके या जन्म ले चुके मनुष्य प्राणी के जीवन की क्षणभंगूरता पर उदात्तता का पर्दा डालते-डालते, मराठी जीवन की दैन्य अवस्था को सुई धागे से सिते-सिते, विज्ञान के भव्य आशावादी मशीन पर मानसिक प्रबलता को चढाते हुए, सहऱ्याद्री के माथे पर भाग्य का चुंबन अंकित करते हुए, धीरे-धीरे-धीरे कदम उठाते हुए विठु की चेतनाशक्ति का भाव स्पर्श करते हुए निकल गया।) इन पंक्तियों में धाराप्रवाह भाषा का रूप लक्षित होता है। साथ ही मराठी मनुष्य की दैन्य अवस्था का वर्णन करते-करते लेखक आशावादी स्वर को उभारता है। विशेषतः यहाँ अंत में पूर्णविराम है। उपन्यासकार एक गद्यांश से अपनी भविष्योन्मुखी दृष्टि का सजग परिचय दे जाता है। साथ ही आधुनिक मनुष्य की नियति को उदघाटित करते हुए उसके भविष्य का आशावादी संकेत भी देता है।

मर्ढेकर की गद्य भाषा में विविधोन्मुखी सामर्थ्य का भाव नजर आता है। यहाँ भाषा भावों को अभिव्यक्त करने में पूर्णतः सक्षम है। साथ ही विचारशीलता को विकसित करने में मददगार साबित होती है। काव्यमय गद्य और गद्यमय काव्य का उत्कृष्ट नमूना मर्ढेकर के उपन्यासों में मिलता है। इसी बात का संधान करते हुए डॉ. दि. के. बेडेकर लिखते हैं- "पंचमहाभूतांच्या या वर्णनातले काव्य या कादंबरीत अनेकदा येते व तेच भाषेचे सामर्थ्य हळवे रूप घेऊन वियोगाच्या सांत्वनाच्या व भेटीच्या प्रसंगातून अवतरते."[109] (अर्थात पंचमहाभूत का वर्णन करनेवाला काव्य रूप अनेक बार यहाँ लक्षित होता है, वहीं भाव भाषा का भावुकतामय रूप लेकर वियोग सांत्वना तथा मिलन के प्रसंग बनकर उभरते हैं।) मर्ढेकर गद्यभाषा में भावमयता को बड़ा महत्त्व देते हैं, यही विशेषता उनके उपन्यासों की भाषा की प्रधान विशेषता बनकर उभरती है।

कुल मिलाकर मर्ढेकर की औपन्यासिक भाषिक क्षमता के अनेक रूप उभरकर आते हैं। इस भाषा में लाक्षणिकता, व्यंजनाप्रधानता, अलंकारिकता, भावमयता तथा प्रतीकात्मक, बिंबात्मकता के दर्शन होते हैं। लेखक धाराप्रवाह भाषा का पैरोकार है। जिसमें भावावेश, वैचारिकता तथा चिंतन की प्रगल्भता की अभिव्यक्ति हुई है। प्रयोगशीलता उनकी भाषा की प्रधान विशेषता है। चेतनाप्रवाह

शैली के अनुकूल इस भाषा रूप को विकसित करने में उसे अधिक 'अर्थग्राही', 'मर्मग्राही' बनाने में महती भूमिका निभाते हैं। बावजूद इसके मर्ढेकर की गद्य भाषा में अनेक व्याकरणगत दोष हैं। विशेषतः वाक्प्रचार तथा शब्द प्रयोग में। किन्तु लेखक तीनों उपन्यासों की प्रस्तावना में व्याकरणगत दोषों को सहर्ष स्वीकार करता हुआ दिखाई देता है। अर्थात भाषा की दृष्टि से उपन्यासकार मर्ढेकर विविधोन्मुखी भाषिक रूपों को स्वीकार करने के पक्ष में दिखाई देते हैं। शायद यही उनकी भाषा का ÃÖö´Ö£µÖ Æü †Öî¸ü ÃÖß´ÖÖ ³Öß...

4.2.3 शैली की दृष्टि से

मराठी उपन्यासकार बा. सी. मर्ढेकर ने अपने उपन्यासों के माध्यम से नयी-नयी शैलियों का अवलंब किया। विशेषतः 'चेतनाप्रवाह शैली' का सूत्रपात किया। मर्ढेकर पात्रों की मनःस्थिति, परिवेश के निर्माण हेतु, कथ्य के प्रतिपादन के लिए, विषय प्रस्तुति की गहनता को दर्शाने के लिए विविध शैलियों का उपयोग करते हैं। वे शैली पक्ष की दृष्टि से जितने समृद्ध हैं, उतने ही अनेक सीमाओं से बद्ध भी। मर्ढेकर ने अपने तीनों उपन्यासों के अंतर्गत विविध शैलियों का सजग अविष्कार किया है। कई स्थानों पर शैलियों का अतिरेक भी हुआ है। किन्तु एक बात सच है कि मर्ढेकर युद्धपूर्व मनुष्य और युद्धोतर मनुष्य के द्वंद्व (मानसिक) को उभारने में सफल हुए हैं। उसके भीतर चल रही कसमसाहट, घुटन, आत्महंता के दौर तक पहुँचने के विडंबनामय चित्र यहाँ अंकित हुए हैं।

शैली पक्ष की दृष्टि से 'रात्रीचा दिवस' उपन्यास का मूल्यांकन करेंगे, तो कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य उभरकर हमारे सामने आते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में 'चेतनाप्रवाह शैली' (Stream of Conciesusnes) का उत्कृष्ट प्रयोग किया गया है। मन की अवस्थाओं का सूक्ष्म विवेचन इस कृति की उपलब्धि है। डॉ. हरिश्चंद्र थोरात ने इस शैली की कठोर समीक्षा की है। बावजूद इसके 'रात्रीचा दिवस' उपन्यास में पूर्णतया चेतनाप्रवाह शैली का अवलंब किया गया है। इस उपन्यास का केंद्रीय पात्र 'दिकपाल' के मन का अत्यंत सूक्ष्म चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में हुआ है। चेतन और अचेतन अवस्था के अनेक चित्र यहाँ उपस्थिति किये गये हैं। मनोविश्लेषणात्मक विवेचन प्रस्तुत रचना का सामर्थ्य है। मर्ढेकर चेतनाप्रवाह शैली के माध्यम से दिकपाल की संपूर्ण मनःस्थिति का बोध कराते हैं। चेतन अवस्था से अचेतन अवस्था तक, पुनःअचेतन अवस्था से चेतन अवस्था का वर्णन अत्यंत कलात्मकता से मर्ढेकर करते हैं। स्वप्न प्रणाली का अवलंब करते हुए व्यक्ति के अंधेरे कोणों को उजागर करने का प्रयत्न यहाँ हुआ है।

चेतनाप्रवाह शैली केवल एक तंत्र नहीं है बल्कि विश्व, समाज और व्यक्ति की ओर देखने का एक विशिष्ट दृष्टिकोण है। यह दृष्टिकोण इस उपन्यास में अत्यंत मार्मिक रूप में उभर आया है। इस शैली के मूल में विशाल दृष्टिकोण छिपा हुआ है। जीवन की समझ का विस्तार है। मनुष्य के

व्यक्तित्व का सम्यक आकलन है। साथ ही वर्तमान मनुष्य के सम्मुख उपस्थित प्रश्नों के ऊहापोह के लिए यह शैली अनुकूल है।

वस्तुतः मर्ढेकर मनुष्य के अंतर्मन की तह तक जाना चाहते हैं। उसके भीतर चल रही कसमसाहट को पकड़ना चाहते हैं। वहाँ भीतर फैले हुए अंतः सत्य को जैसे के तैसे पकडकर अभिव्यक्त करना लेखक का उद्देश्य दिखाई देता है। शायद इसी बात का संधान करते हुए वर्जीनिया वुल्फ इस शैली के बारे में लिखती है, 'जीवन एक क्रमवार सजायी हुई दीपमाला नहीं है, जीवन प्रकाशमान बिंब है। एक प्रकार के पारदर्शी वस्त्र से हम लपेटे गये हैं। हमारी बुद्धि के ज्ञानचक्षुओं पर फैले हुए अणुओं का बोध हम करके ले। अणु की श्रृंखला को हमें तलाशना चाहिए। 'वस्तुतः चेतना प्रवाह के अंतर्गत चेतन अवस्था से अचेतन अवस्था तक के दौर का मनोव्यापार अंकित होता है। इस प्रक्रिया में लेखक शब्दों की हेर-फेर, वाक्य रचना में बदलाव तथा कल्पित संवेदनासूत्रों का प्रकटीकरण करना पड़ता है। विशेषतः इस शैली में कथानक का अभाव होता है। क्योंकि प्रत्यक्ष घटना या प्रसंगों का विवेचन करना लेखक का उद्देश्य नहीं होता बल्कि उन घटनाओं के मूल में प्रेरित मानसिक आंदोलनों को उजागर करना रहा है। मर्ढेकर ने 'रात्रीचा दिवस' उपन्यास में इस शैली का परिपूर्ण उपयोग किया है। इसी बात को केंद्र में रखते हुए नरहर कुरूंदकर लिखते हैं- "जागृत आणि सुप्त मनातील विचार-प्रवाह दाखवावयाचे असतील तर ते संस्कृतीच्या पातळीवर नेहमीच असतील असे नाही. संस्कृती, प्रकृती, स्वाभाविक विकृती, गंड, श्रद्धा असे नानाविध पद त्यात मिसळलेले असतात."[110] (अर्थात चेतन और अचेतन मन में चल रहे विचार सूत्र को दिखाना हो तो संस्कृति के स्तर पर जाकर विवेचन करना पडेगा। संस्कृति, स्वभाव, विकृति, श्रद्धा, न्यूनभाव आदि ऐसे अनेक पहलू हैं, जिन्हें समझना नितांत आवश्यक है।) चेतनाप्रवाह शैली के अंतर्गत इन तमाम चीजों का अपना महत्त्व है।

प्रस्तुत उपन्यास में मर्ढेकर ने इस शैली का प्रथम बार सूत्रपात किया है। इस शैली की अनेक सीमाएँ हैं, बावजूद इसके मर्ढेकर इस शैली के द्वारा 'दिकपाल' के समस्त मनोव्यापार को अंकित करते हैं। चेतन अवस्था तथा अचेतन अवस्था के अनेक चित्र उपस्थित करते हैं। मनुष्य मन की तहों तक जाकर उसके सौंदर्य बोध का कलात्मक साक्षात्कार कराते हैं। इस उपन्यास में इस शैली का यत्र-तत्र प्रयोग हुआ है। द्रष्टव्य है चेतन अवस्था का एक दृश्य, "दिकपाल ताडकन खुर्चीवरून उठला आणि त्याने हॅट व टाय उचलून आपल्या निजायच्या खोलीत नेऊन ठेवली व तो कपडे काढू लागला. रोजी दाधी-दाढी-करण्याचा त्रास-आणि कपडे काढण्याचा-कसांसि जीर्णानि-वास नारिंगाचा येत नाही-पण मुंबईत कपडयांना घामाचा-घामाचा वास-वामाचा-घास-घामाचा घास-By the sweat of ones brow पलिकडे खिडकीतून कुणाच घर दिसंत ते हिरवा पडदा-आपलंच शरीर आपण वाखाणतो, शारीरिक सुखाला विचारवंत लोक कमी का लेखतात. म्हणजे मी कलेला खातो-कलेला

कसं खातात-अर्बुजासारखं-टर्रबुजर-पैलूला 'टर' बुजावरर-'टर' बुरूजावार अधिकारी नेमला तर तो सेशालला घोंगडी दरवाजातून आत येऊ देणार नाही-पण-हा बुटाचा बंद तुटला! एक आण्याला घेतला-फसलो-खरा फक्त दोन पैशांचा होता-जाऊ दे- असल्या क्षुल्लक गोष्टीत मन घालायच नाही-मनुष्याला ध्येय असलं पाहिजे-असल्या क्षुल्लक गोष्टी बद्दलची आसक्ती ही अजून सुटली नाही तर-तर सक्तमजुरीची शिक्षा......"[111] दूसरा दृश्य अचेतन अवस्था का है जिसमें नायक दिकपाल स्वप्न अवस्था में मशीनी युग का संकेत दे रहा है, "चला बाबा आल्या पायी बाहरे पडावं हे उत्तम-नाही तर या यंत्राच्या अवाढव्य धामधूमित चक्काचूर होऊन जायचा नि पडायचे रायगडचे रणमर्द निवडुंगाच्या कुंपणात आम्ही आणि वर सेशालचे रोटरी मशीन-गत्यंतर नाही. बाकि एकही मनुष्य नाही संबंध कारखान्यात म्हणजे आश्चर्य आहे. सेशाश्चर्या क्लिपर कुला! मयनगरीच्या ऐवजी ही खरी यंत्रनगरी †ÖÆ."[112] अर्थात मर्ढेकर ने उपर्युक्त दो अलग-अलग दृश्यों में चेतन और अचेतन अवस्था का चेतना प्रवाह शैली में प्रभावी अंकन किया है। किन्तु डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर इस शैली के बारे में कहते हैं- "कृत्रिम, नीरस और जानबुझकर किया गया प्रयास।' वस्तुतः उपन्यास में इस शैली को कृत्रिम मानते हैं। कुरूंदकर भी अपूर्ण व कला की दृष्टि से असफल प्रयत्न मानते है।' मराठी समीक्षकों ने इस शैली की वजह से आरंभ में इस कृति की उपेक्षा ही की है। उसमें कुसुमावती देशपांडे, सुधीर रसाळ, तु.श. कुलकर्णी आदियों का समावेश होता है। अर्थात पात्रों के मनोजगत तक पहुँचने का यह असफल प्रयास है, ऐसा कई समीक्षकों का कहना है। बावजूद इसके एक नयी शैली का आरंभ करने का श्रेय मर्ढेकर को जाता है। प्रस्तुत उपन्यास इसकी प्रतीति कराता है।

कुल मिलाकर 'रात्रीचा दिवस' उपन्यास में मर्ढेकर ने चेतना प्रवाह शैली के अंतर्गत स्वप्नप्रणाली तथा मनोजगत की अंधी गुफाओं की सैर करायी है। अंतर्मन में छिपे हुए सत्य-असत्य, श्रद्धा-अश्रद्धा, न्यूनभाव आदि तक पहुँचाने का प्रयास किया है, जिसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

मर्ढेकर का दूसरा महत्त्वपूर्ण उपन्यास है 'तांबडी माती' (लाल मिट्टी)। मर्ढेकर शैली की दृष्टि से कलात्मक प्रयोग करते हैं। प्रथम उपन्यास में जहाँ उन्होंने 'चेतनाप्रवाह शैली' का प्रयोग किया है, वहीं प्रस्तुत उपन्यास में 'निवेदन शैली' का सार्थक उपयोग किया है। रचनाकार युद्धोतर पृष्ठभूमि को उपस्थित कराने में इस शैली का प्रभावी उपयोग करता है। अनुभवों का तटस्थतापूर्वक कलात्मक प्रकटीकरण इस उपन्यास की प्रधान विशेषता है। मनुष्य जीवन की असाहयता का करूणापूर्ण चित्रण करने में लेखक को सफलता मिली है।

मर्ढेकर ने शीर्षक की प्रतीकात्मकता को रेखांकित किया है। अनेक प्रतीकों, बिंबों और अलंकारों का प्रयोग यहाँ हुआ है। 'तांबडी माती' संघर्ष का प्रतीक है। मनुष्य और माटी के बीच स्थित अटूट और वैविध्यपूर्ण जीवन का चित्रण करने में मर्ढेकर को सफलता मिली है। जहाँ तक 'लाल

मिट्टी' का प्रश्न है, लाल मिट्टी का मनुष्य कितने भी संकट आये, विपरित स्थितियाँ हो, वह जीना नहीं छोडता, यह बात मर्ढेकर को बतानी है। इस उपन्यास की निवेदन प्रधान चेतनाप्रवाह शैली के बारे में डॉ. अनिल उगले लिखते हैं- "या कादंबरीत संज्ञाप्रवाहाचे अस्तित्वही निवेदनात्मक भाषा शैलीतून प्रकट झालेले आहे. निवेदनात मर्ढेकर अल्पाक्षरातून नेहमीप्रमाणे निवेदन करीत असतात."[113] (†£ÖÜŸÖ प्रस्तुत उपन्यास में चेतना प्रवाह शैली का स्वर निवेदनात्मक भाषाशैली के माध्यम से व्यक्त हुआ है। अपना निवेदन मर्ढेकर कम से कम शब्दों में करते हैं।) वस्तुतः मर्ढेकर ने अपने जीवनानुभवों को सजग रूप में करने हेतु शैली का विविधांगी अवलंब किया है। निवेदन शैली का उत्कृष्ट प्रयोग प्रस्तुत उपन्यास में हुआ है।

शैली की दृष्टि से एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य इस उपन्यास में लक्षित होता है। कथावस्तु की प्रस्तुति के लिए लेखक उपन्यास को 12 खण्डों में विभाजित करता है। प्रत्येक खण्ड का अलग शीर्षक है। प्रत्येक खण्ड में अलग संदर्भ को देते हुए कथा को विकासशील बनाया है। विशेषतः खण्डानुक्रम विषय की व्यापकता को दर्शाता है। जीवन के कई रंग और रूप यहाँ विराजित हैं। साथ ही विदेशी जमीन से जुडे डॉ. व्हॉन्सी जैसे पात्रों के चित्रण में अपनी गहरी समझ का परिचय किया है।

पात्रों के वर्णन और विश्लेषण में मर्ढेकर कलात्मकता का परिचय देते हैं। ग्यानू पहलवान, शिवा, सारजा, कोडिंबा, डी. वाय. एस. पी. खान बहादुर, सुलभा लिखिते, डॉ. व्हॉन्स्की आदि पात्रों के वर्णन में चरित्र प्रधानता, विश्लेषणात्मकता, संकेतात्मकता तथा संवादात्मकता के जरिये हेतु वर्णनप्रधानता का सजग अवलंब करता हुआ दिखाई देता है। साथ ही 'चेतना प्रवाह शैली' का भी अवलंब इस उपन्यास में किया गया है।

मर्ढेकर का तीसरा उपन्यास है 'पाणी'। शैली तत्व की दृष्टि से यह एक प्रभावी उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास में भी निवेदन तथा चेतनाप्रवाह शैली का सजग अंकन हुआ है। इसी बात का संधान करते हुए डॉ. अनिल उगले लिखते हैं- "या कादंबरीमध्ये निवेदन, संवाद, स्वगत, संज्ञाप्रवाह, मनोविश्लेषण अभिप्राय या तंत्राचा वापर केलेला आहे."[114] (अर्थात इस उपन्यास में मर्ढेकर ने निवेदन, संवाद, स्वगत, चेतनाप्रवाह, मनोविश्लेषण तथा अभिप्राय शैली का उपयोग किया है।) लेखक स्वयं निवेदक बनकर उभरता है। निवेदन शैली की अभिव्यंजना ने उपन्यास को विशिष्ट बनाया है। पात्रों के आपसी संभाषण या संवादों के कारण परिवेश, वस्तु और चरित्रों के उद्घाटन में सहायता मिली है। विशेषतः अनेक स्थानों पर 'स्वगत' का प्रयोग पात्रों की मनःस्थिति को दर्शाने के लिए प्रभावी रूप में हुआ है। साथ ही मनोविश्लेषण शैली का अवलंब करते हुए चेतन और अचेतन मन की अनल गुफाओं का कोना-कोना प्रकाशमान हो उठा है। मर्ढेकर ने अभिप्राय शैली का सजग अवलंब कर यथार्थवादी चित्रण में बड़ा योग दिया है।

इस उपन्यास में मर्ढेकर ने कुछ विशिष्ट प्रतीकों का प्रयोग आधुनिक मनुष्य की स्थिति और नियति को दर्शाने के लिए किया है। विशेषतः 'पानी' शीर्षक ही सुंदर प्रतीकात्मकता का नमूना है। कृष्णा का पानी, बांध का पानी, नल के पास जमा हुआ पानी, और मनुष्य के जीवन में आए हुए खालीपन से आँखों में आया हुआ पानी। 'पानी' के अनेक रूप लेखक अंकित करता है। दूसरा प्रतीक 'मेंढक' का है। मनुष्य जीवन की क्षूद्रता को दर्शाने के लिए 'मेंढक' को प्रतीकात्मक रूप में वर्णित किया गया है। अपने ही खोल में जीने की विवशता, सब कुछ टूट, लूट जाने से आयी विपन्न अवस्था तथा आधुनिकीकरण के दुष्प्रभावों को झेलते हुए आम आदमी को बड़े मार्मिक ढंग से उभारा गया है। लेखक ने तीसरा प्रतीक चुना है 'कौए' का। कौए का आधारहीन जीवन, अकेलेपन का बोध, भटकाव का स्थायी रोग बनते जाना, युद्ध की भयावहता से आक्रान्त, अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न आदि रूपों को उठाया गया है। मर्ढेकर ने ऐसे अनेक प्रतीक निर्मित और अंकित किये हैं, जिनके द्वारा मनुष्य जीवन की क्षूद्रता, असहायता, औद्योगिकरण से आयी हुई विकलांगता आदि के दर्शन कराये हैं। परंतु उपन्यास दो परंपराओं का निर्माण करते हुए अनुभव के नये विश्व को सृजित करता है। एक परंपरा है विनाश की, दूसरी परंपरा है जीने की जीवटता का अनुभव। उपन्यासकार इसे नये प्रतीकों में बांधता है। पर आशावादी स्वर टूटने नहीं देता। जीवन संघर्ष के नये बीज अंकित करने में उसे Ãö±ú»öŸöö ×´ö»öß Æü...

'पानी' उपन्यास में वर्णित चेतनाप्रवाह शैली का यह उदाहरण द्रष्टव्य है, "कोन, तुम्ही म्हातारं पांढर दाढीवालं........काव काव...........पर मी कावळा नाय......पान्यावर बी चालत येतया तुम्ही दाढीवालं..........पन पाढी दांढरी हाय तुमची............"[115] अर्थात कौन है आप सफेद दाढी वाले.....कांव कांव........पर मैं कोआ नहीं हूँ........पानी पर भी चलकर आते हैं आप दाढीवाले........पर आप का जाल कहाँ हैं.......कौन दादा.........पर सफेद दाढी है आपकी.........।

प्रस्तुत उपन्यास में मर्ढेकर ने अनेक शैलियों का सार्थक अवलंब किया है। साथ ही अनुभव के नये विश्व को मूर्तता प्रदान की है। जहाँ तक शैली का सवाल है, मर्ढेकर निवेदन, स्वगत, वर्णनप्रधानता, चेतनाप्रवाह, संवाद तथा मनोविश्लेषणात्मकता को महत्त्व देते हैं। इतना ही नहीं प्रत्येक शैली का सजग प्रयोग लेखक करता हुआ दिखाई देता है।

4.2 शिल्प की दृष्टि से

कोई भी सर्जनशील लेखक अपनी अभिव्यक्ति को किसी रूप (Form) में बांधता है। शिल्प की कसावट कृति को 'अर्थवान' बनाती है। शिल्प का अनुठापन कृति को सार्थक बनाता है। अभिव्यक्ति के औजार तलाशे जाते हैं। रचनाकार विविध उपादानों, प्रविधियों का अवलंब करते हुए अपने अनुभूत सत्य को उजागर करता है। लेखक अपनी बात किस 'रूप' में, किस शैली में और

किस अंदाज-ए-बया में कहता है, उसी परिणामस्वरूप कृति का प्रभाव पड़ता है।

बा. सी. मर्ढेकर ने अपने तीनों उपन्यासों में विविध प्रविधियों का अवलंब करते हुए शिल्प की कसावट को महत्त्व दिया है। 'रात्रीचा दिवस' संपूर्ण उपन्यास 'चेतनाप्रवाह प्रविधि' में लिखा गया है। अज्ञात और ज्ञात के बीच के द्वंद्व को अत्यंत कलात्मक रूप में उभारा गया है। विशेषतः अचेतन मन में स्थित भावों का उद्घाटन करते समय इस शैली का भरपूर उपयोग किया है। इस उपन्यास का नायक 'दिकपाल' की मनःस्थिति, अचेतन, चेतन अवस्था के क्षणों को लेखक अनुपम शैली में अंकित करता है, जो देखते ही बनता है। चेतन अवस्था के अनेक दृश्यों को चेतनाप्रवाह प्रणाली के माध्यम से उपस्थित किया गया है।

मर्ढेकर इस प्रणाली के अनुकूल भाषा, शब्द योजना और वाक्य योजना को गढते हैं। वे पात्रों की समग्र मानसिकता को दर्शाते समय भाषा का अत्यंत प्रगल्भता से उपयोग करते हैं। शब्दों का हेर-फेर नये शब्दों का निर्माण, पुराने शब्दों में नया अर्थ भरने का प्रयास प्रशंसनीय है। मर्ढेकर ने कुछ नये शब्द गढे हैं। छोटे और बड़े टाईप का संदर्भ चेतन और अचेतन अवस्था को दर्शाने के लिए किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास की शिल्पगत विशेषता है, इसकी दृश्यात्मक प्रविधि। मर्ढेकर दृश्यात्मक भाषा का समर्थ प्रयोग करते हैं। गाँव, शहर, युद्ध, बांध के दृश्य, मशीनी सभ्यता के दृश्य, खेत खलिहान के दृश्य आदि दृश्यबिंबों को लेखक कलात्मक रूप में उभारता है।

मर्ढेकर 'समय-स्थल की योजना' में सफल हुए है। दिकपाल के कार्यालय से लौटने, घर में पहुँचने, नौकर से वार्तालाप, रूटिन जिंदगी, नींद की अवस्था, सोकर उठना आदि समय का उपयोजन किया गया है। अर्थात करीब बारह घंटे का वर्णन इस उपन्यास में आया है। इतने अल्प समय में पूरी मनोदशा, युगीन संदर्भ, जीवन बोध तथा व्यक्ति जीवन का मशीनी सभ्यता से आक्रान्त होना दिखाया गया है। इस संपूर्ण वर्णन में उन्हें अत्यधिक सफलता मिली है। एक यंत्रवत जिंदगी को दिखाना मर्ढेकर का उद्देश्य है, जिसमें वे सफल हुए हैं। उपन्यास का अंत सुशुलताई के पत्र से होता है। जिसमें उसकी शादी को लेकर, सहेली प्रमुदिनी की सुंदरता को लेकर बातें की गयी हैं। पुरानी पीढी की इच्छा यही है कि दिकपाल जल्दी से जल्दी शादी करें। शादी न करने का इरादा करते हुए दिकपाल ऑफिस के लिए निकल पड़ता है। उपन्यास का अंत शिल्प की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है जिसमें विवाह जैसे व्यक्तिगत होते हुए भी सामाजिक प्रश्न को एक अलग संदर्भ में उठाया गया है।

मर्ढेकर ने मनोविश्लेषण प्रविधि का सशक्त उपयोग इस उपन्यास में किया है। दिकपाल की मानसिकता, आसपास में तेजी से होते हुए बदलाव, हरिणी सेशाल के प्रति घोर आकर्षण, एक ओर आकर्षण दूसरी ओर शादी न करने की ढोंगी मनोवृत्ति, सुशुलाताई, नाना (पिता)की अपेक्षाएँ आदि को इस प्रणाली के माध्यम से अंकित किया गया है।

मर्ढेकर ने इस उपन्यास में किस्सागोई शैली का अवलंब करते हुए वाक्य रचना, शब्द प्रयोग, अनुच्छेद निर्माण, काव्य पंक्तियों का यथास्थान प्रयोग आदि को बड़ा महत्त्व दिया है। कुल मिलाकर शिल्प सजगता का प्रमाण इस उपन्यास से मिलता है। किन्तु डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर, नरहर कुरूंदकर, डॉ. हरिश्चंद्र थोरात ने चेतनाप्रवाह प्रविधि के अवलंब ने इस कृति को 'कृत्रिम, नीरस, अपूर्ण, कला की दृष्टि से असफल माना है बावजूद इसके डॉ. आशा सावदेकर इस रचना के शिल्प की प्रयोगधर्मिता का स्वागत करते हुए लिखती है, "प्रस्तुत उपन्यास ने उपन्यास के रचना शिल्प को पहली बार बदला। भाषा शैली में अनूठे प्रयोग किये। चेतन, अचेतन और अवचेतन मन की स्थिति का बारीके से किया गया वर्णन इस रचना की उपलब्धि है।"

'तांबडी माती' का शिल्प भी अपने अनूठेपन से व्यंजित है। इस उपन्यास में अधिक मात्रा में 'वर्णनात्मक प्रविधि' का अवलंब किया गया है। साथ ही निवेदन शैली का उत्तम प्रयोग इस कृति की विशेषता है। गाँव का संपूर्ण चित्र उपस्थित करने में लेखक सफल हुआ है। गाँव छोड़ने की विवशता, गाँव में प्रेम संबंध (शिवा-शारदा) विवाह में परिणत होना (सुखद अनुभव) किसान जीवन के अनुभव आदि को वर्णनात्मक प्रविधि में कसावट से बांधा गया है। ऋतुओं का वर्णन, जेलों का वर्णन, खेतों का वर्णन, कुश्ती के अखाडे का वर्णन, सुलभा लिखिते, खानबहादुर, युद्धभूमि आदि के वर्णन उल्लेखनीय बन पडे हैं। 'लाल मिट्टी' की प्रतीकात्मकता, मेंढक की प्रतीकात्मकता आदि को बखूबी उभारा गया है। यहाँ लेखक की प्रतिभाशीलता खूब नजर आती है।

नाटकीय प्रविधि का अवलंब इस उपन्यास की विशेषता है। शिवा का पहलवानी, खेती छोडकर सेना में भर्ती होना, इधर कोंडिबा की सरकार द्वारा खेती छिन लिये जाना, शिवा का घायल होकर गाँव लौटना, सारजा का अपहरण, खानबहादुर के बेटे की शहादत आदि कई नाटकीय प्रसंगों की सर्जना मर्ढेकर ने की है। विशेषतः कथानक की अनेक रूढियों को तोड़ते हुए नये तेवर के साथ नए संदर्भ अंकित करने में मर्ढेकर सफल हुए हैं। सुलभा और कम्यूनिस्ट भाई कुमार का प्रेम, भाईकुमार के अंतर्विरोध, सुलभा का ठगा जाना, गर्भपात कराकर सुलभा द्वारा छुटकारा पाना आदि दृश्यों की लडी पिरोयी गयी है। इन सारे प्रसंगों में नाट्यात्मकता के दर्शन होते हैं। किन्तु कोई भी प्रसंग अविश्वसनीय नहीं लगता, यही इस उपन्यास की उपलब्धि है। डॉ. न्हॉन्स्की और सुलभा का सेवाभाव ईसाई मिशनरियों की याद दिलाता है।

संवाद और स्वगत का सार्थक प्रयोग भी इस उपन्यास की विशेषता है। स्वगत के द्वारा मनःस्थिति का बोध और संवादों के द्वारा पात्रों के आपसी संबंध और व्यवहार का पता चल जाता है। यही कारण है कि यह उपन्यास 'संवादधर्मिता' का खूब निर्वाह करता है।

'पाणी' उपन्यास में भी मर्ढेकर ने अनेक शैलियों का उपयोग करते हुए शिल्प सजगता का

परिचय दिया है। वर्णनात्मक प्रविधि, चेतनाप्रवाह प्रविधि, किस्सागोई प्रविधि और निवेदन प्रविधि का सार्थक प्रयोग इस कृति की सर्वोत्तम उपलब्धि है। भगतपुर की कथा से आरंभ करते हुए जापान की युद्ध भूमि और बह्मी देश की 'सू' तक यह स्पॅन फैला हुआ है। उपन्यासकार वर्णनात्मक प्रविधि का अवलंब करते हुए पूरे परिदृश्य को खड़ा कर देता है। तीन पीढ़ियों का चित्रण, उनका जीवन संघर्ष खड़ा करना इतना आसान भी नहीं है। पर मर्ढेकर 'शाहिरी' का समयोचित प्रयोग करते हुए युगीन स्थिति का बोध कराते हैं। समूहगीतों का यथास्थान प्रयोग, अभंगों का प्रयोग आदि से कृति में एक नयी अर्थवत्ता का अहसास हो जाता है।

इस उपन्यास की सबसे बड़ी खूबी है, गाँव और शहर का एक साथ चित्रण। इस वर्णन में मर्ढेकर दोनों परिदृश्यों को यथार्थवादी दृष्टि से बोध कराते हैं। यहाँ विस्थापन का दर्द है। औद्योगिकरण, विकास के नाम पर गांव उजड़ रहे हैं। मुट्ठीभर लोगों का विकास, मुट्ठीभर लोगों के घर में बिजली आदि दृश्य पूरे करूणाभाव के साथ लेखक उपस्थित करता है। विशेषताः 'पानी' की प्रतीकात्मकता को दर्शाने के लिए उपन्यासकार अनेक प्रणालियों का स्वाभाविक प्रयोग करता है। अनेक प्रतीकों, बिंबों की सहज सुंदर योजना इस उपन्यास में हुई है। मेंढक, कौआ आदि प्रतीक मनुष्य जीवन की क्षूद्रता को दर्शाने के लिए आए हैं।

'समय स्थल की योजना' का सुंदर कलात्मक प्रयोग इस उपन्यास में भी हुआ है। प्रथम महायुद्ध का संदर्भ देते हुए तुकाराम नामक सेना में भर्ती हुए युवक की कथा रची गयी है। सदोबा, तुकाराम और विठोबा इन तीन पीढियों का परिस्थिति के विरूद्ध निरंतर संघर्ष जारी है। इस संघर्ष को अनेक आयामों के साथ उभारा गया है। करीब बीस से बाईस वर्षों के समय की योजना करते हुए लेखक जीवंत परिवेश का निर्माण करता है। इस समय स्थल की योजना में औद्योगिकरण, महायुद्ध, विस्थापन, विकास के नाम पर लूट, धूमिल होती हुए आशावादिता, बदलते जीवन संदर्भ, पानी की वजह से विस्थापन के दर्द को झेलता हुआ गाँव, बेहाल, बदहाल लोग आदि का मर्मस्पर्शी चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। मर्ढेकर सम्मीश्रित शैलियों का प्रयोग करते हुए अपने भावों की सुंदरतम अभिव्यक्ति कराते हैं। शिल्प सजगता का प्रमाण हमें मर्ढेकर में मिलता है।

निष्कर्ष :

बा. सी. मर्ढेकर मर्मस्पर्शी रचनाकार के रूप में उभरते हैं। उनके तीनों उपन्यासों के आशय, भाषा, शैली और शिल्प पर नजर डालेंगे तो कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य लक्षित होते हैं।

1. मर्ढेकर के तीनों उपन्यासों में युद्ध को विशेष महत्त्व है। आधुनिक जीवन का प्रतीक बनकर ये युद्ध उनके उपन्यासों में आते हैं। अज्ञात कारण हेतु जिंदगी को दाँव पर लगाने का 'संकटमय' भाव यहाँ उभरता है। साथ ही परंपरा का नाश करने का काम भी युद्ध करते हैं।

2. मूल से उखड जाने का भय, बीच में लटके रहने का भाव तथा परिस्थिति से निरंतर संघर्ष करते पात्र मर्ढेकर लेकर आते हैं।

3. अपने अस्तित्व के प्रश्नों से पीडित नायक, असहाय, लाचार और बेबसी का जीवन जीने के लिए विवश नायक का चित्रण मर्ढेकर करते हैं। साथ ही उदासी, निराशा,असहायता और समय के उलझावों के बीच सांस लेता हुआ नायक मर्ढेकर खड़ा करते हैं।

4. निराशा, उदासी, युद्ध से आक्रान्त, औद्योगिकरण की देन बेरोजगारी, शहरों का सांस्कृतिक विघटन, विस्थापन का दर्द आदि समस्याओं का सजग चित्रण मर्ढेकर करते हैं।

5. मर्ढेकर के उपन्यासों में आशावादी स्वर उभरकर आया है।

6. मर्ढेकर गांव और शहर के लेखक हैं। गाँव का जीवंत चित्रण करने में उन्हें महारत मिली है। ठीक उसी समय शहरों की जिंदगी का बेबाक चित्रण वे करते हैं। इन तीनों उपन्यासों में देहातों पर होनेवाले आधुनिकीकरण के परिणामों की दखल ली गयी है।

7. मर्ढेकर अपने तीनों उपन्यासों में नायक, नायिका, खलनायक ऐसा त्रिकोण निर्मित करते नहीं बल्कि मनुष्य, माटी और मानव समाज में परिवर्तन लानेवाली इकाइयों का उहापोह करते हैं। जिसमें विश्वयुद्ध, औद्योगिक विकास और नये बांध निर्माण तथा प्रशासन आदि का त्रिकोण निर्मित करते हैं।

8. मर्ढेकर के तीनों उपन्यासों में यथार्थवादी स्वर उभरता है। विशेषतः अस्तित्ववादी जीवन का जीवंत चित्र वे कराते हैं।

9. इन तीनों उपन्यासों में शोकात्म भाव अभिव्यक्त हुआ है। दिकपाल, शिवा पहलवान और तुकाराम, विठोबा के जीवन का शोकात्म रूप कम अधिक मात्रा में अंकित हुआ है।

10. मर्ढेकर अपने उपन्यासों में दो परंपराओं का अवगाहन करते हैं। संघर्षमय जीवन जीने की परंपरा तथा दूसरी उसके विरूद्ध विनाश की परंपरा। लेखक पहली परंपरा को पुष्ट करते हुए नजर आता है।

11. मराठी आधुनिकतावादी उपन्यास का केंद्रीय सूत्र है 'विस्थापन'। इस विषय को लेकर मराठी में अनेक उपन्यास लिखे गये हैं। जिसमें 'पानी' के अलावा 'रणांगन', 'शिप्रा', 'सरहद', 'बनगरवाडी', 'धग', 'कोसला', 'झाडाझडती', 'ताम्रपट' आदि उपन्यासों का समावेश होता है।

12. मर्ढेकर के उपन्यासों में आशावादी भविष्य का संकेत मिलता है। परिस्थिति से लड़ते-लड़ते संघर्षशील पात्रों का चित्रण लेखक करता है।

13. आधुनिक मनुष्य के द्वंद्व को उभारने का काम मर्ढेकर करते हैं। आधुनिकीकरण के मनुष्य जीवन पर हो रहे दूरगामी परिणामों का वर्णन करते हैं। विशेषतः युद्धों की भीषणता को

दर्शाते हुए मनुष्य जीवन की क्षूद्रता को अंकित करते हैं।

बावजूद इसके मर्ढेकर के उपन्यासों की कुछ सीमाएँ भी हैं। जिन्हें नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

1. निवेदन शैली के आधिक्य ने पात्रों की स्वतंत्रता पर प्रश्नचिह्न खड़ा हो जाता है। पात्रों के आचरण, विचार व्यवहार को नियंत्रित करने का काम निवेदक ही करता है।
2. 'रात्रीचा दिवस' और 'तांबडी माती' को कुछ समीक्षकों ने छोटे कलेवर के कारण 'दिर्घकथा' कहा है,इनका स्पैन छोटा है। आशय की अपनी सीमाएँ हैं। शैली तंत्र की भी अपनी बहुत ÃÖÖ¸üß ÃÖÖß´ÖÖ< Æü…
3. चेतनाप्रवाह शैली के आधिक्य, काव्य पंक्तियों का अधिकतम उपयोग भाषा एवं व्याकरणगत दोष आदि सीमाएँ भी लक्षित होती है।
4. मर्ढेकर के उपन्यासों में मनुष्य जीवन की 'क्षूद्रता' का वर्णन आया है। मनुष्य जीवन के 'गौरव' के क्षण बहुत कम मात्रा में लक्षित होते हैं।

कुल मिलाकर उपन्यासकार मर्ढेकर अपनी एक स्वतंत्र परंपरा मराठी साहित्येतिहास में निर्माण करते हैं। वे युगीन जीवन संदर्भों के लेखक हैं। वास्तववादी और जीवनदर्शी लेखक हैं। अपने अनुभव विश्व का सजग विस्तार करना उनकी विशेषता है। विशेषतः सामाजिक प्रश्नों के प्रति बेहद संजीदा यह लेखक हैं। इसी कारण तीनों उपन्यासों में किसी न किसी सामाजिक समस्या का वे ऊहापोह करते हैं। अर्थात मर्ढेकर ने अपने लेखन सामर्थ्य से निश्चित रूप में मराठी उपन्यासों की परंपरा में अपनी स्वतंत्र मुद्रा अंकित की है।

4.3 अज्ञेय और मर्ढेकर के उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन :

प्रस्तावना :

"अज्ञेय लंबी सांस के रचनाकार हैं। उन्होंने निरंतरता बनाए हुए रचनाओं को बड़े वैचारिक और गहरे संवेदनात्मक धरातलों पर विनियोजित (कन्सीव) किया है।"[116] »Ö²Ößü ÃÖÖÃÖÖ ÃÖÖ ŸÖÖŸ¯ÖµÖ Æü ¬ÖµÖ तत्व का निहित होना। अपने आप में विराटता को समा लेना। यहाँ आकर अज्ञेय विराटता में क्षण की तलाश करते हैं। जीवन की विराटता और विशालता का विस्तार से परिचय देते हैं। ठीक उसी तरह मर्ढेकर अपने समय की भीतरी तहों को खोलने का उपक्रम करते हैं। वे जितने बड़े सर्जक हैं उतने ही महान कथाशिल्पी। इन दोनों रचनाकारों ने उपन्यास के क्षेत्र में मौलिक योगदान दिया है। अपनी विशिष्ट सर्जन-चेतना, रचना-विधान का विलक्षण रूप, आशय के वैविध्य का उज्ज्वल पक्ष, भावों की अनूठी व्यंजना, भाषा का सजग रूप और शैली वैभिन्य के चलते इन दोनों ने अमिट छाप छोड़ी है। दो भिन्न भाषा के, दो भिन्न संस्कृति, सामाजिक परिवेश में पले बढ़े रचनाकारों के सर्जनात्मक

जगत् का मूल्यांकन होना जरूरी है। उभय रचनाकारों के रचनात्मक दाय का मूल्यांकन साम्य-वैषम्य के कुछ बिंदूओं को केंद्र में रखकर किया जा सकता है। विशेषतः दोनों ने भाषा और साहित्य की परंपरा में जो स्थान हासिल किया है, उस पर दृष्टिपात किया जाना आवश्यक है।

ÃÖö´µÖ : अज्ञेय और मर्ढेकर दोनों ने तीन-तीन उपन्यास लिखे हैं। अज्ञेय के 'शेखर:एक जीवनी', 'नदी के द्वीप' तथा 'अपने अपने अजनबी' नामक उपन्यास उनकी प्रतिभाशीलता, सर्जनशीलता और चिंतनशीलता के सच्चे प्रमाण है। मर्ढेकर ने भी 'रात्रीचा दिवस (रात का दिन), 'तांबडी माती' (लाल मिट्टी) तथा 'पाणी' (पानी) नामक उपन्यास लिखे हैं। अर्थात अज्ञेय के 'छाया मेखल' और 'बीनू भगत' नामक दो असमाप्त उपन्यास भी रहे हैं। पर वास्तविकता यह है कि दोनों उपन्यासकारों की सर्जनशीलता इन रचनाओं के माध्यम से लक्षित होती है।

अज्ञेय और मर्ढेकर दोनों समकालीन उपन्यासकार हैं। दोनों का लेखनकाल लगभग एक-सा है। बीसवीं सदी के चौथे दशक में दोनों ने लिखना शुरू किया था। समकालीन जीवन के प्रभावों के कई रूप उभय रचनाकारों में दिखाई देते हैं। अज्ञेय का पहला उपन्यास 'शेखर : एक जीवनी' 1941 में प्रकाशित होता है। तो ठीक उसी समय मर्ढेकर का 'रात्रीचा दिवस' उपन्यास 1943 में प्रकाशित हुआ है। यह विलक्षण संयोग की बात है कि दोनों भिन्न भाषा में, भिन्न परिवेश में लगभग एक ही समय लिखना आरंभ करते हैं। दोनों अपने समय के साक्षी बनकर अपनी अद्‌भूत सर्जनशीलता का परिचय देते हैं। अर्थात् दोनों उपन्यासकारों का रचना समय 1941 ÃÖ 1961 के बीच का रहा है। रचना और रचनाकाल के बीच द्वंद्व को स्थापित करते हुए ये रचनाकार अपने समय के भीतर उतरकर अभिव्यक्ति का एक नया संसार रचते हैं। इनकी रचनाओं में अपने समय की अनुगूंज सुनाई पड़ती है। जहाँ अज्ञेय ने 'शेखर : एक जीवनी' में स्वतंत्रता आंदोलन, स्वातंत्र्य के प्रश्न को उठाया है (व्यक्ति स्वातंत्र्य) वहीं मर्ढेकर की रचनाओं में दोनों विश्वयुद्ध, बदलते समाजार्थिक प्रश्नों की गूंज सुनाई देती है। विशेषतः उभय उपन्यासकार अपने रचना समय में ' समग्रता' का परिचय देते हैं।

अज्ञेय और मर्ढेकर प्रयोगशील उपन्यासकार हैं। दोनों ने आशय, रूप, संरचना, भाषा और शैली के क्षेत्र में विलक्षण प्रयोग किये हैं। अज्ञेय ने जहाँ आत्मकथात्मक शैली (शेखर : एक जीवनी), पत्रात्मक शैली (नदी के द्वीप) डायरी शैली (अपने अपने अजनबी) का सार्थक उपयोग किया है। वही मर्ढेकर ने चेतनाप्रवाह शैली (रात्रीचा दिवस, तांबडी माती, पाणी) का प्रयोग इन तीनों उपन्यासों में किया है। विशेषतः स्वगत और निवेदन शैली का उत्कृष्ट अविष्कार मर्ढेकर करते हैं। जहाँ 'संवेदना पक्ष' का सवाल है, अज्ञेय ने मानव मन के आभ्यंतर लोक का सूक्ष्म विवेचन किया है। 'शेखर' में व्यक्ति के बहाने शक्ति की गाथा, 'नदी के द्वीप' प्रेम भाव का उत्कट रूप, भुवन, रेखा और गौरा के माध्यम से आधुनिक मनुष्य की तीन आधुनिक प्रवृत्तियों का उद्‌घाटन किया है। 'अपने अपने

अजनबी' आसन्न मृत्यु की छाया में जी रहे पात्रों के जीवनबोध और मृत्युबोध का जीवंत साक्षात्कार कराता है। ठीक उसी समय मर्ढेकर भी संवेदना पक्ष की दृष्टि से वैविध्य को लेकर आते हैं। 'रात्रीचा दिवस' में दिकपाल की मन:स्थिति का बोध (यंत्रवत होती जिंदगी का दस्तावेज) कराया गया है। वही 'तांबडी माती' में मनुष्य की जुझारू प्रवृति के दर्शन कराये गये हैं। ठीक उसी समय 'पाणी' उपन्यास में विस्थापन की पीड़ा को उभारा गया है। अर्थात उभय रचनाकारों के उपन्यासों में संवेदना की दृष्टि से भी प्रयोगशीलता नजर आती है।

उभय उपन्यासकारों ने भाषा के विविध रूपों पर बल दिया है। वे दोनों भाषा के उत्तम कारीगर है। भाषिक चुनाव और प्रयोग में कुशलता, दक्षता का सुघड़ परिचय दोनों कराते हैं। विशेषतः शब्द चयन, वाक्य विन्यास, बोलीभाषा का प्रयोग भाषा का सम्मिश्रित रूप उजागर किया है। यहाँ आकर दोनों नये शब्दों का निर्माण, अनुकूलन एवं समन्वयन करते हैं। यह भाषिक प्रयोगशीलता दोनों का प्रधान वैशिष्टये रहा है, जिस पर हम उपन्यासों के मूल्यांकन के अंतर्गत विस्तार से विचार कर चुके हैं।

दोनों उपन्यासकारों की कृतियों में व्यक्ति और समाज के बारे में चिंताएँ व्यक्त हुई हैं। अज्ञेय हो या मर्ढेकर व्यक्ति और समाज के बीच निहित द्वंद्व को उभारते हैं। दृष्टियों में भिन्नता है किन्तु व्यक्ति के बहाने समाज और समाज के माध्यम से व्यक्ति जीवन की तमाम हलचलों को अंकित करते हैं। विशेषतः स्वतंत्रता आंदोलन, क्रांतिकारी आंदोलन तथा महायुद्धों की पृष्टभूमि में व्यक्ति जीवन के बदलते संदर्भों की पड़ताल दोनों करवाते हैं। जहाँ अज्ञेय व्यक्ति के विद्रोह को अंकित करते हैं। (परिस्थिति, सामाजिक मूल्य, आत्मभान आदि के प्रति विद्रोह) वही मर्ढेकर विद्रोह तो नहीं किंतु व्यक्ति के भीतर अंतरनिहित जुझारू (लाल मिट्टी) प्रवृत्ति को दर्शाते हैं। दोनों रचनाकारों ने मनुष्य के अस्तित्व से संबंधित प्रश्नों पर चिंता और चिंतन व्यक्त किया है। अज्ञेय का समग्र चिंतन अस्तित्ववाद से प्रेरित है। उन्होंने पूर्व और पश्चिम के दर्शन का सम्मिलन किया, पचाया। मनुष्य के आभ्यंतरिक लोक को उघाडते हुए उसकी स्थिति का बोध वे कराते हैं। इसलिए अज्ञेय के उपन्यासों में अस्तित्ववादी शब्दावली या अवधारणाओं का प्रत्यय यत्र तत्र मिलता है। स्वतंत्रता, वरण, विसंगति, मृत्यु का डर ये ऐसे शब्द हैं जो अस्तित्ववादी चिंतन की पृष्ठभूमि से उभरते हैं। अज्ञेय ने क्षण का महत्त्व, स्वतंत्रता का प्रश्न, मृत्युबोध की पीड़ा, वरण की स्वतंत्रता को गहरे में उभारा है। अपने तीनों उपन्यासों के केंद्र में वे अस्तित्ववाद को लेकर आते हैं। इसलिए यह कहना युक्तियुक्त होगा कि 'हिंदी में पहली बार उपन्यास को दर्शन का धरातल मिला, वह पश्चिमी लेखन की समकक्षता में आ गया।'

मर्ढेकर की तीनों रचनाएँ मनुष्य के अस्तित्व से संबंधित प्रश्नों से जूझती है। 'रात्रीचा दिवस' का दिकपाल यंत्रयुग से संत्रस्त है। मशीनी सभ्यता ने मनुष्य जीवन को घेर लिया है। मनुष्य यंत्र का

पूर्जा बनकर रह गया है। अपने अस्तित्व को लेकर मनुष्य चिंतामग्न है। हाथ से सबकुछ फिसलते जाने का (हरिणी सेशाल) भाव व्यंजित हुआ है। वहीं 'लाल मिट्टी' में टुटे, हारे, विकलांग अवस्था में क्षुद्रपथ जीवन जीने के लिए विवश मनुष्य की कथा-व्यथा मढेकर बुनते हैं। तो 'पानी' के माध्यम से विस्थापित मनुष्य के दर्द को अंकित करने का सशक्त प्रयास किया गया है। अर्थात दोनों रचनाकार अपने उपन्यासों में अस्तित्वबोध कराते हैं। यह पश्चिमी दर्शन का अनुकरण नहीं है, यह भारतीय अस्तित्ववाद है जो अपने समय, सभ्यता और संस्कृति से जुड़ा हुआ है।

उभय उपन्यासकारों की रचनाओं में ' आधुनिकता' का अक्स मिलता है। आधुनिक जीवन के परिप्रेक्ष्य में उभरते हुए आधुनिक चरित्र, आधुनिक संवेदनाओं का विकास, परंपरागत प्रतिमानों को तोड़ने का प्रयास, स्वतंत्रता, मुक्ति, मृत्युबोध जैसे प्रत्ययों का सहज उद्‌घाटन इन रचनाओं में मिलता है। आधुनिकता के आईने में रचनाकार मनुष्य जीवन पर भाष्य करता है। आधुनिकता के अनेक बिंदुओं को दोनों रचनाकारों ने पूरी शिद्दत से उभारा है। 'शेखरः एक जीवनी' के संरचनागत एवं संवेदनागत सामर्थ्य की ओर संकेत करते हुए डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल ठीक ही लिखते हैं "यह उपन्यास अपनी आधुनिकता की व्यंजकता को शीर्षक से ही प्रकट कर देता है। जीवनी जैसी विधा को उपन्यास जैसी विधा में लाकर नया जीवन सत्य नयी प्रश्नाकुल आधुनिकता का पहला लक्षण Æ..."[117] अज्ञेय ने 'शेखर' में आधुनिकता की चुनौती को गहरे रूप में स्वीकारने के लिए शिल्पगत प्रयोग किए। यहाँ आकर अज्ञेय आस्था-अनास्था, नैतिकता-अनैतिकता, हिंसा-अहिंसा के सवालों पर खुलकर सोच-विचार करते हैं। विशेषतः सामंतवाद का खुलकर विरोध (बाबा, रामजी, मोहसीन) करते हैं। इतना ही नहीं आधुनिकता के झूठे मानों से प्रभावित और यांत्रिक जीवन की नीरसता से ऊबे हुए ये व्यक्ति (नदी के द्वीप) उत्तेजना की खोज में अपनी एक-रसता को डूबो देते हैं। आधुनिकता की बुनियादी समस्याओं से अज्ञेय हमें परिचित कराते हैं। उन्होंने इसे सर्जनात्मक स्तर और वैचारिक स्तर पर उठाया है, इसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। 'अपने अपने अजनबी' में भी अज्ञेय ने मृत्यु का साक्षात्कार कराते हुए आधुनिकता का बोध कराया है। विशेषतः आधुनिक मनुष्य असुरक्षा, असहायता और मृत्यु का डर लेकर जीने के लिए कैसे अभिशप्त है, इसे बखूबी दर्शाया गया है।

अज्ञेय के तीनों उपन्यासों में आधुनिक मनुष्य के जीवन की नियति का सजग अंकन हुआ है। विशेषतः आधुनिकता का प्रमुख लक्षण 'प्रखर बौद्धिकता' है। प्रखर बौद्धिकता के समावेश से उनकी कृतियाँ कहीं-कहीं जटिल, बोझिल और वैचारिक दृष्टि से आक्रांत लगती है। किन्तु वास्तविकता ये है कि अज्ञेय अपनी रचनाओं में बौद्धिकता, गैर रोमांटिक वृत्ति, स्वचेतनता और भाषिक सर्जनात्मकता पर बल देते हुए नजर आते हैं। मानव जीवन और मानव व्यक्तित्व के अधिकाधिक निर्वेयक्तिक होते जाने के खतरे का भी संकेत देते हैं। व्यक्तित्वपरक मूल्यों का विघटन और उससे उत्पन्न खतरे की

ओर लेखक संकेत करता है। इसी वजह से डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं कि "विशिष्ट अर्थ में आधुनिक रचना के जो तत्व समझे जाते हैं- स्वचेतनता, बौद्धिकता, गैर-रोमांटिक वृत्ति और भाषिक सर्जनात्मकता पर बल, जिसके फलस्वरूप मितकथन और अमूर्तन का विकास होता है- इनका आरंभिक विकास हमें अधिकतर अज्ञेय के कृतित्व में मिलता है।"[118]

मर्ढेकर के तीनों उपन्यासों में आधुनिकता का परिप्रेक्ष्य देखने को मिलता है। यह उपन्यासकार औद्योगिकरण, मशीनी सभ्यता का आगमन, महायुद्धों के भयावह प्रभावों से गुजरता हुआ मनुष्य, उसके जीवन की असहायता, अकेलापन, ऊब और संत्रास का प्रभावी अंकन करता है। 'मनुष्य जीवन में आये बिखराव का चित्रण जहाँ 'रात का दिन' उपन्यास में हुआ है' वही लेखक बताता है कि मनुष्य का वस्तु में कैसे रूपांतरण हो रहा है। मनुष्य का वस्तुकरण होते जाना भयावह चीज है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में उत्पादित मशीनी मानव, उसका जीना, उसके अपने अद्‌भूत संसार का अनुभव आदि को मर्ढेकर अंकित करते हैं। भीतर से पूरी तरह बेचैन नायक को खड़ा करना (रात का दिन) मर्ढेकर का उद्देश्य है और इसमें उन्हें अपार सफलता मिली है। ठीक उसी तरह 'तांबडी माती' उपन्यास में मर्ढेकर बताते है कि आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से मनुष्य के जीवन में आयी रिक्तता, मनुष्य के व्यक्तित्व और सामाजिक संस्थाओं का विघटन होते जाना, पूंजीवादी व्यवस्था के अंतर्गत मनुष्य जीवन का क्षूद्र होते जाना आदि को उभारा गया है। अर्थात आधुनिकता के अनुकूल, प्रतिकूल प्रभावों को झेलते हुए मनुष्य को अंकित करना लेखक का उद्देश्य दिखाई देता है। इस आधुनिकीकरण के परिणाम गांव और शहर पर बराबर दीख रहे हैं। मनुष्य पर हो रहे इन परिणामों की दखल वे अपने उपन्यासों में लेते हैं। उपन्यासकार नवपूँजीवाद से प्रेरित इकाईयों पर प्रकाश डालता है। उत्पादन व्यवस्था में आया हुआ परिवर्तन, सत्ता का क्रूर चेहरा, उपनिवेशवाद, विश्वयुद्धों के भयावह परिणाम, अंततः अकेलापन, ऊब और पीड़ामय जीवन जीने के लिए विवश मनुष्य की दुर्दशा को बताना लेखक का उद्देश्य है। मर्ढेकर अपने पात्रों के द्वारा आधुनिकता के बरक्स औद्योगिकरण के परिणामों को झेलते हुए दिखाते हैं। लेखक आधुनिकता के अंतर्विरोध को बखूबी चित्रित करता है। जीवन में आयी अस्थिरता, विडंबनामय जीवन स्थितियों का प्रभावी वर्णन आया है। 'लाल मिट्टी' के माध्यम से एक सवाल उठाया गया है, 'विश्व में कौन किसका होता है? यह सनातन प्रश्न हमें बेचैन कर देता है। मिट्टी से दूर होते जाने का दर्द भी यहाँ अंकित हुआ है। वस्तुतः आधुनिकता के परिणामों को भुगतते मनुष्य को वर्णित किया गया है। यह मूल्य विघटन का समय है। पुराने मूल्य ध्वस्त हो रहे हैं नये मूल्यों के उदय के चिह्‌न नजर नहीं आ रहे हैं। ऐसी स्थिति में कशमकश में जी रहे मनुष्य को लेखक उभारता है। मनुष्य के भीतर जो सनातन द्वंद्व चल रहा है, उसे साकार करने का प्रयास यहाँ हुआ है। मर्ढेकर ने अपने तीसरे उपन्यास 'पानी' में विस्थापन की समस्या को उठाया है। औद्योगिकरण,

भौतिक विकास, ग्रामीण समाज तक आधुनिकता की चकाचौंध का आगमन, परिवेश का बदलते जाना, टूटने का दर्द, गांव से विलगाव, संक्रमण अवस्था से गुजरता हुआ ग्रामीण समाज, युद्ध की भयावह स्थिति का मार्मिक अंकन इस उपन्यास में आया है। विशेषत: युद्ध आधुनिक जीवन का प्रतीक बनकर उभरता है। अज्ञात कारणों के लिए लडते हुए मनुष्य को वर्णित किया गया है। मूल से उखड जाने का दर्द, बीच में लटके रहने की दशा, कहीं पर भी टिक न पाने की बेचैनी, अस्तित्व से संबंधित मूलभूत प्रश्न, व्यक्तित्व की खोज, जीवन में आयी हुई रिक्तता, उदासीनता आदि का प्रभावी चित्रण मर्ढेकर करते हैं। अर्थात जीने के लिए निरंतर चल रहे संघर्ष को कलात्मक ढंग से लेखक उभारता है। कुल मिलाकर मर्ढेकर के तीनों उपन्यासों में 'आधुनिकता' के अनेकानेक आयाम लक्षित होते हैं। आधुनिकता से प्रभावित व्यक्ति और समाज को वर्णित करना लेखक का उद्देश्य दिखाई देता है, जिसमें उन्हें सफलता मिली है। मराठी आधुनिकतावादी उपन्यासों का प्रमुख लक्षण 'विस्थापन' है। इस आशयसूत्र को लेकर 'रणांगन', 'पानी', 'शिप्रा', 'सरहद', 'बनगरवाडी', 'धग', 'कोसला', 'झाडाझडती', 'ताम्रपट' आदि उपन्यास लिखे गये हैं, जो विशेष उल्लेखनीय बात है।

अज्ञेय ने अपने उपन्यासों में आशयसूत्रों के प्रतिपादन हेतु 'मनोविश्लेषण के सिद्धांतों को तत्व के रूप में स्वीकारा है। मनोविज्ञान के सिद्धांतों का सशक्त और सार्थक उपयोग किया है। अपने तीनों उपन्यासों से मनोविज्ञान के अनेक सिद्धांतों का निरूपण वे करते हैं। अज्ञेय वस्तुत: मानव मन के आभ्यंतर के कथाशिल्पी है। आदर्श की अस्वीकृति और यथार्थ का अधिकाधिक आग्रह उनके यहाँ है। अज्ञेय का उद्देश्य घटनाओं के बाहुल्य का निर्माण करना नहीं है- न बाह्य क्रियाकलापों का विवरण प्रस्तुत करना। वे व्यक्ति चरित्र के अंतश्चेतना के उद्‌घाटन और निरूपण को महत्त्व देते हैं। उनके इस चिंतन पर सार्त्र, फ्रायड तथा यास्पर्स आदियों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। अज्ञेय ने 'शेखर : एक जीवनी' में शेखर के बाल्यकाल, किशोर अवस्था, युवा अवस्था की मानसिक स्थिति का अत्यंत मार्मिक चित्रण किया है। 'मुक्ति की खोज', 'व्यक्तित्व की खोज', 'परंपरा के प्रति खुला विद्रोह', 'वरण की स्वतंत्रता', 'मृत्यु की पीड़ा' आदि को कलात्मक ढंग से उकेरा है। लेखक 'नदी के द्वीप' में भुवन, रेखा और गौरा के त्रिकोण को उपस्थित करते हुए रिश्तों के बनते बिगडते चित्र अंकित करता है। विशेषत: पात्रों की मन:स्थिति का जितना जीवंत साक्षात्कार अज्ञेय कराते हैं, वह अपने आप में उपलब्धि है। तीनों उपन्यासों के अनेक दृश्यों में इस बात की प्रतीति होती है। वही मर्ढेकर व्यक्ति मन के साथ समाज मन को रेखांकित करते हैं। समाज के जटिल प्रश्नों से हमें अवगत कराते हैं। वे सामाजिक यथार्थ से हमें परिचित कराते हैं। उनके लेखन में समाज के बहाने व्यक्ति आता है, व्यक्ति के बहाने समाज नहीं। वे युगीन जीवन संदर्भों की सच्ची पडताल करते हैं। 'रात का दिन' के दिकपाल की मन:स्थिति, स्वप्न अवस्था, चेतन-अचेतन अवस्था के अनेक चित्र उपस्थिति करते हैं।

ठीक उसी समय 'लाल मिट्टी' उपन्यास के शिवा पहलवान, सारजा, सुलभा लिखिते, कम्युनिस्ट भाई कुमार आदि पात्रों के मानसिक जगत का सजग उद्‌घाटन कराते हुए उलझवों को सुलझाने की कोशिश करते हैं। तो 'पानी' उपन्यास के माध्यम से सदोबा, तुकोबा और विठोबा के जीवन संघर्ष को उभारते हुए उनके मानसिक जगत को उदघाटित करते हैं। वस्तुतः अज्ञेय और मर्ढेकर ने मनोविज्ञान को आधारबिंदू मानते हुए इन पात्रों के मनोजगत का बारीकी से विवेचन किया है। अर्थात् अस्तित्ववादी चिंतन से दोनों प्रभावित हैं।

हिंदी और विश्‍व साहित्य में अज्ञेय का अवदान एक सर्जक और द्रष्टा के रूप में हैं। यह लेखक अपने प्रस्थानबिंदू से चरमकाल तक सौंदर्य और मानवीयता का चितेरा है और अपनी सीमाओं के बावजूद एक विशाल रचना फलक को रचता है। इसीलिए अज्ञेय में फैलाव बहुत है। तेवर और भंगिमा में अलगता है। अनेक विधाओं में सृजन के बावजूद भी वे अपने आवेग से चुके नहीं है। प्रतिभा और अभिव्यक्ति सामर्थ्य के बल पर उन्होंने हिंदी साहित्य को लगभग आतंकित और नियंत्रित किया।

मर्ढेकर भी अपनी तेज लेखनी और कड़ियलपन के लिए हमेशा याद किये जाएँगे। वे भी युगद्रष्टा हैं। दो विश्‍वयुद्धों को झेल चुके मनुष्य जीवन को इतनी सूक्ष्मता से पकड़ना आसान नहीं होता। नये बिंब, नये मिथक, नये-नये प्रतीकों को वे गढ़ते हैं। उनके यहाँ भी जीवन की विराटता और विशालता के दर्शन होते हैं। यह रचनाकार मौन को साधते हुए सूक्ष्म हलचलों (मानसिक जगत) को अंकित करने में सफल हुआ है। कविता, उपन्यास, समीक्षा और सौंदर्यशास्त्र पर भारतीय और पश्‍चिमी दृष्टियों का सम्मिश्रण करते हुए उन्होंने नये प्रतिमानों का विकास किया। अपने चिंतनशील व्यक्तित्त्व से साहित्य को समृद्ध किया। इसीलिए यह कहना अधिक युक्तिसंगत होगा कि अज्ञेय और मर्ढेकर का जीवन और साहित्य समांतर चलते हुए दिखाई देते हैं। वही दोनों में गहरी चिंतनशीलता, बौद्धिकता का सामर्थ्य देखने को मिलता है।

अज्ञेय और मर्ढेकर दोनों ने आधुनिकता की चुनौती का साक्षात्कार संवेदना और चिंतन के स्तर पर किया। दोनों की कृतियों में समस्याओं का निदान न होकर प्रश्‍नवाचक चिह्नों का आकलन अधिक हैं। जहाँ अज्ञेय अपने उपन्यासों के माध्यम से परम्परा और निष्क्रिय मूल्यों को नकारने का उपक्रम करते हैं वही मर्ढेकर भी ठीक उसी समय मराठी में परंपरागत मूल्यों को नकारते हुए नये मूल्यों का आग्रह करते हैं। बौद्धिकता, मनोवैज्ञानिकता, अस्तित्व से संबंधित प्रश्‍नों की चर्चा दोनों ने की हैं। दोनों अनुभव के लेखक हैं। इसलिए दोनों अनुभव की भाषा रचते हैं, बोलते हैं। भाषा के क्षेत्र में दोनों ने नूतन प्रयोग किये। नये शब्दों का निर्माण, अनुकूलन और समन्वयन करते हैं। पुराने शब्दों में नया अर्थ भरते हैं। दोनों के उपन्यासों में अन्य भाषा-भाषाओं की कविताओं का समुचित उपयोग

हुआ है। काव्यमय गद्य और गद्यमय काव्य का पाठ चुनते हैं। भाषा में दृश्यात्मकता, बिंब प्रधानता और ताजगी का अनुभव होता है। इसलिए ये कहा जा सकता है कि दोनों ने 'अनुभव के सच की भाषा' का इस्तेमाल किया है। ये दोनों भाषा के जादूगर है। भाषा को सूक्ष्म, मर्मग्राही और अर्थवाही बनाने में दोनों ने महारत हासिल की है। इसी बात को आगे बढ़ाते हुए अज्ञेय की भाषा के बारे में डॉ. नंदकुमार राय लिखते हैं "अज्ञेय की सबसे बड़ी निपुणता इस बात में है कि अपने अनोखे शिल्प के माध्यम से वे जीवन के आवरणों और परतों को अनावृत्त तथा विश्लेषित करते चलते हैं। उनके उपन्यासों का वस्तु तत्व जितना जटिल और गहरा है, शिल्प उतना ही आधुनिक और जीवंत।"[119]

उपर्युक्त तमाम बिंदुओं के आधार पर अज्ञेय और मर्ढेकर की साहित्य सर्जना, अभिव्यक्त मूल्य व्यवस्था और आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में सादृश्यता नजर आती है। किंतु दो भिन्न भाषा, भिन्न संस्कृति में पले बढे, भिन्न व्यक्तित्व की बुनावट होने के कारण उनके साहित्य सृजन की प्रवृत्तियों में विसादृश्यता भी नजर आती है। अज्ञेय और मर्ढेकर में स्थित विसादृश्यता को निम्नांकित बिंदुओं के आधार पर विश्लेषित किया जा सकता है-

¾ÖÂÖ´µÖ : अज्ञेय व्यक्तिवादी चेतना के रचनाकार हैं। यह लेखक व्यक्ति सत्य की बात करता है। व्यक्ति जीवन को समग्रता में चित्रित करना अज्ञेय का उद्देश्य है, जो आधुनिकता का प्रमुख लक्षण भी है। अज्ञेय अपनी रचनाओं में व्यक्ति जीवन के आंतरिक सत्य को कलात्मक ढंग से पकडते हैं। ठीक उसी समय मर्ढेकर सामाजिक चेतना के उपन्यासकार के रूप में उभरते हैं। व्यक्ति को केंद्र में रखकर समाज की मूलभूत चिंताओं पर प्रकाश डालते हैं। प्रत्येक उपन्यास में किसी न किसी सामाजिक प्रश्न का ऊहापोह करते हैं। जहाँ अज्ञेय 'शेखर' में 'अस्तित्व की खोज', 'नदी के द्वीप' में 'मुक्ति की खोज' और 'अपने अपने अजनबी' में 'मृत्यु की खोज' करते हैं। वही मर्ढेकर 'रात का दिन' में व्यक्ति के अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न उपस्थित करते हैं। 'लाल मिट्टी' में मूल से उखड़ जाने के दर्द को अंकित करते हैं। 'पानी' में विस्थापन की पीड़ा को दर्शाते हैं।

अज्ञेय शहरी जीवन का मार्मिक अंकन करनेवाले उपन्यासकार हैं। उनके उपन्यासों में गांव नहीं के बराबर हैं। 'शेखर','नदी के द्वीप' और 'अपने अपने अजनबी' में गांव या देहात का चित्रण नहीं है। मर्ढेकर गांव और शहर की पृष्ठभूमि का कलात्मक चित्रण करते हैं। वे जितने गांव के लेखक हैं, उतने ही शहर के। शहरी सभ्यता, उसके अंतर्विरोध, तमाम विसंगतियों का सूक्ष्म वर्णन मर्ढेकर करते Æî...

अज्ञेय के उपन्यासों में प्रखर बौद्धिकता या गहरी चिंतनशीलता का बोध होता है। परिणामतः प्रखर बौद्धिकता से कहीं कहीं नीरसता, ऊबाउपन आ जाता है। बौद्धिकता और वैयक्तिकता के आग्रह से अज्ञेय के उपन्यास आक्रांत हैं। मर्ढेकर के उपन्यासों में बौद्धिकता या वैयक्तिकता की

अपेक्षा सीधी, सरल सामाजिकता का आशय दृष्टिगोचर होता है।

अज्ञेय ने 'शेखर' में मुक्ति की खोज, 'नदी के द्वीप' में वरण की स्वतंत्रता और 'अपने अपने अजनबी' में मृत्यु बोध कराया है। व्यक्ति, अस्तित्व, अस्मिता से संबंधित प्रश्नों को उठाते हैं। 'नदी के द्वीप' में अस्तित्ववादी चिंतन के दोनों पक्ष 'वरण की स्वतंत्रता' और 'मृत्युबोध' का सहज अंकन हुआ है। वस्तुतः 'नदी के द्वीप' प्रेमप्रधान उपन्यास है। 'अपने अपने अजनबी 'एक दार्शनिक उपन्यास है, 'वरण् की स्वतंत्रता' इसका प्रमुख स्वर रहा है। अज्ञेय के उपन्यासों में 'प्रश्नाकूलता' झांकती है। उनके कृतित्व में अनुभव के सातत्य और नैरंतर्य को समग्रता में पाया जा सकता है। किंतु मर्ढेकर दार्शनिक बातें नहीं करते। सामाजिक यथार्थ का उज्ज्वल पक्ष लेकर आते हैं। मनुष्य जीवन में आयी रिक्तता, असहायता और ऊब को पूरी ताकत से उभारते हैं। वे मिट्टी से जुड़कर संघर्ष की मुद्रा धारण कर लेते हैं। मनुष्य दु:खी क्यों है? अकेला क्यों है? आदि प्रश्नों से जूझते हैं।

अज्ञेय ने हिंदी उपन्यासों की परंपरा में अमर पात्रों का निर्माण किया। तीनों उपन्यासों के पात्र अपनी विशिष्टता, युगबोधता और जीवनोन्मुखी दृष्टि के चलते अपनी अमिट छाप छोड़ देते हैं। 'शेखर : एक जीवनी' के शेखर और शशि, 'नदी के द्वीप' के भुवन, रेखा और गौरा तथा 'अपने अपने अजनबी' के सेल्मा और योके अपने समय और समाज के प्रतिनिधि पात्र बनकर आते हैं। किंतु मराठी उपन्यासकार मर्ढेकर अपने तीनों उपन्यासों (रात का दिन, लाल मिट्टी और पानी) के माध्यम से किसी विशिष्ट या उल्लेखनीय पात्र का सृजन नहीं कर पाते हैं। शायद वह उनका उद्देश्य भी न रहा हो। किंतु अपने समय और परंपरा पर प्रभाव डालने वाले किसी भी पात्र की सृष्टि मर्ढेकर नहीं कर पाते हैं।

अज्ञेय ने व्यक्ति के भीतर के व्यक्ति को साहित्य में मंडित किया। अपने सजग और सूक्ष्म अनुभवों एवं जीवन दर्शन की तीक्ष्णता से जन्मी रचनात्मक अवस्था से उसे प्रामाणिक और मौलिक बनाया। यह बात उनके तीनों उपन्यासों पर लागू होती है। वे व्यक्ति मन के गहरे चितेरे हैं। किंतु मर्ढेकर का उद्देश्य व्यक्ति के भीतरी सौंदर्य का उद्घाटन करना नहीं है बल्कि वे समकालीन समय और समाज की गहरी पडताल करते हैं। सामाजिक संदर्भों की तलाश करते हैं। युगीन समाज में जी रहे मनुष्य की असाह्यता, जीवन की क्षुद्रता को वर्णित करते हैं।

अज्ञेय के उपन्यासों में 'प्रश्नाकूलता' का भाव नजर आता है। मनुष्य जीवन के आदिम संघर्ष, उसके भौतिक मानसिक प्रश्न, मनोजगत की सूक्ष्मताएँ, उसके भीतर और बाहर चल रही हलचलों को रेखांकित करते हैं। मर्ढेकर प्रश्नाकूलता की अपेक्षा 'परिस्थितिबोध' का अहसास कराते हैं। वे अपने समय में सांस ले रहे मनुष्य की नियति की ओर संकेत करते हैं, उसके बाहरी संघर्ष पर दृष्टिपात करते हैं। व्यक्ति के मानस पर प्रभाव डालनेवाली इकाइयों का चित्रण करते हैं। विशेषतः मनुष्य जीवन के आसपास बदलती हुई स्थितियाँ, संक्रमण के दौर को अंकित करने का प्रयास

मर्ढेकर में दिखाई देता है। साहित्य सर्जना के निकषों में भेद होने के कारण दोनों में विसादृश्यता नजर आती है। अज्ञेय अपने तीनों उपन्यासों के द्वारा मनुष्य की स्वतंत्रता, अस्तित्व की तलाश, व्यक्तित्व की खोज आदि मुद्दों को उठाते हैं। व्यक्ति सत्ता की बात करते हुए व्यक्ति सत्य को स्थापित करते हैं। वही मराठी उपन्यासकार मर्ढेकर व्यक्ति सत्ता या व्यक्ति सत्य के स्थान पर मनुष्य के समग्र अस्तित्व से संबंधित प्रश्नों का ऊहापोह करते हैं। दो महायुद्धों से पीडित, आक्रांत, मनुष्य जीवन की दुर्दशा, संघर्ष और उसकी असहायता का बखूबी वर्णित करते हैं।

उभय उपन्यासकारों की औपन्यासिक सर्जना में सबसे बड़ा विसादृश्य 'स्त्री' की रचना को लेकर है। अज्ञेय ने अपने रचनात्मक धरातल पर शशि, रेखा और गौरा जैसे अमर स्त्री पात्रों का निर्माण किया। ये स्त्रियाँ अपनी परंपरा, युगीन मान्यताओं को तोडती हुई नजर आती है। ये पुराने दायरे को तोडकर मूल्यों और संवेदनाओं का नया घरौंदा बनाती है। नारी जीवन को 'आँसू' और 'दूध' से अलग करके उन्हें उसे एक नयी सार्थकता प्रदान करते हैं। उनके पास चुनाव की स्वतंत्रता है। वे अपने निर्णय ले सकती हैं। इन स्त्री पात्रों के भीतर प्रबल आत्मविश्वास हैं और निरंतर जीवन के अर्थ की तलाश में लगी हुई है। सहजता, निश्छलता और समर्पित प्रेम संवेदना ने उनके व्यक्तित्व को एक स्वतंत्र किस्म की निजता और गरिमा दी है। अज्ञेय द्वारा वर्णित स्त्री पात्र अपनी विशिष्टता और विभिन्नता में जिस दिशा में अग्रसर होती है वह स्वतंत्रता की ओर जाती है। किंतु मराठी के उपन्यासकार मर्ढेकर अपने तीनों उपन्यासों में 'स्वतंत्र स्त्री की छवि' उभारने का प्रयास करते नजर नहीं आते। विशेषतः उनके उपन्यासों में जो स्त्री पात्र आए हैं, वे सहायक या गौण रूप में। अधिकांश स्त्री पात्र ग्रामीण जीवन से संबंधित हैं अपवाद 'तांबडी माती' उपन्यास की सुलभा लिखिते। उसमें भी आत्मसंघर्ष या आत्मचेतना या आत्मशोध का अभाव दिखाई देता है। स्त्री पात्रों की दृष्टि से मर्ढेकर के उपन्यास परंपरा का निर्वहन करते हुए नजर आते हैं। अपनी स्वतंत्र मुद्रा अंकित नहीं कर पाते। विसादृश्यता का एक और महत्त्वपूर्ण बिंदू लक्षित होता है उभय रचनाकारों की वस्तुपरकता और अंतर्दृष्टि में भिन्नता। अज्ञेय आत्मनिष्ठ हैं तो मर्ढेकर उनसे भिन्न खडे होते दिखाई देते हैं। वे वस्तुनिष्ठ हैं। अज्ञेय जहाँ साहित्य में समाज रच रहे थे वही मर्ढेकर साहित्य को सीधे समाज से जोड रहे थे। अज्ञेय के साहित्य की मूल ध्वनि व्यक्तित्व चेतना की ओर प्रवाहित है। भिन्न परिवेश और भिन्न मानसिक बुनावट को जीते हुए व्यक्ति किस प्रकार कार्य व्यवहार करता है, इसे अज्ञेय दर्शाते हैं किंतु मर्ढेकर अपने सृजन में 'परिस्थिति बोध' को दर्शाना अपना उद्देश्य मानते हैं।

अज्ञेय ने अपनी औपन्यासिक संरचना में कथा परम्परा का नया प्रवर्त्तन किया। उन्होंने कथा परम्परा में वर्णन से बढ़कर चित्रण को केंद्र में रखा। किंतु मर्ढेकर चित्रण की अपेक्षा वर्णन को अधिक महत्त्व देते हैं। अज्ञेय के तीनों उपन्यास भिन्न कथा प्रविधियों से कथा लेखन की पद्धति के

हिंदी में नये प्रतिमान स्थापित करते हैं। किंतु मर्ढेकर नये सिद्धांतों या प्रतिमानों की अपेक्षा शैली की नयी उद्भावना (चेतना प्रवाह शैली) करते हैं।

अज्ञेय ने अपने उपन्यासों में शैली वैविध्य को अपनाया है। अपनी बात को पूरजोर तरीके से रखने के लिए शैली में वैविध्य लाना भी आवश्यक होता है। 'शेखर : एक जीवनी' में आत्मकथात्मक शैली, 'नदी के द्वीप' में पत्रशैली तथा 'अपने अपने अजनबी' में डायरी शैली का समुचित उपयोग किया है। अलावा इसके यथास्थान उद्धरण शैली, प्रत्यग्दर्शन शैली, चेतनाप्रवाह शैली और स्वप्न शैली का प्रयोग किया है। वही मर्ढेकर अपने तीनों उपन्यासों में निवेदन, स्वगत, चेतनाप्रवाह और पत्र शैली का अवलंब करते हुए दिखाई देते हैं। शैली की दृष्टि से अज्ञेय अधिक सशक्त हैं।

निष्कर्ष :

अज्ञेय और मर्ढेकर में कई समानताएँ और वैषम्य के रूप लक्षित होते हैं। उभय रचनाकारों की स्थूल विशेषताओं, समानताओं और वैषम्य का विवेचन किया जाय तो अज्ञेय और मर्ढेकर न केवल साहित्य में बल्कि जीवन में भी काफी कुछ समान ठहरते हैं। अनेक विधाओं के जादूगर, यायावर और जीवन के रसग्रहीता के रूप में दिखाई देते हैं। ये दोनों मौन और पीड़ा के कुशल चितेरे हैं। किंतु इस बात पर गौर किया जाना आवश्यक है कि भिन्न पृष्ठभूमियाँ, शिल्प शैलियों, संवेदनाओं के रचनाकार होते हुए भी अपनी पूर्णता में एक ही लक्ष्य की ओर जाते हैं, जिसे 'जीवन का सौंदर्य' कहा जाता है। अज्ञेय और मर्ढेकर तमाम समानताओं और विषमताओं के साथ उसी लक्ष्य तक ¯ÖÆãü“ÖŸÖê Æïü…

अर्थात् हिंदी साहित्य की परंपरा में अज्ञेय जितने श्रेष्ठ प्रतिमानों के मानदंड स्थापित करनेवाले सृजनधर्मी हैं उतना ही विशिष्ट और अद्वितीय स्थान मराठी साहित्य परंपरा में बा. सी. मर्ढेकर का रहा Æî…

■ ■ ■

ÃÖ¤ü³Ö ÃÖ“Öß:

1. शेखर : एक जीवनी, भाग- 1, अज्ञेय, भूमिका, पृष्ठ v
2. ¾ÖÆüß, ¯ÖéÂšü vii
3. ¾ÖÆüß, ¯ÖéÂšü viii
4. विजयमोहन सिंह, अज्ञेयःकथाकार और विचारक, पृष्ठ 14
5. अज्ञेय : एक अध्ययन, गुजरात युनिवर्सिटी, अहमदाबाद, प्रथम संस्करण 1983, ¯ÖéÂšü 188
6. ¾ÖÆüß, ¯ÖéÂšü 208
7. कथाकार अज्ञेय, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़, प्रथम संस्करण 1993, ¯ÖéÂšü 19
8. ¾ÖÆüß, ¯ÖéÂšü 47
9. आधुनिकता और हिंदी उपन्यास, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, आवृत्ति - 2011, ¯ÖéÂšü 31
10. अज्ञेय की औपन्यासिक संचेतना, शारदा प्रकाशन, नयी दिल्ली
11. ¾ÖÆüß, ¯ÖéÂšü 53
12. हिंदी उपन्यास : उपलब्धियाँ, पृष्ठ 45
13. हिंदी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव, पृष्ठ 142
14. अज्ञेय का कथा-साहित्य, अतुल प्रकाशन, कानपुर, सं. 1994, ¯ÖéÂšü 34
15. अज्ञेयःकथाकार और विचारक, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012, पृष्ठ 14
16. अज्ञेय, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, सं. 2012, ¯ÖéÂšü 99
17. अज्ञेय और उनका कथा साहित्य, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2010, ¯ÖéÂšü 147
18. नदी के द्वीप, भूमिका, नदी के द्वीप : क्यों और किसके लिए, पृष्ठ 16
19. ¾ÖÆüß, ¯ÖéÂšü 17
20. ¾ÖÆüß, ¯ÖéÂšü 17
21. नदी के द्वीप, पृष्ठ 253
22. ¾ÖÆüß, ¯ÖéÂšü 254
23. आधुनिकता और हिंदी उपन्यास, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, आवृत्ति 2011, ¯ÖéÂšü 41
24. अज्ञेय और उनका कथा साहित्य, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2010, ¯ÖéÂšü 102
25. अज्ञेय : कथाकार और विचारक, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012, ¯ÖéÂšü 35
26. अधूरे साक्षात्कार, वाणी प्रकाशन, तृतीय संस्करण 2002, ¯ÖéÂšü 22
27. कथाकार अज्ञेय, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़, प्रथम संस्करण 1993, ¯ÖéÂšü 91
28. अपने-अपने अजनबी, अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, तेईसवाँ संस्करण 2011, ¯ÖéÂšü 69

29. ´ÖÖ¬µÖ´Ö, †ŒÖüÖ²Ö¸ü 64, ¯ÖÂšü 91

30. ¾ÖÆüß, ¯ÖÂšü 92

31. ¾ÖÆüß, ¯ÖÂšü 92

32. ¾ÖÆüß, ¯ÖÂšü 92

33. ¾ÖÆüß, ¯ÖÂšü 93

34. ¾ÖÆüß, ¯ÖÂšü 93

35. ¾ÖÆüß, ¯ÖÂšü 94

36. ¾ÖÆüß, ¯ÖÂšü 94

37. ¾ÖÆüß, ¯ÖÂšü 94

38. ¾ÖÆüß, ¯ÖÂšü 93

39. अज्ञेय के उपन्यासों की शिल्पविधि, पृष्ठ 165, 167

40. अज्ञेय : एक अध्ययन

41. अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, छठा संस्करण 2011, ¯ÖÂšü 90

42. आधुनिकता और हिंदी उपन्यास, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं. 1981, ¯ÖÂšü 66

43. अज्ञेयः कथाकार और विचारक, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012

44. अज्ञेय, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, सं. 2012

45. कथाकार अज्ञेय, हरियाणा साहित्य अकादमी चण्डीगढ़, प्रथम संस्करण 1993, ¯ÖÂšü 115

46. अज्ञेय और उनका कथा-साहित्य, प्रथम संस्करण 2010, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 129

47. शेखर : एक जीवनी, भाग - 1, नेशनल पब्लिसिंग हाऊस, नई दिल्ली, सं. 2013, ¯ÖÂšü 5

48. शेखर : एक जीवनी भाग - 2, नेशनल पब्लिसिंग हाऊस, नई दिल्ली, सं. 2013, ¯ÖÂšü 215

49. कथाकार अज्ञेय, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़, सं. 1993, ¯ÖÂšü 53-54

50. ¾ÖÆüß

51. शेखर : एक जीवनी, भाग - 1, ¯ÖÂšü 75

52. शेखर : एक जीवनी

53. आधुनिकता और हिंदी उपन्यास, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं. 1981, ¯ÖÂšü 32

54. अज्ञेय : कथाकार और विचारक, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं. 2012, ¯ÖÂšü 7, 8

55. अज्ञेय, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, पृष्ठ 115

56. नदी के द्वीप, पृष्ठ 23

57. ¾ÖÆß, ¯ÖÂš 27

58. ¾ÖÆß, ¯ÖÂš 34

59. अज्ञेय : कथाकार और विचारक, पृष्ठ 37

60. अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, पृष्ठ 86-87

61. †–ÖµÖ, ¯ÖÂš 123

62. अपने अपने अजनबी, अज्ञेय

63. अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, पृष्ठ 96

64. अपने अपने अजनबी, पृष्ठ 63

65. अपने अपने अजनबी, पृष्ठ 118

66. †Ö•Ö †Ö¸ü †Ö•Ö ÃÖ ¯ÖÆ»Ö, ¯ÖÂš 252

67. कथाकार अज्ञेय, पृष्ठ 55

68. ¾ÖÆß, ¯ÖÂš 60

69. अज्ञेय का कथा-साहित्य, पृष्ठ 39

70. अज्ञेय और उनका कथा-साहित्य, पृष्ठ 178

71. अज्ञेय की औपन्यासिक संचेतना, पृष्ठ 57

72. अज्ञेय और उनका कथा साहित्य, पृष्ठ 183

73. कथाकार अज्ञेय, पृष्ठ 48

74. अज्ञेय : कथाकार और विचारक, पृष्ठ 32

75. अज्ञेय : एक अध्ययन, पृष्ठ 245

76. आधुनिक हिंदी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान, पृष्ठ 190

77. अज्ञेय और उनका कथा-साहित्य, पृष्ठ 183

78. रात्रीचा दिवस, मर्ढेकर, पृष्ठ 13

79. ¾ÖÆß, ¯ÖÂš 30-31

80. ¾ÖÆß, ¯ÖÂš 40

81. बाळ सीताराम मर्ढेकर, यशवंत मनोहर, साहित्य आणि समीक्षा, साहित्य अकादेमी, दिल्ली

82. कथानात्मक साहित्य आणि समीक्षा, डॉ. हरिश्चंद्र थोरात, पृष्ठ 505

83. ¾ÖÆß, ¯Ö. 53

84. ¾ÖÆß, ¯ÖÂš 53

85. मर्ढेकरांच्या कादंबऱ्या : एक शोध, पृष्ठ 34

86. धार आणि काठ, पृष्ठ 175
87. तांबडी माती, बा. सी. मर्ढेकर, पृष्ठ 83
88. ¾ÖÆß, ¯ÖÂšü 124
89. कथनात्मक साहित्य आणि समीक्षा, पृष्ठ 54
90. ¾ÖÆß, ¯ÖÂšü 124-125
91. साहित्य विचार, दि. के. बेडेकर, पृष्ठ 218-219
92. मर्ढेकरांच्या कादंबऱ्या : एक शोध, पृष्ठ 73
93. कादंबरीची आशयरूपे, पृष्ठ 126
94. मराठीतील कथनरूपे, पृष्ठ 139
95. पानी : बी. सी. मर्ढेकर, पृष्ठ 86
96. कथनात्मक साहित्य आणि समीक्षा, पृष्ठ 56
97. मर्ढेकरांच्या कादंबऱ्या : एक शोध, 16
98. बाळ सीताराम मर्ढेकर, पृष्ठ 86
99. ÃÖÖ×ÆüŸµÖ ÃÖ““Öß, •Ö»Ö 1993, लेख : 'पानी' वाट शोधणारा मर्ढेकरी कलाविष्कार, पृष्ठ 14
100. प्रतिष्ठान, मार्च 1993 मर्ढेकरांचे संज्ञाप्रवाहात्मक कादंबरी वाडमय, पृष्ठ 15
101. कादंबरीचा आशयवेध, पृष्ठ 128
102. मराठीतील कथनरूपे, पृष्ठ 139
103. ÃÖÖ×ÆüŸµÖ ×¾Ö““ÖÖ¸ü, ¯ÖÂšü 222
104. रात्रीचा दिवसचे प्रास्ताविक, पृष्ठ 220
105. तांबडी मातीचे प्रास्तविक, पृष्ठ 220
106. मर्ढेकरांच्या कादंबऱ्या : एक शोध, पृष्ठ 116
107. पाणी, बा. सी. मर्ढेकर, पृष्ठ 131
108. ¾ÖÆß, ¯ÖÂšü 211
109. साहित्य विचार, दि. के. बेडेकर पृष्ठ 221
110. धार आणि काठ, नरहर कुरूंदकर, पृष्ठ 176
111. ¸üÖ¡Öß““ÖÖ ×¤ü¾ÖÃÖ, ¯ÖÂšü 2-3
112. ¾ÖÆüß, ¯ÖÂšü 32-33
113. मर्ढेकरांच्या कादंबऱ्या : एक शोध, पृष्ठ 75
114. ¾ÖÆüß, ¯ÖÂšü 74

115. पाणी, पृष्ठ 208

116. एक यात्री के नोट्स, राजेंद्र यादव (संपादकीय) हंस, जून 2000, ¯ÖÂš 4

117. अज्ञेय, प्रकाशन विभाग, दिल्ली, पृष्ठ 104

118. अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, पृष्ठ 139

119. अज्ञेय की औपन्यासिक संचेतना, पृष्ठ 136

■ ■ ■

¯Ö“Ö´Ö †¬µÖÖµÖ

अज्ञेय और मर्ढेकर की समीक्षा का तुलनात्मक अध्ययन

¯Ö“Ö´Ö †¬µÖÖµÖ

अज्ञेय और मर्ढेकर की समीक्षा का तुलनात्मक अध्ययन

5.1 अज्ञेय की समीक्षा दृष्टि : एक अध्ययन

5.2 मर्ढेकर की समीक्षा दृष्टि : एक अध्ययन

5.3 अज्ञेय और मर्ढेकर की समीक्षा का तुलनात्मक अध्ययन

5.4 निष्कर्ष

5.1 अज्ञेय की समीक्षा दृष्टि : एक अध्ययन

प्रस्तावना :

अज्ञेय हिंदी के उन बिरले लेखकों में हैं जिन्होंने एक साथ अनेक विधाओं में लेखनी चलायी। पर लेखनी चलाना मात्र उनका उद्देश्य नहीं था, हर विधा की बारीकियाँ वे जानते थे। उन्हें उसमें गहरी पैठ हैं। सूक्ष्म अध्ययन, गहरा निरीक्षण और घोर चिंतन के चलते उनकी लेखनी अपने समय से लोहा लेती है। वे मूलतः श्रेष्ठ कवि हैं और उतने ही श्रेष्ठ कथाकार। किंतु डायरी, यात्रा-वृत्तांत, संपादक, पत्रकार तथा सुधी आलोचक के रूप में उनकी पहचान रही है। इसलिए उन्हें 'रचनाकार आलोचक' कहना अधिक संगत होगा। उनके समग्र साहित्य में 'मानव मुक्ति का स्वर' अंकित हुआ है। सर्जनशील मानस की अतृप्त अभिलाषा उनके साहित्य में अभिव्यक्त हुई है। वे समय के सजग प्रहरी हैं। युग की गहरी पहचान उन्हें हैं। अपनी बौद्धिक प्रतिक्रिया के द्वारा वे अपने समय, समाज और संस्कृति के अनेक आयाम खोलते हैं। साथ ही 'दर्शन को अनुभूति में घुलाने की राह निकालकर अपना नया रास्ता निर्माण करते हैं। चिंतन की गंभीरता उनके भीतर समायी हुई है। इसलिए एक चिंतनशील व्यक्तित्त्व की प्रतिभा का अहसास उनकी साहित्य समालोचना के अंतर्गत लक्षित होता है।

अज्ञेय एक ऐसे विलक्षण और विदग्ध रचनाकार हैं जिन्होंने साहित्य समीक्षा के अंतर्गत मौलिक अवदान दिया। वैसे उन्होंने विशुद्ध समीक्षा नहीं लिखी। किंतु आलोचनात्मक दृष्टि का गहरा परिचय अपनी कृतियों के द्वारा समय-समय पर देते रहें हैं। उनकी आलोचनात्मक दृष्टि का समग्र परिचय करानेवाली निम्न कृतियाँ हैं। जिसमें 'सर्जना और संदर्भ', 'केंद्र और परिधि', 'आत्मपरक', 'आत्मनेपद ' संवत्सर', 'स्त्रोत और सेतु'' भवंती', 'अन्तरा', 'शेषा', 'शाश्वती' शीर्षकांकित रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। 'सर्जना और संदर्भ' में साहित्य और साहित्यालोचना से जुडे छह अलग अलग संकलनों को एकत्र किया गया है। जिसमें त्रिशंकु, हिंदी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य, आलवाल, अद्यतन, जोगलिखी तथा धार और किनारे का समावेश होता है। 'केंद्र और परिधि' तथा 'आत्मपरक' के निबंधों में प्रयोग, परम्परा, आधुनिकता, संस्कृति, भाषा और रागात्मक बदलाव की झांकी मिलती है। 'आत्मनेपद' में काव्य, आख्यान, आलोचना और संस्कृति के संदर्भ मिलते हैं। तो 'अद्यतन' और 'युग संधियों पर' में व्यापक सामाजिक समस्याओं का विश्लेषण हुआ है। 'संवत्सर' तथा 'स्त्रोत और सेतु' में काल चिंतन और सृजन से संबंधित मूलभूत प्रश्नों पर चर्चा है। भवन्ती, अन्तरा, शेषा और शाश्वती में अज्ञेय के आलोचना चिंतन का सारसर्वस्व मिलता है। वस्तुतः अज्ञेय के चिंतन में औपनिवेशिक गुलामी से मुक्ति का स्वर अभिव्यक्त हुआ है। वे विद्रोही प्रवृत्ति के लेखक, आलोचक रहे हैं। विशेषतः अज्ञेय केवल आलोचक ही नहीं 'साहित्य व्यवस्थापक' की भूमिका में भी नजर आते हैं। उनके द्वारा संपादित 'तारसप्तक' हिंदी कविता और आलोचना के क्षेत्र में नया प्रवर्तन है।

'तारसप्तकों' की भूमिकाएँ आलोचना के नये बीज अंकित करने का माध्यम बनती है। इतना ही नहीं इन भूमिकाओं में जो नया चिंतन उभरता है, जिससे नयी अवधारणाओं का प्रवर्तन होता है। उन्होंने आलोचना के नये मानदंड स्थापित किए। सुव्यवस्थित प्रस्तुति, तार्किक सोच और समग्र दृष्टि के कारण उनकी आलोचना निरंतर नये का नेतृत्व करती है। क्योंकि एक आलोचक के पास जो आत्मबोध, ज्ञानबोध और विचारबोध होना चाहिए, वह उनके भीतर समादृत है। इसी कारण अज्ञेय-साहित्य के अध्येता तथा समीक्षक डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल लिखते हैं, "अज्ञेय में आत्मबोध, ज्ञानबोध और विचारबोध की जागृत क्लासिकल संवेदना है और इसी क्लासिकल संवेदना के मूल्य बोध ने उनके आलोचक का निर्माण एवं परिष्कार किया है।"[1]

अज्ञेय की आलोचना विवेक के विविध रंग :

अज्ञेय का व्यक्तित्त्व मूलतः चिंतनशील रहा है। उन्होंने समाज, साहित्य, संस्कृति और कला के विविध आयामों पर दृष्टिपात डाला है। उनकी विवेक सम्मत आलोचना विविध पर्तो को खोलती है। जीवन, साहित्य और संस्कृति का एक भी पक्ष उनकी नजर से अनदेखा नहीं रहा। भारतीयता की अवधारणा, आस्तित्विक प्रश्नों से टकराहट, समकालीन साहित्य चिंतन, स्वाधीनता बोध तथा मूल्यबोध, संप्रेषणीयता का प्रश्न, कविता की सृजन प्रक्रिया के बारे में चिंतन, नये सोच के दस्तावेज, काल चिंतन या कालबोध (स्मृति के परिदृश्य-स्मृति का देश और स्मृति का काल), अपने समय से बौद्धिक संवाद, सभ्यता के संकट, सांस्कृतिक चेतना, भाषा और समाज, रूढि और मौलिकता, सौंदर्यबोध और शिवत्व, परंपरा और आधुनिकता, राज्याश्रय और लेखक, इतिहास और स्वातंत्र्यबोध, लेखकीय स्वाधीनता, साहित्य की सामाजिक प्रतिबद्धता और संप्रेषणीयता, साधारणीकरण का प्रश्न, साहित्य और राजनीति, भाषा सौंदर्य, प्रासंगिकता, कला क्या है? धर्म, दर्शन, सप्तकों की भूमिकाएँ, काव्यभाषा, काव्यबिंब, कथाभाषा और संप्रेषण, कविता और छंद, लय और ध्वनिबोध, रचना का महत्त्व, रचना प्रक्रिया, रचना प्रेरणा और प्रभाव, व्यक्ति और समाज, परंपरा-प्रगति-प्रयोग, समय, समाज और परिवेश की चुनौतियों से मुठभेड, संस्कार और संवेदना, सत्य और तथ्य के नए रिश्ते, नये काव्यशास्त्र की खोज, नई भाषा, नई दृष्टि का अन्वेषण, वरण की स्वतंत्रता आदि बिंदूओं पर पटाक्षेप डाला है। इन तमाम विषयों पर अज्ञेय सोचते हैं, अपनी स्वतंत्र मुद्रा अंकित हैं। ये करते समय उनके पास यर्थार्थान्वेषी दृष्टि सजग रूप में विद्यमान हैं। उनके चिंतन पक्ष के ये तमाम बिंदू यही दर्शाते हैं कि अज्ञेय के पास चिंतन का विराट आकाश है। अनुभव की संपन्नता, विश्लेषण की अचूक क्षमता और चीजों को अनेक आयामों से देखने की विवेकी वृत्ति उनके भीतर हैं। इसलिए यह कहना अधिक युक्तिसंगत होगा कि चिंतन के भीतर चिंतन की बारीकी अज्ञेय की प्रवृत्ति रही हैं।

अज्ञेय के चिंतन में हिंदी आलोचना के बीज शब्द मिलते हैं। वे पहली बार भारतीय भाषा

और भारतीय साहित्य को भारतीय आधुनिकता और प्रयोगधर्मिता से जोडते हैं। बीसवीं सदी की मूलभूत अवधारणा 'स्वतंत्रता' को अपने सृजन और चिंतन में केंद्रीय स्थान देते हैं। 'स्वाधीनता बोध' उनकी तमाम रचनाओं का मूल स्वर बनकर उभरा है। इसी कारण डॉ. नंदकिशोर आचार्य मानते रहे हैं कि अज्ञेय के सभी निबंधों की केंद्रीय थीम' स्वातंत्र्य की तलाश' है। उनकी यही भारतीय आधुनिकता उन्हें न सिर्फ हिंदी बल्कि पूरे भारतीय साहित्य का 'क्लास' बनाती है। अज्ञेय के चिंतन में अपने समय का सजग प्रहरी बोलता है। जिसे अपनी वंचना के साथ ही लोगों की वंचना का और उनके तथाकथित नेतृत्त्व का दम भरनेवाले सत्तालोलूप वर्गों के दायित्वहीन आचरण का क्षोभ व्यक्त हुआ है। वह देश के रीढ़हीन बुद्धिजीवियों पर और समाज निरपेक्ष राजसत्ता पर एक साथ प्रहार करते हैं। हमारे समाज के सांस्कृतिक सत्व की उसे प्रदूषित विकृत करके समाज को तोड़नेवाली प्रवृत्तियों की जैसी खरी पहचान अज्ञेय को थी वैसी उनके समकालीनों को नहीं। आधुनिक सभ्यता के संकट की पहचान हम जिस तरह जयशंकर प्रसाद में पाते हैं, मानो उसका अगला सोपान अज्ञेय का कृतित्त्व है। सांस्कृतिक अस्मिता का उसके शोध का, और भी सजग अध्यवसाय हम अज्ञेय के कृतित्त्व और चिंतन के विकासक्रम में पाते हैं।

विद्रोही और प्रश्नाकुल रचनाकार अज्ञेय ने कविता, उपन्यास, कहानी, निबंध, नाटक, आलोचना, डायरी, यात्रा-वृत्तांत, संस्मरण, संपादन, अनुवाद, व्यवस्थापन, पत्रकारिता आदि विधाओं में लेखन किया। उनके क्रांतिकारी चिंतन ने प्रयोगवाद, नयी कविता और समकालीन सृजन में निरंतर नये प्रयोगों से नये सृजन के प्रतिमान निर्माण किए। अज्ञेय अपने युग के प्रहरी ही नहीं स्रष्टा भी थे। उनके लिए 'परंपरा कोई पोटली बांधकर रखा हुआ पाथेय' नहीं है। उनकी लडाई हमारे सामाजिक परिवेश में व्याप्त उस गुलाम मानसिकता और उस प्रश्नहीन उदासीनता से थी जो जीवंत संवेदना को आवश्यक बना देती है और परंपरा को भी पथराकर रख देती है। उसी को ललकारने, चेताने के उद्देश्य से भारतीयता के लक्षणों की चर्चा करते हुए सर्वप्रथम उसके ऋणात्मक पक्ष को उभारते हुए कहते हैं, "सनातन के बोध तक पहुँचते हम काल की यथार्थता का बोध भी खो देते हैं। इसी तरह स्वीकार की भावना भी दु:ख, दैन्य, अत्याचार के प्रति भी स्वीकार की भावना में परिणत हो जाती Æ..."

अज्ञेय अपने चिंतन के द्वारा 'भारतीयता' की खोज करते हैं। 'मेरी दृष्टि : मेरी सृष्टि' निबंध में भारतीयता के लक्षणों की तलाश करते हैं। इतना ही नहीं भारतीयता और आधुनिकता के द्वंद्वात्मक संबंधों की गहरी पहचान और इससे जुडा जैसा दायित्व सजग चिंतन अज्ञेय के यहाँ मिलता है। भारतीयता के अनेक आयामों का विश्लेषणात्मक चिंतन यहाँ देखने को मिलता है।

आलोचक राष्ट्र की बात सर्वप्रथम अज्ञेय ने ही उठाई थी। इसलिए कि उनका स्वतंत्रता

सेनानी रूप आजीवन बना रहा। 'आलोचक राष्ट्र' के निर्माण का संकल्प उठानेवाले अज्ञेय के लिए आलोचनात्मक जागरूकता सर्वथा स्वाभाविक थी। तभी तो वह दो टूक भाषा में यह विचलित करनेवाला प्रश्न पूछ सकते हैं, "स्वाधीनता के आधार दृढ़ करने के नाम पर ही व्यक्ति शासन के समक्ष अधिकाधिक असहाय, पराधीन और दिग्विमूढ़ क्यों होता जा रहा है।" वे आगे इसी सांस में यह भी कहते हैं कि "हमें राजनीति में इस प्रश्न का उत्तर नहीं खोजना है, बल्कि इस प्रश्न के उत्तर में सही राजनीति खोजनी हैं।" वे एकमात्र ऐसे भारतीय लेखक थे जिन्होंने समग्र भारतीय जीवन को आलोकित करने वाले दो लीला चरित्रों का भारतीय जनमानस पर क्या प्रभाव पड़ा है, इसे आंकने के लिए दो यात्राएँ सफलतापूर्वक आयोजित की। पहली यात्रा सीता जन्मस्थान से अयोध्या, प्रयाग होते हुए चित्रकूट की ओर, दूसरी ब्रज से आरंभ कर द्वारिका तक। अज्ञेय ने जीवनभर सांस्कृतिक रचनात्मक प्रयोग किए। इस सांस्कृतिक अभियान के साथ वे आधुनिकता का दामन पकड़ते हैं। उनकी आलोचक राष्ट्र के निर्माण की संकल्पना भारतीय आधुनिकता का पहला पड़ाव है। इसी बात की पुष्टि करने के लिए 'त्रिशंकु' के पहले ही निबंध 'संस्कृति और परिस्थिति' में लिखते हैं,"बिना गहरी और विस्मृत अनुभूति के संस्कृति नहीं है और बिना वैज्ञानिक, आलोचनात्मक ट्रेनिंग ऐसी अनुभूति नहीं है.......स्वस्थ संस्कृति में हम नागरिक को स्वतंत्र छोडकर आशा कर सकते हैं कि उसकी परिस्थिति से ही उसकी संस्कृति उत्पन्न और नियमित होगी। किंतु आज यदि हम जीवन के गौरव की रक्षा करना चाहते हैं तो हमें परखने और मुकाबला करने की शक्ति को संगठित करना होगा, हमें एक आलोचक राष्ट्र का निर्माण करना होगा।"

अज्ञेय जी की परंपरा के सृजनात्मक पक्ष की पकड उत्तरोत्तर गहरी होती गयी। यह आकस्मिक नहीं कि वे अपने जीवनादर्श को बारबार एक ओर सबकुछ को धारण करनेवाली प्रज्ञा पारमिता करूणा से और दूसरी ओर 'वैदिक अभयसाधना' से जोडकर देखते रहे। इसी प्रसंग में 'मेरी दृष्टि : मेरी सृष्टि' शीर्षक से अत्यंत विचारोत्तेजक निबंध है, जिसका उपर भी उल्लेख किया जा चुका है। अज्ञेय कहते हैं, "किसी मतवादी रूढि के अलग धर्म की उद्‌भावना को मैं संसार को भारतीय चिंतन की बडी देन मानता हूँ। यह इसके बावजूद कि आज मेरे समकालीन इसकी उपेक्षा करते हैं और धर्म में जिस संकीर्णता को संपूर्णतया अस्वीकार किया था उसी संकीर्णता के सहारे अपनी धार्मिकता की कसौटी करते हैं। संसार के किसी भी धर्म ने मनुष्य के मानस को उतनी स्वाधीनता का वातावरण नहीं दिया, जितना भारतीय धर्म ने। अवश्य ही इस समझ तक पहुँचने में मुझे समय लगा और यह भी नहीं कि यात्रा में मैंने ठोकरे न खायी। लेकिन यहाँ तक पहुँचने में मुझे जो सुख मिला उसे वे ही लोग समझ सकते हैं, जो निष्ठापूर्वक तीर्थयात्रा करके घर लौटते हैं।" अज्ञेय अपनी कविताओं में आत्मविस्मृत हो चुके जनभारती को जगाने के उद्देश्य से सांस्कृतिक दुरावस्था का पर्याप्त अहसास कराने के लिए

अनिवार्य आत्मलोचना करने के लिए सही आत्मबिंब को तलाशते हुए चुनौती स्वीकारते हैं। इन सबके पीछे उन्हें देश के नवनिर्माण की चिंता ही दिखाई देती है।

'हराभरा है देश। रूँधा मिट्टी में ताप। पोसता है विषवट का मूल। फलेंगे जिसमें शाप। पकेगा फल चखना होगा। उन्हीं को जो जीते हैं आज। जिन्हें हैं बहुत शील का ज्ञान। नहीं है लाज। तपी मिट्टी जो सोख ना ले। अरे क्या है इतना पानी? कि व्यर्थ है उद्‌बोधन आव्हान। व्यर्थ है कवि की बानी।"

वे कहते हैं, भारतीय धर्म में कोई ऐसी जटिल मतवादी शर्तें नहीं हैं, इसलिए पापबोध भी उतना प्रखर नहीं। इसी वजह से स्वाधीनता भी संकट में आ जाती है। आचरण की रूढियों में बंध जाने से समाज में विकृतियाँ आ जाती है और पाखंड पनपता है। अगर 'समग्र क्रांति' भी हो जाती है, तब भी उसके उपर प्रश्न चिह्न लगाते हुए वे कहते हैं, 'हमें मानव जीवन के संपूर्ण राजनीतिकरण के विषव्यूह को तोडना है, असल चुनौती तो यही है।'

अज्ञेय की आलोचना निश्चय ही युक्तायुक्त है और हम सभी का अनुभव इसकी पुष्टि करेगा। समग्र परिवेश की राजनीति में उन्होंने उस पाखंड का पर्दाफाश किया है, जिसके चलते हमारे नेता और सत्ताकामी बुद्धिगण, बुद्धिजीवी एक ही सांस में विकेंद्रीकरण और सांस्कृतिक बहुलता की बड़ी-बड़ी बातें करते हैं। मगर कोई ठोस उपाय के बारे में सोचते नहीं। अज्ञेय जी को लगता है कि आधुनिक सभ्यता का संकट विश्वव्यापी है। किन्तु यह संकट जिन्होंने उत्पन्न किया है, उनको अपनी परंपरा, अपने इतिहास के बारे में हमारी अपेक्षा निश्चय ही अधिक जागरूक रहना होगा।

'सर्जना और संदर्भ' में साहित्य और साहित्यालोचन से सम्बद्‌ध छह संकलनों (त्रिशंकु, हिंदी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य, आलवाल, अद्यतन, जोगलिखी, धार और किनारे) को एकत्र करके चिंतन की नयी भूमि का अवगाहन किया है। यह इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि लगभग सैंतालिस वर्ष की अवधि में लिखे गए इन निबंधों में भाषा, विचार और प्रवृत्ति सभी दृष्टि से असमान हैं।

समाज के प्रत्येक व्यक्ति का समाज के प्रति कुछ दायित्व होता है। समाज जितना कम विकसित हो, उतना ही दायित्व अधिक स्पष्ट और अनिवार्य होता है। इसी विचार को लेकर उनका शोध चलता है। इसलिए वे कहते हैं, "विकसित समाज में विकल्प की गुंजाइश कम रहती है, इस अपर्याप्तता के विरूद्ध कला विद्रोह करती है। टी. एस. एलियट ने कहा है, The More perpect the artist, the more completely separate in him will be the man who suffers and the mind which creats. (कलाकार जितना ही संपूर्ण होगा, उतना ही उसके भीतर भोगनेवाले प्राणी और रचनेवाली मनीषा का पृथकत्व स्पष्ट होगा।) कलाकार के रचनाओं की मौलिकता उसकी 'भिन्नता' पर आधारित नहीं होती। अज्ञेय जी का मानना है कि, 'हम पूर्ववर्ती लेखकों से इसलिए अलग हैं कि उनसे कहीं अधिक जानते हैं। वह अधिक क्या है? स्वयं हमारे पूर्ववर्ती लेखक

जिन्हें हम जानते हैं। यही परंपरा के निर्माण क्रिया का खुलासा है।"

अज्ञेय का कला-विषयक चिंतन मूलभूत चिंताओं से भरा हुआ है। उनके चिंतन पर टी. एस. इलियट का गहरा प्रभाव लक्षित होता है। विशेषतः 'निर्वेयक्तिकता' के सिद्धांत का प्रतिपादन अत्यंत प्रभावी रूप में भावित हुआ है। कला क्या है, के बारे में वे लिखते हैं, "कला सामाजिक अनुपयोगिता की अनुभूति के विरूद्ध अपने को प्रमाणित करने का प्रयत्न, अपर्याप्तता के विरूद्ध विद्रोह है।"[2] अर्थात् अज्ञेय का कला चिंतन संपूर्णता की ओर जाने का प्रयास है। वस्तुतः वे कला को आत्मदान का उपकरण मानते हैं। व्यक्ति के अहं के विलयन का साधन मानते हैं। वे कला को दो दृष्टि बिंदुओं से देखते हैं- कलाकार के और रसिक के। कला के संबंध में अज्ञेय द्वारा प्रतिपादित तीन स्थापनाएँ अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं-

1. कला की सामग्री को सीमित करना अनधिकार चेष्टा है।
2. परिस्थितियों को ध्यान में रखकर प्रेरणा पैदा करना।
3. साहित्य में प्रेरक शक्ति हो सकती है। किंतु वह साहित्यकार की आंतरिक क्षमता का स्वयंभूत फल है। इन स्थापनाओं को केंद्र में रखकर अज्ञेय के कला विषयक चिंतन का मूल्यांकन किया जाना चाहिए। वे जानते हैं कि, 'कला की सामग्री बदलती रहती है, कला शायद नहीं बदलती।' किंतु कलाकार को अतीत (परंपरा) का ज्ञान होना चाहिए। वस्तुतः कला मानव की आत्मा के आर्त चित्कार का सार्थक रूप है। आत्मानंद का वह सार्थक प्रतिपादन करती है। वह अनुभूतियों से छुटकारा नहीं बल्कि उनके मूल स्रोतों की पहचान कराती है। किंतु कला क्या है, बताते-बताते कला क्या नहीं हो सकतीं? इस पर अत्यंत सटीक भाष्य करते हैं। वे लिखते हैं, "कला कला के लिए झूठ नहीं है, वह अत्यंत सत्य है लेकिन एक विशेष अर्थ में। यदि कला कला के लिए का अर्थ है, निरे सौंदर्य की खोज किन्हीं विशेष सिद्धांतों के द्वारा एक रासायनिक सौंदर्य की उपलब्धि, तब वह कला कलाकार को कोई भी सुख नहीं दे सकती, न आत्मदान का, न आत्मबोध का, वह कला वंध्या है।"[3] आलोचक के पास एक 'प्रश्नाकुल' मन होना चाहिए, जो कि अज्ञेय के पास हैं। वे अपने आप से, समय से, समाज से, संस्कृति से और युगीन जीवन मूल्यों के बारे में कुछ सनातन प्रश्न उपस्थित करते हैं। व्यक्तित्व की खोज क्यों जरूरी है, बौद्धिक जागरूकता और मूल्य चेतना का क्या संबंध है, उसका हमारे समाज में क्या अर्थ है, स्वातंत्र्योत्तर (दास्योतर) भारत में मूल्यमूढता का प्रसार क्यों हुआ, सांस्कृतिक अस्मिता के बोध का किसी समाज के जीवन में क्या स्थान है, सर्जनात्मक भाषा कहाँ से आती है, ये सारे प्रश्न अज्ञेय को उद्वेलित करते हैं और यह आलोचक उसकी खोज में निकल पडता है। अज्ञेय के समग्र साहित्य और चिंतन में 'वरण की स्वतंत्रता' को सर्वोपरि स्थान मिलता है। वे बार-बार वरण की स्वतंत्रता के मूल्य का अवगाहन करते हैं। इसीलिए रमेशचंद्र शाह लिखते हैं,

"अज्ञेय बीसवीं सदी की प्रश्नाकुलता से उन्मथित, उत्कट बौद्धिक संस्कार वाले आधुनिक भारतीय लेखक हैं।"[4] इसीलिए अज्ञेय ने भारत के चौथे दशक को संशय का युग, अस्वीकार का युग माना है। वे अनेक जिज्ञासाओं को लेकर आते हैं। परंपरा, आधुनिकता, रूढ़ि, इतिहास, समय और संस्कृति से संबंधित कई जिज्ञासाओं का विवेचन विश्लेषण करते हैं। कुछ सिद्धांत निरूपण, कुछ ठोस निष्कर्षों तक पहुँचते हैं। इसी कारण प्रश्नाकुलता का सजग भाव उनकी आलोचनात्मक दृष्टि का एक अंग बन जाता है।

अज्ञेय की आलोचनात्मक दृष्टि के कुछ अंग है, जिनके माध्यम से उनका समग्र चिंतन प्रकट हुआ है। वे अंग हैं- अज्ञेय का साहित्य चिंतन, आधुनिक साहित्य का मूल्यांकन, संप्रेषणीयता और रचना प्रक्रिया, काव्यभाषा और अर्थ की नव्य सृष्टि तथा साहित्य की स्वायत्तता। ये वे बिंदु हैं जिनकी अभिव्यक्ति (सर्जनात्मक) उनके गहन चिंतन में हुई है।

अज्ञेय का साहित्य विषयक चिंतन आलोचनात्मक विवेक का प्रमाण है। उनमें वर्तमान के प्रति लगाव तथा वर्तमान को सुधारने की चिंता का आविर्भाव हुआ है। यह चिंता रचना और रचनाकार दोनों के प्रति हैं। वे मानते हैं कि "यथार्थ की अभिव्यक्ति और स्वानुभूति की अभिव्यक्ति से एक स्तर पर भिन्न बात करते हुए अज्ञेय रचनाकार की विशिष्टता को अंकित करते हैं।"[5] अज्ञेय ने साहित्य पर समाजशास्त्र के प्रभाव को दोष मानते हुए मनोविश्लेषण के प्रभाव को रेखांकित किया है। साहित्य के मूल्यांकन का एक निकष मनोविश्लेषण होना चाहिए, ऐसी उनकी प्रबल धारणा है। अज्ञेय का साहित्य विषयक चिंतन 'समकालीन' से जुड़ा हुआ है। वे मानते हैं कि 'समकालीनता एक वचनात्मक न होकर हर रचनाकार के लिए नए संदर्भों से संदर्भित बहुवचनात्मक स्थिति है।' समकालीनता का बोध 'परिस्थितिऔर साहित्यकार' निबंध में प्रखर रूप में अभिव्यक्त हुआ है। 'संस्कृति और परिस्थिति' निबंध में भी समकालीनता के आशयात्मक सौंदर्य को अंकित करते हैं। वर्तमान संकट की स्थिति को समझते हुए अज्ञेय ने अपना समग्र चिंतन प्रस्तुत किया है। वे लिखते हैं, "हमारी सारी प्रगति हमारे अस्तित्व का ही रूझान यांत्रिकता की ओर ही रहा है। यह यांत्रिकता कैसे हमारे जीवन को एक लीक में डाल रही है और परिणामतः कैसे जीवन घटिया और सस्ता और संस्कृति छिछली और बेजान हो रही है, इसकी पडताल हम नहीं करेंगे।"[6] अज्ञेय का मानना है कि साहित्य विवेचन और साहित्यिक आलोचना में 'मूल्य' और 'सौंदर्य' का विवेचन विशेष महत्त्व रखता है। इस विषय को अज्ञेय ने अपने एक लेख 'सौंदर्यबोध और शिवत्वबोध' में विश्लेषित किया है। वे सौंदर्यबोध को बुद्धि का व्यापार मानते हैं। क्योंकि मूल्यों का स्रोत मानव का विवेक ही है और मूल्यों का सृजन मानवी बुद्धि से निर्मित होता है। वस्तुतः अज्ञेय ने मानवीय संवेदना को नैतिक मूल्य के रूप में स्वीकारा है। नैतिक मूल्य याने शिवत्त्व के मूल्य। वस्तुतः सौंदर्य के मूल्य और शिवत्व के मूल्य

अलग-अलग हैं। किसी भी कृतिकार में उच्चकोटि का नैतिक बोध और उच्चकोटि का सौंदर्यबोध साथ-साथ चलते हैं। निष्कर्ष रूप में यह कहा जाता सकता है कि मानव का विवेक ही मूल्यों का स्रोत है। मूल्यों के बोध के द्वारा अज्ञेय मनुष्य के भीतर सांस्कृतिक बोध जगाना चाहते हैं। इसके लिए वे नये सिद्धांतों का प्रतिपादन करते हैं। जैसे- दीक्षागम्य काव्य की परंपरा, संध्या भाषा, कला बोध का जीवंत साक्षात्कार और आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में जीवन और साहित्य की समझ का विस्तार।

अज्ञेय ने पहली बार हिंदी आलोचना में कविता की सृजन प्रक्रिया पर सजगता से विचार किया है। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने ही पहली बार कविता पर उसके रचे जाने के कोण से विचार करने का सूत्रपात किया था। उनका मानना है कि कविता का स्फुरण अवचेतन के दबाव से होता है। रचना व्यापार में अवचेतन का खुला स्वीकार अज्ञेय में मिलता है। वे लिखते हैं कि "मैं क्यों लिखता हूँ? मैं इसलिए लिखता हूँ कि स्वयं जानना चाहता हूँ कि क्यों लिखता हूँ।" उनके साहित्य विषयक चिंतन के बारे में एक वाक्य में लिखना हो तो कहा जा सकता हैं- 'एक संवेदनाशील मस्तिष्क की सम्पृक्त विचार पद्धति'। कविता के बारे में अज्ञेय ने मूलभूत चिंतन किया है। अपने मूल भारतीय स्रोतों में धंसकर अज्ञेय ने कहा- "कविता भाषा में नहीं होती, वह शब्दों में भी नहीं होती, कविता शब्दों के बीच की नीरवताओं में होती है।"[7] काव्य सृजन प्रक्रिया में कवि मानस का कितना योग है, इसे अँग्रेजी कवि आलोचक टी. एस. इलियट द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत का हवाला दिया है। सृजन प्रक्रिया की तुलना एक रासायनिक क्रिया से की है। सल्फर डाईऑक्साईड और ऑक्सिजन के भरे हुए पात्र में यदि प्लाटिनम का चूर्ण प्रविष्ट किया जाय तो वे दोनों गैसे मिलकर सल्फ्यूरिक ॲसिड में परिवर्तित हो जाती है। यह क्रिया प्लाटिनम के बिना नहीं होती तथापि बननेवाले आम्ल में प्लाटिनम का कोई अंश नहीं होता। इतना ही नहीं प्लाटिनम में किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं होता, प्लाटिनम ज्यों का त्यों रह जाता है। इलियट कविमानस की तुलना इस प्लाटिनम के चूर्ण से करते हैं। कवि मानस की किन्हीं विभिन्न अनुभूतियों पर असर डालकर उसके मिश्रण और संगम का मानस बनता हैं, उस संगम से एक कलावस्तु निर्मित होती है जो विभिन्न तत्वों का जोड भर नहीं, उससे कुछ अधिक है, एक अत्यंतिक एकता रखती है। और जो बिना कवि मानस के माध्यम के अस्तित्व प्राप्त नहीं की जा सकती। इतना करने बावजूद कवि अलिप्त रहता है। इसलिए अज्ञेय कहते हैं, 'काव्य एक व्यक्तित्त्व नहीं, एक माध्यम की अभिव्यक्ति है।'

कविता निजी अनुभूति की मुक्ति, अभिव्यक्ति नहीं, वह अनुभूति से भी मुक्ति है, व्यक्तित्व का प्रकाशन नहीं, व्यक्तित्व से छुटकारा है। काव्य के लिए भावों का अस्तित्व कवि के व्यक्तित्व से नहीं, स्वयं काव्य में होता है।' इतना ही नहीं अज्ञेय यहाँ काव्यानुभूति को लेकर अपना मत व्यक्त करते हैं। अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति ही प्रामाणिक होती है, अनुभूति की प्रामाणिकता को मौन

तक ले जाते हैं, "मौन भी अभिव्यंजना है, उतना ही कहो, जितना तुम्हारा सच है।' कविता की उपयोगिता उसके कवि की उपयोगिता पर निर्भर होती है। यदि कवि जीवन के प्रति समर्पित नहीं है, तो कविता में भी पूर्णता नहीं आ सकती। "मैंने कविता का उपयोग नहीं करना चाहा, क्योंकि मैंने नहीं माना कि मेरे उपयोग करना चाहने से वह उपयोगी हो सकती है। जब मैं स्वयं उपयोगी हूँ, उसमें जीवन की पूर्णता तय है, जब मैंने पूर्ण जीवन के प्रति अपने को समर्पित किया है।" अज्ञेय का कविता के बारे में यह मुक्त चिंतन सर्जनात्मक आलोचना का उत्तम उदाहरण है। अज्ञेय के साहित्य विषयक चिंतन के बारे में अंततः राजेंद्र प्रसाद पांडेय के शब्दों में कहा जा सकता है, "अज्ञेय की आलोचना उनकी रचनात्मकता की फलश्रुति है तो उनकी रचनात्मकता में भी एक आलोचकीय तत्व विद्यमान हैं।"[8]

अज्ञेय की आलोचना दृष्टि का दूसरा महत्त्वपूर्ण पक्ष है- 'आधुनिक साहित्य का मूल्यांकन।' अज्ञेय ने सर्जनात्मक आलोचना के सिद्धांत निरूपण का सशक्त कार्य किया। किंतु अपने समय की रचनाशीलता से भी वे जुडे हुए हैं। वस्तुतः रचनाशीलता उस युग की आलोचना से गहरा सरोकार रखती है। अज्ञेय की वैचारिकी में व्यावहारिक आलोचना भी घटित होती है। सैद्धांतिक स्थापनाओं के साथ व्यावहारिक आकलन उनके यहाँ प्राप्त होता है। अपने समय के महत्वपूर्ण रचनाकारों एवं रचनाओं पर बेबाक टिप्पणी और आलोचना के द्वारा आधुनिक रचनाशीलता पर अपनी राय व्यक्त करते हैं। उनकी सर्वव्यापी दृष्टि ने अनेक आधुनिक रचनाकारों की सम्यक व्याख्या की है। प्रेमचंद, निराला, हजारीप्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, फणीश्वरनाथ रेणु, रामधारी सिंह दिनकर, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', माखनलाल चतुर्वेदी, रायकृष्ण दास, सरोजिनी नायडू, जैनेंद्र कुमार, बच्चन तथा महादेवी की रचनाशीलता का नया पाठ रचते हैं। किसी पर विस्तार से चर्चा करते हैं तो किसी पर संक्षेप में। कहीं-कहीं संस्मरणात्मक विवेचन हैं, तो साहित्यिक विश्लेषण और सिद्धांत विवेचन का स्वरूप भी दिखाई देता है।

प्रेमचंद और अज्ञेय के अत्यंत आत्मीय संबंध रहे हैं। वस्तुतः 'अज्ञेय' नाम प्रेमचंद की ही देन है। किंतु प्रेमचंद और अज्ञेय का सृजनात्मक धरातल भिन्न है। बावजूद इसके प्रेमचंद के कथा साहित्य का बहुत ही मार्मिक और सूक्ष्म विवेचन अज्ञेय करते हैं। प्रेमचंद के साहित्य की व्यापकता, विराटता और वैविध्यता की प्रशंसा करते हुए अज्ञेय लिखते हैं, "विशेष रूप से प्रेमचंद के कृतित्व के जितने बडे व्यास का उल्लेख मैं कर रहा हूँ, उसके लिए तो कोई दूसरा उदाहरण भारतीय साहित्य में है भी नहीं।"[9] साथ ही आधुनिक उपन्यास की परंपरा में प्रेमचंद को प्रथम आधुनिक उपन्यासकार मानते हैं। विशेषतः प्रेमचंद के साहित्य की जमीन का परिचय देते हुए उनके शैलीगत वैशिष्टये को उजागर करते हैं। प्रेमचंद ने केवल पाठकप्रिय साहित्य ही नहीं लिखा, बल्कि एक नया पाठक वर्ग (सहयात्री) भी निर्मित किया। इसी बात को साधते हुए अज्ञेय लिखते हैं, "प्रेमचंद किस्सागोई की

जमीन से उठकर समाज सुधार और आदर्शवाद के गलियारों से गुजरते हुए राजनीतिक चिंतन की ओर आए। थे और उनकी विचार यात्रा उनकी रचनाओं में स्पष्ट प्रतिबिंबित है। कोई भी सहृदय पाठक उनका सहयात्री हो सकता है। उस सहयात्रा में वह यह भी देखेगा कि प्रेमचंद जी के विचार उन्हें राजनीतिक मनुष्य के निकट ले आते हैं लेकिन न व्यावहारिक राजनीतिक बनाते हैं और न उस व्यवहार की ओर आकृष्ट करते हैं।"[10] प्रेमचंद उत्कृष्ट संवेदना के लेखक हैं। उनके साहित्य में, विशेषतः 'गोदान' में अज्ञेय 'महाकरूणा' को देखते हैं। होरी को वे करूणा का प्रतीक पुरूष मानते हैं। अर्थात् हिंदी उपन्यासों की, विशेषतः आधुनिक उपन्यासों की परंपरा में प्रेमचंद की तीन प्रमुख विशेषताओं को रेखांकित करते हैं। एक, महान चरित्रों की रचना। दो, नैतिक यथार्थ की पक्षधरता और नैतिक संसार की वास्तविकता। तीन, हिंदी उपन्यास की परंपरा का निर्माण करना। किंतु अज्ञेय प्रेमचंद के उपन्यास साहित्य की सीमाएँ भी बताते हैं। वे 'गोदान' में व्याप्त दोष की ओर संकेत करते हुए लिखते हैं, "गोदान में भी दोष हैं- उसका उच्चवर्ग वैसा यथार्थ और विश्वासोत्पादक नहीं है जैसा कि कुछ विदेशी लेखकों का (उदाहरणतया गाल्सवार्दी का फारसाइट परिवार) 'गोदान' में होरी ही यथार्थ है, न कि मेहता, लेकिन यह दोष या तो परिचय की कमी का परिणाम है या व्यक्ति के बजाए टाइप रचने की वृत्ति का, 'इच्छित विश्वास' या 'आश्रय की मांग' का यही।"[11]

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की रचनायात्रा छायावाद, प्रगतिवाद तथा प्रयोगवाद के समांतर चलती है। नयी कविता के दौर में भी निराला सक्रिय रहे। अज्ञेय और निराला के बीच आत्मीय संबंध थे। निराला के प्रति अज्ञेय के मन में अत्यंत आदरभाव था। ठीक उसी तरह निराला भी अज्ञेय को एक महान रचनाकार के रूप में मानते थे। निराला ने अज्ञेय को 'अर्चना' काव्यसंग्रह की प्रति भेंट करते हुए लिखा था, To Ajneye, The Poet, Writer and Novelist in the Foremost rank."[10] अज्ञेय ने निराला के साहित्य का अत्यंत वस्तुनिष्ठ एवं स्वतंत्र विश्लेषण और मूल्यांकन किया है। 'तुलसीदास' में व्यक्त सांस्कृतिक चेतना, उसकी रचनात्मक विशेषता और प्रभावाभिव्यंजकता का उल्लेख किया है। साथ ही 'गीतिका' का भी एक नया पाठ रचा है।

सुमित्रानंदन पंत को अज्ञेय ने 'स्वरसिद्ध कवि' कहा है। पंत में शब्द चयन का अगाध ज्ञान हैं, इसी बात की वे प्रशंसा करते हैं। "शब्द ध्वनियों के प्रति जैसी सजगता सुमित्रानंदन पंत में थी, वैसी मैंने हिंदी के किसी दूसरे कवि में नहीं देखी, निराला में भी नहीं, स्वयं निराला पंत को अतुकांत काव्य का अविष्कारक मानते हैं।"[12] इतना ही नहीं अज्ञेय ने स्वर मात्रा के प्रति सजगता के संदर्भ में पंत और कीटस् की तुलना की है। अज्ञेय ने पंत के अवदान का जो मूल्यांकन किया है, उससे असहमत होने का कोई कारण नहीं है। विशेषतः पंत में समादृत 'स्वर सौंदर्य' की वे खूब प्रशंसा करते हैं।

अज्ञेय ने 'परिस्थिति और साहित्याकार' निबंध में जयशंकर प्रसाद की काव्यगत विशेषताओं

पर प्रकाश डाला है। वे प्रसाद को प्रौढ, विकसित और जागरूक कवि मानते हैं। प्रसाद की ओर नए दृष्टिकोण से देखने का यहाँ प्रयास है। वे प्रसाद की रचनाशीलता का सबसे बड़ा वैशिष्टये 'इतिहास का आधुनिक परिप्रेक्ष्य में पुनर्सृजन ' को मानते हैं' साथ ही अनुभूति से मुक्ति और चेतना से मुक्ति के बीच के अंतर को रेखांकित करते हैं।

अज्ञेय ने फणीश्वरनाथ रेणु के रचनाकर्म पर नये रूप में प्रकाश डाला है। वे रेणु में व्याप्त सामाजिक सरोकार और 'आम आदमी' की चिंताओं से हमें जोड़ते हैं। साथ ही 'व्यक्ति की विलक्षणता या अद्वितीयता' को रेणु के साहित्य का प्रधान लक्षण मानते हैं। रेणु की रचनाओं - मैला आँचल, परती परिकथा, दीर्घतपा, जुलुस, ठुमरी, अगिनखोर आदि रचनाओं का मूल्यांकन करते हैं। रेणु को प्रेमचंद का उत्तराधिकारी बताते हुए उनके साहित्य में व्याप्त मिट्टी की सौंधी खुश्बू का परिचय देते हुए लिखते हैं, "रेणु सचमुच धरती के धनी थे, वह हाथ बढाते थे और वसुंधरा की संपदा आपसे आप उनके हाथ आ जाती थी, मिट्टी की ताजा महक लिए हुए, आतुर रस-शिराओं से स्पंदमान, एक साथ ही निरी माटी और एक जीव संरचना यही तो होती है, कारयित्री, भावयित्री, रूपयित्री प्रतिभा, जो पहचाने को नया और अजनबी की पहचान करती हुई सामने ला खडी करती है।"[13] †–ÖµÖ ¯Ö´Ö“Ö¤ और रेणु के कथा-साहित्य का तुलनात्मक विश्लेषण भी करते हैं। वे बताते हैं कि प्रेमचंद के यहाँ गांव का चित्रण आदर्शवाद से भरा हुआ है किंतु रेणु की कृतियों में गांव कमीनगी, गजालत के साथ अखंड मानवी विश्वास की चिंगारी से सुलगता है। रेणु की कृतियों में कारुण्य विनोद का पुट लेकर कैसे आता है, इसे सोदाहरण समझाते हैं।

अज्ञेय रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित 'उर्वशी', आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का सांस्कृतिक बोध, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', माखनलाल चतुर्वेदी, सरोजिनी नायडु की विशिष्टताओं को भी रेखांकित करते हैं। यह समग्र मूल्यांकन संवेदना और संप्रेषण की दृष्टि से किया गया है। किंतु सबसे अधिक वे प्रभावित हैं- मैथिलीशरण गुप्त से। उन्होंने मैथिलीशरण गुप्त को अपना काव्यगुरू भी माना है। अपने 'दद्दा' के प्रति जितना आदर और श्रद्धाभाव से देखते हैं, वहीं वे उनकी रचनाओं की सीमाओं को भी बताना नहीं भूलते। वे गुप्त जी को 'प्रसन्न आधुनिक' कहते हैं। गुप्त द्वारा रचित हिंदू, यशोधरा, पंचवटी, साकेत, जयद्रथ वध आदि में सांस्कृतिक चेतना, राष्ट्रीयता की भावना और अस्मिता बोध को देखते हैं। वे लिखते हैं, "आधुनिकता को बहुत से लोग खंडित व्यक्तित्त्व और संत्रास के साथ जोडते हैं, लेकिन दद्दा लगातार उस रेखा पर जीते थे, जहाँ यह विरोधाभास निरंतर हल होता चलता है। उन्हें 'सांस्कृतिक राष्ट्रीयतावादी' भी कहा जा सकता है और उतनी ही सच्चाई के साथ 'मानवतावादी और वैष्णव' तो वह थे ही। शायद इन विरोधाभासों का लगातार निर्वाह ही उनकी असली चुनौती है और शायद इसलिए एक अतिरिक्त अर्थ में भी वह विरोधाभासों के संगम पर

पनपने वाले इस प्राचीन देश, किंतु नए राष्ट्र के कवि हैं।"[14] वे गुप्त जी के काव्य में स्वदेशानुराग और जागरण का स्वर प्रमुख रूप में पाते हैं। उनकी रचनाओं में दर्शन का सर्वसमावेशी रूप तथा समग्र चेतना का भी स्वर पकडते हैं।

अज्ञेय ने जैनेंद्रकुमार की रचनाओं का भी भाष्य प्रस्तुत किया है। वे जैनेंद्रकुमार को समस्यामूलक अभिव्यक्ति का रचनाकार मानते हैं। जैनेंद्र की रचनाओं का स्थायी भाव उनके दर्शन में, विचार में देखते हैं। व्यक्ति के भीतर समाविष्ट 'कुंठा भाव' का वर्णन करनेवाले लेखक के रूप में जैनेंद्र कुमार का मूल्यांकन करते हैं। उनका मानना है कि यह लेखक सामाजिक यथार्थ का मार्मिक उद्‌घाटन करता है। किंतु अज्ञेय केवल आधुनिक साहित्य पर ही भाष्य नहीं करते, बल्कि मध्ययुगीन भक्ति साहित्य और रीति काव्य के अनछूए पहलुओं पर भी प्रकाश डालते हैं। केशव, कबीर आदि पर किया गया उनका लेखन इन दोनों कवियों को समझने में सहायक हो सकता है। बावजूद इसके कि कुछ मतों को लेकर सहमत होना संभव नहीं है।

कुल मिलाकर अज्ञेय ने आधुनिक साहित्य के मूल्यांकन में बडा योग दिया है। परंपरागत साहित्य दृष्टि और मूल्यांकन की परिपाटी छोडकर अज्ञेय ने अपने पूर्ववर्ती, समकालीन और उत्तरवर्तियों के रचना कर्म का आख्यान प्रस्तुत किया है। इसलिए निराला, हजारीप्रसाद द्विवेदी, पंत, जैनेंद्रकुमार, प्रेमचंद, रेणु, दिनकर, गुप्त जैसे रचनाकारों के कृतित्त्व को समझने के लिए अज्ञेय की व्यावहारिक समीक्षा को पढना नितांत आवश्यक है।

अज्ञेय ने अपने आलोचनात्मक चिंतन में 'संप्रेषणीयता और रचना प्रक्रिया' को सर्वाधिक महत्त्व दिया है। रचना प्रक्रिया, संप्रेषण और साधारणीकरण के पुराने काव्यशास्त्रीय प्रश्नों को व्यावहारिक समीक्षा के अंतर्गत स्थान देते हुए नयी रचनाशीलता का परिचय दिया है। साधारणीकरण और संप्रेषण की कवि के लिए सबसे बडी समस्या माना है। इसलिए 'तारसप्तक' की भूमिका में वे लिखते हैं, "यह आज के कवि की सबसे बडी समस्या है। यों समस्याएँ अनेक हैं काव्य विषय की, सामाजिक उत्तरदायित्व की, संवेदना के पुनः संस्कार की, किंतु उन सबका स्थान इन सबके पीछे हैं, क्योंकि यह कवि कर्म की सबसे मौलिक समस्या है। साधारणीकरण और कम्यूनिकेशन (संप्रेषण) समस्या है, और कवि को प्रयोगशीलता की ओर प्रेरित करने वाली सबसे बडी शक्ति यही है। कवि अनुभव करता है कि भाषा का पुराना व्याकरण उसमें नहीं है- शब्दों के साधारण अर्थ से बडा अर्थ हम उसमें भरना चाहते हैं, पर उस बडे अर्थ को पाठक के मन में उतार देने के साधन अपर्याप्त हैं, वह या तो अर्थ कम पाता है या कुछ भिन्न पाता है।"[15] नया अर्थ भरना और अर्थानुसंधान करना आज के कवि के लिए अज्ञेय सबसे बडी चुनौती मानते हैं।

अज्ञेय ने साधारणीकरण और संप्रेषण को परिभाषित किया। रचना की महत्ता, संप्रेषण की

चुनौतियाँ और समस्याओं पर विभिन्न कोणों से विचार किया। काव्य में साधारणीकरण की प्रक्रिया कैसे घटित होती है? तथा सृजन प्रक्रिया में संप्रेषण का व्यापार कैसे होता है? आदि प्रश्नों के आलोक में वे चिंतन करते हैं। साधारणीकरण के बारे में उनका कहना है कि 'जब चमत्कारिक अर्थ मर जाता है और अभिधेय बन जाता है तब उस शब्द की रागात्मक शक्ति क्षीण हो जाती है। उस अर्थ में रागात्मक संबंध स्थापित नहीं होता। कवि तब उस अर्थ की प्रतिपत्ति करता है, जिससे पुनः राग का संचार हो। साधारणीकरण का अर्थ यही है। नहीं तो अगर भाव भी वहीं जाने पुराने हैं, रस भी और संचारी व्यभिचारी सबकी तालिकाएँ बन चुकी हैं, तो कवि के लिए नया करने को क्या रह गया है? क्या है जो कविता को आवृत्ति नहीं, सृष्टि का गौरव दे सकता है। साधारणीकरण की समस्या पर अज्ञेय ने विस्तार से विवेचन किया है। कई आलोचकों ने यह आरोप लगाया कि अज्ञेय रस सिद्धांत को नकारते हैं, किंतु अज्ञेय के इस मामले में स्पष्ट विचार है। विशेषतः वे रस को साधारणीकरण से जोडकर देखते हैं। उनका मानना है कि जब प्रतीक, उपमान मैले पड जाते हैं, तो उसे मांजना पडता है, उसमें नया अर्थ भरना पडता है। पुराने शब्दों में नया अर्थ भरने की आवश्यकता महसूस करते हैं। इसलिए वे इन दोनों प्रश्नों से जूझते हैं।

अज्ञेय का आलोचक संप्रेषण की समस्या से जूझता है। इसलिए 'यथार्थ संप्रेषण : कथा भाषा की समस्याएँ', 'भारतीय साहित्य : तुलनात्मक दृष्टि', 'साहित्यकार और सामाजिक प्रतिबद्धता' आदि निबंधों के माध्यम से गहरी चिंतनशीलता का परिचय देते हैं। संप्रेषण की प्रक्रिया में संप्रेषण और संप्रेष्य या ग्राहक में समान अनुभूतियों का होना आवश्यक मानते हैं। इसे ही भारतीय काव्यशास्त्र में 'सहृदय' कहा गया है। वे भट्ट नायक से लेकर अभिनव गुप्त और विश्वनाथ के 'सचेतस' से लेकर रिचर्डस के चिंतन का परिप्रेक्ष्य अंकित करते हैं। आई. ए. रिचर्डस, टी. एस. इलियट और लारेंस के प्रभाव को सहर्ष स्वीकार करते हैं। अज्ञेय ने संप्रेषण की समस्या का हल भी बताया है। वे मानते हैं कि यह प्रश्न कवि की प्रयोगशीलता से जुडा हुआ है। इसलिए वे प्रयोगधर्मिता पर बल देते हुए कहते हैं, "जो व्यक्ति का अनुभूत है, उसे समष्टि तक कैसे संपूर्णता में पहूँचाया जाए, यह पहली समस्या है, जो प्रयोगशीलता को ललकारती है।"[16] इस चुनौती को नये कवि को स्वीकार करना चाहिए, ऐसा वे मानते हैं। अज्ञेय बलपूर्वक बताते हैं कि नया कवि साधारणीकरण के प्रश्न को फिर से उठाता है। वह नए संदर्भों में साधारणीकरण करता है। अज्ञेय साधारणीकरण को नये परिप्रेक्ष्य में देखते हैं। छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नयी कविता तक आते-आते साधारणीकरण के बदलते संदर्भों की गहरी पडताल करते हैं। भाषा, प्रेषणीयता और साधारणीकरण के प्रश्न से पाठकों (सहृदय) को जोडते हैं। इन काव्य मूल्यों के प्रति एक नयी लोकतांत्रिक दृष्टि विकसित करते हैं। वस्तुतः संप्रेषणीयता का प्रश्न रचना-प्रक्रिया से जुडा हुआ है। ऐसी स्थिति में कविता की रचना प्रक्रिया पर हिंदी में पहली बार

चिंतन व्यक्त करते हैं। अज्ञेय की रचना-प्रक्रिया की धारणा पर टी. एस. इलियट के विचारों का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है, "कविता भावों का सहज उच्छलन नहीं, अपितु उससे पलायन है, यह व्यक्तित्त्व की अभिव्यक्ति नहीं, अपितु उससे पलायन हैं।" वस्तुतः इलियट का यह कथन वर्डस्वर्थ की मान्यता का खंडन करने वाला है। अज्ञेय ने रचनाप्रक्रिया के बारे में अपना चिंतन रखते हुए कवि प्रतिभा को सर्वाधिक महत्त्व दिया है। वे मानते हैं कि सृजनशील मानस में कलात्मक अनुभूति या संवेदना का होना आवश्यक है। साथ ही संप्रेषण के प्रति तटस्थ भाव हो। अर्थात् कोई भी कलाकार जब अपनी अनुभूतियों का प्रेषण कराता है, विशेषतः अपने सुख, दुःख, अपनी व्यथा-कथा-इसमें व्यक्तिगत संबंध या लगाव न हो बल्कि उन व्यथाओं, दुःखों का साधारणीकरण होना चाहिए।"

इस समग्र विश्लेषण का सारांश यही है कि अज्ञेय जैसे रचनाकार आलोचक ने न केवल संप्रेषण की समस्या को उठाया बल्कि साधारणीकरण के पुराने प्रश्न को नए ढंग से प्रस्तुत किया। उसे नयी रचनाशीलता से जोडा। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि अज्ञेय भारतीय काव्यशास्त्रीय परंपरा के एक मूलभूत प्रश्न पर पुनर्विचार करते दिखाई देते हैं। पर वास्तविकता ये भी है कि वे उसकी एक नयी व्याख्या भी प्रस्तुत करते हैं। इन्हें अमूर्तन की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। ये प्रश्न अनिवार्य रचनाशीलता से संबंधित प्रश्न है।

अज्ञेय के आलोचना विवेक का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है- 'काव्यभाषा और अर्थ की सृष्टि।' काव्यभाषा रचनाशीलता की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण इकाई है। अज्ञेय के चिंतन में काव्यभाषा को लेकर स्वतंत्र अभिव्यक्ति हुई है। सामान्य भाषा से लेकर साहित्यिक भाषा तक के सौंदर्य पर अज्ञेय विचार करते हैं। रचना में कोई भी भावाभिव्यक्ति शब्दों के माध्यम से अर्थ ग्रहण करती है। अज्ञेय ने इस संपूर्ण रचना व्यापार का गहन चिंतन किया है। पर वे भाषा के प्रति अत्यंत सजग हैं क्योंकि वे मानते हैं, 'मानवीय संस्कृति की सबसे मूल्यवान उपलब्धि भाषा है। और भाषा ही समाज जीवन का मूल्यवान उपकरण है। भाषा के अविष्कार में मानवीय अस्मिता का अविष्कार होता है। उसकी सृष्टि होती है। भाषा के अंगभूत सौंदर्य को वे काव्य के सौंदर्य के साथ जोडकर देखते हैं। विशेषतः उनका बीज चिंतन भाषा पर ही केंद्रित रहा है। उनके विचार में 'भाषा ही स्मृति है, परंपरा है, इतिहास है, मिथक है, ज्ञान है, पुराण है, अस्तित्व है, व्यक्तित्व है। भाषा पूरा देश और संस्कृति है।' क्योंकि भाषा के साथ संस्कृति का सवाल जुडा हुआ है। इसलिए अज्ञेय में 'संस्कृति बोध' गहन रूप में देखने को x´Ö»ÖŸÖÖ Æî…

अज्ञेय ने भाषा की रचनाशीलता को मुख्य प्रश्न मानते हुए 'तारसप्तक' में मुक्त चिंतन किया है। 'तारसप्तक' की भूमिकाएँ अज्ञेय की साहित्य समीक्षा विषयक समझ का विस्तार है। वे कवि जीवन में अर्थवान शब्द की समस्या को प्रमुख मानते हैं। इसलिए 'शब्द और सत्य' जैसी यथार्थपूर्ण

कविता की सर्जना करते हैं। ध्वनि, लय, छंद को काव्य में महत्त्व देते हुए उसके उपादानों की चर्चा करते हैं। ठीक उसी समय 'कलगी बाजरे की' जैसी कविता की सर्जना करते हैं, जिसके माध्यम से शब्द और सत्य के बीच के अंतर्विरोध को पार कर जीवन सत्य और काव्य सत्य पाना चाहते हैं। यह कविता नयी प्रतीक व्यवस्था का आग्रह करती है।

काव्यभाषा के अंतर्गत उन्होंने रचनाकार की प्रामाणिक अनुभूति के प्रेषण को सर्वाधिक महत्त्व दिया है। 'मौन भी अभिव्यंजना है, उतना ही कहो जितना तुम्हारा सच है', यह अज्ञेय के भाषाविषयक चिंतन का एक महत्त्वपूर्ण आयाम है। आ. रामचंद्र शुक्ल, आई. ए. रिचर्डस, कॉलरिज और वर्डस्वर्थ को पचाकर काव्य भाषा का एक नया संस्करण पाना चाहते हैं। भाषा के इस प्रश्न को शब्द और अर्थ के साथ जोडकर देखते हैं। आलोचक अज्ञेय की यह चिंता दूसरे और तीसरे तारसप्तक तक फैली हुई है। भाषा में लय, उक्ति वैचित्र्य और अर्थ संप्रेषण को महत्त्व देते हैं। अर्थात् काव्यभाषा पर किया गया यह सूक्ष्म विश्लेषण उनकी अदभूत चिंतनशीलता का परिचय देता है। किंतु अज्ञेय काव्य भाषा के बाह्य पक्ष पर ही विचार नहीं करते। उसकी अंतर्वस्तु पर भी प्रकाश डालते हैं। कविता की संरचना, संघटन, प्रतीक व्यवस्था, बिंब विधान के बिना कविता नहीं हो सकती। कविता के ये अंतर्भूत तत्व हैं, जो काव्य भाषा को अर्थवाही बनाते हैं। अज्ञेय का यह काव्य भाषा से संबंधित चिंतन उत्तरवर्ती कवियों पर भी प्रभाव डालता है।

नयी कविता के मूल्यांकन में अज्ञेय की काव्यभाषा संबंधी मान्यताओं का समर्थन डॉ. नामवर सिंह करते हैं। हालांकि दोनों के दृष्टिकोण में भिन्नता होने के बावजूद 'तारसप्तक' में उद्धृत अज्ञेय के वक्तव्य का हवाला देते हैं। डॉ. नामवर सिंह कहते हैं "कविता ही कवि का परम वक्तव्य है, 'तारसप्तक' में अज्ञेय का यह वक्तव्य ऐतिहासिक महत्व रखता है। नयी कविता की आलोचना में इस वक्तव्य का निर्वाह दृढ़ता से हुआ होता तो आज स्थिति कुछ और हुई होती।"[17] अज्ञेय ने काव्यभाषा पर विचार कर 'अर्थ की नव्य सृष्टि' का भी परिचय दिया है।

इस समग्र विश्लेषण से यही स्पष्ट होता है कि अज्ञेय का भाषा संबंधी चिंतन प्रतीकवादी, बिंबवादी, रूपवादी कहकर खारिज नहीं किया जा सकता। रचनाकार, सहृदय पाठक को समझना चाहिए। इसे समझना ही आलोचक अज्ञेय के भाषा संबंधी चिंतन को समझना है।

अज्ञेय की आलोचना दृष्टि का एक महत्वपूर्ण बिंदू है- 'साहित्य की स्वायत्तता।' अज्ञेय ने अपने विचार दर्शन से साहित्य की स्वायत्तता को बडा महत्व दिया है। साहित्य स्वतंत्र एवं स्वायत्त सृष्टि है, ऐसा उनका मानना है। साहित्य और विचारधारा, साहित्य और दर्शन, साहित्य और मतवाद, साहित्य और सामाजिक यथार्थ, साहित्य और सामाजिक परिवर्तन आदि दृष्टियों से साहित्य की ओर देखने की एक परंपरा यहाँ रही है। साहित्य और प्रतिबद्धता को लेकर भी यहाँ बात होती रही। अज्ञेय

ने साहित्य और समाज के अभिन्न संबंधों को स्वीकार किया है। वे यह मानते हैं कि साहित्य की समाज परिवर्तन में भूमिका होती है। लेकिन वह भूमिका कैसी हो, कितनी हो, वह कहाँ तक छूता है आदि मुद्दों पर उन्होंने दो टूक बात रखी है। वे कहते हैं, "अगर मैं मानता भी हूँ कि समाज को बदलने में साहित्य का योग होता है कि उसमें साहित्यकार की भी कुछ जिम्मेदारी होती है, तो भी आप साहित्यिक रचना और सामाजिक परिवर्तन ऐसा सीधा समीकरण बनाया जा रहा है, उसे मैं बिलकुल नहीं स्वीकार करता। मैं समझता हूँ कि पिछले लगभग पचास वर्षों से इस तरह का सीधा संबंध बनाने और सिद्ध करने का जो एक प्रयत्न होता रहा है उसने साहित्य का बहुत अहित किया।"[18]

अज्ञेय ने 'साहित्य की स्वायत्तता' के अंतर्गत कविता और राजनीति के आंतरिक रिश्ते पर विचार-मंथन किया है। अज्ञेय कविता में राजनीति के विरोधी रहे हैं। वे राजनीतिक कविता की संभावना और लेखक रचनाकार के राजनीतिक व्यक्तित्व से भी इंकार करते हैं। 1976 में दिए गए साक्षात्कार में अज्ञेय ने एक प्रश्न के उत्तर में स्पष्ट कहा, "क्या कवि को राजनीति से निरपेक्ष रहना चाहिए?' तो वे कहते हैं, कवि राजनीति से निरपेक्ष नहीं हो सकता, कविता राजनीति से निरपेक्ष हो सकती है।' यहाँ अज्ञेय फिर एक बार टी. एस. इलियट के निकट जाते हैं।

अज्ञेय हमेशा यह कहते रहे हैं कि वे किसी विचारधारा से जुडे नहीं है। वे 'तारसप्तक' की भूमिकाओं में इस बात का स्पष्ट खुलासा करते हैं। अज्ञेय रचना को महत्त्व देते हैं, रचनाकार को नहीं', कृति के आशय को महत्व देते हैं, उसमें व्याप्त विचारधारा का अनुगामी बनने को नहीं। इसलिए साहित्य और विचारधारा के रिश्ते को लेकर भी सूक्ष्मता से बात करते हैं। साहित्य और राजनीति, साहित्य और आस्था, साहित्य और समाज परिवर्तन, साहित्य और दर्शन के बारे में वे पुनर्पाठ रचते हैं। अपनी साफ और निर्भीक विचारधारा से पाठकों को परिचित कराते हैं।

अज्ञेय ने अपने चिंतन में रचनाकार की स्वायत्तता को लेकर भी मंथन किया है। वे यह बात मानने से इंकार करते हैं कि कोई 'स्वान्त सुखाय' बनकर साहित्य सर्जना करता है। वे इसे पचा नहीं पाते। वस्तुतः साहित्य में निरंतर हो रहे परिवर्तन को वे सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तन से जोडकर देखते हैं। वे साहित्य को समाज निरपेक्ष नहीं मानते। इसलिए वे लिखते हैं" इसमें (साहित्य में) परिवर्तन लगातार अनिवार्य रूप से होता ही रहता है और अगर हम किसी दूसरे बदलाव की बात सोचना चाहे तो वह अनिवार्य तथा संस्कृति और समाज के बदलाव के साथ जुड जाती है, मूल्य दृष्टि के साथ जुड जाती है, संवेदन के साथ जुड जाती हैं- अपूर्वानुमेय के समूचे क्षेत्र के साथ जुड जाती Æ..."[19]

अंततः यह कहा जा सकता है कि, अज्ञेय का साहित्य के बारे में दृष्टिकोण स्पष्ट है। उनकी दृष्टि में साहित्य सामाजिक परिवर्तन का साधन मात्र नहीं है। साहित्य तो समाज और संस्कृति से जुडा

होता है, वह उसके परिवर्तन का माध्यम बन जाता है। साथ ही यह कहने में संकोच नहीं करते कि समाज परिवर्तन की भूमिका में साहित्यकार की भी अपनी जिम्मेदारी होती है। इस मत से असहमत नहीं हुआ जा सकता।

रचनाकार आलोचक अज्ञेय साहित्य के नये-नये प्रतिमान स्थापित करते हैं। उनकी अपनी आलोचनात्मक सोच है। इस सोच को हम चार पद्धतियों में वर्गीकृत कर सकते हैं। 1. व्यावहारिक आलोचना 2. अनौपचारिक आलोचना 3. सर्जनात्मक आलोचना और 4. कृति केंद्रित आलोचना। प्रथम उल्लेखित दो पद्धतियों पर हम विश्लेषण कर चुके हैं। यहाँ हम सर्जनात्मक आलोचना और कृति केंद्रित आलोचना पर सोच विचार करेंगे।

अज्ञेय ने अपने आलोचकीय कर्म में सर्जनात्मक आलोचना की पहल की है। उन्होंने हिंदी आलोचना और आलोचनाशास्त्र में संस्कृत काव्यालोचन को ग्रहण करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, जयशंकर प्रसाद और निराला की चिंतन परंपरा का अविष्कार किया हैं।' इस समझने के लिए हमें अंतरा, भवंती, शाश्वती और शेषा में अभिव्यक्त उनकी चिंतनधारा का परिचय लेना पडेगा। द्रष्टव्य है कुछ उदाहरण :

1. "मिला बहुत कुछ, सब बेपेंदी का। शिक्षा मिली, उसकी नींव भाषा नहीं मिली। आजादी मिली, उसकी नींव आत्मगौरव नहीं मिला। राष्ट्रीयता मिली, उसकी नींव अपनी राष्ट्रीय पहचान नहीं मिली। यानी आजादी में जन्मे पले मुझको आजादी के आदिपुरूष को चेहरा मिला, व्यक्तित्व नहीं मिला। और बिना व्यक्तित्व के चेहरा क्या होता है।"[20]

2. "लेखक है? आजाद है? मारो स्साले को, पिटाई से न साधते तो बदनाम करो, संखिया धतूरा कुछ खिला दो, पागलखाने में डाल दो। ये सब भी बेकार ही जायें तो शाल दुशाल, पद पुरस्कारों से लादकर कुचल दो, वह तो ब्रह्मास्त्र है।"[21]

3. "चिंतन प्रसाद ने अधिक किया, काव्य निराला का श्रेष्ठ है। शब्द का ज्ञान पंत का सबसे सूक्ष्म है। प्रसाद पढाये जाएँगे। पंत से सीखा जाएगा। निराला पढ़े जाएँगे।"[22]

4. "ऐसा होता है कि संस्कृतियाँ अपनी सर्जनशीलता खो बैठती हैं- वे अपनी आत्मा खो बैठती हैं †ö¸¡ Ÿö²ö उनमें यह समझने की भी अंतर्दृष्टि नहीं रहती कि उनके जीवन का हेतु क्या रहा, क्या है......भारतीय संस्कृति आज वैसे ही किसी बिंदू पर पहुँच गयी हैं? उसने अपनी सर्जनशीलता खो दी है, उसके अस्तित्व का हेतु क्या रहा, यह पहचानने की अंतर्दृष्टि जैसे उसके पास नहीं है। अपने जीने का कारण खोजने के लिए वह पराया मुँह जोह रही है।"[23]

5. "स्मृति के बिना काल नहीं है। सातत्य नहीं है, कालक्रम नहीं है। सनातनता नहीं है, प्रवाह नहीं है, केवल क्षण का समुत्पाद है।"[24]

6. "भारतीय लेखक से सवाल यह पूछेंगे कि वह कहाँ तक मौलिक है, पर परख के लिए कसौटी कोई रखेंगे (या जानेंगे भी) तो एकमात्र परिचय के साहित्यकार की। जहाँ भारतीय लेखक परिचय के उन लेखकों से मेल खाता है या उन पश्चिमी कसौटियों पर खरा दीखता है, वहाँ वह उन्हें ग्राह्य है क्योंकि, उतना तो वह 'अंतर्राष्ट्रीय' कसौटियों पर खरा पाया जा चुका है? जहाँ वह उनसे अलग है, वहाँ वे उसे त्याज्य गिनेंगे- क्योंकि उसमें कुछ अच्छा होता तो वह कहीं न कहीं पश्चिम के महान लेखकों में न दीखता? और इस गुलाम मानसिकता के साथ वे खोजने चले हैं, भारतीय कृतिकार की मौलिकता, आंकने चले हैं उसका मोल।"[25]

7. "आधुनिकता इसमें है कि हम इस चरमस्थिति संकट को पहचानें। मिथक की इस गहराई का स्पर्श करें। इसमें नहीं कि हम कथा में कतरब्योंत करके उसे आधुनिक संवेदन या आधुनिक संशय बुद्धि को स्वीकार्य रूप देना चाहे। मिथक एक कहानीभर नहीं होता, एक चुनौती होता है। नये समाज कहानी को नया रूप नहीं देते, चुनौती की नयी पहचान करते हैं। हर मिथक के भीतर एक गुठली, गुठली के भीतर एक शक्तिबीज। जैसे कर्ण के कवच कुण्डल सहजन्मा ही हो सकते हैं, वैसे भी गुठली भी मिथक की सहजन्मा होती है, उससे अलग नहीं की जा सकती।"[26]

इन सातों उद्धरणों में अज्ञेय के सर्जनात्मक आलोचना का प्रत्यय मिलाता है। प्रथम में व्यक्तित्व-अस्तित्व की तलाश का बोध, दूसरे में आलोचना के प्रतिमानों पर कटाक्ष, तीसरे में साहित्यकार मूल्यांकन की पहल, चौथे में संस्कृतिबोध, पांचवे में कालबोध, छठे में मूल्यांकन के निकष और सातवें में 'आधुनिकता' को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास है। इन सातों वक्तव्यों में अज्ञेय के चिंतन का सारसर्वस्व मिलता है। प्रश्नाकुलता, पाठ केंद्रित दृष्टि, निर्वैयक्तिकता, संप्रेषण, काल बोध की समस्या का विवेचन हुआ है। अज्ञेय की इसी व्यापकता को दर्शाते हेतु डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल लिखते हैं "रचनाकार आलोचकों में अज्ञेय स्वातंत्र्योतर सर्जनात्मक आलोचना में सर्वाधिक विद्रोही प्रवृत्ति के आलोचक रहे हैं। भाषा, साहित्य, संस्कृति, मिथक, सौंदर्य चेतना के संबंध में परंपरागत अवधारणाओं का मूर्तिभंजन तथा परंपरा प्रगति प्रयोग, आधुनिकता, काव्य सत्य, व्यक्ति और समाज, स्वाधीनता और सांस्कृतिक अस्मिता, जातीय स्मृति, भाषा और औपनिवेशिक मानस जैसी अवधारणाओं का नया भाष्य उनके चिंतन का अनिवार्य अंग रहा है।"[27] आलोचक अज्ञेय सही मायने में अपने समय और समाज से संवाद करते हैं, यह बौद्धिक संवाद है। अज्ञेय के इस सर्जनात्मक चिंतन में नये समीक्षाशास्त्र तथा नये सौंदर्यशास्त्र का अवगाहन हुआ है।

अज्ञेय की आलोचना का दूसरा महत्त्वपूर्ण पक्ष हैं- 'कृति केंद्रित आलोचना।' अज्ञेय ने कृति केंद्रित आलोचना को जन्म दिया। वे मूल्यांकन के अंतर्गत कृतिकार के व्यक्तित्त्व को नहीं, उसके विचारों या विश्वासों को नहीं, कृति को महत्त्वपूर्ण स्थान देते हैं। अर्थात अपनी आलोचना में उन्होंने

कवि व्यक्तित्व को हटाकर कृति की अंतर्वस्तु के सौंदर्य को मण्डित किया। इसका दूसरा पक्ष यह है कि अज्ञेय ने अपने आकलन के माध्यम से अपनी समय की कविता की धारा को नहीं मोडा बल्कि आलोचना की धारा का नया प्रवर्तन किया। उन्होंने कृति विमुखता के स्थान पर कृति उन्मुखता की राह दिखाई। इसी कारण हिंदी में 'पाठ केंद्रित आलोचना' का प्रचलन चल पड़ा।

अज्ञेय ने कृति केंद्रित आलोचना की आलोचकीय दृष्टि के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण निबंध लिखे हैं। जिसमें परिस्थिति और साहित्यकार, संक्रांतिकाल की कुछ साहित्यिक समस्याएँ, साहित्यबोध, आधुनिकता के तत्व आदि उल्लेखनीय निबंध रहे हैं। वस्तुतः वे 'साहित्य बोध' के स्थान पर 'संवेदना बोध' को महत्त्व देते हैं। वे रचनाकार की अपेक्षा रचना को उसकी समग्रता और समूचे संघटन में देखना चाहते हैं, यही उनके साहित्य चिंतन की केंद्रीय वृत्ति रही है। अज्ञेय के इस समूचे चिंतन पर टी. एस. इलियट, लेविस और आई. ए. रिचर्डस के चिंतन का प्रभाव दिखाई देता है। किंतु एक बात तो स्पष्ट है कि अज्ञेय ने पांच दशकों तक हिंदी साहित्य और समीक्षा को बौद्धिक संपदा से संवारा।

आलोचक अज्ञेय ने 'तारसप्तक' की भूमिकाओं में आलोचना का नया प्रवर्तन किया। ये 'भूमिकाएँ सांस्कृतिक, बौद्धिक, साहित्यिक, नवजागरण के ऐतिहासिक दस्तावेज हैं।' अज्ञेय ने तारसप्तक, दूसरा सप्तक, तीसरा सप्तक और चौथा सप्तक की जो भूमिकाएँ लिखी हैं, उनमें आलोचना के बीजशब्द मिलते हैं। परंपरागत आलोचना की कसौटियों को झूठा कहने का सामर्थ्य उनमें हैं। विशेषतः नये युग की नयी भाषा यह समीक्षक बोलता है। उनकी सैद्धांतिक स्थापनाएँ नयी पीढी को नयी राह दिखाती है। प्रयोगवाद, साधारणीकरण, भाषा सौंदर्य, आधुनिकता और परंपरा, अन्वेषी दृष्टिकोण, सामाजिक प्रतिबद्धता या उत्तरदायित्व आदि नयी अवधारणाओं पर गहरे रूप में प्रकाश डाला है। वस्तुतः अज्ञेय द्वारा ' तारसप्तकों' का संपादन (या संकलन) उनकी हिंदी कविता और समीक्षा को अमूल्य देन है। 'तारसप्तक' की भूमिकाएँ हमें क्या देती है? वह हमें देती है- अर्थ का नया बोध, नए पथ की खोज, छायावादी रोमांटिक संस्कारों से मुक्ति, प्रयोग प्रगति परंपरा, आधुनिकता के प्रति जागरूकता की पहल, एक चिंताभाव।

'तारसप्तक' की भूमिकाओं में अज्ञेय का विवेकी, तर्कशील और वैज्ञानिक दृष्टि का रूप मिलता है। गुट निरपेक्ष होकर साहित्य सृजन में संलग्न होने का भाव वे दिखाते हैं। नहीं तो जिस चीज को लेकर अज्ञेय पर कठोर टीका होती रही हैं कि वे कम्युनिस्ट विरोधी हैं। किंतु 'तारसप्तक' के प्रथम प्रकाशन में सात में से पांच कवि कम्यूनिझम की विचारधारा का समर्थन करनेवाले हैं जिन्हें अज्ञेय कदापि स्थान नहीं देते। अज्ञेय ने 'विवृत्ति और पुरावृत्ति' तथा 'परिदृष्टि : प्रतिदृष्टि' के माध्यम से प्रथम तारसप्तक की भूमिकाएँ लिखी। उनमें उनका साफ सुथरा दृष्टिकोण, नये कवियों को एकत्रित करने का संकल्प और बदलते परिवेश को आंकने वाली कविताओं का स्थान देने का प्रयास दिखाई

देता है। दूसरे और तीसरे सप्तक (1951,1959) में साहित्य समीक्षा संबंधी नयी अवधारणाओं का ऊहापोह करते हैं। 'नयी कविता' पर बहस करते हैं। 'भाषा' को लेकर गंभीर चिंतन करते हैं। वस्तुतः अज्ञेय के चिंतन के मुख्य रूप से तीन आयाम रहे हैं- जिनमें भाषा, सर्जनशीलता और समाज हैं।

अज्ञेय पहले ऐसे संपादक हैं जो काव्य का विषय और काव्य की वस्तु को अलग-अलग बताते हैं। साधारणीकरण और संप्रेषण के प्रश्नों से जूझते हैं। रससिद्ध कवि को बड़ा कवि मानते हैं। वैचारिकता से आक्रांत कविता पर भाष्य करते हैं। अपनी विरोधियों की खबर भी लेते हैं। अपनी भूमिकाओं के द्वारा साहित्य के नये प्रतिमान स्थापित करते हैं। उनके इसी अवदान की चर्चा डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने अपनी पुस्तक 'आधुनिक कविता यात्रा' में कुछ इस प्रकार की है, "तारसप्तक' के आगे-पीछे उठे कई काव्यांदोलनों की तुलना में विद्रोह का रूप यहाँ बुनियादी तौर पर सर्जनात्मक था। 'प्रपद्यवाद' तथा 'अकविता' जैसे आंदोलन वैचारिक धरातल पर अधिक सक्रिय हुए। वहाँ 'तारसप्तक' के कवि मूलतः रचना समस्याओं से अधिक जूझ रहे थे।"[28]

अज्ञेय 'तारसप्तकों' के माध्यम से आलोचना को आगे बढाते हैं, उसे गति देते हैं। प्रयोग-प्रगति परंपरा और आधुनिकता की अवधारणाओं को पहली बार विचार समीक्षा के केंद्र में लाते हैं। यह उनका अपना आत्मालोचन और आत्मसाक्षात्कार था, जो उनकी भूमिकाओं में लक्षित होता है। 'रूढ़ि और मौलिकता' में रूढ़ि पर नहीं मौलिकता पर बल देते हैं। उन्हें परंपरा स्वीकार से ज्यादा अस्वीकार है। अज्ञेय में स्वीकार की धारणा और अस्वीकार का साहस दिखाई देता है। वस्तुतः यह एक प्रकार से अंतः पाठ था, जो मुक्ति की बढती मानव चेतना का ही साक्षात्कार कराता है। 'तारसप्तकों' की भूमिकाएँ वस्तुतः अपने समय और साहित्य से बौद्धिक संवाद है। और संवाद की इस प्रक्रिया में संस्कृति बोध, कालबोध और मूल्यबोध का निरंतर अहसास हमें कराते हैं। बावजूद इसके डॉ. नामवरसिंह (कविता के नए प्रतिमान), आ. नंददुलारे वाजपेयी (प्रयोगवादी शीर्षक से आधुनिक साहित्य) तथा नेमिचंद्र जैन (धर्मयुग 'तारसप्तक प्रसंग) ने पुस्तक, लेख लिखकर अज्ञेय की भूमिकाओं का पोस्टमार्टेम किया है। साथ ही शमशेर बहादुर सिंह ने भी 'नया साहित्य' के पहले अंक में 'तारसप्तक' की प्रयोगधर्मिता पर प्रश्नचिह्न खडे किए हैं। किंतु यह बहुत बडी वास्तविकता है कि अज्ञेय के इस ऐतिहासिक दाय को स्वीकारने वाले अशोक वाजपेयी (कविता के गल्प), विजयदेवनारायण साही और डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी जैसे चिंतक आलोचक भी हैं। विशेषतः रमेशचंद्र शाह और डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल जैसे समीक्षकों ने अज्ञेय के इस ऐतिहासिक योगदान को सहर्ष स्वीकारा है। किंतु समीक्षक डॉ. मैनेजर पांडेय "अज्ञेय को आलोचक मानने से इंकार करते हैं। उनका कहना है कि अज्ञेय की समीक्षा Workshop Critism है। उसे अधिक महत्त्व देने की जरूरत नहीं है।"[29]

बावजूद इसके आलोचक अज्ञेय ने 'तारसप्तकों' की भूमिकाओं द्वारा विचार समीक्षा का प्रवर्तन किया। नयी अवधारणाओं पर प्रकाश डाला और हिंदी कविता को व्यक्तिवादी चेतना से जोडने का ऐतिहासिक कार्य किया है।

कुल मिलाकर अज्ञेय की आलोचनात्मक दृष्टि का अध्ययन करने के उपरांत कुछ 'चिंतन-बिंदु' उभरते हैं, जिन पर दृष्टिपात डालना नितांत आवश्यक है।

1. आलोचक अज्ञेय में उनका 'आत्म' हर जगह सक्रिय हैं। वे आत्म से अध्यात्म की ओर प्रस्थान करते हैं।

2. व्यक्तित्व की खोज, वरण की स्वतंत्रता आदि अवधारणाओं पर अज्ञेय स्वतंत्र चिंतन करते Æü…

3. साहित्य में आधुनिकता का ढाँचा खड़ा करने का बुनियादी काम अज्ञेय ने किया। अज्ञेय ने अपने समकालीनों को साथ लेकर संगठित अभियान चलाया, केवल अपना ही कद बड़ा नहीं किया।

4. अज्ञेय की आलोचना में शाश्वत चिंतन बोलता है, आलोचना उनके लिए साध्य नहीं, †Ö¯Ö¤üÖ´Ö Æü…

5. अज्ञेय में अपार प्रश्नाकुलता (नचिकेता भाव) है। किंतु केवल प्रश्नाकुलता ही नहीं उसे संगत निष्कर्षों तक पहुँचाने वाली परिणति और विचारशीलता भी है।

6. अज्ञेय पहले चिंतक हैं, जो भारतीयता, परंपरा और आधुनिकता के बारे में मौलिक चिंतन करते हैं। अज्ञेय समग्रता में भारतीयता को देखते हैं।

7. अज्ञेय में आस्तित्विक प्रश्नों से टकराहट का भाव व्यक्त हुआ है। 'भग्नदूत' की 'कवि' कविता इसका प्रमाण है', 'नाच' कविता भी आलोचक के आत्मसंघर्ष को उभारती है।

8. अज्ञेय का आलोचना चिंतन सभ्यता के संकटों से लेकर सांस्कृतिक चेतन, भाषा और समाज, रूढि और मौलिकता, सौंदर्य और शिवत्व, आधुनिकता, संवेदना और संप्रेषणीयता से होता हुआ भारतीयता की कसौटी पर भारतीय साहित्य और लेखक तथा इतिहास और स्वातंत्र्य बोध के प्रश्नों से जूझता है।

9. अज्ञेय साहित्य समीक्षा संबंधी बुनियादी सवाल उठानेवाले आलोचक हैं। इसलिए उनकी समीक्षा को 'थॉटफुल टॉक' कहा जा सकता है।

10. अज्ञेय समकालीन साहित्य चिंतन करनेवाले सजग आलोचक हैं। साहित्य और राजनीति, साहित्य और समाज, साहित्य और दर्शन, साहित्य और उत्तरदायित्व, साहित्य और समाज परिवर्तन आदि पर मौलिक चिंतन करते हैं।

11. स्वाधीनता, मूल्यबोध और लेखकीय विवेक के लिए और साहित्य की स्वायत्तता के बारे में

मार्मिक तड़प उनमें है।

12. आलोचक अज्ञेय रचना प्रक्रिया पर पहली बार चिंतन करनेवाले आलोचक हैं। साधारणीकरण और संप्रेषणीयता के प्रश्न से जूझते हैं। रचना प्रक्रिया के अंतर्गत रचना व्यापार में अवचेतन की भूमिका को सहर्ष स्वीकार करते हैं। कविता में उसके रचे जाने के कोण से विचार करते हैं। डॉ. ओम निश्चल ने उनकी व्यावहारिक आलोचना की सीमाएँ बतायी हैं किंतु उनके निबंधों, टीपों, अन्तः प्रक्रियाओं में हमें 'अनौपचारिक आलोचना' के सूत्र मिलते हैं- इसे सप्रमाण बताया है।

13. अज्ञेय की आलोचना को चार पद्धतियों में वर्गीकृत कर सकते हैं। 1. सर्जनात्मक आलोचना 2. व्यावहारिक आलोचना 3. कृति केंद्रित आलोचना 4. अनौपचारिक आलोचना। आलोचना के इन चारों प्रकारों में अज्ञेय ने अपने आलोचकीय रंग उंडेले हैं।

14. अज्ञेय साहित्य चिंतक के साथ-साथ साहित्य व्यवस्थापक भी हैं। (तारसप्तकों का संयोजन, संकलन, संपादन)

15. अज्ञेय ने कृति केंद्रित आलोचना को जन्म दिया। उन्होंने आलोचना में कवि के व्यक्तित्व या विचारों या विश्वासों के स्थान पर कविता की प्रतिष्ठा की।

16. अज्ञेय ने अपने आलोचकीय कर्म में लोकतंत्रात्मक मूल्यों का आग्रह किया। मूल्य बोध का चिंतन अपनी आलोचना के माध्यम से वे करते रहे हैं।

17. अज्ञेय के चिंतन पर टी. एस. इलियट, एस.एच. लेविस का प्रभाव लक्षित होता है। विशेषतः कविता, सृजन-प्रक्रिया, संप्रेषणीयता और आधुनिकता के बारे में दृष्टिकोण में समानता नजर †ÖÝÖß Æî...

18. अज्ञेय के साहित्य चिंतन में वैज्ञानिक और तार्किक दृष्टि के आधार मिलते हैं। वे निर्भीकता, विवेकशीलता और प्रयोगशीलता का परिचय देते हैं।

19. अज्ञेय के चिंतन में समय-समाज-संस्कृति के सरोकार परिलक्षित होते हैं। वे पाठ को पाठक से जोड़कर विचार करते हैं। हमारे समय के सुलगते प्रश्नों को उठाते हैं। इसलिए 'उनके आलोचनात्मक विवेक, व्यंग्य और विदग्धता, कटाक्ष और व्यंजना का ताजापन पाठक को मोह लेता है। अपने प्रखर तेजस्वी, सर्वथा रेडिकल (मानवेंद्रनाथ राय) और नये विचारों, अवधारणाओं के कारण अज्ञेय के निबंध कभी भी नहीं भुलाये जा सकते।' अंततः डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल के शब्दों में अज्ञेय के आलोचकीय कर्म का महत्त्व प्रतिपादित किया जा सकता है। वे लिखते हैं- "अज्ञेय के लगभग पांच दशकों से भी अधिक के विद्रोह सृजन-चिंतन में आलोचक अंतर्व्याप्त हैं। शुद्ध आलोचक न होते हुए भी उन्होंने हिंदी आलोचना के इतिहास में एक ऐसा 'अज्ञेय युग' ला दिया है, जिसने हिंदी में मौलिक समीक्षाशास्त्र या साहित्यालोचना की नींव रख दी है।"[30]

निष्कर्ष : हम कह सकते हैं कि अज्ञेय की आलोचना में भारतीय और पश्चिमी प्रत्यय का संगम हुआ है। यह आलोचक अपने समय की गूंज को विवेक से आंकता है। समकालीन जीवन को लेकर, सृजन को लेकर सजग प्रतिक्रिया देता है। समय का साक्षी बनकर संक्रातिकाल की समस्याओं को उठाता है। साथ ही समय बोध, मूल्यबोध, कालबोध और स्मृतिबोध को दर्शाता है। यह आलोचक अपने समय से बौद्धिक संवाद करता है। सत्य और तथ्य के नए रिश्तों की तलाश करते हुए नई भाषा और नई दृष्टि का अन्वेषण करता है। आत्मबोध, आत्मसाक्षात्कार और आत्मान्वेषण की आवश्यकता को महसूस करता है। नई कथा भाषा और यथार्थ, परिवेश की वास्तविकताएँ, प्रयोग के आयाम और काव्य-सत्य तथा प्रतिदृष्टि का सजग निरूपण करता है। इसी कारण अज्ञेय अपने समकालीनों में पृथक थे। क्योंकि 'स्वाधीनता की चेतना' उनके चिंतन का प्रमुख स्वर रहा है। इसे स्थापित, विकसित करने में अज्ञेय ने महती भूमिका निभायी है।

5.2 मर्ढेकर की समीक्षा दृष्टि : एक अध्ययन

प्रस्तावना :

ग्रीक दर्शन का केंद्रबिंदु मानव है। ग्रीक में Aisthesis x•ÖÃÖ Sens Parception <x¦µÖ संवेदना का शास्त्र कहा गया है। Aesthetics शब्द का प्रथम उपयोग लॅतिनी भाषा में 'ब्राऊन गार्तेम' ने किया। इनसाक्लोपिडिया ब्रिटानिका में सौंदर्यशास्त्र की अत्यंत मार्मिक व्याख्या की गई है, 'Aesthetics is the theoretical study of the Art and related types of behaviour and experience. Traditionally regarded as a branch of philosophy concerned with the understanding of beauty and its manifestation.'

सौंदर्यशास्त्र अंग्रेजी के 'एस्थेस्टिक' का अनुवाद है। कुछ लोग इसे 'लालित्यशास्त्र' कहते हैं। सबसे पहले इस शब्द का प्रयोग इतालियन भाषा में ब्राऊन गार्तेम ने किया। दो खंडों में प्रकाशित ग्रंथों को उसने 'एस्थेटिका' शीर्षक दिया। ब्राऊन गार्तेम ने इसे संवेदनशील एंद्रियबोध के अर्थ में प्रयुक्त किया। हेगेल इसे 'ललित कलाओं का दर्शन कहते हैं।' पश्चिम में सौंदर्यशास्त्र पर काफी लिखा गया Æ...

हिंदी, बंगाली और मराठी में भी सौंदर्यशास्त्र संबंधी पुस्तकें लिखी गयी हैं। पर यह विषय स्वयं में इतना उलझा हुआ है कि, दरअसल क्या हो रहा है, कहते हैं, सौंदर्यशास्त्र पर इतना अधिक लिखा गया है, पर उसमें बहुत कम पढने लायक है। इतना उलझा हुआ सौंदर्यशास्त्र सुलझाने के प्रयास में उलझाया जा रहा है, यही सौंदर्यशास्त्र के विद्वान 'स्परशाट' का कहना है। सौंदर्यशास्त्र के बारे में हिंदी, बंगला और मराठी के विद्वानों ने मूलतः यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि इस देश में भी यह विधा रही है। यही नहीं साहित्य के मूल्यांकन के लिए इसे उपयोगी भी बताया गया है।

वस्तुतः सौंदर्यशास्त्र की चर्चा करते हुए दो वस्तुओं को ही केंद्रीय मुद्दे के रूप में लिया गया है- सौंदर्य विधान और सौंदर्यानुभूति।

मराठी साहित्य समीक्षा में सौंदर्यशास्त्र के अंतर्गत दो परंपराएँ आती हैं। गो. ग. आगरकर तथा हरिभाऊ आपटे मराठी में जीवनवादी साहित्य प्रयोजन के अग्रदूत हैं। और वि. कृ. चिपळुणकर, श्री कृ. कोल्हटकर कलावादी (सौंदर्यवादी) प्रयोजन के अग्रदूत रहे हैं। आगरकर, हरिभाऊ की साहित्य समीक्षा की परंपरा को आगे बढाने वालों में वा. म. जोशी, वि. स. खांडकर, दि. के. बेडेकर, कुसुमावती देशपांडे, शरदचंद्र मुक्तिबोध, द. ग. गोडसे, नरहर कुरूंदकर, रा. भा. पाटणकर, त्र्यं. वि. सरदेशमुख, रा.ग. जाधव आदियों का समावेश होता है। तो दूसरी परंपरा के अंतर्गत अर्थात कलावादियों में न. चि. केळकर, भा. रा. तांबे, ना. सी. फडके, बा. सी. मर्ढेकर, पु. शि. रेगे, गंगाधर गाडगील, वसंत दावतर और द. भि. कुलकर्णी आदि आते हैं। बा. सी. मर्ढेकर तक आते-आते मराठी में कला-विचार की संपूर्ण अभिव्यक्ति स्वायत्ततावादी संदर्भ में किसी ने नहीं की थी। मराठी में गोपाळ गणेश आगरकर से जीवनवादी सौंदर्य समीक्षा का आरंभ किया। वा. म. जोशी ने सौंदर्य समीक्षा को बहुत गंभीरता से आगे बढाया। दि. के. बेडेकर, कुसुमावती देशपांडे, शरदचंद्र मुक्तिबोध ने प्रचार बोधवाद, कृत्रिमता से मुक्त करके जीवनवादी सौंदर्य समीक्षा को आगे बढाया। जीवनवादी सौंदर्य समीक्षा मर्ढेकर को स्वीकार्य नहीं थी, क्योंकि मर्ढेकर को स्वायत्तवादी, आकृतिवादी सौंदर्यशास्त्र का मण्डन करना था। अभिनव गुप्त से लेकर भा. रा. तांबे तक की परंपरा को नकारते हुए मर्ढेकर ने स्वायत्तवादी सौंदर्य समीक्षा का मराठी में प्रथम बार अवगाहन किया।

'सौंदर्य आणि साहित्य' -1955 और 'कला आणि मानव' (Art and man 1983) इन दो ग्रंथों में मराठी में मर्ढेकर का सौंदर्यशास्त्रीय, साहित्यशास्त्रीय और कला साहित्य का समीक्षात्मक लेखन प्रकाशित हुआ है। 1937-1955 के कालखंड में मर्ढेकर ने सौंदर्यशास्त्रीय लेखन किया है। इस लेखन की वजह से 'स्वायत्तवादी सौंदर्य विचार' सामने आया'। 1960-65 तक इसी सौंदर्यसमीक्षा ने समीक्षा जगत् को घेरे रखा। आज भी स्वायत्तवादी सौंदर्य मीमांसक मर्ढेकर के सौंदर्य विचार को केंद्र में रखते हैं। इस सौंदर्यशास्त्र ने मराठी सौंदर्यशास्त्र को तात्विक रूप से अंतर्बाह्य प्रभावित किया। इसलिए मराठी सौंदर्यशास्त्र का क्षेत्र दर्शनशास्त्र, मनोविज्ञान, जीवनवाद और स्वायत्तवाद के अंगों का सूक्ष्मता से विश्लेषण करता है।

मराठी भाषा में मर्ढेकर ने सौंदर्यशास्त्र की तात्विक चर्चा करते हुए जो साहित्य समीक्षा के निबंध लिखे हैं उन्हें 'सौंदर्य और साहित्य' पुस्तक में संग्रहित किया गया है। उनका काव्य मौलिकत्व मराठी भाषा तक ही सीमित हो सकता है किंतु मर्ढेकर की समीक्षा में अंतर्भूत मूलतत्व अंतर्राष्ट्रीय महत्त्व रखते हैं। सौंदर्यशास्त्र का माध्यम और कलाशास्त्र के माध्यम की चर्चा, विश्लेषण और

संश्लेषण की चर्चा विश्व में, कला समीक्षा में क्रांतिकारी घटना है। मर्ढेकर एक ऐसे चौराहे पर खड़े है, जिन्हें टालकर कोई भी सौंदर्यशास्त्री आगे नहीं बढ़ सकता।

मर्ढेकर के सौंदर्यशास्त्र के प्रेरणाबिंदू : उनके समग्र चिंतन पर काव्यकला और चित्रकला का प्रभाव लक्षित होता है। इंग्लैंड और इटाली की यात्रा के दौरान चित्रसंग्रहालयों में उन्होंने सीझां पॉल तथा विन्सेट व्हॅन गाँ के चित्रों को देखा। जिन्होंने उन्हें नयी दृष्टि दी। यही उनके सौंदर्यशास्त्र के उद्‌भव का कारण बना।

मर्ढेकर साहित्य को भावानुवाद का संघटन मानते हैं और उससे संबंधित वस्तु को ही अपने व्यक्तित्व कल्पना में महत्त्व देते हैं। 'वाङ्मयीन महात्मता' लेख में उन्होंने लिखा है, 'जीवन में मिले भिन्न-भिन्न भावनाओं का अनुभव लेते समय भिन्न-भिन्न भावनाओं का पैटर्न व्यक्ति के मन में तैयार होता है। सामान्य मनुष्य के मन में तैयार हुई अनुभूति की आंतरिक व्यवस्था किसी तत्व के आधार पर अधिष्ठित नहीं होती। लेखक कवि के मन की अनुभूति विशिष्ट तत्व के अनुसार बनती है। लेखक कवि की भावानुभूति संघटनात्मक होती है।साम्य, भेद, संवाद, विरोध, सामंजस्य आदि सारे सौंदर्य तत्व एक दूसरे से संबंधित होकर बीन लिए होते हैं।

मर्ढेकर के विचारानुसार 'सत्य' और 'सौंदर्य' यही दो मूल और अंतिम अवधारणाएँ हैं और दोनों ही वस्तुनिष्ठ हैं। मनुष्य के अनुभवों के मूल में ऐंद्रिय संवेदनाएँ होती हैं। उन वस्तुनिष्ठ और सार्वभौम संवेदना की संगति लगाने के लिए मनुष्य के मन का ज्यादा झुकाव होता है। यही ऐंद्रिय संवेदना दो भिन्न-भिन्न प्रक्रियाओं के अंतर्गत हमें सत्य और सौंदर्य की अंतिम बिंदू तक ले जाते हैं। किसी भी मानव अनुभव की संगति सत्य और सौंदर्य इन मूल्यों से ही होती है। संवेदना से सत्य तक जाने के लिए आशय की तर्कसंगति आवश्यक है। उसे सिद्ध करना होता है। सौंदर्यमूल्य तक जाने के लिए आशय की तर्क संगति और संवेदना गुण, संवाद, विरोध और संतुलन इत्यादि लय तत्व से जुड़ना जरूरी होता है। यह प्रक्रिया वस्तुनिष्ठ है। क्योंकि संवाद, विरोध और संतुलन इनसे सिद्ध होनेवाले लयतत्व वस्तुनिष्ठ हैं। सत्य और सौंदर्य इन अवधारणाओं में जो फर्क है इसी के उपर ही मर्ढेकर के सौंदर्यशास्त्र की इमारत खडी है।

सत्य ऐंद्रियानुभव दूसरे ऐंद्रियानुभव के संपर्क से समृद्ध होता है। ऐसे ही संपर्क से विविध और विभिन्न प्रकार की संवेदनाएँ एक होने के कारण संवेदना की समृद्धता सिद्ध होती है। यह संवेदना जितनी व्यापक अनुभव से आएगी उतनी ही प्रखरता से सत्य का प्रत्यय होगा। सौंदर्य एक ही प्रकार के ऐंद्रिय संवेदना के गुण धर्मानुसार विविध संपर्क स्थापित होते हैं। और उसी में से सौंदर्य का निर्माण होता है। सौंदर्य एक स्वतंत्र और अंतिम मूल्य है। ऐंद्रिय संवेदना जितनी प्रखर होगी उतनी पारस्पारिक लय तैयार होगी। इसी पर सौंदर्यानुभव की समृद्धता निश्चित होती है।

मर्ढेकर के विचारानुसार कला के क्षेत्र में 'सत्य' अप्रस्तुत है। वास्तव सत्य का दर्शन कला से नहीं होता, ऐसा उनका मानना है। केवल तात्विक सत्य ही नहीं वरण् जीवन के अर्थपूर्ण अनुभव, भावना, पूर्वाग्रह, कल्पनाएँ, ध्येयनिष्ठा तथा तरल अवस्था को दूर फेंकने के बाद ही सौंदर्य का दर्शन ÆÖÿÖÖ Æ…

मानवी व्यवहार वस्तुतः वैश्विक होते हैं। राग, द्वेष, भय इत्यादि भावनाओं का महत्त्व स्वयंपूर्ण नहीं होता। वह केवल साधनात्मक है। स्वसंरक्षण और वंश संवर्धन जीवनशास्त्रीय ध्येय होते हैं। लेखक के मनोव्यापार की समकालीन स्थिति, काल की प्रत्याक्षाप्रत्यक्ष छाया किसी कृति का मूल्यांकन करना ज्यादा उचित होगा, यही बात मर्ढेकर जी बार-बार कहते हैं।

मर्ढेकर अपने सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं, सौंदर्यवाचक विधान (Aesthetic Judgement) सौंदर्य निर्मिति की प्रक्रिया में एक महत्त्वपूर्ण आयाम है। कला निर्मिति या प्रखर ऐंद्रिय संवेदना के अंगभूत गुणों को उन्होंने महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। संवेदना के गुण और उस गुणधर्म के आधार पर स्वायत्तवादी सौंदर्यशास्त्र का निर्माण मर्ढेकर करते हैं। विशिष्ट घटना 'सुंदर' है अथवा नहीं इसका सौंदर्य निर्णय तय करना ही सौंदर्यशास्त्र का पहला और मूलभूत प्रश्न है। कोई भी जिम्मेदार कवि प्रथमतः अपने काव्य के 'एस्थेटिक्स' याने महत्त्वपूर्ण' रूप की' तलाश करता है। इसी के कारण आलोचक को काव्य की भाषिक संरचना का विवेचन और उसकी अनिवार्यता अपेक्षित हैं।

सौंदर्यशास्त्र में पहला और मूलभूत प्रश्न सौंदर्यवाचक विधानार्थ के रूप-स्वरूप के विषय में हैं। मर्ढेकर ने कुछ उदाहरण देकर इसे समझाने का प्रयास किया है। 'मैंने अजंता के चित्र देखे हैं और उन्हें देखकर मैं आनंदविभोर हो गया हूँ। अजंता के चित्र देखते समय मुझे जो अनुभव हुआ, वह सौंदर्य का अनुभव है। इस अनुभव के आधार पर मैं एक सौंदर्यवाचक विधान करता हूँ। 'अजंता के चित्र सुंदर हैं', मैंने यही विधान अपने मित्र से कहा। यही विधान मेरे मित्र ने अपने मित्र से कहा। 'अजंता के चित्र सुंदर है।' इस वक्तव्य के अब दो उदाहरण हो गये। मेरे मित्र ने अजंता के चित्र देखे ही नहीं, दूसरी बात मैं और मेरा मित्र उपरोक्त वक्तव्य के शब्द एक ही अर्थ में उपयोग कर रहे हैं। मेरे विधान को और मेरे मित्र के विधान को वि 1 समझे। तो मजे की बात होगी कि वि 1 †Ö¸ü ×¾Ö 2 इन दो विधानों का अर्थ एक होकर भी वि। में सौंदर्यवाचक विधानार्थ जुड़ा हुआ है, वह वि 2 में नहीं। मेरे मित्र ने अजंता के चित्र देखकर ऐसा कहा होता, तो उसका सौंदर्य विचार स्वानुभाव पर आधारित हो सकता था। इसलिए सौंदर्यवाचक विधान मात्र अनुभवनिष्ठ ही हो सकता है, वर्णनात्मक नहीं। मेरे मित्र का विधान तर्कवाचक हो सकता है, इसलिए तर्कवाचक विधान प्रत्यक्ष अनुभव के सिवाय भी कर सकते हैं।

9 मर्ढेकर कहते हैं कि सौंदर्यवाचक विधान तर्कनिष्ठ विधान से भिन्न होता है। 'तर्क से शास्त्र उत्पन्न होता है, तो सौंदर्य से कला निर्माण होती है।' सौंदर्यवाचक विधान में सार्वजनिकता (Universal) और वस्तुनिष्ठता होती है। अहंकेंद्री विधान सौंदर्यवाचक हो सकता है।

1. 'क्ष' के केंद्र में कुछ सुखद स्मृतियाँ होती है।

2. 'क्ष' के विषय में मुझे ऐतिहासिकता का बोध होता है।

इन सभी अहंकेंद्री विधानों का प्रवास लयतत्व की गति से होने के कारण सौंदर्यवाचक विधान को सार्वजनिकता और वस्तुनिष्ठता प्राप्त होती है।

मर्ढेकर अपने चिंतन का प्रारंभ 'मैं क्यों लिखता हूँ' इस जिज्ञासा से करते हैं। वे लिखते हैं, "वाङ्मयाचा आस्वाद घेत असताना, त्याचं परिशीलन करीत असताना वाङ्मयीन टीकाशास्त्राचा, साहित्यशास्त्राचा आसरा मला अर्थातच घ्यावा लागला. पण आतापर्यंत या शास्त्राचं जे स्वरूप आहे. त्याचं समाधान होईना. कांही तरी, कुठं तरी, अपुरं पडत आहे, असं वाटायचं. ललित वाङ् मय ही एक ललित कला आहे. तेंव्हा म्हटलं या एकाच कलेच्या मर्यादेत न रहाता, इतरही कांही ललित कला आहेत त्यांचा विचार करावा आणि बघावं त्यांच्या अभ्यासाचा वाङ्मयीन टीकाशास्त्रात कांही उपयोग होतो का? अशा रीतीनं सौंदर्यशास्त्राचा थोडसा अभ्यास केला. स्वतःचे अनुभव, कांही इतरांचे अनुभव आणि ह्या सौंदर्यशास्त्राचा थोडासा अभ्यास हत्या सर्वांतून सौंदर्याबद्दल आणि कलांबद्दल एक विशिष्ट विचारसरणी माझ्या मनात हळूहळू तयार होऊ लागली. या विचारसरणीत 'सत्य' आणि 'सौंदर्य' या मधील फरकाला उठाव मिळाला. आणि हा फरकच या विचारसरणीचा मध्यबिंदू बनता."[31]

(प्रस्तुत उद्धरण में मर्ढेकर ने सौंदर्यशास्त्र के अध्ययन की ओर कैसे मुडा, यह बताया है। वे कहते हैं कि साहित्य का अध्ययन करते समय मुझे साहित्यशास्त्र तथा समीक्षाशास्त्र का आधार लेना पड़ा। किंतु अब तक जो प्रतिमान साहित्यशास्त्र और समीक्षाशास्त्र ने बनाये थे, वे अपूर्ण लगने लगे। साहित्य के प्रतिमानों को किसी एक विधा में बद्ध करके रखा नहीं जा सकता। किसी भी विधा या कला की मर्यादा में न रहते हुए मैंने ललित कला और साहित्येतर कलाओं पर सोचना आरंभ किया। इसलिए मैंने सौंदर्यशास्त्र का अध्ययन करना शुरू किया। स्वानुभव, इतरजनों के अनुभव और सौंदर्यशास्त्र के थोडे से अध्ययन ने सौंदर्य और कला के बारे में एक विशिष्ट विचारधारा बनने लगी। इस विचार के मूल में 'सत्य' और 'सौंदर्य' में स्थित अंतर को समझने में सहायता मिली। और यही अंतर उस विचारधारा का केंद्रबिंदु बन गया।) अर्थात् मर्ढेकर ने सौंदर्यशास्त्र का सैद्धांतिक और व्यावहारिक अध्ययन किया। जिसका फलन उनके द्वारा लिखा गया ग्रंथ 'सौंदर्य आणि साहित्य' (सौंदर्य और साहित्य) है। किंतु मर्ढेकर के सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन में पांडित्य का संदर्भ नहीं है बल्कि कवि होने के अनुभव का भी संदर्भ प्राप्त है।

मर्ढेकर की सौंदर्य मीमांसा :

मर्ढेकर के सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन को हम दो विभागों में वर्गीकृत कर सकते हैं।

1. कला मीमांसा   2. ÃÖÖ×ÆŸµÖ ´ÖßÖ´ÖÖÃÖÖ

अपने सौंदर्यशास्त्रीय विवेचन में मर्ढेकर प्रश्नाकुलता के भाव को लेकर आते हैं। उनके मन में सौंदर्य को लेकर अनेक प्रश्न हैं, जिसकी चर्चा इस विभाग के अंतर्गत करते हैं। प्रश्न है- 'सौंदर्य' निर्णयन कैसे करें?' इसलिए वे लिखते हैं "सौंदर्यशास्त्रातील पहिला आणि मूलभूत प्रश्न आहे. सौंदर्यवाचक विधानाचे स्वरूप तपासण्यापासून व्हावयास पाहिजे."[32] अर्थात् (मर्ढेकर कहते हैं, सौंदर्य निर्णयन सौंदर्यशास्त्र के अंतर्गत उठाया जानेवाला पहला प्रश्न है। उसके लिए सौंदर्यवाचक विधान की पहचान करने से होगी।) इसके लिए एक नये सिद्धांत का प्रतिपादन करते हैं। वह सिद्धांत है- 'लयतत्व का सिद्धांत।' इसका स्थान, महत्त्व निर्धारित करते हुए वे लिखते हैं-" एखाद्या वस्तुने किंवा घटनेने स्फुरवलेल्या संवेदनांचा जेंव्हा आपण त्या संवेदनांच्या अंगभूत संवाद, विरोध, समतोलपणा किंवा प्रमाणबद्धता यांना अनुसरूण विचार करतो तेंव्हा या घटनेचा सौंदर्यदृष्टया विचार करतो. या प्रक्रियेत अहंकेंद्री सौंदर्यवाचक विधानाची सांगड लय तत्वाशी घालून त्यातून अहंनिरपेक्ष, वस्तुनिष्ठ, सर्वसामान्य असे सौंदर्यवाचक विधान सिद्ध करतो. अहंकेंद्री सौंदर्यवाचक विधान आणि अहंनिरपेक्ष सौंदर्यवाचक विधान यातील दुवा लयतत्वाच्या साह्याने जुळवतो।"[33]

(प्रस्तुत प्रतिपादन में मर्ढेकर ने लयतत्व की निर्मिति को लेकर विवेचन किया है। उनका कहना है, संवेदनाओं के विकास से संवाद, विरोध और संतुलन या मानकता के संदर्भ में लय की निर्मिति होती है। इस संपूर्ण प्रक्रिया को सौंदर्यदृष्टि से विचार होना आवश्यक है। साथ ही सौंदर्यवाचक विधान के दो प्रकारों का उतना ही महत्त्व है, ये दो प्रकार हैं- अहंकेंद्री सौंदर्यवाचक विधान और अहंनिरपेक्ष सौंदर्यवाचक विधान। इन दो विधानों के मध्य संवाद निर्माण करने से लयतत्व की स्थापना होती है।)

मर्ढेकर ने 'सौंदर्य निर्णय' के प्रतिपादन हेतु लय तत्व का विस्तार से विवेचन किया है। वे लयसिद्धांत को तीन प्रकारों में विभक्त करते हैं। 1. ¤Ö ¾ÖÃŸÖ†Ö ´Ö ¯Ö¸Ã¯Ö¸¡ ÃÖ²Ö¬Ö †£ÖÖŸÖ ¾ÖÃŸÖ-¾ÖÃŸÖ ÃÖ²Ö¬Ö 2. एक वस्तु और एक संबंध अर्थात् वस्तु-संबंध संबंध 3. ¤Ö ÃÖ²Ö¬Ö ´Ö ¯Ö¸Ã¯Ö¸¡ ÃÖ²Ö¬Ö †£ÖÖŸÖ ÃÖ²Ö¬Ö-ÃÖ²Ö¬Ö ÃÖ²Ö¬Ö...

वस्तु-वस्तु संबंधों के विश्लेषण हेतु वे उदाहरण देते हैं- एक ही टेबल पर सफरचंद और संत्रा रखा गया है। ये दो वस्तुएँ स्थलदृष्टि से संबंधित हैं। सफरचंद और संत्रा में स्थापित संबंध वस्तु-वस्तु संबंध है। वस्तु-संबंध संबंध के बारे में विश्लेषण करते हुए उदाहरण बताते हैं- नोकर ने टेबल पर बिल्ली को रखा। नोकर यह वस्तु है और बिल्ली + टेबल इनका संबंध स्थलनिष्ठ होने के कारण

संबद्ध है। इसे ही मर्ढेकर ने वस्तु-संबंध संबंध कहा है।

संबंध-संबंध संबंध के अंतर्गत यह बताते हैं कि ये संबंध केवल दो प्रकार के होते हैं। सफरचंद का रंग कुमारी 'क' की साडी के रंग जैसा है, संत्रा का रंग 'ब' की टाई जैसा है। यहाँ इन दोनों में साम्य संबंध हैं। अर्थात् सफरचंद + साडी इन दोनों के संबंध में साम्यता है। संत्रा + टाई इन दोनों के संबंध में साम्यता है।

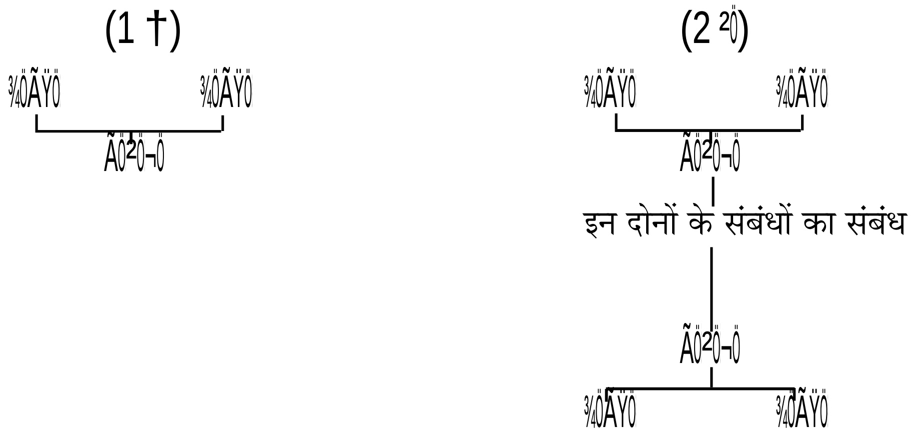

2. वस्तु + वस्तु - इनमें संबंध
एक वस्तु + एक संबंध - इनमें संबंध — इन दोनों में संबंध

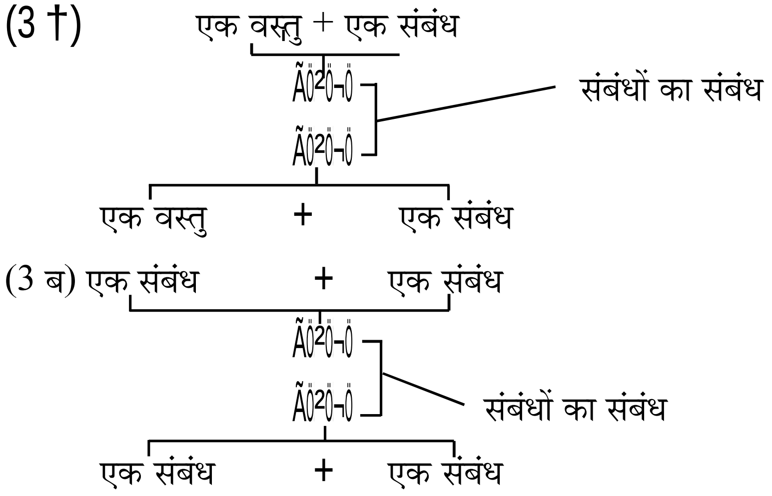

मर्ढेकर ने वस्तु और संबंध में स्थापित भिन्न-भिन्न संबंध विश्लेषण के पश्चात लय तत्व के तीन नियम बताए हैं- 1. संवाद नियम 2. विरोध नियम 3. संतुलन नियम।

इन तीनों में संवेदना गुणों को महत्त्व देते हैं, क्योंकि संवेदना ही इन तीनों में लय स्थापित करती है। इसलिए मर्ढेकर का लयसिद्धांत 'सौंदर्य निर्णय' तथा 'सौंदर्यमूलक दृष्टिभाव' में काफी महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। बावजूद इसके मराठी समीक्षक यशवंत मनोहर ने इस सिद्धांत की आलोचना करते हुए लिखा "प्रा. कुसुमावती देशपांडे, शरदचंद्र मुक्तिबोध, डॉ. रा. भा. पाटणकर,

प्रभाकर पाध्ये, म. द. हातकणंगलेकर, प्रा. मे. पु. रेगे आणि नरहर कुरूंदरकर सारख्या अनेक अभ्यासकांनी मर्ढेकरांच्या लय सिद्धांताला अपूर्ण, कृत्रिम, केवळ रचनानिष्ठ, गणितीय व जीवनमूल्याचे अस्तित्व नाकारणारा सिद्धांत, असे म्हटले आहे."[34] (अर्थात् प्रा. कुसुमावती देशपांडे, शरदचंद्र मुक्तिबोध, डॉ. रा. भा. पाटणकर, प्रभाकर पाध्ये, म. द. हातकणंगलेकर, प्रा. मे. पु. रेगे, नरहर कुरूंदकर ऐसे अनेक अध्येताओं ने मर्ढेकर का लय सिद्धांत अपूर्ण, कृत्रिम, केवल रचनानिष्ठ, गणितीय तथा जीवनमूल्यभावक के अस्तित्व को नकारने वाला माना है।) मर्ढेकर ने अपनी सौंदर्य विवेचना में 'कला की शुद्धता और श्रेष्ठता' को बड़ा महत्त्व दिया है। मर्ढेकर की दृष्टि से साहित्य संकरित और भ्रष्ट कला है। सौंदर्य के प्रति अपना रूख स्पष्ट करते हुए मर्ढेकर लिखते हैं "लय संगती ने घेतलेला अनुभव म्हणजे सौंदर्य भावना." (अर्थात् लय संगति से लिया गया अनुभव ही सौंदर्य है।) मर्ढेकर का मानना है कि निसर्ग निर्मित सौंदर्य और मानव निर्मित कला में अंतर नहीं किया जा सकता। वस्तुतः वे सौंदर्य का अस्तित्व स्वतंत्र और स्वयंभू मानते हैं। इसी का विस्तार करते हुए वे कहते हैं, जो सौंदर्यभावना निर्हेतुक एवं तर्कनिरपेक्ष होती है, वह चाहे निसर्ग निर्मित हो या मानव निर्मित कला हो, उसका सौंदर्य प्रत्यय लययुक्त होता है।

साहित्य कृति का रूपबंध : (Form)

रूपबंध से तात्पर्य है, गठन, गढ़न विचार। किसी साहित्य कृति का गठन या गढ़न या बुनावट पर सौंदर्यशास्त्र में चिंतन होना चाहिए। किसी भी साहित्य कृति की कलात्मकता निश्चित करने हेतु गठन पर विचार किया जाना आवश्यक है। किसी भी कृति का सौंदर्य उस कृति के गठन (रूपबंध) पर निर्भर करता है। शैली के आधार पर उसी लेखन को कलाकृति का मूल्य निर्धारित करना संभव नहीं है। आशय और अभिव्यक्ति के संबंधों को गठन कहना मर्ढेकर को स्वीकार्य नहीं है। कोई भी साहित्य कृति सीधी रेखा के समान नहीं होती। वह भूमिति में अंतर्भूत चौकोन या वर्तुल के समान होती है। वह आकस्मिक रूप में अवचेतन में प्रकट होती है। कोई कृति भावनात्मक लय से परिपूर्ण होती है। गठन (रूपबंध) एक सौंदर्यमूल्य है। लयतत्व तथा गढ़न तत्व भिन्न नहीं होते बल्कि गढ़न तत्व लय तत्व पर आधरित होता है। इसे साफ शब्दों में वे इस प्रकार कहते हैं, "वाङ्मयाचा घाट पहाणे म्हणजे वाङ्मय कृतीतील भावनात्मक आशयामध्ये प्रकट होणाऱ्या संवाद विरोध समतोल वगैरे रचनात्मक संबंधाचा एकदम व एकात्म प्रत्यय येणे होय."[35] लय तत्व का विशिष्ट अविष्कार ही रूप या गठन होता है। संवेदना और भावानुभव में व्याप्त लयतत्व के अनुसार सिद्ध होनेवाले तत्व को गठन या रूप कहा जाता है। कलाकृति के संपूर्ण व्यक्तित्व तथा अस्तित्व का प्रतीक ही गठन तत्व होता है। मर्ढेकर अपने सौंदर्यशास्त्र में 'रूप' को अत्यंत महत्त्व देते हुए उसकी आंतरिक लय को पकडते हैं। यही कारण है कि उनका सौंदर्य विधान मौलिक बनता है। मर्ढेकर ने सौंदर्यानुभूति के विश्लेषण में माध्यम

(Medium) और साधन द्रव्य (Material) को चिह्नित किया है। माध्यम से तात्पर्य है- वास्तव अर्थात विश्व का आकलन विशुद्ध संवेदना से होता है। ये संवेदनाएँ ज्ञानेंद्रियों से उत्पन्न होती हैं। ये संवेदनाएँ विश्व के ज्ञान का मूलाधार होती है। जितनी प्रकार की संवेदनाएँ उतने प्रकार के विषय में ज्ञान विकसित होता है। अर्थात विश्व के जितने अंग उतनी संवेदनाएँ। विश्व के अंग के अनुरूप ज्ञानेंद्रियों का विकास होता है। अलग-अलग ज्ञानेंद्रियों से विश्व की प्रतीति होती है। इसलिए विश्व की बुनावट, ध्वनि का विश्व, रंग-रेखा का विश्व, स्पर्श और गंध का विश्व और रस का विश्व आदि विश्व के अंग कला का माध्यम होते हैं। कलाकार इन विश्व अंगों के माध्यम से सौंदर्य प्रकट करता है। कलाकार की सौंदर्य सृष्टि इसी विश्व अंगों में मग्न होती है। और इसी विश्व अंगों की लयबद्ध रचना से कलाकार का सौंदर्य उत्पन्न होता है।

प्रत्येक कला का अपना एक स्वतंत्र माध्यम होता है। इसलिए मर्ढेकर कला का उद्देश्य बताते हुए कहते हैं, "मर्ढेकरांच्या मते आपल्या माध्यमाच्या सौंदर्याच्या अविष्कार करणे, हेच काव्यासकट सर्व कलांचे ध्येय असते. वस्तुतः साहित्य कला का माध्यम शब्द माना जाता है, किंतु मर्ढेकर इसे दोषपूर्ण मानते हैं। उनका कहना है कि 'साहित्य कला का माध्यम शब्द नहीं बल्कि 'भावनानिष्ठ अर्थ' उसका माध्यम है। उदाहरण - चित्रकला, चित्रकला का माध्यम रंग है। रंग के दो अर्थ होते हैं- रंगद्रव्य और रंगधर्म। मर्ढेकर की राय में 'रंगद्रव्य' चित्रकला माध्यम नहीं है बल्कि सामग्री है। 'रंगधर्म' यह चित्रकला का माध्यम है। ठीक उसी तरह शब्द साहित्य कला की सामग्री है तो शब्द से उत्पन्न भावनानिष्ठ तर्क यह साहित्य कला का माध्यम बनता है। मर्ढेकर सामग्री (साधन द्रव्य) और माध्यम में अंतर क्या है, यह भी बताते हैं। कलाकृति के गठन के लिए सामग्री का उपयोग होता है, कुछ घटकों को एकत्र कर कलाकृति निर्मित होती है, वह माध्यम है। जिन साधनों से कलाकृति का गठन होता है, वह सामग्री या साधनद्रव्य है। मर्ढेकर ने शब्द के दो गुणधर्म बताते हैं- नाद गुणधर्म, अर्थगुणधर्म। अर्थ गुणधर्म के फिर दो प्रकार बताते गए हैं- तर्कनिष्ठ धर्म और भावनानिष्ठ धर्म। साहित्यकार के व्यक्तित्व से साहित्य निर्मिति तक की प्रक्रिया को मर्ढेकर ने एक ग्राफ के माध्यम से कुछ इस प्रकार बताया है।

साहित्यकार का व्यक्तित्त्व

जीवशास्त्रीय भावना की प्रतीति

लयनिष्ठ गठन निर्मिति शक्ति

अन्य घटक

प्रत्यक्ष रूप से कार्यप्रवण

अप्रत्यक्ष रूप से सहाय

साहित्य निर्मिति

आस्वादक का व्यक्तित्व

जीवशास्त्रीय भावना प्रतीति — अन्य घटक

लयनिष्ठ संगठन आस्वाद शक्ति

प्रत्यक्ष रूप से कार्यप्रवण — अप्रत्यक्ष रूप से सहाय

ÃÖö×ÆüŸµÖÖÃ¾ÖÖ¤ü

मर्ढेकर की साहित्य मीमांसा :

मर्ढेकर ने सौंदर्य विचार के अंतर्गत कला विचार और सौंदर्य विचार और साहित्य विचार को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। नये-नये प्रतिमान स्थापित करते हुए अपनी बात की पुष्टि के लिए भारतीय और पश्चिमी आचार्यों के चिंतन को यथास्थान दिया है। साहित्येतर कला का माध्यम विशुद्ध संवेदना होता है, तो साहित्य कला का माध्यम भावनानुभूति होता है। इसी भावनानुभूति से लय प्रतीति होती है। मर्ढेकर साहित्य मीमांसा की नयी कसौटि बताते हुए लिखते हैं "वाङ्मयाच्या अनुरोधाने सौंदर्यशास्त्राचे स्वरूप ठरवणे हे धोक्याचे आहे. सौंदर्यशास्त्राच्या अनुरोधाने वाङ्मयाची समीक्षा करणे हे तितके धोक्याचे नाही."[36]

इस संपूर्ण साहित्य विवेचना में मर्ढेकर ने 'शब्द' को गौरवान्वित किया है। साहित्य समीक्षा के अंतर्गत मर्ढेकर ने शब्द को साधनद्रव्य के स्थान पर नियत किया है। वे खुद एक प्रतिभावान कवि होने के नाते उन्हें भाषा संबंधी मूलभूत ज्ञान था। शब्दों की अर्थक्षमता का उन्होंने विस्तार किया है, क्योंकि उन्हें शब्दों के अर्थ निर्णय का पूरा अनुमान था। भाषा विचार के अंतर्गत छंद और अलंकार को विशेष महत्व न देते हुए शब्द सामर्थ्य पर मुलभूत विचार किया है।

अर्थ प्रतीति देनेवाले शब्दों के उपयोग से ही साहित्य में मूल्यभान लक्षित होता है। मर्ढेकर ने शब्द के दो प्रकार बताए हैं- अप्रसरणशील शब्द, प्रसरणशील शब्द। अप्रसरणशील शब्द से तात्पर्य है, ये शब्द वस्तु दर्शक शब्द है, इसमें तर्कनिष्ठ अनुमान होता है। प्रसरणशील शब्द से तात्पर्य है- ये शब्द भावानुभूति व्यक्त करनेवाले होते हैं। इन शब्दों के अर्थ की प्रतीति लचिली होती है। और तरलता में प्रसरणशील होती है। प्रतिभाशाली कलाकार को स्पर्श से उसके स्वरूप में अंतर आ जाता है और उसका बाह्य रूप बदल जाता है। अप्रसरणशील और प्रसरणशील शब्द से वाक्य बनता है। वाक्य से पदबंध और पदबंध से सौंदर्य की निर्मिति होती है और सौंदर्य व्यापक अर्थ में लय या रिदम का कार्य करता है।

मर्ढेकर के चिंतन का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है- 'काव्य में नवीनता'। वे लिखते हैं, "ज्या क्षणी नवी प्रभावी प्रतिमासृष्टि काव्यात दृष्टीत्पत्तीस येते, त्या क्षणाला काव्याचे एक युग संपून दुसरे युग

सुरू झाल्याची साक्ष पटते."[37] (अर्थात् जिस समय काव्य में नयी प्रतिमाओं का उदय होता है, उस समय एक युग का अंत होकर दूसरे युग का आरंभ होने की साक्ष्य मिलती है।) मर्ढेकर ने नवीनता को नये आयाम से देखा है। वे काव्य में 'ओरिजिनॅलिटी' को नवीनता कहते हैं। साहित्य में नयापन न भी हो तो सौंदर्य हो सकता है किंतु उसका स्तर सामान्य होता है। विशेषत: इस संकल्पना को स्पष्ट करते समय उन्होंने नयी प्रतीक, बिंब व्यवस्था की ओर संकेत किया है।

मर्ढेकर नवीनता का संदर्भ आधुनिकता से भी जोडते हैं। काव्य में आधुनिकता कालसापेक्ष होती है। समकालीन विचारभावना सृष्टि, प्रचलित भाषा और आविष्कार पद्धति से जुड़ी हुई अवधारणा है। वर्ण्य विषय, शब्द योजना, छंद योजना काल के साथ बदलते हैं। मनुष्य के विचार और भावना में भी बदलाव होते रहता है। काव्य में उनका प्रतिबिंब दिखाई देता है। इन सारे परिप्रेक्ष्य में कविता में जो बदलाव होते हैं उनका आधुनिकता से नाता जुड़ता है। मर्ढेकर की दृष्टि में नवीनता से तात्पर्य है, 'अनुभूति की नूतन प्रस्तुति में भिन्नता दर्शानेवाले पद' को रचनामूल्य से जोड़कर देखते हैं।

मर्ढेकर का चिंतन वैविध्य से भरा हुआ है। वे साहित्य प्रकारों संबंधी अपना अलग मत रखते हैं। वे साहित्य प्रकारों के वर्गीकरण को नकारते हैं। महाकाव्य, नाटक, उपन्यास आदि प्रकारों में वर्गीकरण करना उचित नहीं है। कारण इन प्रकारों में भेद मात्र अभिव्यक्ति का है। उदाहरण- चित्रकला, मूर्तिकला तथा काव्यकला का देते हैं।

चित्रकला : चित्र के संदर्भ में कहते हैं, चित्र वॉटर कलर से या ऑईल कलर से उतारा गया है, यह महत्त्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण है चित्रकला का कला मूल्य। ठीक इसी तरह साधन भिन्नता से शिल्पकला का कलामूल्य अंकित नहीं होता। अत: वे साहित्य प्रकारों के वर्गीकरण का निषेध करते हुए बताते हैं कि साहित्य की विविध विधाओं में सृजित आशयाभिव्यक्ति भिन्न-भिन्न होती है। उसकी बुनावट भिन्न होती है। इस कारण वर्गीकरण नहीं हो सकता। वे साफ कहते हैं कि रचना का बाह्य सौंदर्य महत्त्वपूर्ण नहीं है, उसका कला मूल्य महत्त्वपूर्ण है।

मर्ढेकर ने कला-मीमांसा के अंतर्गत एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण पक्ष को उभारा है, जिनकी कई आलोचकों की अनदेखी की है। वह पक्ष है- कला का सांस्कृतिक फलन। कला के बारे में विवेचन करते हुए बताते हैं कि, कला साधन नहीं, साध्य होती है। उसका महत्त्व स्वयंभू होता है। इसलिए 'कला का फलन कला ही होती है।' कला का स्वयंभू मूल्य होने के कारण सौंदर्य को प्रतिष्ठा मिलती है, अगर सौंदर्य को प्रतिष्ठा नहीं मिलती, तो मर्ढेकर कहते है "ज्या युगाला किंवा संस्कृतीला रात्रंदिवस साध्य आणि साधने यांचाच निदिध्यास आहे. त्या युगात वा संस्कृतीत कलेला स्थान नाही. आणि असेच असेल तर आधुनिक काळात कलेचे महत्त्व काडी इतके ही नाही. अर्थपूर्ण अनुभव, साऱ्या ध्येयनिष्ठा यांची बोचकी फेकून द्यावीत आणि फक्त इंद्रियाचीच संवेदनाशक्ती प्रखर ठेवून

शब्दशः निर्मल मनाने कलाकृतीचा आस्वाद घ्यावा. तरचं सौंदर्याचा खराखूरा आनंद मिळणे शक्य. या अनुभवापुढे खांदयावरून फेकून दिलेली सारी ओझी तृणवत वाटावीत असे सौंदर्याचे सामर्थ्य आहे. विश्वातील सारी वंचना-विवंचना, सारी क्षुद्रता आणि क्षणभंगुरता, सारे वैकल्य आणि व्याकरण, सारा मोह आणि महत्ता या सौंदर्यापूढे मातीमोल आहे असे सौंदर्याचे तेजस्वी वरवाक्य आहे. या सौंदर्याला, कलेला स्वायत्त मनाने त्या सर्वश्रेष्ठ वरवाक्याचा प्रत्यय घ्यावा, तीच तीची फलश्रुती, तिचा साधन म्हणून उपयोग करू नये. कलेला प्रचारात जुंपू नये. आणि हे दैवी वरदान भ्रष्ट करू नये. गाढ व विशुद्ध संवेदना लाभलेल्या थोडयांनाच कलेचा आस्वाद घेता येतो. त्यांच्या समाधानाकडेच कला-मीमांसा वळवावी. सामान्य माणसाला कलेचा आस्वाद घेता यावा हा आग्रह अनुचित होय, असे मर्ढेकरांना वाटते."[38] (मर्ढेकर इस संपूर्ण कला मीमांसा में 'कला कला के लिए' सिद्धांत का समर्थन करते हैं। उनकी समस्त वैचारिकी में ' सौंदर्य' मूल्य को सर्वाधिक महत्त्व है।)

सौंदर्यशास्त्री मर्ढेकर ने 'वाङ्मयीन महात्मता' (साहित्य की महत्ता) के नामक सिद्धांत का प्रतिपादन किया। वे लिखते हैं, 'साहित्यवृति को गौरवान्वित करने वाले मूल्य को 'वाङ्मयीन महात्मता' (साहित्य की महत्ता) कहते हैं। इस अवधारणा को स्पष्ट करते हुए बताते हैं कि लयबद्धता में अभिव्यक्त होने वाला सौंदर्य अर्थात् कैवल्यपूर्ण मूल्यभाव 'वाङ्मयीन महात्मता' में लक्षित होता है।

मर्ढेकर का कहना है कि सौंदर्य में मूल्यभाव और विश्वघटना के मध्य विसंवाद से साहित्य निर्मिति में बहर आता है। साहित्य को जीवंत और गहरे अनुभव से सफलता प्राप्त होती है। 'तीव्रता, उत्कटता और गहराई की राह से होते हुए वैश्विक तत्वों से टक्कर लेना आवश्यक है। साहित्य में आत्मनिष्ठा तथा तादात्म्य इन दो तत्वों पर साहित्य की महत्ता की सफलता निर्भर करती है।' आत्मनिष्ठा वाङ्मय मूल्य है। आत्मनिष्ठा दो प्रकार की होती है- लेखनपूर्व आत्मनिष्ठा, लेखनगर्भ आत्मनिष्ठा।

लेखनपूर्व आत्मनिष्ठा से तात्पर्य है लेखक की कल्पनात्मक सजग प्रतिक्रिया, अर्थात उस प्रतिक्रिया से बेईमान न होना, यह लेखनपूर्व आत्मनिष्ठा कहलाती है। अपनी कल्पना को अविकृत रूप में प्रस्तुत करना लेखनपूर्व आत्मनिष्ठा है। लेखनपूर्व आत्मनिष्ठा बाधित होने के दो कारण हैं- मूलभूत प्रतिक्रिया का अभाव, आत्मवंचक रचना।

लेखनगर्भ आत्मनिष्ठा के अंतर्गत इन तत्वों का समावेश होता है- अंतः स्फूर्त अनुभव, मूलभूत अनुभव को अविकृत करना। मूलभूत अनुभव ज्यों का त्यों प्रस्तुत हो। लेखनगर्भ आत्मनिष्ठा कलाकृति में साकार होती है। किंतु लेखनगर्भ आत्मनिष्ठा के अभाव में लेखक बाह्य साधनों के अधिन हो जाता है, जिससे कलाकृति के संपूर्ण निरूपण में बाधा पहुँचती है। मर्ढेकर का मानना है कि आत्मनिष्ठा को साधारणीकरण की प्रक्रिया में लेखक अगर जुड़ा हुआ हो तो वह अपने अनुभवों से

भटक नहीं सकता। मर्ढेकर ने साधारणीकरण के दो भेद बताएँ हैं- लेखकनिष्ठ, वाचकनिष्ठ। लेखकनिष्ठ अनुभव के अंतर्गत कोई भी लेखक अपने अनुभव को प्रकट करने हेतु शब्दसृष्टि को साकार करता है। लेखकनिष्ठ तादात्म्य की प्रक्रिया को एक ग्राफ के माध्यम से इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है-

लेखकनिष्ठ तादात्म्य

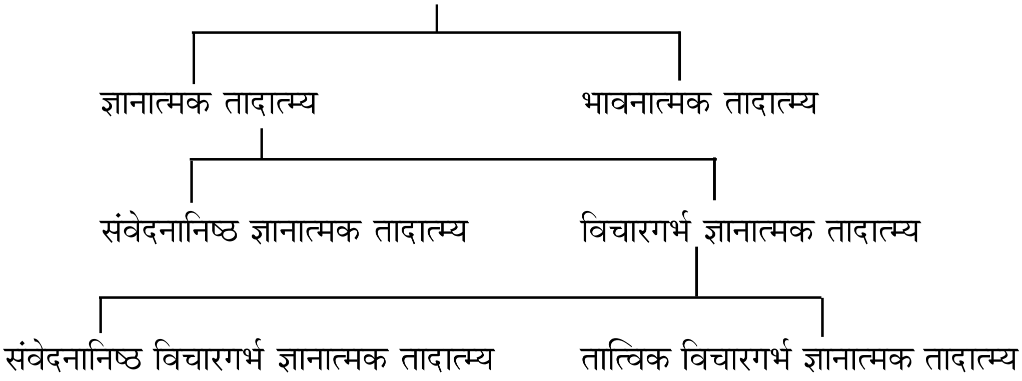

मर्ढेकर इस संपूर्ण अवधारणा को अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं, विचारों में भावना और कल्पना का समावेश करते हुए व्यक्ति, प्रेम, द्वेष, आनंद, मत्सर आदि भावना साहित्य विषयों बनने से पहले लेखक को विचारों का दामन पकडना जरूरी होता है। तादात्म्य के अंतर्गत महत्वपूर्ण तत्व है, 'विचारगर्भ तादात्म्य।' विचारों से स्थूल आकलन तक रूकने की अपेक्षा उस व्याप्त में सूक्ष्म और विभिन्न अर्थछटाओं का प्रकट किया जाना से तात्पर्य है, विचारगर्भ तादात्म्य। संवाद, लय, संतुलन के आकलन से तादात्म्य का स्वरूप निर्धारित होता है। किसी भी लेखन का गौरवीकरण तभी होता है, जब लेखक के मन में, विचारों में लयबद्धता प्राप्त होती है। साथ ही भावनाओं का स्वतः स्फूर्त तादात्मीकरण हो जाता है। लेखक के मन में भावनाओं का जितना अधिक विस्तार हो पाता है, उसमें जो लयबद्धता होती है, जिससे लेखन का और अधिक गौरवीकरण हो जाता है।

इसका दूसरा बिंदू है 'भावनात्मक तादात्म्य'। भावनात्मक तादात्म्य प्राप्त होने के सिवाय लेखक को महत्ता नहीं मिलती। लेखक के लेखन का स्तर ऐंद्रिय संवेदना को विकसित विचारों की विविधता पर अवलंबित होता है। यह विविधता ही लेखक के तादात्म्य का परिणाम होती है। आगे विवेचन में मर्ढेकर साहित्यकला और ललित कला में भेद करते हुए इसका आकलन तीव्रता से कराते हैं। अन्य कलाकारों के संदर्भ में भिन्न-भिन्न स्तर पर आकलन कैसे होता है, इसे बताते हैं, "श्रेष्ठ वाङ्मय निर्मिती आणि या निर्मितीचे मूल्यमापन या दोहोसाठी आत्मनिष्ठा, तादात्म्य आणि महात्मता या तत्वांची गरज असते." (श्रेष्ठ साहित्य निर्मिति और उसके मूल्यांकन हेतु आत्मनिष्ठा, तादात्म्य और महात्मता (महत्ता)आदि तत्वों की आवश्यकता होती है।)

'साहित्य की महत्ता' कैसे प्राप्त होती है? इस प्रश्न के आलोक में मर्ढेकर चिंतन करते हुए

बताते हैं कि, लेखक का समृद्ध व्यक्तित्व और समृद्ध अनुभवों के द्वारा 'साहित्य की महत्ता' ('वाङ्मयीन महात्मता') प्राप्त होती है। इसके लिए लेखक का बहुश्रुत होना आवश्यक है। भावना रचनासौंदर्य का विश्व रचना सौंदर्य से अधिकाधिक समन्वय होता है। तभी महात्मता का विकास होता है। साहित्य का उद्देश्य सौंदर्य तत्व के संदर्भ में लयबद्ध अन्विति का भी रहा है, यही विशेषता उसे मानव व्यवहार से भिन्न करती है। मर्ढेकर का कथन है, "सृष्टीतील घटना आणि तज्जन्य अनुभव यांच्या या संकुचित साधन प्रधान संगीतसमन्वयाला ओलांडून अधिक विस्तृत अशा संगीत समन्वयाकडे दृष्टि टाकणे यातच लेखकाचे वैशिष्टये आणि वाङ्मयाचे स्वास्थ्य आहे.' (सृष्टि में व्याप्त घटना और तज्जन्य का ²ÖÖ¬Ö ²ÖÖŸÖÖµÖÖ Æî…)

कला-साहित्य मीमांसा : मर्ढेकर के सौंदर्यशास्त्र में सैद्धांतिक चिंतन के साथ व्यावहारिक समीक्षा को भी उतना ही महत्त्व है। वे अपनी सौंदर्य-मीमांसा और साहित्य-मीमांसा को कुछ साहित्येतर कृतियों और कुछ साहित्य कृतियों में रखकर करते हैं। लोकचित्रकला और एप्स्टाइन 'जेनेसिस' शिल्पकृति अर्थात साहित्येतर कला और कलाकृति का मूल्यांकन सौंदर्यशास्त्र के निकषों को केंद्र में रखकर किया है। मर्ढेकर ने साहित्य के माध्यम से होनेवाली सर्जना और उसका आस्वाद, इनके लिए अलग परिभाषा बनाई है। आत्मनिष्ठा, तादात्म्य, कैवल्यपूर्ण मूल्यभाव और महात्मता (महत्ता), नवीनता, प्रसरणशील शब्द और विरोधात्मक लय के द्वारा रचनाशीलता और कलाबोध को अभिव्यक्त किया है। स्मृतिचित्रे, लुईजे पिरांदेल्लो, कवि गिरीश, तांबे, माधव ज्यूलियन, अनंत काणेकर, गंगाधर गाडगील, प्रभाकर पाध्ये, श्री के. श्रीरसागर और बालकवि की कविता इत्यादि साहित्य विषयक व्यावहारिक समीक्षा उन्होंने लिखी है। डॉ. विवेक गोखले इस संदर्भ में कहते हैं, 'मर्ढेकरी सौंदर्य विचार समझने के लिए दर्शनशास्त्र और संगीत के अध्ययन की जरूरत होती है।'

'संगीतक' नामक लेख में मर्ढेकर ने आदर्श संगीतक (नाट्य प्रकार) की अवधारणा को स्पष्ट किया है। 'लुईजे पिरांदेल्लो' नामक लेख में मर्ढेकर ने लुईजे की बुद्धि, तर्क प्रधानता और विस्फोटक सोच की प्रशंसा की है। इतालियन नाटककार लुईजे का मूल्यांकन करते हुए उन्होंने लिखा है, 'उनकी प्रखर बौद्धिकता ने उनकी कलादृष्टि को हानि पहुँचाई है।' फिर भी मर्ढेकर उन्हें इतालियन साहित्य की प्रबल शक्ति मानते हैं। विस्तार में जाकर कहते हैं कि आँचलिक जीवन पर वैश्विक किताबों की इमारत खड़ी कर कलानिर्मिति से संबंधित कुछ जटिल प्रश्नों को सफलता से छुड़ाने हेतु लुईजे की प्रशंसा करते हैं। गंगाधर गाडगील की कहानियों का मूल्यांकन करते समय वे गठन और लय तत्व के बारें में विचार करते हैं। गाडगील की शैलीगत प्रवृत्ति में व्याप्त स्वतंत्रता और शिल्प में कसावट के बारे में उल्लेख करते हैं। आशय और अविष्कार में अंतर्भूत अंतर्विरोधी तत्वों को प्रस्तुत करते हैं। वे गाडगील की कहानियों का मूल्यांकन करते समय इस बात की ओर निर्देश करते हैं कि वे कृति का

मूल्यांकन अनेक स्तरों पर जाकर करते हैं। कृति में अंतर्भूत अंतर्विरोधों के आधार पर यह मूल्यांकन निर्मित हुआ है, ऐसा मर्ढेकर का मानना है।

मर्ढेकर ने श्री के. क्षिरसागर के उपन्यास 'राक्षस विवाह' का मूल्यांकन करते हुए बताया है कि प्रस्तुत उपन्यास में तर्कशुद्धता का अभाव है। उसकी दूसरी सीमा यह बताते हैं कि उसमें संभावनाओं का भी अभाव है। यह उपन्यास भावनाप्रधान नहीं है। प्रभाकर पाध्ये द्वारा रचित 'व्याधाची चांदणी' कहानी संग्रह का मूल्यांकन करते हुए मर्ढेकर बताते हैं, इसमें भी तार्किकता का घोर अभाव है। जिसके चलते इन कहानियों में सतहीपन आ गया है। इन कहानियों में भावनात्मकता के अभाव से कैसे उथलापन आया है, जिसके कारण कहानियाँ कमजोर बनी हैं, ऐसा मर्ढेकर का मानना है।

कुल मिलाकर मर्ढेकर द्वारा प्रतिपादित साहित्य-समीक्षा के बारे में यही कहा जा सकता है कि मर्ढेकर सौंदर्यवादी समीक्षक हैं, जीवनवादी नहीं।

क्लॉईव बेल, रॉजर फ्राय, बर्ट्रांड रसेल के चिंतन का प्रभाव मर्ढेकर पर स्पष्ट दिखाई देता है। मर्ढेकर की वैचारिकी में उपर्युक्त चिंतकों के चिंतन के अनेक बिंदू लक्षित होते हैं।

मर्ढेकर के सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन का निम्नलिखित बिंदूओं के आधार पर मूल्यांकन किया जा सकता है-

1. मर्ढेकर कलावादी या सौंदर्यवादी आलोचक हैं।
2. मर्ढेकर के सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन के मूल में चित्रकला और पश्चिमी काव्य चिंतन का बड़ा योग रहा है।
3. मर्ढेकर का सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन दो विभागों में वर्गीकृत किया जा सकता है- कला-मीमांसा †Ö¸ü ÃÖÖ×ÆüŸµÖ-´ÖßÖ´ÖÖÃÖÖ...
4. मराठी में सौंदर्यशास्त्र पर स्वतंत्र चिंतन और लेखन करनेवाले पहले सौंदर्यवादी आलोचक मर्ढेकर हैं।
5. मर्ढेकर अपने सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन में प्रधान रूप से तीन सिद्धांतों का प्रतिपादन करते हैं। 1. »ÖµÖ ×ÃÖ¨üÖÓŸÖ 2. भावनानिष्ठ समानानुभूति का सिद्धांत 3. वाङ्मयीन महात्मता (साहित्य की महत्ता) का सिद्धांत।
6. मर्ढेकर ने सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन में 'रूप विचार' पर गहन चिंतन किया गया है।
7. साहित्य समीक्षा के अंतर्गत मर्ढेकर ने माध्यम (Medium) और साधनद्रव्य (Material) इन दो तत्वों को उपयोगी तत्व माना है।
8. मर्ढेकर ने सैद्धांतिक समीक्षा के साथ व्यावहारिक समीक्षा के अंतर्गत मौलिक योगदान दिया है।
9. 'काव्य में नव्यता' का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत मर्ढेकर ने स्थापित किया है। इसी वजह से

मराठी में 'नवकविता' के प्रवर्तक के रूप में उन्हें मान्यता मिली।

10. मर्ढेकर ने अपने सौंदर्यशास्त्रीय विवेचन में आधुनिकता और नवता के अन्योन्य संबंध का सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक विवेचन किया है।
11. मर्ढेकर ने कला-मीमांसा के अंतर्गत 'कला के सांस्कृतिक फलन' को महत्वपूर्ण माना है।
12. साहित्य कृति में अंतर्भूत 'वाङ्मयीन महात्मता' (साहित्य की महत्ता) के सिद्धांत का पहली बार उद्घाटन मर्ढेकर ने किया है।
13. मर्ढेकर तादात्मीकरण को लेकर स्वतंत्र सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन करते हैं।
14. मर्ढेकर के सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन पर क्लॉईव बेल, रॉजर फ्राय, बर्ट्रांड रसेल के चिंतन का गहरा प्रभाव लक्षित होता है।
15. मर्ढेकर के सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन पर समर्थन और प्रतिवाद के रूप में काफी कुछ लिखा गया। विशेषतः प्रतिवाद करने वाले समीक्षकों में कुसुमावती देशपांडे, प्रभाकर पाध्ये, शरदचंद्र मुक्तिबोध, नरहर कुरूंदकर, रा. भा. पाटणकर, संभाजी कदम आदि प्रमुख रहे हैं। किंतु कुछ ऐसे समीक्षक हैं जिन्होंने प्रतिवाद करते हुए उनके सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन की सराहना की है। उनमें ग. ना. लवंदे, मे. पु. रेगे, अशोक रानडे, पु. ग. सहस्त्रबुद्धे, म. द. हातकणंगलेकर, लक्ष्मणशास्त्री जोशी, कविभूषण ब. ग. खापर्डे, रा. श्री. जोग, पु. शि. रेगे, वा. ल. कुलकर्णी, माधव मनोहर, ल. म. भिंगारे, दु. का. संत, सुधीर बेडेकर, वि. रा. करंदीकर, भा. ज. कविमंडन, श्री रा. जाहागिरदार, दिगंबर पाध्ये, सुरेंद्र बारलिंगे आदि समीक्षकों का समावेश होता है।

निष्कर्ष : 'सौंदर्य और साहित्य' इस ग्रंथ का अध्ययन करने के उपरांत हम अत्यंत तर्कशुद्ध और मूलभूत चिंतन करनेवाले मर्ढेकर के निकट आ जाते हैं। परंतु मर्ढेकर की कला-मीमांसा एकेदमिक नहीं है, विशिष्ट विषय के अनुसार केवल बौद्धिक जिज्ञासा से लिखने वाले लेखक का यह ग्रंथ नहीं है। यह एक कलाकार का आत्मचिंतन है। उनकी कला मीमांसा ही उनकी मूलभूत भूमिका है। कला क्या है? सौंदर्य क्या है? उसका प्रयोजन क्या है? कृति के मूल्यांकन के सौंदर्यशास्त्रीय निकष क्या हो सकते हैं? इन्हीं प्रश्नों के उत्तर की खोज करते हुए साहित्य-समीक्षा में नये प्रतिमान स्थापित करते हैं। मराठी में सौंदर्यशास्त्र का प्रत्याख्यान करने का श्रेय मर्ढेकर को ही जाता है। विशेषतः भारतीय और पश्चिम चिंतन को पचाकर वे नयी राह बनाते हैं। जिससे कृति केंद्रित मूल्यांकन की परंपरा का प्रवर्तन हो जाता है। इसलिए यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि, मर्ढेकर के परवर्ती कालखंड में मर्ढेकर के सौंदर्यशास्त्र को केंद्र में रखकर ही सारी बहस होती रही है।

5.3 अज्ञेय और मर्ढेकर की समीक्षा का तुलनात्मक अध्ययन

प्रस्तावना :

अज्ञेय और मर्ढेकर दो भिन्न भाषा के दो भिन्न रचनाधर्मी हैं। भिन्न परिवेश, भिन्न भाषिक संस्कृति और भिन्न मानसिक परिघटना के साक्षी रहे हैं। दोनों के चिंतनशील मानस पर अनेक प्रकार के संस्कार हुए हैं। 'कोई भी सृजनशील रचनाकार अपने परिवेश की उपज होता है।' रचनाकार के व्यक्तित्व की बुनावट में परिवेश का बड़ा योग होता है। चीजों की ओर देखने का दृष्टिकोण भी दो सृजनधर्मियों में भिन्न होता है। बावजूद इसके अज्ञेय और मर्ढेकर के आलोचकीय चिंतन में अनेक साम्य-स्थल नजर आते हैं। दोनों की वृत्ति प्रवृत्ति, दोनों की वैचारिक संरचना में, साहित्य, कला, संस्कृति, मूल्य, काल, समसामयिक चेतना, अतीत और वर्तमान के मध्य फैले हुए अवकाश को नापने की पद्धतियाँ आदि दृष्टियों में कहीं साम्यभाव तो कहीं वैषम्य की स्थिति लक्षित होती है। इस पहले उपबंध में हम अज्ञेय और मर्ढेकर के आलोचकीय कर्म में स्थित सादृश्यता पर प्रकाश डालेंगे। दोनों के दृष्टि बिंदुओं का अवलोकन कर मूल्यांकन करेंगे।

रचनाकार आलोचक अज्ञेय और मर्ढेकर समकालीन और समानधर्मी चिंतक रहे हैं। अज्ञेय ने अपना आलोचकीय चिंतन 1935 के आसपास आरंभ किया। भवंती, शाश्वती, शेषा और अंतरा के माध्यम से समकालीन सृजन चिंतन किया। लगभग 1935-1965 तक वैचारिक दृष्टि से वे निरंतर आलोचना कर्म से जुडे रहे। उसी दौरान 'सर्जना और संदर्भ', 'संवत्सर', 'आत्मनेपद', 'सप्तकों की भूमिकाएँ', विभिन्न संपादनों के माध्यम से अपने समय से उन्होंने बौद्धिक संवाद किया। ठीक उसी समय उन्होंने अपने को काल-चिंतन, संस्कृति बोध, कलाबोध, मूल्यबोध, सृजन प्रक्रिया और समकालीन संकट की स्थितियों के बोध से खुद को जोडे रखा। अज्ञेय जिस समय में आलोचकीय चिंतन कर रहे थे, यह कालखंड संशय का युग, आकस्मिक स्थितियाँ, दो महायुद्धों के बीच असुरक्षा, असहायता के बीच सांस ले रहा मनुष्य, औद्योगिक विकास, मशीनी संस्कृति का आगमन, मध्यवर्ग का उदय होते जाना, मनुष्य की त्रिशंकु जैसी स्थिति, भय और असुरक्षा का शिकार मनुष्य, विशेषतः संपूर्ण कालखंड गुलामी (दास्ता) का रहा है। इसी दौरान वे स्वाधीनता बोध, आधुनिकता, मूल्यों के संक्रमण की स्थिति, बदलते जीवनमूल्य, विश्वव्यापी अराजकता की स्थिति, व्यक्तिवाद का आगमन आदि मुद्दों को गंभीरता से उठाते हैं। ठीक इसी समय मराठी में बा. सी. मर्ढेकर अपने नवचिंतन से समीक्षा जगत को चौंकाते ही नहीं, नये प्रतिमान भी स्थापित करते हैं।' Art and man (1937), वाङ्मयीन ´ÖÆÖÿ´ÖÿÖ (1941) सौंदर्य आणि साहित्य (1955) तथा कला आणि मानव (1983) में मर्ढेकर का आलोचक-चिंतक के रूप में उदय होता है। अज्ञेय की तरह ही उन्होंने सर्जनात्मक आलोचना और व्यावहारिक आलोचना को समान महत्व दिया। मर्ढेकर ने मराठी में नये सौंदर्यशास्त्र का प्रवर्तन

किया। यह ऐतिहासिक एवं क्रांतिकारी कार्य है। उन्होंने अपने समग्र चिंतन में तीन महत्त्वपूर्ण सिद्धांतों का प्रतिपादन किया- लय सिद्धांत, भावनानिष्ठ समानानुभूति का सिद्धांत तथा वाङ्मयीन महात्मता (साहित्य की महत्ता)। मर्ढेकर ने अपने चिंतन में कला चिंतन, साहित्य समीक्षा विषयक चिंतन और सौंदर्य विषयक चिंतन का परिचय कराया। मर्ढेकर मराठी में सौंदर्यशास्त्र पर पहली बार चिंतन करनेवाले प्रथम सौंदर्यशास्त्री रहे हैं। इसलिए ये दोनों समकालीन तो हैं ही, किंतु सृजनधर्मी चिंतक के रूप में उभरते हैं। इन दोनों ने हिंदी मराठी आलोचना को अपनी अपनी दृष्टि संयोजना से समृद्ध किया। इतना ही नहीं दोनों भाषाओं में नये प्रतिमान स्थापित किए। उभय रचनाकार आलोचक कला की ओर सौंदर्यवादी दृष्टि से देखते हैं। अज्ञेय ने कला के बारे में स्वतंत्र चिंतन किया है। वे लिखते हैं, "कला सामाजिक अनुपयोगिता की अनुभूति के विरूद्ध अपने को प्रमाणित करने का प्रयत्न अपर्याप्तता के विरूद्ध विद्रोह है।"[39] वस्तुतः अज्ञेय ने सृजनशील मानस में उठनेवाली तरंगों को 'अतृप्ति' के साथ जोड़ा है। उनका यह कहना अधिक युक्तिसंगत लगता है कि कला अपर्याप्तता के विरूद्ध विद्रोह है। क्योंकि मनुष्य निरंतर परिपूर्ति की तलाश में रहता है। वह अपूर्ण होता है, उसकी यात्रा पूर्णता की ओर जाती है, "कला संपूर्णता की ओर जाने का प्रयास है, व्यक्ति की अपने को सिद्ध प्रमाणित करने की “ÖÂ™Ö Æ…"[40] इस संपूर्ण यात्रा में कलाकार में आत्मदान की वृत्ति का होना आवश्यक है। क्योंकि कला अहं का विलयन अर्थात आत्मदान की मांग करती है। यह एक अर्थ में खुद को सिद्ध करने का माध्यम बनती है। इस संपूर्ण विवेचन में अज्ञेय का कला के बारे में सौंदर्यवादी रूझान स्पष्ट होता है। आत्मदान के साथ कला दृष्टि में नवीनता का होना नितांत जरूरी है। क्योंकि पुरानेपन को झाड़कर ही नया पैदा किया जा सकता है। इसलिए अज्ञेय लिखते हैं, "अतीत की कृतित्व का अंधानुकरण विघातक होगा। निरी गतानुगतिकता से कला की परंपरा की रक्षा कदापि नहीं होती, जो केवल आवृत्ति है, वह नूतन नहीं हैं और नूतनता के चमत्कार के बिना वह कला ही नहीं है।"[41] अज्ञेय ने कला चिंतन में निर्वेयक्तिकता को महत्त्व दिया है। उनका मानना है कि कला को दो दृष्टि बिंदुओं से देखा जा सकता है। एक कलाकार के और दूसरा रसिक के।

अज्ञेय ने कला के संबंध में तीन स्थापनाएँ प्रतिपादित की हैं-

1. कला की सामग्री को सीमित करना अनाधिकार चेष्टा हैं।
2. समकालीन परिस्थितियों को ध्यान में रखकर प्रेरणा पैदा करना।
3. वस्तुतः साहित्य में प्रेरक शक्ति हो सकती है, किंतु वह साहित्यकार की आंतरिक क्षमता का स्वयंभूत फल है। इन तीनों स्थापनाओं के अंतर्गत अज्ञेय का सौंदर्यवादी दृष्टिकोण झलकता है। इस सौंदर्यवादी दृष्टि में अज्ञेय कला में आनंद की खोज करते हैं। वे मानते हैं कि "कला आनंद देती है तो अनुभूतियों से छुटकारा दिलाकर नहीं बल्कि उनके मूल स्त्रोत की पहचान कराकर।"[42] अज्ञेय कला

चिंतन के अंतर्गत 'कला कला के लिए' सिद्धांत का एक विशेष अर्थ में समर्थन करते हैं। वे लिखते है, "कला कला के लिए झूठ नहीं है, वह अत्यंत सत्य है, लेकिन एक विशेष अर्थ में। यदि 'कला, कला के लिए' का अर्थ है, निरे सौंदर्य' की खोज, किन्हीं विशेष सिद्धांतों के द्वारा एक रासायनिक सौंदर्य की उपलब्धि, तब वह कला कलाकार को कोई भी सुख नहीं दे सकती। न आत्मदान का, न आत्मबोध का, वह कला वंध्या है।"[43]

मर्ढेकर ने कला संबंधी चिंतन में 'कलेची सांस्कृतिक फलश्रुती (कला का सांस्कृतिक फलन) नामक सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। वे जानते हैं कि कला साधन नहीं, साध्य है। उसका महत्त्व स्वयंभू होता है। इसलिए कला का फलन कला ही होता है। कला को स्वयंभू मूल्य होने के कारण सौंदर्य को प्रतिष्ठा मिलती है। अगर सौंदर्य को प्रतिष्ठा नहीं मिलती तो मर्ढेकर कहते हैं, "ज्या युगाला किंवा संस्कृतीला रात्रंदिवस साध्य आणि साधने ह्यांचाच निदि्ध्यास, त्या युगात वा संस्कृतीत कलेला स्थान नाही. आणि असेच असेल तर आधुनिक काळात कलेचे महत्त्व काडी इतके ही नाही अर्थपूर्ण अनुभव, साऱ्या ध्येयनिष्ठा यांची बोचकी फेकून द्यावीत आणि फक्त इंद्रियाचीच संवेदनशक्ती प्रखर ठेऊन शब्दशः निर्मल मनाने कलाकृतीचा आस्वाद घ्यावा. तरच सौंदर्याचा खराखुरा आनंद मिळणे शक्य. या अनुभवापुढे खांद्यावरून फेकून दिलेली सर्व ओझी तृणवत वाटावीत असे सौंदर्याचे सामर्थ्य आहे. विश्वातील सारी वंचना-विवंचना सारी क्षुद्रता आणि क्षणभंगूरता, सारे वैकल्य आणि व्याकरण, सारा मोह आणि महत्ता या सौंदर्यापूढे मातीमोल आहे. असे सौंदर्याचे तेजस्वी वरवाक्य आहे. या सौंदर्याला, कलेला स्वायत्त मानावे. त्या सर्वश्रेष्ठ वरवाक्याचा प्रत्यय घ्यावा, तीच तीची फलश्रुती. तिचा साधन म्हणून उपयोग करू नये. कलेला प्रचारात जुंपू नये आणि हे दैवी वरदान भ्रष्ट करू नये. गाढ व विशुद्ध संवेदना लाभलेल्या थोडयांनाच कलेचा आस्वाद घेता येतो. त्यांच्या समाधानाकडे कला मीमांसा वळवावी. सामान्य माणसाला कलेचा आस्वाद घ्यावा हा आग्रह अनुचित होय."[44] (अर्थात जिस युग या संस्कृति में रातदिन साध्य और साधन के बारे में निरंतर सोच विचार होता हो, उस युग में कला को कोई स्थान नहीं है। अगर ऐसा ही है, तो आधुनिककाल में कला का कोई महत्व ही नहीं है। समृद्ध अनुभव, समग्र ध्येयनिष्ठा को त्यागकर केवल ऐंद्रिय संवेदना को प्रखरता से जागृत कर निर्मल भाव से कलाकृति का आस्वाद लेना चाहिए। तभी हमें सौंदर्य का वास्तविक आनंद मिलेगा। इस कला सौंदर्य के आगे सभी प्रकार के मोह फिके पड जाते हैं। कला स्वयंभू है, स्वायत्त है और कला का फल कला ही होता है। इसलिए चुनिंदा रसिक ही इसका आस्वाद ले सकते हैं।)

उभय समीक्षकों ने अपनी समीक्षा में जिन सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है, उनका अवलंब अपनी साहित्य कृतियों में अक्षरशः किया है। अज्ञेय अपने साहित्य चिंतन में संप्रेषण का सिद्धांत, अस्तित्व से संबंधित प्रश्न, समकालीन साहित्य चिंतन, आलोचक का आत्मसंघर्ष, स्वातंत्र्य की

खोज, वरण की स्वतंत्रता तथा रचना प्रक्रिया से संबंधित मूलभूत चिंतन करते हैं। उनके चिंतन में बुनियादी प्रश्नों से टकराने की अनुगूंजे सुनने को मिलती है। रस सिद्धांत के साधारणीकरण की समस्या को ही नयी कविता में संप्रेषणीयता की समस्या के रूप में प्रस्तुत किया गया। अज्ञेय संप्रेषण को कवि दृष्टि में देखते हैं और उसे रचनाकार की समस्या मानते हैं। संप्रेषण पर अज्ञेय द्वारा की गई एक लघु टीप-

"हम कहते हैं, रचना ने हमें छुआ-
रचना हमारे भीतर बजती है- यह
छूना, छुआ जाना, यह भीतर बजना
ही संप्रेषण का आयाम है।"[45]

अज्ञेय की समीक्षा नये सोच के दस्तावेज हैं। जिसमें आस्तित्विक प्रश्नों की टकराहट सुनने को मिलती है। अज्ञेय अस्तित्ववादी चिंतन से प्रभावित हैं। वे कार्ल यास्पर्स से मिले भी थे। मनुष्य जीवन के अस्तित्व की चिंता के प्रश्न से वे लगातार जुझते रहे हैं। विशेषतः मनुष्य जीवन की समग्रता को लेकर वे चिंतन करते हैं। अपने सृजनशील अनुभवों से गुजरकर यह चिंतक मानवीय सौंदर्य की तलाश करता है। 'मृत्युबोध' (शेखर : एक जीवनी, अपने-अपने अजनबी) उसी का एक अंग है। सभ्यता के संकटों से लेकर सांस्कृतिक चेतन की स्थितियों का बेबाक चित्रण करते हैं। द्रष्टव्य है, अज्ञेय की 'भग्नदूत' कविता संग्रह की ' कवि' कविता - 'एक तीक्ष्ण अपांग से कविता उत्पन्न हो जाती है, एक चुम्बन में प्रणय फलीभूत हो जाता है, पर मैं अखिल विश्व का प्रेम खोजता फिरता हूँ क्योंकि मैं उसके असंख्य हृदयों का गाथाकार हूँ, एक ही टीस से आँसू उमड़ आते हैं, एक खिडकी से हृदय उच्छ्वसित हो उठता है, पर मैं अखिल विश्व की पीड़ा संचित कर रहा हूँ, क्योंकि मै जीवन का कवि Æ..."[46]

अज्ञेय ने अपने समय को साक्षी मानकर सर्जना की है। इसलिए उनकी आलोचना और सर्जना में 'समकालीन साहित्य चिंतन' का स्वर उमड़ पड़ा है। भवंती, शाश्वती, आलवाल, अद्यतन, अन्तरा और शेषा आदि संकलनों में जिन बुनियादी मुद्दों को उन्होंने उठाया है, उन्हें वे कविता और उपन्यास में स्थान देते हैं। साहित्य को सम्यक दृष्टि से समझने हेतु वैज्ञानिक और तार्किक आधार की तलाश करते हैं। द्रष्टव्य है काव्य पंक्तियाँ- "जो पुल बनाएँगे। अनिवार्यतः पीछे रह जाएँगे। सेनाएँ हो जाएँगी पार। मरे जाएँगे रावण। जयी होंगे राम। जो निर्माता रहे इतिहास के। वे बंदर कहलाएँगे।"

अज्ञेय ने साहित्य चिंतन के अंतर्गत व्यावहारिक समीक्षा को बड़ा महत्व दिया है। इसलिए वे प्रेमचंद, रेणु, निराला, गुप्त, तुलसीदास और कबीर का पुनर्पाठ करते हैं। विशेषतः उनके भीतर का आलोचक आधुनिक संवेदनाओं से खुद को निरंतर जोड़े हुए हैं। इसलिए उनके लेखन में एक

मार्मिक तड़प अभिव्यक्त हुई है। यह संवादी वृत्ति उन्होंने निरंतर बनाये रखी। एक कवि होने के नाते आलोचना के क्षेत्र में एक 'थॉटफूल टॉक' करते हैं। आलोचक के आत्मसंघर्ष से गुजरते हैं। डॉ. नामवर सिंह ने अपने एक व्याख्यान में आलोचक की मुश्किलों और आत्मसंघर्ष पर बात करते हुए अज्ञेय के संग्रह 'महावृक्ष के नीचे' की सुपरिचित कविता 'नाच' का उल्लेख किया है। उनका मानना है कि 'नाच' केवल नट के ही नहीं, बल्कि आलोचक के आत्मसंघर्ष को भी उतनी ही गहराई से आइडेंटीफाई करती है। द्रष्टव्य है 'नाच' की पंक्तियाँ -

"एक तनी हुई रस्सी है जिस पर मैं नाचता हूँ।
जिस तनी हुई रस्सी पर मैं नाचता हूँ
वह दो खम्बों के बीच है
रस्सी पर मैं जो नाचता हूँ
वह एक खम्भे से दूसरे खम्भे तक का नाच हैं।"[47]

अज्ञेय के चिंतन में 'स्वातंत्र्य की खोज' का विलक्षण महत्त्व है। उनका मानना है कि स्वाधीन होना अपनी चरम संभावनाओं की संपूर्ण उपलब्धि के शिखर तक विकसित होना है। अज्ञेय ने स्वाधीनता के मूल्य को अपने चिंतन और जीवन और साहित्य में स्पृहणीय स्थान दिया है। अज्ञेय ने स्वतंत्रता को मानव मन का नहीं, मानव आत्मा का कुसुमन कहा है। वे 'शेखर : एक जीवनी' में भी शेखर की जीवनी के माध्यम से स्वातंत्र्य की खोज करते हैं। शेखर निरंतर परिस्थिति से टकराता है। वह अपने समय, संस्कार और सभ्यता से टकराता है, विद्रोह करता है। शेखर का यह विद्रोह माता की आज्ञा के प्रति, शिक्षा के नियमों के प्रति, जीने की सामान्य शर्तों के प्रति तथा समाज के सामान्य नियमों के प्रति दिखाई देता है। विशेषतः बाह्य स्तर पर क्रांतिकारी आंदोलन से जुडने के संदर्भ 'स्वातंत्र्य बोध' को दर्शाते हैं तो शशि से जुड़ने के संदर्भ आंतरिक छटपटाहट को अभिव्यक्त करते हैं। यहाँ अज्ञेय 'वरण की स्वतंत्रता' का प्रश्न बार-बार उठाते हैं। 'नदी के द्वीप' तथा 'अपने अपने अजनबी' में वरण की स्वतंत्रता का प्रखर रूप उभरकर सामने आया है। भुवन, रेखा और गौरा के त्रिकोण को उभारते समय वे वरण की स्वतंत्रता का प्रश्न उठाते हैं। इस प्रेम प्रधान उपन्यास में नियतिबोध को दर्शाते हुए मानवीय मूल्यों के प्रति सजग करने का प्रयास करते हैं। तो 'अपने अपने अजनबी' में मृत्युबोध की पीड़ा को अभिव्यक्त करते हुए फिर से 'वरण की स्वतंत्रता' का गंभीर सवाल उठाते हैं। यहाँ अजनबीपन और पीड़ाबोध को दर्शाते हुए वरण की स्वतंत्रता को वर्णित करते हैं। अंततः 'अपने अपने अजनबी' में इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जीवन में वैकल्पिक वरण अथवा चयन स्वातंत्र्य नहीं है। अज्ञेय ने एक और महत्वपूर्ण पक्ष पर गंभीर चिंतन किया है, वह है रचना प्रक्रिया। वे रचना प्रक्रिया को दो संदर्भों में देखते हैं। एक कलात्मक अनुभूति या संवेदना और उसके प्रति तटस्थ भाव

भी, जो उसे संप्रेष्य बना सके। कलाकार को अपने सुख दु:ख से परे जाकर अपनी जीवंत अनुभूति को मूर्त रूप देना चाहिए। कला में उसका व्यक्तिगत संबंध या लगाव प्रतीत न हो बल्कि वह साधारणीकृत, अत: सामाजिक ग्राह्य बनकर उपस्थित होना चाहिए। इसलिए उन्होंने 'कृति केन्द्रित आलोचना' की दुहाई दी है। इसलिए 'त्रिशंकु' में लिखते हैं, 'कलाकार जितना ही बड़ा होगा, उतना ही व्यक्ति जीवन और रचनाशील मन का, यह अलगाव भी आत्यन्तिक होगा। इतना ही नहीं, उन्होंने रचना प्रक्रिया के अंतर्गत समूची कला साधना का केंद्रीय तत्व व्यक्तित्व के विकास को माना है। यही कारण है कि वे रचना को उसकी समग्रता और समूचे संघटन में देखते हैं।

रचनाकार आलोचक मर्ढेकर ने भी अपने आलोचकीय कर्म में जिन सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है, उन्हें अपनी कविता और उपन्यासों में पूर्णत: उतारने की चेष्टा की है। उन्होंने अपने सौंदर्यशास्त्र में जिन तीन प्रमुख सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है- उनमें लय तत्व का सिद्धांत, भावनानिष्ठ समानानुभूति का सिद्धांत तथा वाङ्मयीन महात्मता (साहित्य की महत्ता) के सिद्धांत महत्वपूर्ण रहे हैं। लय तत्व के सिद्धांत में संवाद, विरोध और संतुलन को महत्व देते हुए अपनी बात का सूक्ष्म खुलासा किया है। महात्मता (महत्ता), नवीनता और घाटबद्धता (रूप विचार) इन तीन सिद्धांतों की सजग अभिव्यक्ति मर्ढेकर ने की है। और इन तीनों सिद्धांतों का आधार लय तत्व है। मर्ढेकर के लय तत्व के सिद्धांत को महात्मता (महत्ता), नवीनता और रूप विचार के अनुषंग में ही देखा जा सकता है। लय तत्व में रसिक को सौंदर्य का प्रत्यय होता है। जिसमें संवाद, विरोध और संतुलन का योग होता है। लय निर्माण करने के उद्देश्य से कलाकार उसकी सौंदर्य कल्पना जीवनानुभव से सम्पृक्त होने के कारण वह कलानिर्मिति में संलग्न होता है।

मर्ढेकर ने सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन में 'वाङ्मयीन महात्मता' (साहित्य की महत्ता) का नया सिद्धांत प्रतिपादित किया। मर्ढेकर ने 'साहित्य कृति को गौरवान्वित करनेवाले मूल्य को 'वाङ्मयीन महात्मता' (साहित्य की महत्ता) कहा है। वे साहित्य में आत्मनिष्ठा तथा तादात्म्य को समान महत्व देते हैं। साथ ही आत्मनिष्ठा को साहित्य का मूल्य मानते हुए 'लेखनपूर्व आत्मनिष्ठा' तथा 'लेखनगर्भ आत्मनिष्ठा' दो प्रकार बताते हैं। विचारात्मक, भावनात्मक और कल्पनात्मकता के संयोग से रचना में अनुभूति का जीवंत प्रत्यय होता है। यहाँ मर्ढेकर रचना से तादात्म्य का संदर्भ बताते हैं। यही भाव उनकी इन काव्य पंक्तियों के द्वारा अभिव्यक्त हुआ है। द्रष्टव्य है काव्य पंक्तियाँ-

'न्हालेल्या जणु गर्भवतीच्या
सोज्वळ मोहकतेने बंदर
´Ö²ÖÖ¯Ö¸ÖßÖ“Ö ^•Ö×ôÖ¾ÖÖ µÖ‡
´Ö‘ÖÖ´Ö–Ö»ÖÖß ¯Ö³ÖÖÖÝÖ ÃÖ¤ü¸ü.'

(गर्भवती स्त्री की सृजनोन्मुख अवस्था का मर्ढेकर अहंनिरपेक्ष वृत्ति से विवेचन करते हैं। उसमें सहजता और कौतुहल का भाव नजर आता है। यहाँ कलाकार की सृजनधर्मिता और ईश्वर में अंतर्भूत मांगल्य भाव की एकरूपता का आभास होता है।) अर्थात इसमें सौंदर्यशास्त्री मर्ढेकर 'साहित्य की महत्ता' को विशद करते समय टी. एस. इलियट के निर्वेयक्तिवाद तक पहुँचते हैं।

मर्ढेकर ने काव्य में नवीनता का आग्रह किया है। उसके लिए वे नव्य प्रतिपादन करते हैं। उनका मानना है कि जिस क्षण काव्य में नयी प्रतीक दृष्टि का प्रत्यय होता है, वहाँ से नये युग की शुरूआत होती है। काव्य में 'ओरिजिनॅलिटी' को ही उन्होंने नवीनता कहा है। मर्ढेकर ने नवीनता को आधुनिकता से भी जोडकर देखा है। इसलिए वे नवीनता को काव्य का एक महत्त्वपूर्ण सौंदर्य मूल्य मानते हैं। नवीनता में विज्ञान पर मूलभूत निष्ठा, विज्ञान और बुद्धिवाद का समन्वय, पूँजीवाद का विरोध, मानवतावादी स्वर, प्रस्थापित मूल्यों से विद्रोह आदि बातों (तत्वों) का समावेश होता है। यह नवीनता सौंदर्य की वृद्धि में अहम् भूमिका निभाती है। प्रतीक व्यवस्था, बिंब विधान और छंद योजना के अंतर्गत नयी राह पर चलने का प्रयास दिखाई देता है। द्रष्टव्य है मर्ढेकर की काव्य पंक्तियाँ -

1. जाणे शुद्ध शुचिर्भूत। एक प्रायोगिक सत्य
   •ÖµÖß ŸµÖÖ“Ö“Ö †¯ÖŸµÖ… ×Æ¸ÖוֿÖ´ÖÖ……
2. सत्याचे सुपीक। विश्वातून वेचूं
   प्रयोगात खेचू। परमाणू।।
3. जाणे भांडवली वृत्ती। नष्टचर्य पिकवी किती
   आणि कामगारा हाती। करवंटीच।।
4. कुठे गया, कुठे मक्का। हत्याकांड येथे फुका,
   भुककंगालीस्तान का। झिंदाबाद।।"[48]

इन कविताओं में आशय, विषय, शैली और दृष्टिकोण में भिन्नता अर्थात 'काव्य में नवीनता' का बोध सहजता से हो जाता है।

अज्ञेय और मर्ढेकर की समीक्षा दृष्टि में अनेक बिंदू समान है। उसमें एक और बिंदू यह है कि उभय रचनाकारों ने 'मैं क्यों लिखता हूँ'- के अंतर्गत अपनी सृजन प्रेरणा और सृजन प्रक्रिया पर मुक्त चिंतन किया है। अज्ञेय ने अपनी लेखन प्रक्रिया के बारे में कहा, 'मैं इसलिए लिखता हूँ कि स्वयं जानना चाहता हूँ कि क्यों लिखता हूँ।' अर्थात एक लेखक में आत्मसंघर्ष का बोध होना चाहिए, ऐसा वे मानते हैं। आत्ममंथन, आत्मविश्लेषण और आत्मपरिष्करण के माध्यम से कोई लेखक गुजरता है, तभी वह सच्चा लेखक हो सकता है। अपने समय के प्रति जागरूक होना, दायित्व बोध होना नितांत आवश्यक है। 'व्यक्तित्व की खोज, 'स्वतंत्रता की खोज' ही अज्ञेय के समग्र चिंतन का सारसर्वस्व है।

उनका कहना है कि स्फुरण अवचेतन के दबाव से होता है। लेखन, चिंतन प्रक्रिया में अवचेतन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। मौन की अभिव्यंजना तक सृजन प्रक्रिया को लेकर जाते हैं। 'कवि तुम उतना ही कहो, जितना तुम्हारा सच है।' तब तक सृजनधर्मी को नहीं लिखना चाहिए, जब तक कि लिखने का आवेग ना चुके। लेखनी उठाने से पहले यह सोचो कि आपके द्वारा लिखा जाना क्यों जरूरी है? वर्ना आपके लिखने से पेड़ कटते हैं। पेड़ों को बचाने की बात भी करते हैं। सृजन प्रक्रिया आंतरिक दबावों की परिणति होती है। और सच्चा साहित्य तभी मूर्त होता है जब रचनाकार अपने समय के भीतर उतरकर गहरी पैठ करता है। इसलिए लिखना तभी जरूरी बनता है, जब आप अपने समय के सरोकारों से जुडते हैं।

मर्ढेकर ने भी 'मैं क्यों लिखता हूँ' के बारे में विस्तार से लिखा है। उनका कहना है कि मूलतः मैं अपने लेखन को दो भागों में बाँटता हूँ। एक है ललित लेखन और दूसरा है वैचारिक लेखन। वे कहते हैं कि मेरी सीखने की वृत्ति ने मुझे लिखना सिखाया। चीजें पढ़ता गया, समझने की कोशिश करता गया। कुछ अवधारणाओं ने मेरी धारणाएँ निश्चित की, कुछ जगहों पर प्रश्न निर्मित हुए। कुछ स्थानों पर अपूर्ण, अधूरा दिखाई दिया। मुझे लगा कि सौंदर्य और ललित साहित्य के बारे में मुझे बहुत जानना है इसलिए मैं लिखता गया, लेखन से जुडता गया। सौंदर्यशास्त्र में मुझे रूचि थी। साहित्य के प्रति मन निरंतर जिज्ञासू रहा है। ऐसे हालात में भारतीय और पश्चिमी साहित्य को पढते समय मेरी जिज्ञासाओं ने मुझे उद्वेलित किया। परिणामतः लिखना अनिवार्य हुआ। दो कारण की वजह से, एक रूचि और दूसरा सीखने की प्रक्रिया। वे लिखते हैं, "स्वतःचे अर्धेकच्चे अनुभव, आजुबाजुचे मोडके तोडके निरीक्षण आणि थोडेसे भलं बुरं वाचन या सगळयांचा मिळून मनात कांही तरी आशय जमा होतो. पापणीची कड किंचित ओलसर झालीशी भासते आणि वाटत की हा आशय शब्दात लिहावा आणि मग मी स्वतःलाच विचारतो,' का लिहितो मी हे?

मिळेल वैभव दिसतील जगती रत्नांच्या राशी
अश्रु दयामय मृत्यु जगी या मोल नसे त्याशी,
मिळतिल कवने, मिळतील दुर्मीळ तत्वांचे बोल,
दिव्य अश्रुनों!
तुम्हा पुढे परि हे सगळे फोल,
परजीवास्तव जेथं आतडे कळवळूनी येई,
त्या हृदयाविण स्वर्ग दुजा या ब्रहमांडी नाहीं."

अज्ञेय ने 'सौंदर्यबोध और शिवत्वबोध' निबंध में साहित्य विवेचन और साहित्यिक आलोचना में 'मूल्य' और 'सौंदर्य' तत्वों के विवेचन को विशेष महत्व दिया है। ठीक उसी तरह मर्ढेकर ने 'सत्य'

को प्रधान स्थान दिया है। अज्ञेय ने अपने विवेचन में सौंदर्यबोध को बुद्धि का व्यापार मानते हुए लिखा, "यदि यह कहना उचित है कि मूल्यों का स्रोत मानव का विवेक है तो यह कहना भी ठीक है कि सौंदर्यबोध मूलतः बुद्धि का व्यापार है।"[49] मानव अपने विवेक से सौंदर्य का निर्णयन करता है। बुद्धि के द्वारा ही हम उन तत्वों को पहचानते हैं, मानव का अनुभव ही उन तत्वों की कसौटी है। अज्ञेय ने सौंदर्य बोध और मूल्यों के बोध की चर्चा करते हुए 'शिवत्व' तक ले जाते हैं। जिसमें नैतिक मूल्य का अहम रोल होता है क्योंकि मानवीय संवेदना तो सबसे बड़ा नैतिक मूल्य है। अज्ञेय ने नैतिक मूल्य को ही शिवत्व के मूल्य कहा है। किंतु सौंदर्य के मूल्य अलग-अलग हैं, यह भी बताना नहीं भूलते। इस संपूर्ण प्रक्रिया में वे उच्चकोटि का नैतिकबोध और उच्चकोटि का सौंदर्यबोध कृतिकार में होना चाहिए, ऐसी अपेक्षा रखते हैं। अर्थात सौंदर्यबोध और शिवत्व बोध की प्रतीति में संवेदना को महत्त्व देते हैं। साथ ही संवेदना का संबंध जैविक परिस्थिति से नहीं, सांस्कृतिक परिस्थिति से जोडकर देखते हैं, जो युक्तियुक्त है। अर्थात वे सांस्कृतिक बोध तक जाकर सौंदर्यबोध का परिचय दिलाते हैं।

मर्ढेकर के विचारानुसार 'सत्य' और 'सौंदर्य' यही दो मूल अंतिम अवधारणाएँ हैं। और दोनों भी वस्तुनिष्ठ हैं। मनुष्य के अनुभवों के मूल में ऐंद्रिय संवेदनाएँ होती है, उन वस्तुनिष्ठ और सार्वभौम संवेदना की संगति लगाने के लिए मनुष्य के मन का ज्यादा झुकाव होता है। यही ऐंद्रिय संवेदना दो भिन्न-भिन्न प्रक्रियाओं के अंतर्गत हमें 'सत्य' और 'सौंदर्य' की अंतिम परिणति तक ले जाती है। किसी भी मानव अनुभव की संगति 'सत्य' और 'सौंदर्य' इन्हीं मूल्यों से होती है। संवेदना से सत्य तक जाने के लिए आशय की तर्क संगति आवश्यक है। उसे सिद्ध करना होता है। सौंदर्य मूल्य तक पहुँचने के लिए आशय में तर्कसंगति और लय तत्व का होना जरूरी होता है। यह प्रक्रिया भी वस्तुनिष्ठ है, क्योंकि लयतत्व वस्तुनिष्ठ है। 'सत्य' का ऐंद्रिय अनुभव दूसरे ऐंद्रिय अनुभव के संपर्क से समृद्ध होता है। इसमें संवेदना तत्व का महत्वपूर्ण स्थान है। यह संवेदना जितनी व्यापक अनुभव से आएगी, उतनी ही प्रखरता से सत्य का प्रत्यय होगा। 'सौंदर्य' एक ही प्रकार के ऐंद्रिय संवेदना के गुणधर्मानुसार विविध संपर्क प्रस्थापित होते हैं। और उसी में से सौंदर्य का निर्माण होता है। सौंदर्य एक स्वतंत्र और स्वायत्त अंतिम मूल्य है। ऐंद्रिय संवेदना जितनी प्रखर होगी उतनी पारस्पारिक लय तैयार होगी। इसी पर सौंदर्यानुभव की समृद्धता निश्चित होती है। मर्ढेकर के विचारानुसार कला के क्षेत्र में 'सत्य' अप्रस्तुत है। वास्तव सत्य का दर्शन कला से नहीं होता, ऐसा उनका मानना है। केवल तात्विक सत्य ही नहीं, वरण् जीवन के अर्थपूर्ण अनुभव, भावना, पूर्वाग्रह, कल्पनाएँ, ध्येयनिष्ठा, तरल उत्तेजित अवस्था इत्यादि को दूर करने के बाद ही 'सौंदर्य' का दर्शन होता है। अर्थात अज्ञेय और मर्ढेकर ने काव्यशास्त्रीय चिंतन में 'सौंदर्य' और 'मूल्य' तथा 'सौंदर्य' और 'सत्य' तत्वों को सर्वोपरि माना है।

इन दोनों आलोचकों की चिंतन प्रक्रिया में समानता का एक और महत्वपूर्ण बिंदू लक्षित होता

है। अज्ञेय ने 'साहित्य की स्वायत्तता' का मुद्दा उठाया' तो ठीक उसी समय मर्ढेकर 'स्वायत्ततावादी सौंदर्यशास्त्र' का मण्डन करते हैं। अज्ञेय का मानना है कि साहित्य एक स्वतंत्र, स्वयंभू और सजग कला है। जहाँ विचारों के उपनिवेश के प्रति निषेध भाव व्यक्त होता है। वस्तुतः समाज को बदलने में साहित्य का योग होता है। उसमें साहित्यकार की भी जिम्मेदारी होती है। किंतु रचना और समाज परिवर्तन का समीकरण बिठाना स्वीकार्य नहीं है, ऐसा अज्ञेय का मानना है। वे रचना को विचारों या विचारधारा का अनुगामी नहीं मानते। अर्थात साहित्य समाज और संस्कृति से जुड़ा होने के कारण समाज परिवर्तन में कारक भी बनता है। किंतु साहित्य और समाज परिवर्तन में कार्यकारण संबंध नहीं ढूँढ़ा जा सकता। स्वायत्तता के मुदद‌े को आनंदवर्धन से लेकर राजशेखर तक तथा कांट से लेकर टेरी ईगलटन और मुक्तिबोध तक ने उठाया है। किंतु अज्ञेय ने बार-बार इस बात का खण्डन किया है कि साहित्य 'स्वान्त सुखाय' हो सकता है। साहित्य की अपनी स्वतंत्र सत्ता होती है, पृथक अस्तित्व होता है और प्रभाव की दृष्टि से नूतन राह दिखाई पडती है। अस्तु, अज्ञेय ने अपने समग्र चिंतन में 'साहित्य की स्वायत्तता का मुद्दा उठाकर एक महत्वपूर्ण आयाम को खोला है।'

मर्ढेकर ने मराठी में सर्वप्रथम 'स्वायत्ततावादी सौंदर्यशास्त्र' की सर्जना की। इस सौंदर्य विचार ने समस्त मराठी जगत को चौंकाया ही नहीं, नई राह भी दिखाई। वे अपने सौंदर्यशास्त्रीय विवेचन में बताते हैं कि परंपरागत सौंदर्यदृष्टि को नकारना आवश्यक है। सौंदर्यशास्त्र के ठोस आधारों को निर्धारित करने का श्रेय मर्ढेकर को ही जाता है। इसलिए उन्होंने सौंदर्यशास्त्र को स्वायत्त अस्तित्व प्रदान किया। साथ ही जीवनवाद से परे जाकर सौंदर्यवादी विचार केंद्र में रखते हुए अपना चिंतन प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत सौंदर्यशास्त्र में मात्र पांडित्य भाव नहीं है बल्कि कवि अनुभव की प्रतीति का अहसास भी है। इसी वजह से सौंदर्यशास्त्र में मर्ढेकर नये प्रतिमान स्थापित कर पाये। प्रस्तुत मीमांसा में उनका स्वतंत्र चिंतन दिखाई देता है। अज्ञेय और मर्ढेकर के बीच यह साम्यस्थल अपना विशेष महत्ता रखता है।

उभय आलोचकों ने हिंदी मराठी समीक्षा में नये प्रतिमान स्थापित किए। नये सिद्‌धांतों का निरूपण किया। अज्ञेय ने समीक्षा में पहली बार भारतीयता, आधुनिकता, परंपरा, प्रयोग, प्रगति, कालबोध, मूल्य बोध, स्वातंत्र्यबोध, संप्रेषणीयता का प्रश्न, साधारणीकरण, संस्कृतिबोध, सौंदर्य और शिवत्वबोध, सभ्यता के संकट, कविता की सृजन प्रक्रिया, संस्कृति और परिस्थिति, परिस्थिति और साहित्यकार, कला चिंतन, नये काव्यशास्त्र और साहित्यशास्त्र की खोज, नई भाषा, नई काव्य दृष्टि का अन्वेषण किया है। ठीक उसी तरह मर्ढेकर ने स्वतंत्र सौंदर्यशास्त्र की सर्जना करते हुए सत्य और सौंदर्यबोध, लय सिद्धांत, भावनानिष्ठ समानानुभूति का सिद्धांत, वाङ्मयीन महात्मता (साहित्य की महत्ता) का सिद्धांत, रचना में रूप विचार, कला विचार, काव्य में नवीनता का सिद्धांत, आधुनिकता

और नवीनता, तादात्म्य का सिद्धांत, व्यावहारिक समीक्षा के आयामों पर मूलभूत चिंतन किया है। इस पूरे परिप्रेक्ष्य में हम यही अर्थ पाते हैं कि दोनों आलोचकों ने दोनों भाषा की समीक्षा दृष्टि को विकसित करने में महती भूमिका निभायी है। साथ ही साहित्य समीक्षा के क्षेत्र में अपनी स्वतंत्र महत्ता स्थापित की है।

उभय आलोचकों ने साहित्य चिंतन में 'अनुभूति की प्रामाणिकता' को सर्वोपरि माना है। अज्ञेय ने सौंदर्य विवेचन में अनुभूति के क्षण को महत्त्व दिया है। तो मर्ढेकर ने 'वाङ्मयीन महात्मता' (साहित्य की महत्ता) के अंतर्गत लेखनपूर्व आत्मनिष्ठा और लेखनगर्भ आत्मनिष्ठा के द्वारा 'अनुभूति की प्रामाणिकता' की सक्रिय उपस्थिति का बोध कराया है। साहित्य सृजन में अनुभूति की प्रामाणिकता के महत्व को दर्शाते हुए लिखते हैं, "जब साहित्यकार अनुभूतियों का चित्रण ही नहीं, उससे आगे बढ़कर अनुभूतियों का यथार्थ (ऑब्जेक्टिव) वस्तुजगत के साथ कार्यकारण संबंध भी व्यक्त कर देता है, तभी उसे वह तटस्थता प्राप्त होती है और उसकी रचना को वह शक्ति मिलती है जो परिवर्तन को संभव बनाती है।"[50] अनुभूति की प्रामाणिकता के कारण रचना शक्ति संपन्न बनती है। अपने समय से टकराने का सामर्थ्य उसमें आ जाता है। अज्ञेय ने अनभुति की प्रामाणिकता के अंतर्गत दो तत्वों का विश्लेषण किया है- अनुभव की अद्वितीयता और अर्थ की साधारणता। अद्वितीय अनुभव साहित्यकार को विशिष्ट बनाता है। यह विशिष्टता अर्थ की साधारणता तक उसे लेकर जाती है। उन्होंने यह माना है कि रचना को परिपूर्ण बनने के लिए अनुभूति की प्रामाणिकता से जुड़ा हुआ होना नितांत जरूरी बन •ÖÖÝÖÖ Æü…

मर्ढेकर ने भी 'वाङ्मयीन महात्मता' (साहित्य की महत्ता) के अंतर्गत लेखनपूर्व आत्मनिष्ठा और लेखनगर्भ आत्मनिष्ठा की महती बतायी है। लेखनपूर्व आत्मनिष्ठा से तात्पर्य है- लेखक की कल्पनात्मक प्रतिक्रिया अर्थात उस प्रतिक्रिया से इमान रखना, यही लेखनपूर्व आत्मनिष्ठा कहलाती है। अपनी कल्पना को अविकृत स्वरूप में प्रस्तुत करना लेखनपूर्व आत्मनिष्ठा है। तो लेखनगर्भ आत्मनिष्ठा के अंतर्गत इन तत्वों का समावेश होता है- अंतःस्फूर्त अनुभव, मूलभूत अनुभव को अविकृत करना। लेखनगर्भ आत्मनिष्ठा कलाकृति में साकार होती है। इसी के अंतर्गत उन्होंने साधारणीकरण की प्रक्रिया को महत्व दिया है। अर्थात अज्ञेय और मर्ढेकर ने साहित्य चिंतन, रचना प्रक्रिया तथा सृजन चिंतन में अनुभूति की प्रामाणिकता का दामन पकडे बगैर अपर्याप्त के विरूद्ध विद्रोह नहीं किया जा सकता है। यही बात दोनों के चिंतन में परिलक्षित होती है।

अज्ञेय और मर्ढेकर के आलोचकीय चिंतन में सादृश्यता का एक और महत्वपूर्ण पक्ष है। उभय आलोचकों ने 'रचना केन्द्रित आलोचना' को सर्वोपरि महत्व दिया है। अज्ञेय का मानना है कि, आलोचना का विषय साहित्य है, साहित्यकार नहीं। कविता है, कवि नहीं।' ठीक उसी प्रकार मर्ढेकर

ने कवि को गौण स्थान दिया है, कविता केंद्रबिंदु होना चाहिए। वस्तुतः इस परिप्रेक्ष्य में हम पहले अज्ञेय के चिंतन को लेकर बात करेंगे। यह सर्वविदित है कि अज्ञेय ने कृति केंद्रित आलोचना को जन्म दिया। उन्होंने आलोचना में कवि के व्यक्तित्व या विचारों और विश्वासों के स्थान पर कविता की प्रतिष्ठा की। इसलिए ओम निश्चल उनकी प्रस्तुत धारणा के बारें में लिखते हैं, "समग्रतः वे आलोचना को कवि से हटाकर कविता पर केंद्रित करते हैं। उनके इस पक्ष का आकलन करके हम कह सकते हैं कि उन्होंने अपनी समय की कविता की धारा को ही नहीं मोडा था, आलोचना की धारा को भी मोड़ा और उसे नये पथ का प्रवर्तन किया। उन्होंने उसे कृति उन्मुखता की राह दिखाई। नई आलोचना में अपनी तात्विकता में उन्हीं की देन हैं।"[51] अज्ञेय ने इस धारणा की पुष्टि के लिए 'परिस्थिति और साहित्यकार', 'संक्रांतिकाल की कुछ साहित्यिक समस्याएँ', 'साहित्यबोध : आधुनिकता के तत्व' आदि निबंधों में की है। इस पक्ष के संदर्भ में वे टी. एस. इलियट के निकट दिखाई पड़ते हैं। इसलिए यह कहना अधिक तर्कसंगत है कि, रचना को उसकी समग्रता और समूचे संघटन में देखना उनकी केंद्रिय वृत्ति रही है। इसी वृत्ति के कारण अज्ञेय 'कृति केंद्रित आलोचना' का विस्तार करते हैं। मराठी सौंदर्यशास्त्र के प्रवर्तक बा. सी. मर्ढेकर ने भी कृति को केंद्र में रखकर आलोचना का पक्ष लिया है। वे बार-बार कृतिकार को नही, कृति को महत्व देते हुए दिखाई देते हैं। 'सौंदर्य आणि साहित्य' इस ग्रंथ में कलाकार और कलाकृति के मूल्यांकन में कलाकार की अपेक्षा कलाकृति को प्रमुख स्थान देते हैं। वे कलाकार के व्यक्तित्व को नहीं बल्कि कलामूल्य को स्थान देते हुए लिखते हैं, "The artist, at the same time that he is an artist. also a human being distrubed by animal appeties. conditioned by social responsibilities, induliging in political predilections and perhaps stirred and agitated by moral and religious. aspirations or cravings. some or all the aspects of his personality, thus developed, might be secondarily oprative in his work, but none is primarily relevent."[52] इस संपूर्ण वक्तव्य में मर्ढेकर ने कलाकार की अपेक्षा 'कृति' की महत्ता को रेखांकित किया है। इसी कारण मर्ढेकर भी यहाँ टी. एस. इलियट के नजदिक जाते हुए दिखाई देते हैं।

अज्ञेय और मर्ढेकर की आलोचना का एक अत्यंत महत्वपूर्ण बिंदू दोनों में 'प्रश्नाकुलता' के होने में है। अज्ञेय जी जैसे प्रश्नाकुल कवि हैं, वैसे ही प्रश्नाकुल आलोचक। ठीक उसी तरह मर्ढेकर में भी प्रश्नाकुलता (कविता और आलोचना) नजर आती है। मूलतः अज्ञेय मूलवादी हैं। निरंतर जिज्ञासू वृत्ति उनका स्थायी भाव रहा है। प्रेषणीयता का प्रश्न, प्रयोगों का प्रश्न, साधारणीकरण का प्रश्न, पाठक के पाठ का प्रश्न, शब्द योजना का प्रश्न नये बिंब और प्रतीकों और मिथकों का प्रश्न आदि प्रश्नों को लेकर वे चिंतन करते हैं। साथ ही मनुष्य जीवन के सनातन प्रश्नों को लेकर चिंता के

साथ ऊहापोह भी करते हैं। व्यक्तित्व की खोज क्यों जरूरी है, बौद्धिक जागरूकता और मूल्य चेतना का क्या संबंध है, उसका हमारे समाज में क्या अर्थ है, स्वातंत्र्योत्तर भारत में मूल्य मूढता का प्रसार क्यों हुआ, सांस्कृतिक अस्मिता के बोध का किसी समाज के जीवन में क्या स्थान है, सर्जनात्मक भाषा कहाँ से आती है, ये सारे प्रश्न अज्ञेय को उद्वेलित करते हैं और अज्ञेय उसकी खोज में चिंतन प्रक्रिया आरंभ करते हैं। अज्ञेय की इसी वृत्ति पर भाष्य करते हुए रमेशचंद्र शाह लिखते हैं, 'अज्ञेय बीसवीं सदी की प्रश्नाकुलता से उन्मथित, उत्कट बौद्धिक संस्कार वाले आधुनिक भारतीय कवि हैं।' यही प्रश्नाकुलता उन्हें चिरंतन सत्य तक पहुँचाती है। आलोचक मर्ढेकर ने भी कला, साहित्य, जीवन और समीक्षा के बारे में प्रश्नाकुलता का भाव व्यक्त किया है। 'मी का लिहतो?' (मैं क्यों लिखता हूँ) के अंतर्गत चिंतन करते हुए उन्होंने लिखा है, "माझ्या या सौंदर्यशास्त्रीय, आणि अर्थात त्यामुळे साहित्यशास्त्रीय, विचारसरणीत कांही वाक्य पूर्णविरामी आहेत, तर कांही वाक्य प्रश्नाचिहांकित †ÖÆüÖ."[53] (अर्थात् मेरे सौंदर्यशास्त्रीय तथा साहित्यशास्त्रीय चिंतन को लेकर कुछ ठोस धारणाएँ मिलती है। कई जगह पर मेरा प्रश्नाकुल मन अभिव्यक्त हुआ है।) मर्ढेकर अपने समग्र लेखन को लेकर भी प्रश्नाकुल है। ठीक उसी तरह जीवन और जगत में चल रही दैनिक हलचलों को लेकर भी उत्सुक है, जिज्ञासु है। यह जिज्ञासा भाव उनके साहित्य विषयक चिंतन में प्रतिबिंबित हुआ है। इसलिए अपने अनुभव, दूसरों के अनुभव को मिलाकर वे वर्तमान की ओर देखते हैं। वर्तमान जीवन की जटिल स्थिति लेखक आलोचक मर्ढेकर को विचार के लिए प्रेरित करती है। वे सौंदर्यशास्त्र के बारे में भी कई सवाल लेकर हमारे सम्मुख उपस्थित आते हैं। साहित्य का माध्यम क्या हो? सौंदर्य विधान से तात्पर्य क्या है, सौंदर्य निर्णय कैसे करें, तादाम्य की महती क्या है, वाड्मयीन महात्मता (साहित्य की महत्ता) से तात्पर्य क्या है? इन सारे प्रश्नों के आलोक मेंअपने मूलभूत चिंतन को वे अभिव्यक्त करते हैं। विशेषतः वर्तमान जीवन में आई असमंजस की स्थिति का सामना कैसे करें, को लेकर बात करते हैं। मनुष्य के मन में निरंतर चल रहे द्वंद्व को स्पष्ट करते हैं। यही कारण है कि एक प्रश्नाकुल आलोचक के रूप में वे हमारे सामने उभरते हैं।

उभय आलोचकों की आलोचना में तार्किकता, वैज्ञानिकता और सिद्धांतों के प्रतिपादन में स्पष्टता लक्षित होती है। अज्ञेय के भारतीयता, आधुनिकता, संप्रेषण, स्वाधीनता बोध, रचना प्रक्रिया, काल चिंतन, संस्कृति बोध, सौंदर्यबोध और मूल्यबोध आदि सिद्धांतों के प्रतिपादन में तार्किकता के दर्शन होते हैं। अज्ञेय को अपनी परंपरा का परिचय है। इतिहास ज्ञात है और परिवेश को लेकर यह आलोचक सचेत है। इस वजह से अपनी सर्जनशीलता में वैज्ञानिकता का आग्रह पकडते हैं। सिद्धांत प्रतिपादन में पुष्ट प्रमाण देते हैं। विवेचन विश्लेषण की गंभीरता अज्ञेय में दिखाई देती है। विशेषतः वे समय के सजग प्रहरी बनकर लोकतांत्रिक मूल्यों का आग्रह पकडते हैं। परंपरा के प्रति विनय भाव

और अहं के विलयन को महत्व देते हैं। इसी कारण उनके सिद्धांत प्रतिपादन में स्पष्टता का भाव लक्षित होता है। ठीक उसी तरह मर्ढेकर ने मराठी में पहली बार साहित्यशास्त्रीय, सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन में पूर्व परंपरा को आधार बनाकर सैद्धांतिक सोच के नये द्वार खोले। जिसमें तार्किकता और वैज्ञानिकता दोनों विद्यमान हैं। 'भावनानिष्ठ समानानुभूति के सिद्धांत' में उनकी वैज्ञानिक सोच, सौंदर्यवादी दृष्टि का परिचय मिल जाता है। जिसमें उन्होनें कवि प्रतिभा की शक्ति को प्रधान स्थान दिया है। 'वाङ्मयीन महात्मता' (साहित्य की महत्ता) में कला की आत्मनिष्ठा को सर्वोपरि माना है। लेखनपूर्व आत्मनिष्ठा और लेखनगर्भ आत्मनिष्ठा के तत्वों को प्रधान मानते हुए एक नये वैज्ञानिक और तार्किक सिद्धांत का प्रतिपादन किया। अनुभव संपन्नता , प्रतिभाशीलता, सोच के नये दस्तावेज तथा अभिव्यक्ति के कौशल को प्रामाणिकता से स्थान दिया है। इसी कारण उभय आलोचकों के सिद्धांत प्रतिपादन में स्पष्टता नजर आती है, बावजूद इसके कि इस बारे में मतभिन्नता हो सकती है।

अज्ञेय और मर्ढेकर ने अपने साहित्यिक कर्म का आरंभ कवि के रूप में किया। दोनों नई कविता के प्रवर्तक या पक्षधर हैं। अज्ञेय ने 'चिंता' और 'इत्यलम' के माध्यम से अपने काव्य व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति की। आरंभ में उनकी कविता पर छायावादी चिंतन का अर्थात रामैटिकता का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। मर्ढेकर ने 'शिशिरागम' कविता संग्रह से अपने काव्य व्यक्तित्व का प्रकाशन किया। 'शिशिरागम' की अधिकांश कविताएँ प्रेमप्रधान और रोमैटिकता को दर्शाने वाली हैं। दोनों रचनाकारों ने कवि रूप में खुद को स्थापित किया। और तत्पश्चात आलोचना के क्षेत्र में कदम रखा। अज्ञेय ने 'त्रिशंकु' और 'आत्मनेपद' के माध्यम से आलोचकीय चिंतन का परिचय दिया। जिसमें उनकी प्रयोगशील, सृजनधर्मी और आधुनिक चिंतन का परिचय मिल जाता है। तो मर्ढेकर ने 'Arts and man' के माध्यम से, 'सौंदर्य आणि साहित्य' के द्वारा चिंतनपरक वृत्ति को अभिव्यक्ति दी। दोनों समाज से जुडकर अपनी चिंतनशीलता का परिचय देते हैं। इसलिए दोनों की आलोचना में कवि व्यक्तित्व साफ दिखाई देता है। आलोचना में काव्य दृष्टि और कविता में आलोचकीय व्यक्तित्व दोनों में विद्यमान हैं। इसलिए यह कहा जा सकता है कि अज्ञेय और मर्ढेकर कवि होने के साथ-साथ विवेकी, संयत और सचेत समीक्षक के रूप में उभरकर आते हैं। जो हिंदी-मराठी आलोचना के प्रतिमान बनते हैं।

अज्ञेय और मर्ढेकर के साहित्य विषयक चिंतन में 'व्यावहारिक समीक्षा' का बड़ा महत्व है। दोनों आलोचकों ने समकालीन जीवन और साहित्य में उभरते संकट की ओर संकेत किया है। साथ ही अपने पूर्ववर्ती, समकालीन और उत्तरवर्तीयों पर लेखनी चलायी है। विशेषतः कृति और कृतिकारों पर उनकी तत्वान्वेषी नजर पडी है। आलोचक अज्ञेय ने 'आधुनिक साहित्य के मूल्यांकन' के अंतर्गत व्यावहारिक समीक्षा का नया पाठ रचा है। 'आधुनिक उपन्यास', 'प्रेमचंद और परवर्ती उपन्यास',

'हिंदी कहानी का परिवेश', 'काव्यभाषा और यथार्थ', 'समकालीन कविता के संकट', 'नई कविता', 'कविता श्रव्य और पठ्य', 'छंदबोध', 'गीत और चौपायी' तथा 'तारसप्तकों की भूमिकाएँ' उनकी व्यावहारिक समीक्षा के प्रमाण हैं। प्रेमचंद के बारें में अज्ञेय का चिंतन अत्यंत मूलभूत है। वे प्रेमचंद को हिंदी का पहला आधुनिक उपन्यासकार मानते हैं। आधुनिक इस अर्थ में कि उन्हें समकालीनता का, अपने समवर्ती जीवन की अंतः शक्तियों का जीवित बोध रहा है। साथ ही उनका दूसरा वैशिष्टये बताते हैं कि प्रेमचंद के साहित्य में जितनी व्यापकता, विविधता और विशालता है, उतना अन्य किसी भारतीय साहित्यकार में नहीं। किंतु वे प्रेमचंद की सीमा भी बताते हैं, "प्रेमचंद के निम्नवर्गीय पात्रों का चित्रण सच्चा और खरा है, मगर मध्यवर्ग के पात्रों का चित्रण सतही और अविश्वसनीय।"[54] आधुनिक उपन्यासों की परंपरा का सूत्रपात कहाँ से होता है बताते हुए उसके प्रधान वैशिष्टयों का सजग विश्लेषण करते हैं। वर्तमान परिस्थिति या परिवेश का अस्वीकार, काम जीवन या सेक्स जीवन की प्रधानता तथा नया उपन्यास ये तीन विशेषताएँ हैं, जो उसे अलग अस्तित्व प्रदान करती है। अज्ञेय ने फणीश्वरनाथ रेणु, जयशंकर प्रसाद, महाकवि निराला, मैथिलीशरण गुप्त, हजारीप्रसाद द्विवेदी, रामधारी सिंह दिनकर, माखनलाल चतुर्वेदी, रायकृष्णदास, सरोजिनी नायडू, बच्चन, जैनेंद्रकुमार तथा महादेवी की रचनाशीलता का परिचय दिया है। रेणु को 'धरती के धनी', 'गांव के सजग लेखक', गुप्त को 'प्रसन्न आधुनिक', 'मानवतावादी' वैष्णव तथा कबीर के बारे में क्रांतिकारकत्व देखते हैं, उनका निरपेक्ष वृत्ति से मूल्यांकन करते हैं। अर्थात अज्ञेय की व्यावहारिक समीक्षा में कृति, कृतिकार और युग के संदर्भ लक्षित होते हैं। मराठी रचनाकार आलोचक बा. सी. मर्ढेकर ने भी 'सौंदर्य आणि साहित्य' ग्रंथ में अपनी व्यावहारिक समीक्षा का परिचय दिया है। व्यावहारिक समीक्षा के बारे में मर्ढेकर का मानना है कि मानवी व्यवहार वास्तव विश्व के संदर्भ में साकार हो आते हैं। राग, द्वेष, भय इत्यादि भावनाओं का महत्व स्वयंपूर्ण नहीं होता, वह केवल साधनात्मक होता है। स्वसंरक्षण और वंशसंवर्धन जीवशास्त्रीय लक्ष्य होते है। लेखक के मनोव्यापार की या समकालीन स्थिति काल की प्रत्याक्षाप्रत्यक्ष छाया उसकी रचना पर पडती है। इसे टालकर किसी रचना का मूल्यांकन करना ज्यादा उचित होगा। यही बात मर्ढेकर बार-बार कहते हैं। उन्होंने अपनी व्यावहारिक समीक्षा के अंतर्गत कवि माधव जुलियन, संगीतक, लुईजे पिरांदेल्लो, कथाकार गंगाधर गाडगील, राक्षस विवाह (उपन्यास), व्याधाची चांदणी (कहानी संग्रह) आदि कृति और कृतिकारों पर समीक्षात्मक लेखन किया है। मर्ढेकर ने सौंदर्य मीमांसा और साहित्य मीमांसा कुछ साहित्येतर कृतियों और कुछ साहित्य कृतियों को केंद्र में रखकर की है। लोक चित्रकला और एप्स्टाइन के जेनेसिस शिल्पकृति अर्थात साहित्येतर कला और कलाकृति का मूल्यांकन सौंदर्यशास्त्र के आधार पर किया है। उन्होंने साहित्य समीक्षा के विश्लेषण के लिए सौंदर्यशास्त्रीय मुद्दों के स्पष्टीकरण करने हेतु दो मराठी कविताओं का

रसग्रहण किया है। जिसमें माधव जुलियन की 'हे असे काय होई' और बालकवि की 'खेडयातील रात्र' नामक कविताओं की सम्यक व्याख्या की है। 'संगीतक' नामक लेख में मर्ढेकर ने आदर्श संगीतक की अवधारणा को स्पष्ट किया है। 'लुईजे पिरांदेल्लों' नामक इतालियन नाटककार की बुद्धि, तर्कप्रधानता और विस्फोटक सोच की प्रशसंसा की है। लुईजे का मूल्यांकन करते हुए उन्होंने लिखा है, 'लुईजे की प्रखर बौद्धकिता ने उनकी कलादृष्टि को हानि पहुँचाई है। फिर भी मर्ढेकर उन्हें इतालियन 'साहित्य की शक्ति' मानते हैं। गंगाधर गाडगील की कहानियों का मूल्यांकन करते समय वे गठन (form) और लय के बारे में विचार करते हैं। गाडगील की शैलीगत प्रवृत्ति में व्याप्त स्वतंत्रता और शिल्प की कसावट का उल्लेख करते हैं। श्री. के. श्रीरसागर के 'राक्षस विवाह' का मूल्यांकन करते हुए वे कहते हैं, प्रस्तुत उपन्यास में तर्कशुद्धता का अभाव है। उनमें संभावनाओं का भी अभाव है। यह उपन्यास भावनाप्रधान नहीं है। 'व्याधाची चांदणी' कहानी संग्रह का भी आपने मूल्यांकन किया है। तात्पर्य यही है कि मर्ढेकर जीवनवादी समीक्षक नहीं, सौंदर्यवादी या रूपवादी समीक्षक हैं। अज्ञेय पर भी रूपवादी या सौंदर्यवादी होने का आक्षेप कई समीक्षकों ने लगाया है।

अज्ञेय और मर्ढेकर ने 'आधुनिकता' की अवधारणा पर स्वतंत्र चिंतन किया है। ये दानों आलोचक 'साहित्य में आधुनिकता' के पक्षधर ही नहीं उसे स्थापित करनेवाले आलोचक हैं। हिंदी-मराठी साहित्य में आधुनिकता के प्रवर्तक भी हैं। पश्चिमी आधुनिकता को पचाकर भारतीय आधुनिकता का नया परिप्रेक्ष्य वे दोनों रचते हैं। दोनों की साहित्य मीमांसा, कला मीमांसा और सौंदर्य मीमांसा में आधुनिकता के लक्षण दिखाई देते हैं। अज्ञेय ने आधुनिकता के बारे में मूलभूत चिंतन किया है। हिंदी में आधुनिकता की अवधारणा ले आने का श्रेय अज्ञेय को ही जाता है। 'आधुनिकता, आधुनिक संवेदना, आधुनिक भाव बोध और आधुनिक रचना स्थिति के तर्क की शुरूआत 'तारसप्तक' से हुई, 'शेखर : एक जीवनी' से हुई। अज्ञेय ने आधुनिकता की व्याख्या देते हुए कहा, 'खुद को संस्कारित करना ही आधुनिक होना है।' अपनी चरम संभावनाओं की परिणति तक पहुँचना ही आधुनिकता है। वस्तुतः आधुनिकता आत्मविश्लेषण और आत्ममंथन की प्रक्रिया है। प्रखर बौद्धिकता उसका प्रमुख लक्षण है। तार्किकता, प्रश्नाकुलता, विवेकशीलता, प्रयोगशीलता, संकटबोध का अहसास आदि उसके प्रधान लक्षण है। इसलिए 'शेषा' में अज्ञेय ने लिखा, "आधुनिकता इसमें है कि हम इस चरम स्थिति संकट को पहचाने। मिथक की इस गहराई का स्पर्श करें। इसमें नहीं कि हम कथा में कतरब्योंत करके उसे आधुनिक संवेदन या आधुनिक संशय बुद्धि को स्वीकार्य रूप देना चाहे। मिथक एक कहानी भर नहीं होता, एक चुनौती होता है। नये समाज कहानी को नया रूप नहीं देते, चुनौती की नई पहचान करते हैं। हर मिथक के भीतर एक गुठली होती है, गुठली के भीतर एक शक्ति बीज। जैसे कर्ण के कवच कुण्डल सहजन्मा ही हो सकते हैं, वैसे ही गुठली भी मिथक की सहजन्मा

ही हो सकती है, उससे अलग नहीं की जा सकती।"[55] अज्ञेय आधुनिकता को नवीनता के अर्थ में लेते हैं। अपने को निरंतर नया बनाना, पुरानापन झाडते रहना जरूरी मानते हैं। पुरानेपन को झाडकर ही परंपरा के भीतर से आधुनिकता फुटती है। इसलिए खुद की तलाश करना जरूरी हो जाता है। अज्ञेय ने 'तारसप्तक' की भूमिका में भी आधुनिकता का बार-बार उल्लेख किया है। वे मानते हैं कि आधुनिकता एक संवेदन है, एक प्रक्रिया है, एक बोध है। जीवन और साहित्य को समझने का जरिया है। साहित्य की ओर प्रखर बौद्धिकता से देखने का माध्यम है। इसलिए वे आधुनिकता को एक मूल्य के रूप में देखते है। 'शेखर : एक जीवनी' अज्ञेय की आधुनिकता का प्रतिभू है। उसमें 'स्व' की तलाश 'स्वाधीनता प्रेम' शेखर के चरित्र में जीवन और मृत्यु के बीच उपस्थित द्वंद्व (आधुनिकता की परिणति) को दर्शाना रहा है। 'नदी के द्वीप' तो चार आधुनिक संवेदनाओं का सजग चित्र है। और 'अपने अपने अजनबी' में आधुनिकता का एक महत्वपूर्ण पक्ष 'वरण की स्वतंत्रता' और 'मृत्युबोध की पीड़ा' का अंकन हुआ है। इसलिए अज्ञेय के समग्र चिंतन में आधुनिकता का भाव निरंतर लक्षित होता है। आधुनिकता के अनेक आयामों को खोलने का काम अज्ञेय करते हैं।

मर्ढेकर ने भी 'आधुनिकता' को बड़ा महत्व दिया है। आधुनिक मराठी साहित्य के प्रवर्तक के रूप में वे उभरते हैं। मर्ढेकर ने आधुनिकता को नवीनता के अर्थ में लिया है। उनका मानना है कि आधुनिकता एक काल सापेक्ष अवधारणा है। समकालीन विचार भावनाओं की सृष्टि, प्रचलित भाषा और अविष्कार पद्धति से जुड़ी हुई अवधारणा है। वर्ण्य विषय, शब्द योजना, छंद योजना काल के साथ बदलते रहती है। मनुष्य के विचार और भावना में भी बदलाव होते रहता है। काव्य साहित्य में इनका प्रतिबिंब दिखाई पडता है। इस पूरे परिप्रेक्ष्य में काव्य में जो बदलाव होते हैं, उनका आधुनिकता से नाता जुडता है। मर्ढेकर ने आधुनिकता का संदर्भ 'भावनानिष्ठ समानानुभूति' (Emotional equivalence) के सिद्धांत से जोड़ा है। मर्ढेकर का मानना है कि साहित्य में नवीनता का संदर्भ भावनानिष्ठ समानानुभूति से जुड़ता है। मर्ढेकर ने इसका विश्लेषण देते हुए 'तारका' और अवचेतन अवस्था में खडी हुई 'बालिका' का उदाहरण दिया है। इन दो स्थितियों में जो समानानुभूति होती है, उसमें काव्य होता है। 'तंद्रीतच अर्ध्यामुर्ध्या/लुकलुकते ताराराणी।' इन पदों में से काव्य उत्पन्न नहीं होता बल्कि उनमें स्थित समानानुभूति से काव्य निर्मित होता है। यहाँ फिर से अज्ञेय की याद आती है, जिन्होंने कहा था, काव्य भाषा में नहीं, शब्दों में नहीं, दो शब्दों के बीच नीरवताओं में होता है।' साहित्य में नवीनता और आधुनिकता के लिए लय संबंध निर्माण होना जरूरी है, जिसमें संवाद, विरोध और संतुलन को बड़ा महत्व रहता है। तात्पर्य यही है कि मर्ढेकर ने आधुनिकता को एक साहित्य प्रवृत्ति के रूप में स्वीकारा है और यही भाव अज्ञेय में देखने को मिलता है। अर्थात अज्ञेय और मर्ढेकर ने हिंदी-मराठी साहित्य में आधुनिकता की अवधारणा को ले जाने का सशक्त प्रयत्न किया। इन दोनों की इस दृष्टि

से इन दो भाषाओं में महती उपलब्धि रही है।

अज्ञेय और मर्ढेकर के आलोचकीय कार्य में पश्चिमी चिंतन का गहरा प्रभाव लक्षित होता है। अज्ञेय के चिंतन पर टी. एस. इलियट, लेविस, कार्ल यास्पर्स और डी. एच. लॉरेंस, आई. ए. रिचर्डस आदियों का प्रभाव स्पष्ट रूप में दिखाई देता है। तो मर्ढेकर की वैचारिकी में बर्ट्रांड रसेल, क्लाईव बेल और रॉजर फ्राय का निस्संग प्रभाव दिखाई देता है। अज्ञेय के समग्र चिंतन पर टी. एस. इलियट के अनेक सिद्धांतों का प्रभाव परिलक्षित होता है। संप्रेषण सिद्धांत, निर्वेयक्तितावाद, परम्परा और मौलिकता, सृजन प्रक्रिया तथा समीक्षा दृष्टि के अनेक आयाम अज्ञेय में देखे जा सकते हैं। अज्ञेय ने टी. एस. इलियट के अंग्रेजी निबंध 'Tradition and individual talent' का अनुवाद 'रूढ़ि और मौलिकता' शीर्षक से किया है। इलियट का काव्य विषयक चिंतन अज्ञेय को निरंतर प्रभवित करता रहा है। 'कविता अनुभूति की मुक्ति नहीं, अनुभूति से मुक्ति है, व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति नहीं, व्यक्तित्व से मुक्ति है। 'काव्य को व्यक्तित्व की नहीं माध्यम की अभिव्यक्ति मानते हैं। काव्य में संप्रेषणीयता, सृजन प्रक्रिया में अनुभूति के क्षण को महत्व आदि पर इलियटीय प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। काव्य सृजन प्रक्रिया के बारे टी. एस. इलियट के मत को उद्धृत करते हैं। इलियट ने सृजन प्रक्रिया की तुलना एक रासायनिक क्रिया से की है। सल्फर डाई ऑक्साइड और ऑक्सीजन के भरे हुए पात्र में प्लाटिनम का चूर्ण प्रविष्ट किया जाय तो वे दोनों गैसे मिलकर सल्फ्यूरिक ॲसिड में परिवर्तित हो जाती है। यह क्रिया प्लाटिनम के बिना नहीं होती तथापि बननेवाले आम्ल में प्लाटिनम का कोई अंश नहीं होता। इतना ही नहीं प्लाटिनम में भी किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता। प्लॉटिनम ज्यों का त्यों रह जाता है। इलियट कविमानस की तुलना इस प्लाटिनम के चूर्ण से करते हैं।

मराठी रचनाकार आलोचक मर्ढेकर पर भी पश्चिमी चिंतन का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। जिसमें अग्यूस्त कांट, बर्ट्रांड रसेल, क्लाईव बेल और रॉजर फ्राय, अरस्तू, इलियट और आई. ए. रिचडर्स का प्रभाव देखा जा सकता है। मराठी में पिछले कुछ वर्षों में चर्चा के केंद्र में रही मर्ढेकर की विश्लेषण पद्धति ने एक गहरा प्रभाव डाला है। इसका कारण यह है कि मर्ढेकर ने एप्स्टाइन (जेनेसिस) की कलाकृति के अनुषंग में अनेक साहित्य कृतियों का विश्लेषण कर दिखाया है। उन्होंने इस विश्लेषण पद्धति को एक तात्विक नींव दी है। मर्ढेकर पर क्लाईव बेल का बड़ा प्रभाव रहा है। क्लाईन बेल ने काव्य में 'अर्थयुक्त रूप' का सिद्धांत बताया किंतु वह अपूर्ण ही है। किंतु मर्ढेकर सौंदर्ययुक्त रचना के निश्चित नियम बताते हैं। संवाद, विरोध और संतुलन से निर्मित होने वाला लय तत्व अपेक्षित हैं। मर्ढेकर के समग्र चिंतन पर रिचर्डस और रसेल का प्रभाव है। अरस्तू के सिद्धांत प्रतिपादन की शैली और विश्लेषण पद्धति का प्रभाव मर्ढेकर पर रहा है। रचना में स्थित 'जैविक एकता' के सिद्धांत को लेकर सजगता से बात करते हैं। रिचर्डस और मर्ढेकर के सिद्धांतों में

अनेक मतभिन्नताएँ होने के बावजूद एक बात पर सहमति हो सकती है। वे दोनों यह मानते हैं कि सौंदर्य का विश्लेषण दो पद्धतियों से हो सकता है। एक है- नैसर्गिक सृष्टि में व्याप्त गुण और संबंध तथा दूसरा है- मनुष्य की विशिष्ट मनोदशा। कांट ने सौंदर्य अनुभूति की अलौकिकता का सिद्धांत प्रतिपादित किया है। मर्ढेकर प्रस्तुत सिद्धांत को आगे बढ़ाते हैं, उसे विकसित करते हैं।

कुल मिलाकर उपर्युक्त बिंदुओं के आधार पर अज्ञेय और मर्ढेकर के आलोचकीय चिंतन का मूल्यांकन किया जा सकता हैं। दोनों के चिंतन में अनेक ऐसे विस्मयजनक स्थल हैं, जहाँ अद्‌भूत सादृश्यता दिखाई पडती है। किंतु उभय आलोचकों के चिंतन में विसादृश्यता के अनेक बिंदू हैं, जिन पर विचार किया जाना आवश्यक हैं। आईये, हम अज्ञेय और मर्ढेकर के आलोचकीय चिंतन में विसादृश्यता पर प्रकाश डालने का सोदाहरण प्रयास करेंगे।

अज्ञेय और मर्ढेकर की आलोचना में विसादृश्यता के बिंदू :

अज्ञेय और मर्ढेकर की आलोचना में वैषम्य का पहला और महत्वपूर्ण बिंदू है- अज्ञेय विशुद्ध समीक्षक नहीं है। उनके द्वारा समय-समय पर लिखे गए लेख, निबंध, अंतः प्रक्रियाओं, टीपों के माध्यम से समीक्षात्मक चिंतन अभिव्यक्त हुआ है। प्रासंगिक, समयानुकूल और समय की मांग के अनुसार समीक्षात्मक लेखन किया है। उन्होंने सैद्धांतिक या व्यावहारिक समीक्षा पर कोई स्वतंत्र पुस्तक नहीं लिखी। किंतु मर्ढेकर ने 'सौंदर्य आणि साहित्य', 'कला आणि मानव' तथा 'वाङ्मयीन महात्मता (साहित्य की महत्ता) ऐसी तीन सौंदर्यशास्त्रीय, साहित्यशास्त्रीय और समीक्षाशास्त्र का नया पाठ रचने वाली कृतियाँ दी हैं।

अज्ञेय ने आलोचकीय चिंतन में 'सौंदर्य और शिव' को विश्लेषित किया है। इन दो तत्वों को प्रधान माना है। किंतु मर्ढेकर 'सत्य' और 'सौंदर्य' को महत्व देते हुए 'शिव' तत्व को स्थान नहीं देते। अज्ञेय ने सौंदर्य बोध और शिवत्व बोध को बुद्धि का व्यापार माना है। शिवत्व को नैतिक मूल्य के रूप में वे स्थापित करते हैं। वे कहते हैं, "सौंदर्यबोध और शिवत्वबोध दोनों मूलतः बुद्धि के व्यापार है, मानव का विवेक ही दोनों के मूल्यों का स्त्रोत हैं और दोनों के प्रतिमानों या मानदंडों का आधार।"[56] अज्ञेय ने 'सौंदर्य' और 'मूल्यों' का स्त्रोत भी मानव के विवेक को ही बताया है। अंततः वे मानवीय संवेदना को सबसे बड़ा नैतिक मूल्य बताते हैं। किंतु मर्ढेकर 'सत्य' और 'सौंदर्य' को साहित्य चिंतन में बड़ा महत्व देते हैं। मर्ढेकर सौंदर्य की व्याख्या करते हुए कहते हैं, 'लय संगति से लिया गया अनुभव सौंदर्य है।' इसलिए वे सौंदर्य का अस्तित्व स्वतंत्र और स्वयंभू मानते हैं। साथ ही 'सत्य' की प्रतीति कला का गुणधर्म होना चाहिए, ऐसी उनकी मान्यता है। मर्ढेकर शिवत्व बोध को नकारते हैं।

अज्ञेय और मर्ढेकर के आलोचकीय चिंतन में विसादृश्यता में दूसरा बिंदू है, अज्ञेय अपने चिंतन में व्यक्ति की गरिमा को आधुनिक, वैज्ञानिक, अन्वेषक की दृष्टि से लगातार प्रतिष्ठापित

करने का प्रयत्न करते हैं। किंतु मर्ढेकर व्यक्ति जीवन की गरिमा के स्थान पर उनके जीवन की क्षुद्रता का विवेचन करते हैं। उनके चिंतन में व्यक्ति सत्ता के स्थान पर समाज सत्ता हावी हो जाती है। अर्थात जहाँ अज्ञेय 'स्व' की तलाश में निकल पडते हैं, आत्मान्वेषण और आत्मशोध की यात्रा करते हैं, वहाँ मर्ढेकर समाज चिंतन का नया पाठ रचते हैं। अनुभव संपन्नता और जीवन उन्मुखता से सौंदर्य विधान करते हैं। यह करते समय समाज बोध को जागृत करने का प्रयास उनमें दिखाई देता है।

अज्ञेय के समग्र आलोचकीय चिंतन के तीन केंद्र हैं- भाषा, सर्जनशीलता और समाज। मर्ढेकर सर्जनशीलता और समाज के बारे में भाष्य करते हैं। किंतु वे भाषा में 'शब्द' की सामर्थ्य शक्ति का परिचय देते हैं। अज्ञेय ने अपने चिंतन में सर्जनात्मकता को बड़ा महत्व दिया है। सर्जनशीलता से नवनिर्मिति तक पहुँचने का रास्ता वे दिखाते हैं। उनके भीतर विद्रोही प्रवृत्ति लक्षित होती है। इसलिए डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल लिखते हैं, "रचनाकार आलाचकों में अज्ञेय स्वातंत्र्योत्तर सर्जनात्मक आलोचना में सर्वाधिक विद्रोही प्रवृत्ति के आलोचक हैं। भाषा, साहित्य, संस्कृति, मिथक, सौंदर्य चेतना के संबंध में परंपरागत अवधारणाओं का मूर्तिभंजन तथा परंपरा प्रगति प्रयोग, आधुनिकता काव्य सत्य, व्यक्ति और समाज, स्वाधीनता और निरंतरता, रचनाकार और राजाश्रय, सांस्कृतिक अस्मिता, जातीय स्मृति, भाषा और औपनिवेशिक मानस जैसी अवधारणाओं का नया भाष्य उनके चिंतन का अनिवार्य अंग रहा है।"[57] विशेषत: अज्ञेय का बीज चिंतन भाषा पर केंद्रित रहा है, क्योंकि वे भाषा को अस्मिता से जोडते रहे हैं। 'भाषा ही उनके विचार से स्मृति है, पुराण है, परंपरा है, मिथक है, इतिहास है, अस्तित्व है, व्यक्तित्व है। भाषा पूरा देश और संस्कृति है।' अज्ञेय ने भाषा को मानवीय सभ्यता की सबसे मूल्यवान उपलब्धि बताया है। अर्थात अज्ञेय के समग्र चिंतन में सर्जनशीलता, भाषा और समाज निरंतर प्रवाहित होते हैं। समकालीन चिंतन के अंतर्गत वे समाज जीवन पर भाष्य करते हैं। 'अद्यतन' और 'युग संधियों पर' कृतियों में सामाजिक समस्याओं को उठाते हैं। उसके मूल तक जाकर विवेचन विश्लेषण करते हैं। अज्ञेय केवल सामाजिक समस्याओं के विश्लेषण तक रूकते नहीं। 'तारसप्तक' के माध्यम से संघटन (रचनात्मक संभावनाओं) और प्रखर विचारशक्ति का परिचय देते हैं। इसी बात को लक्ष्य करते हुए डॉ. रमेशचंद्र शाह लिखते हैं, "अज्ञेय में न केवल युगीन समस्याओं के प्रखर विश्लेषण की शक्ति थी, बल्कि तद्नुकूल रचनात्मक संभावनाओं को एकजुट कर सकने की संगठन क्षमता भी। उच्चकोटि के सृजन सामर्थ्य और प्रखर विचार शक्ति के साथ-साथ अपने युग परिवेश की रचनात्मक संभावनाओं को पहचानने और एकजुट कर सकने की व्यवस्थापकीय क्षमता का ऐसा एकाग्र संघटन किसी एक व्यक्ति में मिलना साहित्य के इतिहास में दुर्लभ ही होता है।"[58]

मर्ढेकर अपने आलोचकीय चिंतन में भाषा के विश्लेषण में, भाषा की भावशक्ति में शब्दों को महत्व देते हैं। उनकी दृष्टि छंद और अलंकार पर नहीं, शब्द योजना पर ही होती है। अर्थ की

प्रतीति करनेवाले शब्द ही होते हैं। साहित्य में शब्दों का मूल्य अर्थ की प्रतीति पर निर्भर करता है। शब्द के दो प्रकार बताते हैं, संबंधहीन शब्द और संबंध सम्बद्ध शब्द। शब्द योजना के संदर्भ में प्रतिभाशाली लेखक दोनों प्रकार के शब्दों को अर्थवाही बनाने की क्षमता रखता है। तर्क, कलात्मक और स्थल संबंध स्थिति का बोध शब्दों के माध्यम से करते हैं। शब्द को आधार बनाकर वाक्य अर्थपूर्ण बनता है और अर्थ के आधार बिना भावना खडी नहीं हो सकती। अप्रत्यक्ष रूप से यही कहा जा सकता है कि शब्द एक उपयोगी माध्यम है, जिसकी सामर्थ्य की प्रतीति सौंदर्यशास्त्र के अंतर्गत होती है। तात्पर्य यही है कि मर्ढेकर शब्द के भीतर समादृत शक्ति संचय का विश्लेषण करते हुए उसकी व्यावहारिक उपयोगिता पर प्रकाश डालते हैं। सौंदर्य की निर्मिति में शब्दों के उपयोजन को अत्यंत मार्मिक रूप में अंकित करते हैं।अज्ञेय ने सौंदर्य निर्मिति में 'सत्य' और 'तथ्य' के साथ रागात्मक संबंध होने की बात कही है। जब कि मर्ढेकर सौंदर्य निर्मिति में लय तत्व को महत्व देते हैं। अर्थात अज्ञेय 'रागात्मक संबंध' की बात करते हैं तो मर्ढेकर 'लय तत्व' के सिद्धांत का प्रतिपादन करते हैं।

अज्ञेय का समग्र चिंतन काव्यशास्त्रीय है। वे साहित्यशास्त्रीय दृष्टि से कला मीमांसा, साहित्य मीमांसा और सौंदर्य मीमांसा करते हैं। किंतु बा. सी. मर्ढेकर का समग्र चिंतन सौंदर्यशास्त्रीय है। जिसके माध्यम से वे नया समीक्षाशास्त्र (सौंदर्य और साहित्य-ग्रंथ) रचते हैं। उपरोक्त तमाम बिंदूओं के आधार पर अज्ञेय और मर्ढेकर की समीक्षा में स्थित साम्य और वैषम्य को दिखाने का प्रयास किया गया है।

निष्कर्ष :

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि अज्ञेय और मर्ढेकर के आलोचकीय चिंतन में कई साम्य स्थल और वैषम्य के कई बिंदू दिखाई पडते हैं। अज्ञेय सौंदर्य विधान में 'सत्य' और 'तथ्य' के निरूपण को महत्व देते हैं, तो मर्ढेकर सौंदर्य ही एकमेव और अंतिम मूल्य मानते हैं। दोनों सौंदर्यवादी, कलावादी आलोचक हैं। दोनों अपनी साहित्य परंपराओं से जुडे हुए हैं। दोनों ने पश्चिमी चिंतन को पचाकर भारतीय दर्शन में ढालने का सशक्त प्रयास किया है। ये दोनों समीक्षक साहित्य समीक्षकों को उत्तरदायित्व की प्रेरणा देते हैं। साथ ही अपने चिंतन के प्रति 'प्रामाणिकता' का बोध कराते हैं। दोनों आलोचक मनुष्य के सत्य और मूल्यबद्ध अंतः सूत्र को तलाशते हैं। और दोनों छोरों के बीच सत्य को बचाना चाहते हैं। दोनों में मनुष्य के सत्य के प्रति रागात्मकता का बोध होता है। विशेषतः दोनों की समीक्षा परअनेक आक्षेप उठाये गये हैं किंतु समय की कसौटी पर दोनों की समीक्षाएँ खरी उतरती हुई नजर आती है। वर्तमान समय में इन दोनों की समीक्षा का पुनर्पाठ होने की आवश्यकता है, यही समय की मांग है।

■ ■ ■

ÃÖ¤ü³Ö ÃÖ“ÖÖß :

1. आलोचक अज्ञेय की उपस्थिति, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र. सं. 2011, ¯ÖÂšü 10
2. सर्जना और संदर्भ, अज्ञेय, नेशनल पेपर बैक्स, नयी दिल्ली, प्र. सं. 2011 ¯ÖÂšü 1
3. ¾ÖÆüß, ¯ÖÂšü 7
4. अज्ञेय : वागर्थ का वैभव, पृष्ठ
5. अज्ञेय की आलोचना दृष्टि, राजेंद्र प्रसाद पाण्डेय, सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र. सं. 2011, ¯ÖÂšü 51
6. आलोचक अज्ञेय की उपस्थिति
7. आलोचक अज्ञेय की उपस्थिति, पृष्ठ 29
8. अज्ञेय की आलोचना दृष्टि, राजेंद्र प्रसाद पाण्डेय, सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र. सं. 2011, ¯ÖÂšü 66
9. स्मृतिलेखा, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस,नयी दिल्ली, प्र. सं. 1986, ¯ÖÂšü 51
10. ¾ÖÆüß, ¯ÖÂšü 48
11. आधुनिक हिंदी समीक्षा, सं. निर्मला जैन, प्रेमशंकर, साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली, प्र.सं. 1985, ¯ÖÂšü 149
12. ¾ÖÆüß, ¯ÖÂšü 58
13. स्मृतिलेखा, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नयी दिल्ली, प्र. सं. 1986, ¯ÖÂšü 109
14. ¾ÖÆüß, ¯ÖÂšü 33-34
15. तारसप्तक भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, नौवाँ संस्करण, 2009, ¯ÖÂšü
16. तारसप्तक, पृष्ठ 222
17. कविता के नए प्रतिमान, पृष्ठ 106
18. अज्ञेय संचयिता, संपा. नंदकिशोर आचार्य, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र. सं. 2001 ¯ÖÂšü 147
19. †–ÖµÖ ÃÖ“Ö×µÖŸÖÖ, ¯ÖÂšü 419
20. अन्तरा, पृष्ठ 67
21. ¾ÖÆüß, ¯ÖÂšü 61
22. भवन्ती, पृष्ठ 78
23. ¾ÖÆüß, ¯ÖÂšü 95
24. ¿ÖÖ¿¾ÖŸÖß, ¯ÖÂšü 60

25. ¿ÖÂÖö, ¯ÖÂŠ 13

26. ¾ÖÆß, ¯ÖÂŠ 18-19

27. आलोचक अज्ञेय की उपस्थिति, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र. सं. 2011, ¯ÖÂŠ 213

28. ¾ÖÆß, ¯ÖÂŠ 96

29. प्रस्तुत अन्वेषक द्वारा लिया गया साक्षात्कार, 14 ±ú¸¾Ö¸ß 2014, नयी दिल्ली

30. आलोचक अज्ञेय की उपस्थिति, पृष्ठ 226

31. सौंदर्य आणि साहित्य, मौज प्रकाशन गृह, मुंबई, पृष्ठ 212

32. ¾ÖÆß, ¯ÖÂŠ 6

33. ¾ÖÆß, ¯ÖÂŠ 15

34. बाळ सीताराम मर्ढेकर, साहित्य अकादमी, नवी दिल्ली, पृष्ठ 59

35. सौंदर्य आणि साहित्य, मौज प्रकाशन गृह, मुंबई, पृष्ठ 114

36. सौंदर्य आणि साहित्य, मौज प्रकाशन गृह, मुंबई, पृष्ठ 97

37. ¾ÖÆß, ¯ÖÂŠ 138

38. ¾ÖÆß, ¯ÖÂŠ 91

39. सर्जना और संदर्भ, पृष्ठ 1

40. ¾ÖÆß, ¯ÖÂŠ 6

41. ¾ÖÆß, ¯ÖÂŠ 11

42. ¾ÖÆß, ¯ÖÂŠ 127

43. ¾ÖÆß, ¯ÖÂŠ 7

44. सौंदर्य आणि साहित्य, मौज प्रकाशन गृह, मुंबई, पृष्ठ 91

45. कवि मन, पृष्ठ 11

46. सदानीरा, पृष्ठ 141

47. सदानीरा, भाग-2 ¯ÖÂŠ 356

48. कांही कविता, मर्ढेकर कविता क्र. 1,3,8,14

49. परिस्थिति और साहित्यकार, पृष्ठ 71

50. सर्जना और संदर्भ, पृष्ठ 49

51. गद्यकार अज्ञेय तथा उनकी रचनाधर्मिता, संपा. डॉ. सतीश यादव, यश पब्लिकेशन्स, दिल्ली ¯ÖÂŠ 184

52. Arts and man, P. 62

53. सौंदर्य आणि साहित्य, मौज प्रकाशन गृह, मुंबई, पृष्ठ 212

54. परिस्थिति और साहित्यकार, पृष्ठ 62

55. ¿ÖÂÖÖ , ¯ÖÂšü 18,19

56. परिस्थिति और साहित्यकार, पृष्ठ 76

57. आलोचक अज्ञेय की उपस्थिति, पृष्ठ 213

58. अज्ञेय, साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली, पृष्ठ 76

■ ■ ■

ÂÖÂšü´Ö †¬µÖÖµÖ

अज्ञेय और मर्ढेकर के साहित्य-व्यक्तित्त्व का बाद के हिंदी-मराठी ÃÖÖ×ÆüŸµÖ ¯Ö¸ü ¯Ö³ÖÖ¾Ö

ÂÖÂšì´Ö †¬µÖÖµÖ

अज्ञेय और मर्ढेकर के साहित्य-व्यक्तित्व का बाद के हिंदी-मराठी साहित्य पर प्रभाव : (अंतर्वस्तु, भाषा और शैली के संदर्भ में)

6.1. अज्ञेय के साहित्य -व्यक्तित्व का बाद के हिंदी साहित्य पर प्रभाव

6.2. बा. सी. मर्ढेकर के साहित्य-व्यक्तित्व का बाद के मराठी साहित्य पर प्रभाव

6.3. निष्कर्ष

प्रस्तावना :

हिंदी सहित्य के शिखर पुरूष सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' तथा आधुनिक मराठी साहित्य के प्रवर्तक बा. सी. मर्ढेकर दोनों हिंदी-मराठी साहित्य में अपने आप में प्रतिमान हैं। जहाँ अज्ञेय ने हिंदी साहित्याकाश को पाँच दशकों तक अपने कृतित्व से आलोकित किया वहीं मर्ढेकर ने दो दशकों तक मराठी साहित्य की विभिन्न विधाओं में नये प्रतिभा से साहित्य जगत को समृद्ध, संपन्न और वैविध्यपूर्ण बनाने में महती भूमिका निभायी। प्रेम, प्रकृति, रहस्य, समाज, आत्मान्वेषण की व्यापकता अज्ञेय में मिलती है। यह व्यक्ति के आन्तरिक मनोभावों को उघाडनेवाला पक्षधर हैं। इसलिए उनके साहित्य में उभर आया है व्यष्टि और समष्टि का द्वंद्व, लोकजीवन और लोककथाओं को स्थान, काव्य विषयक चिंतन, भाषा के संदर्भ में संप्रेषण को महत्व, मौन की अनुभूति, क्षण का आग्रह, बिंब, विधान और नयी प्रतीक व्यवस्था उन्हें विशिष्ट कवि रूप में मण्डित करती है। ठीक उसी तरह मर्ढेकर का कवि रूप अतियथार्थवाद का दामन पकड लेता है। उसी को मराठी में नवकाव्य कहा जाता है। मर्ढेकर की कविताएँ 'मानवी व्यक्तित्व के विघटन' की भावना को व्यक्त करती है, जो आज के मानवी समाज को भी अभिभूत करती है। यह कविता सामाजिक यथार्थ का स्वर आलापने लगती है। यह कविता बुभुक्षित आत्मा की पुकार का प्रतिनिधित्व करती है। दो महायुद्धों को झेल चुके मनुष्य के खंडित व्यक्तित्व, विघटित भावना और विचलित मनोदशा का यथार्थ चित्रण करती है।' ये कविताएँ आधुनिक संसार के दोषों के प्रति सजगता तो व्यक्त करती है पर केवल चमगादड़ की तरह अंधेरे में पंख फड़फड़ाकर रह जाती है।' मर्ढेकर की कविता में असाधारण कल्पनाचित्रों, नये बिंबों और देशज शब्दावली का प्रयोग हैं जो उसकी आकर्षण का प्रमुख कारण है। यंत्र-विद्या, शरीर और जीव-विज्ञान के चित्रों का विचित्र संगम मर्ढेकर के काव्य में देखने को मिलता है। संकर शब्दों की बहुलता यहाँ देखी जा सकती है। अद्‌भूत कवित्व-शक्ति, स्वतंत्र सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन और जीवनानुभवों के सजग अंकन के गद्य ने उन्हें मराठी साहित्य परंपरा में अद्वितीय स्थान पर खड़ा किया है। आधुनिकता के सच्चे मार्ग पर खड़े कवि के रूप में हम उन्हें पाते हैं। इसलिए मराठी साहित्य में 'मर्ढेकरी युग' का सूत्रपात हुआ। ठीक उसी तरह अज्ञेय की सृजनधर्मिता ने हिंदी साहित्य में 'अज्ञेय युग' ला खड़ा किया। दोनों का साहित्य व्यक्तित्व विशिष्ट, नये कीर्तिमान स्थापित करने वाला तथा अपनी साहित्य संवेदना से युग मनीषा को प्रभावित करने वाला रहा है। अज्ञेय ने कविता, उपन्यास और आलोचना साहित्य के माध्यम से नयी पीढ़ी का संस्कार किया। 'नयी राह की तलाश की। राहों का अन्वेषण करते-करते अपनी स्वतंत्र राह वे बनाते चले गये। इन तीनों विधाओं में उन्होंने स्वतंत्र मुद्रा अंकित की। उन्होंने जो साहित्यिक, बौद्धिक और सांस्कृतिक संस्कार किए, जिनसे अनेक पीढ़ियाँ दूर-दूर तक प्रभावित होती गयी। ठीक उसी तरह मर्ढेकर ने भी कविता, आलोचना

और उपन्यास के क्षेत्र में नया अविष्कार किया। अपनी स्थापनाओं, संवेदनाओं और जीवन दृष्टियों से साहित्य के परिवेश को बदला, नया संस्कार दिया। अपना व्यक्तित्व, अपनी सोच और अपने सौंदर्य विचार ने साहित्य की धारा को मोड़ा, बौद्धिक परिदृश्य से जोड़ते हुए उन्हें जीवनानुभूति के अतियथार्थ से परिचित कराया। प्रस्तुत अध्याय में हम अज्ञेय और मर्ढेकर के साहित्य-व्यक्तित्व का बाद के हिंदी-मराठी साहित्य पर प्रभाव कहाँ-कहाँ लक्षित होता है। विशेषतः इन दोनों की वैचारिकता से बाद का साहित्य परिवेश कहाँ और कैसे अभिन्नतम रूप में प्रभावित हुआ है। वे कौन से बिंदू हैं, पक्ष हैं जिनसे बाद की पीढ़ी खुद को जोड़ने में, छाया बनने में अपने आपको सौभाग्यशाली मानती रही हैं। अंतर्वस्तु, भाषा और शैली की दृष्टि से दोनों ने उत्तरवर्ती साहित्यधारा को कैसे प्रभावित किया, इसे देखना रोचक होगा। सर्वप्रथम हम सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' के साहित्य-व्यक्तित्व ने हिंदी साहित्य की कविता, उपन्यास और आलोचना को कैसे प्रभावित किया है, इसे देखेंगे।

6.1 अज्ञेय के साहित्य-व्यक्तित्व का बाद के हिंदी साहित्य पर प्रभाव :

हिंदी कविता के क्षेत्र में अज्ञेय का आगमन विशिष्ट परिस्थितियों में हुआ। छायावादी कविता अपने ही वृत्त में घूम रही थी। तो प्रगतिवादी कविता राजनैतिक नारेबाजी का माध्यम बनती जा रही थी। कविता स्थूल बन गई थी। अज्ञेय ने छायावादी भावुकता और प्रगतिवादी इकहरी मानसिकता से अलग प्रयोगात्मकता से हिंदी कविता को जोड़ा। यह कविता स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर प्रस्थान करती है। प्रयोगशीलता उसका प्रधान अंग है। किन्तु अपने आरंभिक दौर में अज्ञेय पर पूर्ववर्तियों की छाया स्पष्ट देखी जा सकती है। रोमांटिकता बोध का असर उनकी आरंभिक कविता पर देखा जा सकता है। इसलिए डॉ. नंदकिशोर आचार्य बहुत सटीक कहते हैं, "निराला का पौरूष और प्रसाद की सांस्कृतिक गरिमा आधुनिक दृष्टि से संस्कारित होकर हमें अज्ञेय में मिलती है।"[1] †£ÖÖŸÖ ¯Ö¾Ö¾ÖÙŸÖµÖÖ के प्रभाव को ग्रहण करते हुए अज्ञेय ने प्रयोगशीलता की राह पकड़ी। वादों से परे जाकर अपनी कविता का दामन पकड़ा। वे किसी भी वाद में बंधे नहीं। अब कविता स्थूलता की अपेक्षा व्यक्ति के आभ्यंतरिक यथार्थ को अभिव्यक्त करने लगी। प्रकृति, व्यक्ति, व्यक्ति की दमित कुंठाएँ, उसकी मनोदशा का यथार्थ चित्र अंकित करने लगी। क्षण का आग्रह, आधुनिकता का बोध, भावात्मकता और पार्थिवता का समन्वय, वैयक्तिक स्वातंत्र्य का भाव, सामाजिक वर्जनाओं के प्रति विद्रोह, प्रकृति की गतियों, रूपों और मुद्राओं का अंकन, यथार्थता का भास्वर, अनुभूति की प्रामाणिकता, रूढ़ प्रणालियों को तोडकर नयी शैल्पिक योजनाओं और अनुभूतियों का अभिव्यंजन आदि छवियाँ अंकित करने में अज्ञेय सफल हुए अर्थात ये वे अंग हैं जो अज्ञेय की कविता को विशिष्ट बनाते हैं। अज्ञेय भाषा के अनुगामी नहीं बने, भाषा ही उनकी अनुगामी बनती गई। उनके द्वारा किये गये

शैल्पिक प्रयोगों ने हिंदी कविता को नूतन,अभिनव और नया रूपाकार देने में महती भूमिका निभायी।

अज्ञेय हिंदी कविता की अंतर्वस्तु को बदल देते हैं, नये परिवेश से जोडते हैं। 'व्यक्ति वर्जनाओं का पुंज हैं' कहकर नया भावबोध अंकित करते हैं। व्यक्ति और समष्टि के बीच उपस्थित द्वंद्व को रेखांकित करते हैं। अज्ञेय के पूर्व हिंदी कविता एकायामी, अपने ही वृत्त में फंसी हुई थी या राजनैतिक फतवेबाजी का शिकार होती गयी। अज्ञेय ने हिंदी कविता को मनोविश्लेषणशास्त्र और अस्तित्ववादी चिंतन से आपूरित किया। यह कविता सामाजिक यथार्थ की अपेक्षा व्यक्ति यथार्थ का आंतरिक पक्ष खोलने लगती है। यही कारण है कि परवर्ती हिंदी कविता में जितना वैभिन्य, विचित्र्य अनेक स्तरों पर दिखाई देता है- वह इसकी जीवंतता का प्रतीक है। अज्ञेय की कविता ने परवर्तियों पर अमिट छाप छोडी है। उसने अंतर्वस्तु, भाषा और शैली के स्तर पर दूर तक प्रभाव छोड़ा है। "जगदीश गुप्त का अध्यात्मबोध तथा सर्वेश्वर दयाल एवं रघुवीर सहाय की वैयक्तिकतामूलक संवेदना पर तो अज्ञेय का प्रभाव स्पष्ट ही है। नगरबोध के प्रारंभिक लक्षण भी अज्ञेय काव्य में स्पष्ट दीखते हैं। यद्यपि उनमें नगर के प्रति वितृष्णा का भाव अधिक हैं, उसकी पीड़ा भोगने का नहीं। यौन प्रतीकों के माध्यम से अज्ञेय ने विद्रोह को जो अभिव्यक्ति दी है- उसने समकालीनों को तो प्रभावित किया ही- आज की युवा पीढ़ी के कई कवि भी इन्हीं प्रतीकों के माध्यम से अपने आक्रोश की अभिव्यक्ति करते हैं। सामाजिक वर्जनाओं के प्रति विद्रोह का जो भाव अज्ञेय ने जगाया, वह आज के साहित्य का स्थायी भाव हो गया है। वाक् लय के आधार पर अज्ञेय के छंद प्रयोगों ने परवर्ती पीढ़ी के लिए मॉडेल का कार्य किया है। यही कारण है कि नयी कविता का अधिकांश बोलचाल की लय पर आधारित है। तुक की आवृत्ति से लय के निर्माण और अर्थ उद्घाटन तथा मुक्त अनुषंगों (Free associations) के कविता में प्रयोग का स्थायी प्रभाव परवर्ती कवियों पर पड़ा है, जिनमें श्रीकांत वर्मा प्रमुख हैं, यद्यपि उनकी संवेदना भिन्न प्रकार की है। अज्ञेय की संवेदना का प्रभाव तो अभी कम मात्रा में है पर लगता है। (यद्यपि यह भविष्यवाणी करने जैसा ही है) कि काव्यसंरचना की दृष्टि से अज्ञेय का प्रभाव अधिक गहरा और व्यापक रहेगा।"[2] इस दीर्घ कथन के मूल में अज्ञेय के प्रभाव को वस्तु, संरचना और शैली के स्तर पर देखा जा सकता है। नंदकिशोर आचार्य ने अज्ञेय की कविता का सबसे बड़ा गुण यही माना है कि यह कविता परवर्ती कविता का विस्तार करती है। वैविध्यता और वैभिन्यता को लाने में इस कविता की महती देन है। साथ ही जगदीश गुप्त, सर्वेश्वर दयाल, रघुवीर सहाय और श्रीकान्त वर्मा की काव्य सर्जना को अज्ञेय ने किस रूप में प्रभावित किया हैं, इसकी सप्रमाण चर्चा की है। वस्तुतः अज्ञेय के 'आधुनिक भावबोध' से अनेक हिंदी कवि प्रभावित हुए हैं, जिन पर सोदाहरण चर्चा करना नितांत आवश्यक है। इसमें धर्मवीर भारती, गिरिजाकुमार माथुर, जगदीश गुप्त, विजय देवनारायण साही, श्रीराम वर्मा, लक्ष्मीकांत वर्मा, नंदकिशोर आचार्य, स्नेहमयी

चौधरी, राजेंद्र किशोर आदि कवि अज्ञेय की कलावादी रोमैंटिक धारा के निकट नजर आते हैं। श्रीकांत वर्मा, अशोक वाजपेयी तथा आज के चर्चित कवि उदय प्रकाश जैसे कवियों के अवचेतन में †–ÖµÖ ²ÖŠ¡ Æ'...

जैसे कि उपर उल्लेख किया जा चुका है, अज्ञेय के आधुनिक भाव बोध से अनेक हिंदी कवि प्रभावित हुए हैं। अज्ञेय ने प्रयोगवादी कविता का प्रवर्तन किया। यह नये भावबोध की कविता हैं। 'तार-सप्तक' का प्रकाशन हिंदी जगत में ऐतिहासिक घटना है। तारसप्तक में अंतर्भूत रचनाएँ 'आधुनिक भावबोध' से आप्लावित है। आजादी के बाद का पूरा परिवेश, प्रगति की होड, पिछली चीजों को ध्वस्त करने की चाह आदि का प्रतिबिंब तारसप्तक में देखने का मिलता है। अज्ञेय की कविता की अंतर्वस्तु से प्रभावित होने का एक कारण यह भी है कि, "तार सप्तक के कवियों में श्री गजानन माधव मुक्तिबोध की कविताएँ उस समय जनता तक संप्रेषित होने में असमर्थ भी और बाकी कवियों का काव्य एक विलक्षण प्रकार के अंतर्विरोध से ग्रस्त होने के कारण संवेद्य नहीं बन सका।"[3]

अज्ञेय ने चार सप्तकों का संपादन किया। हिंदी को 28 नये कवि दिए। बाद में जितने भी सप्तक आए, उनमें अधिकांश प्रयोगवादी कवि थे जो मार्क्सवादी विचारधारा को नहीं मानते थे। विशेषतः ये समस्त कवि व्यक्ति की स्वतंत्रता पर ही अधिक बल देते हैं। 'वैयक्तिकता का आग्रह' उनकी कविता का प्रधान स्वर बनता गया। ये कवि अज्ञेय को निरंतर 'फॉलो' करते गये। अज्ञेय की कविता में अंतर्निहित 'स्वचेतनता' और 'अमूर्तता' के स्वर को आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में पकडने का प्रयास यहाँ हुआ है। अज्ञेय व्यक्तिवादी सौंदर्यबोध के रोमानी कवि हैं। अज्ञेय कविता में अहं के विलयन को महत्व देते है, जो उनकी परवर्ती कविता में भी देखा जा सकता है। साहित्य के परिवेश को बदलने में अज्ञेय ने महती भूमिका निभायी। काल की गहराई में उतरकर अपने समकालीन समाज जीवन को देखने का प्रयास वे करते गये। अर्थात् रचना अपने परिवेश से प्रभावित होती है। औद्योगिक सभ्यता के प्रभाव को छायावादियों ने भी झेला था किंतु छायावादियों के सहज विश्वास और भारतीय आध्यात्मिक परंपरा के प्रति दृढ़ संबंद्धता के कारण उस पर यह दबाव प्रभावशाली सिद्ध न हो सका। प्रयोगवादी कवि अपने समय और समाज के प्रति अत्यधिक जागरूक थे। इसी बात को साधते हुए डॉ. शशि शर्मा लिखती है, "नगर जीवन का अगाध अतिक्रमण प्रयोगवादियों की संवेदनशीलता को घेरता था। इसलिए नई कविता के कवि आत्मकेंद्रित दिशा की ओर मुड गए और उन्हें तारसप्तक के प्रकाशन के पश्चात अज्ञेय के काव्य बिंब, भाषा, प्रतीक आदि प्रयोगों ने समकालीन कवियों को प्रभावित किया।"[4] अज्ञेय की प्रयोगधर्मिता ने अनेक परवर्तीयों को अनुकरण करने हेतु बाध्य किया। अर्थात् शैली की दृष्टि से भी अनेक कवियों ने अपने आपको अज्ञेय का अनुगामी पाया। विशेषतः अनुभव संपन्नता को विशेष महत्व दिया गया। डॉ. जगदीश गुप्त लिखते हैं, "नया कवि

किसी विषय पर कविता नहीं लिखता,उसका अनुभव ही उसकी कविता का विषय होता Æ...''[5]

गिरिजाकुमार माथुर प्रणयानुभूति के कवि हैं। वे किसी वाद से संबंध नहीं है। उन्होंने व्यक्ति स्वातंत्र्य को महत्व दिया है। इसी कारण वे अज्ञेय की कथ्य चेतना से प्रभावित हैं। प्रणयानुभूति, विगत प्रणय की स्मृति, स्त्री साहचर्य की कामना आदि स्थितियों को माथुर की कविताओं में स्पष्टतया देखा जा सकता है। प्रेम भाव प्रधान होने कारण विगत प्रेम की अनुभूतियों को वे प्रकृति के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं- ''गीत की आखिरी मीठी लकीर सी। प्यार भी डूबेगा गोरी सी बाहों में। ओठों में, आँखों में। फूलों में डूबे ज्यों। फूल की रेशमी रेशमी छाहें। आज हैं- केसर रंग रंगे वन।''[6] †-ÖµÖ काव्य के दोनों पक्ष माथुर की कविता में देखे जा सकते हैं। प्रेम की प्रधानता तथा मानव संघर्ष का स्वर। माथुर की कविताओं में रोमानी भावनाओं की प्रधानता मिलती है। वहीं प्रगतिवादी मानव संघर्ष भी उनकी कविताओं में उभर आया है। 'मानव संघर्ष' में भी अहं का स्वर ही प्रमुख हैं, जो उनकी कविता में प्रकट हुआ है- ''मेरी मानवता पर रक्खा गिरी सा सत्ता का सिंहासन, मेरी आस्था पर बैठा है विषधर या सामंती शासन, मेरी छाती पर रखा हुआ साम्राज्यवाद का रक्त कलश।''[7]

अज्ञेय ने प्रकृति के सूक्ष्म सौंदर्य बोध का सजग अंकन किया है। उनकी कविता में प्रकृति के अनेक रूप लक्षित होते हैं। प्रकृति पर नारीत्व के आरोप की परम्परा हो या यौन प्रतीकों की सुंदरतम योजना हो। वस्तुतः अज्ञेय यह मानते थे कि 'आधुनिक युग का साधारण व्यक्ति यौन वर्जनाओं का पुंज हैं।' ये दोनों भाव हम गिरिजाकुमार माथुर की कविता में देख सकते हैं। माथुर ने हेमन्त की रात का चित्रण करते समय उसे 'कामिनी-सी' कहा है और उस पर नारी की मांसलता का आरोप कर दिया है जो अज्ञेय की 'सदानीरा' में संग्रहित काम प्रतीकों की याद दिलाती है। जिसमें झोंप, नदी और चांदनी काम प्रतीक है। द्रष्टव्य है गिरिजाकुमार माथुर की काव्यपंक्तियाँ-

'कामिनी-सी अब लिपटकर सो गयी है
रात यह दीप-तन बन ऊष्म करने सेज
अपने कन्त की।
नयन लालिम स्नेह दीपित
भुज-मिलन तन-गंध सुरभित
उस नुकीले वक्ष की
वह छुअन उकसन, चुभन अलसित।
इस अगरू सुधि से सलोनी हो गई है
रात यह हेमंत की, कामिनी-सी अब लिपटकर
सो गयी है रात यह हेमन्त की।''[8]

साथ ही अज्ञेय की परंपरा का निर्वाह करते हुए माथुर जी ने कविता के उपमान प्रतीकार्थ रखे हैं। तात्पर्य यही है कि गिरिजाकुमार माथुर ने अंतर्वस्तु और शैली के स्तर पर अज्ञेय का स्पष्टतया प्रभाव स्वीकार किया है, जिसके चिह्न माथुर जी की कविता में स्थान-स्थान पर लक्षित होते हैं।

धर्मवीर भारती अपने व्यक्तित्व के प्रति आस्थावान है और अज्ञेय की तरह वे भी आन्तरिक अन्वेषण को कविता का प्रमुख उद्देश्य मानते हैं। भारती की कविता में समय से उत्पन्न निराशा का भाव दिखाई देता है। यह कवि जब कल्पनाओं और स्वप्नों को छिन्न-भिन्न होते देख या मानवीय संवेदनाओं को लुप्त होते देख निराशा में डूब जाता है। भारती ने अपने दृश्य काव्य 'अंधायुग' में युग के समस्त अंधकार के बीच आंतरिक अनासक्त भाव की आस्था को व्यक्त किया है। द्रष्टव्य है 'अंधायुग' की काव्यपंक्तियाँ-

"चलना तो हमको ही होगा/
चलने में ही इन टूटों और अधरों
का शायद होगा कुछ नया गठन/
आश्रय देंगे हमको अपने/
जर्जर, पर अपराजेय चरण।"

अज्ञेय की तरह भारती की कविता में कुण्ठा, निराशा, अवसाद, अनास्था, विवशता, निरर्थकता, घृणा, ऊब, मृत्यु, अकेलापन, पीड़ा, अहंवादिता की प्रवृत्तियों को देखा जा सकता है। अपनी व्यक्तिवादिता के कारण अकेले पडे इस कवि में अनेक नकारात्मक प्रवृत्तियों ने जन्म लिया था। ये नकारात्मक भावनाएँ मोहभंग और संक्रमण का परिणाम थी, जिसमें से यह कवि गुजर रहे थे। 'पराजित पीढ़ी का गीत' कविता में भारती ने लिखा है-

"हम सबके दामन में दाग
हम सबकी आत्मा में झूठ
हम सबके माथे पर शर्म
हम सबके हाथों में टूटी तलवारों की मूठ।
हम थे सैनिक अपराजेय
¯Ö¸¡ Æ´Ö £Ö ²Ö²ÖÃÖ »ÖÖ“ÖÖ¸¡
यह था कठपुतलों का खेल
ऊपर थी कलई, पर लकडी के थे सब हथियार।"[9]

पीड़ा बोध और नकारात्मक अनुभूतियों का फलन भारती की कविता में देखा जा सकता है, जो अज्ञेय की कविता की देन हैं। अज्ञेय की भाषिक चेतना का प्रभाव भी भारतीय पर देखा जा

सकता है। अज्ञेय ने माना कि 'भाषा का उपयोग मैं करता हूँ निस्संदेह, लेकिन कवि के नाते जो मैं कहता हूँ वह भाषा के द्वारा नहीं, केवल शब्दों के द्वारा।' शब्द चयन का प्रभाव भारतीय जी पर देखा जा सकता है। अंग्रेजी, संस्कृत, उर्दू भाषा के अप्रचलित शब्दों का प्रयोग भारतीजी ने बेहिचक किया है। भारती ने 'ठण्डा लोहा' कविता में उर्दू शब्दों का प्रयोग कुछ इस प्रकार किया है-

'हो चुकी है हैवानियत की इन्तेहाँ
आदमीयत का मगर आगाज बाकी है।"[10]

अज्ञेय ने आभ्यंतरिक यथार्थ की बात की है। भारती अपने काव्य में आन्तरिक संघर्ष का विराट रूप लेकर आते हैं। अपने अहं को विगलित करते हुए ध्वंस और निर्माण, आस्था और अनास्था, अस्तित्व और अनस्तित्व के बीच जीवन के सार्थक तत्वों की, रचनात्मकता की तलाश भारती करते हैं। 'ठण्डा लोहा' काव्य कृति में इसके दर्शन होते हैं। प्रकृति का सारा यौवन बिखेरकर कवि प्रणय के उपकरण जुटाता है। अज्ञेय ने यही स्वर आलापा था, राग संबंधों की आन्तरिकता का स्वर और यही स्वर हम धर्मवीर भारती में सुन सकते हैं। यह रचनाकार एक ओर ज्योति की कथा (अंधा युग) कहता है तो दूसरी ओर राग संबंधों की आंतरिक सामाजिकता (कनुप्रिया) के महीन पर्दे खोलता है। अज्ञेय की परंपरा का निर्वाह भारती अनेक स्थलों पर करते दिखाई देते हैं।

आधुनिक जिंदगी की बड़ी देन है महानगरीय जीवन। महानगरों की बढ़ती हुई भीड़ में व्यक्ति खुद को अकेला महसूस करता जा रहा है। यह अस्तित्ववादी अकेलापन अधिकतर नई कविता के कवियों में प्रत्यक्ष दिखाई देता है। इन कवियों की कविता का लक्ष्य व्यक्तित्व की खोज और अहं की स्वीकृति रहा है। दो महायुद्धों ने व्यक्तित्व के विघटन को बढ़ावा दिया। इसलिए प्रत्येक कवि में अस्तित्व की चिंता दिखाई देती है। अज्ञेय में भी अकेलेपन का वैभव है। किंतु यह अकेलापन अस्तित्ववादी अकेलापन है। नरेश मेहता की कविताओं में अहं का स्वर बेहिचक सुनाई देता है-

"किन्तु हमारे मन का/संशय, दर्प विद्रोह वहीं है। कैसे तुम
सब झुकने:ओ मेरी गति/ कैसे सब झुक पायें।"[11]

उपर हमने अहं के विलयन पर कटाक्ष किया है। किन्तु अज्ञेय की तरह नरेश मेहता में प्रकृति सौंदर्य और रोमानी तेवर देखने को मिलता है। 'उषस्' शीर्षक से चार कविताएँ उन्होंने लिखी हैं। नरेश मेहता में प्रकृति सौंदर्य और जीवन संगीत का अद्‌भूत गठबंधन कुछ इस प्रकार दृष्टिगत होता है-

"मानव जिस ओर गया
नगर वने, तीर्थ बने,
तुमसे हैं कौन बड़ा?
गगन-सिंधु मित्र बने,

भूमि का भोगो सुख, नदियों का सोम पियो
त्यागो सब जीर्ण वसन, नूतन के संग-संग चलो।"[12]

ठीक अज्ञेय की तरह नरेश मेहता की कविताओं में मानवीय संबंधों की तलाश और स्वातंत्र्यबोध के गहनतम दर्शन होते हैं। विचार स्वातंत्र्य और उर्ध्वकामी प्रज्ञा-यात्रा करनेवाला यह कवि मिथकों का सजग प्रयोग करता है। नरेश मेहता की कविताएँ निश्चित रूप में अनेक स्थलों पर अज्ञेय का अनुगामी बनती हुई नजर आती है। लक्ष्मीकांत वर्मा ने 'आत्मानुभूति' और डॉ. जगदीश गुप्त ने 'सह अनुभूति' की चर्चा द्वारा 'अनुभूति की प्रामाणिकता' के मिथ को ही पुष्ट किया है। अज्ञेय ने अपने काव्यशास्त्रीय चिंतन में 'अनुभूति की प्रामाणिकता' पर अत्यधिक बल दिया है। वही बात नरेश मेहता अपनी एक कविता 'चाहता मन' में अनुभूति की प्रकृति को कुछ इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं-

"गोमती तट,
दूर पेंसिल रेख सा वह बांस झुरमुट
शरद दुपहर के कपोलों पर उड़ी वह धूप की लट,
जल के नग्न ठंडे बदन पर कुहरा झुका
लहर जीना चाहता है।"[13]

अज्ञेय का प्रभाव यहाँ तक ही नहीं, अस्तित्ववादी विचारधारा एवं दार्शनिक प्रतिपत्तियों, धारणाओं को काव्याधार देनेवाली कृतियों में 'असाध्यवीणा' (अज्ञेय), 'अंधायुग' (धर्मवीर भारती) , 'संशय की एक रात' (नरेश मेहता), 'आत्मजयी' (कुंवर नारायण) आदि में देखा जा सकता है।

'दूसरा सप्तक' में संकलित धर्मवीर भारती की कविताएँ पूरी तरह व्यक्तिवादी हैं। 'गुनाह का गीत' और 'गुनाह का दूसरा गीत' नामक कविताएँ प्रेम की कुंठित भावना की अभिव्यक्ति हैं।

"इन फिरोजी होठों पर बर्बाद। मेरी जिंदगी।
तुम्हारे स्पर्श की बादल धुली कचनार नरमाई।
तुम्हारे वक्ष की जादूभरी मदहोश गरमाई।
तुम्हारी चितवनों में नरगिसों की पात शरमाई।
सिखाने को कहा मुझसे प्रणय के देवताओं ने।
तुम्हें आदिम गुनाहों का अजब-सा इंद्रधनुषी स्वाद।
मेरी जिंदगी बरबाद।"[14]

व्यक्तिवादी चेतना के साथ भारती की कविता में उन्मुक्त प्रेम का स्वर व्यक्त हुआ है, जो अज्ञेय का भी मूल स्वर है। भारती की कविता में स्त्री पुरूष के देह धर्म का जो उत्कट अभिनंदन है, वह कम कवियों में मिलता है। आत्मसमर्पण की पवित्र भावना लेकर भारती की कविता सांस्कृतिक

परम्परा का अभिष्ट रचती है। जिसके कारण उन्हें हम अज्ञेय की परम्परा का कवि मानते हैं। भारती की कविता में अज्ञेय की तरह ही प्रश्नाकुलता और व्यंग्य का स्वर प्रबल हो उठा है। जिंदगी की सामयिक अव्यवस्था, मूल्य भ्रष्टता के बीच मानव की स्थिति, वैयक्तिक सुख दुःख और सामूहिक गति का स्वाभाविक चित्र हम भारती में देख सकते हैं। इसलिए 'नया रस', 'संक्रांति', 'कौन चरण' आदि कविताएँ युवा पीढी के समस्त पीड़ाबोध को अंकित करती है। भारती केवल परम्परा को तोड़ने के लिए परम्परा नहीं तोडते और न प्रयोग के लिए प्रयोग करते हैं। यही उनके काव्य का सच है, जो उन्हें अज्ञेय काव्य से जोड़ता है।

तारसप्तक के बाद तीनों सप्तकों के कवियों में अज्ञेय के प्रभाव का देखा जा सकता है। सुधी समीक्षक नंदकिशोर आचार्य का वक्तव्य इस बारे में अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, "कविता जानने की नहीं होने की प्रक्रिया है बल्कि एक प्रकार से 'होकर' जानने की प्रक्रिया है।"[15]

"नहीं, कविता रचना नहीं
Ãö²öÝö Æ
कि मैंने अपने को रचा है
मैं ही तो हो गया हूँ शब्द।"[16]

चौथे तारसप्तक के ही एक प्रमुख कवि राजेंद्र किशोर भी अज्ञेय की विचारधारा के ही निकट हैं। वे कहते हैं, "कवि की मृत्यु का कारण पाठक का अभाव नहीं है। कवि के संदर्भ में उस अद्वितीयता का अभाव है जो कवि की उपलब्धि भी होती हैऔर उपलब्धि का विषय भी।"[17]

चौथा सप्तक में ही संग्रहित उनकी कविता इस बात का संकेत करती है-

"आद्योपान्त जब-
जिन चिड़ियों ने सबेरा किया था
अनवरत अंतहीन यात्राएँ............
......वे कहाँ हैं।"[18]

लगातार चार सप्तकों का नेतृत्व करने के कारण भी अज्ञेय नयी कविता के केंद्र में रहे हैं। विशेषतः समकालीन और परवर्ती कवियों का सृजन संस्कार भी उन्होंने किया। नवकवियों को पढ़ना उनके लिए अभिरूचि का विषय था।

अज्ञेय का प्रणय भाव परवर्ती अनेक कवियों को भावित करता गया। जिसमें जगदीश गुप्त का नाम महत्वपूर्ण है। प्रणय की सच्ची अनुभूति 'युग्म' (जगदीश गुप्त) में हुई है। स्वस्थ रोमांटिसिज्म का सुखद झोंका 'युग्म' में मिलता है। यांत्रिक बनती जा रही हमारी संवेदना और अभिरूचि को विस्तार देने का काम गुप्त करते हैं। जगदीश गुप्त प्रणय के विविध अनुभवों का चित्रांकन करते हैं-

"बड़ी-बड़ी आँखें। जब भी मुझे। स्नेह से, कुतुहल से देखती हैं। मुझमें अकस्मात। सोते फूटने लगते हैं। मैं बोया-सींचा असंख्य आँसुओं वाला खेत बन जाता हूँ। या अनन्त आँखों वाला आकाश। देह की मिट्टी में सोये हुए। प्रलय के बादल जाग उठते हैं।"

ठीक अज्ञेय की तरह जगदीश गुप्त भी समृद्ध बिंबों के कवि हैं। यहाँ बिंबों की भीड़ नहीं है समूचे काव्य-कथ्य को अभिव्यक्त करनेवाले बिंबों की सर्जना गुप्त करते हैं। इन बिंबों में अर्थवत्ता का परिचय मिल जाता है। यह कवि बिंबों की सर्जना सीधे-सीधे अभिधा में करता है। 'युग्म' में संभोग के विवरण इस बात की प्रतीति कराते हैं।

अज्ञेय और शमशेर बहादुर सिंह दोनों समकालीन हैं। अज्ञेय में प्रकृति के संदर्भ में रूमानी मनोवृत्ति देख सकते हैं। वे व्यक्ति चेतना को लेकर आए किंतु शमशेर व्यक्ति चेतना और सामाजिकता का समन्वय करते दिखाई देते हैं। शमशेर ने प्रकृति चित्रण की अनुपम कविताएँ लिखी है, जिस पर अज्ञेय की छाप दिखाई देती है। शमशेर सूक्ष्म निरीक्षण के माध्यम से प्रकृति के सूक्ष्म अवलोकन, तीव्र रंग संवेदना और बिंबात्मक कल्पना का उत्कृष्ट उदाहरण पेश करते हैं-

"प्रात नभ था बहुत नीला शंख जैसे।
भोर का नभ
राख से लीपा हुआ चौका
(अभी गीला पड़ा है।)
बहुत काली सिल जरा से लाल केसर से
कि जैसे धूल गयी हो
स्लेट पर या लाल खडिया चाक
मल ही दो किसी ने
नील जल में या किसी की
गौर झिलमिल देह
•ÖÃÖ ×ÆÌ»Ö ¸ÆÌß ÆÖ…
†Ö¸¡....................
जादू टूटता है इस उषा का अब
ÃÖµÖÖ¤µÖ ÆÖ ¸ÆÖ ÆÌ…"[19]

अज्ञेय की कविता में 'लघुमानव' वर्णित हुआ है। जीवन के यथार्थ अर्थो को पकड़ने की दिशा में जो सत्य मिलता है वह कितना ही वैयक्तिक अनुभव पर आधारित हो किंतु उसके माध्यम से दूसरों तक पहुँचने का रास्ता निकलता है। दर्द सबकों माँजता भी है और जोडता भी है। व्यक्ति की

पीड़ाओं, कुंठाओं में से युग के यथार्थ का संकेत मिलता है। आधुनिक युग ने अपने बंधनों में उसे जकड़ लिया है। वैज्ञानिक भौतिकवाद एवं यांत्रिक जीवनक्रम में पिसता हुआ व्यक्ति 'लघुमानव' की नियति ढोने को बाध्य है। उसका अहंस्फीत व्यक्तित्व उसे जीवित होने का बोध भी देता है और बौना हो चुकने की पीड़ा भी। स्वप्निल आदर्शों की महामानवी धरती छिन गई है। फौलाद की छाती विवश और परवश कर गई है, यही पीड़ा लक्ष्मीकांत वर्मा अपनी कविता में एक अलग ढंग से अभिव्यक्त करते हैं- 'छिली हुई पपडी पर छाल चढ जाती है, दुधियारे पत्तों में बाल बस जाती है, जटाएँ भी झुकती हैं भूतल को छूती हैं। चरवाहे की वंशी की टेर भटक जाती है, मगर एक मैं हूँ : फौलाद की £ÖÖŸÖß x»Ö< •ÖßŸÖÖ Æü, ´Ö †Ö•Ö ³Öß Ø•Ö¤üÖ Æü..."[20]

कवि लक्ष्मीकांत वर्मा ने आधुनिकता के परिवेश से नाता जोड़ते हुए यांत्रिक जीवनक्रम में पिसते हुए व्यक्ति की पीड़ा को अंकित किया। यह आधुनिकता बोध अज्ञेय की ही देन है।

अज्ञेय काव्य के प्रभाव से श्रीकांत वर्मा भी अछूते नहीं हैं। महानगरीय जीवन की तमाम आपाधापी, ऊब और थकान को कवि जीवंत रूप में अंकित करता है। व्यंग्य की अन्तर्निहित अर्थवत्ता, अनुभव लोक का विस्तार, वर्तमान तंत्र और युग संदर्भ आदि रूपाकृतियाँ श्रीकांत वर्मा की कविता में अंकित हुई हैं। श्रीकांत वर्मा को अज्ञेय के विरोधी प्रभाव के रूप में अंकित किया जा सकता है- श्रीकांत वर्मा अज्ञेय के नवरहस्यवाद के विरोधी हैं। पक्षधरता और राजनैतिक विचारधारा के भी विरोधी हैं। वे आधुनिकता और व्यक्ति के स्तर को अज्ञेय के मुहावरे के विरोधी मुहावरे में ढालते हैं। इस संदर्भ में उदयन वाजपेयी का वक्तव्य बड़ा महत्त्वपूर्ण हैं- "अस्सी के बाद आये कवियों की कविताओं में जा फर्क आया है, वह बेहद महत्वपूर्ण है। मुझे लगता है कि इन कवियों का 'शब्द' और 'समय' के प्रति दायित्वपूर्ण और आलोचनात्मक रूख है।"[21] ये कवि विचारधारा और इतिहास के बारे प्रश्न उपस्थित करते हैं। उनका मानना है कि सृजनात्मकता आलोचनात्मक विवेक से प्राप्त की जा सकती है। इसलिए वे प्रतिबद्धता को नहीं, कविता में आलोचनात्मक विवेक के हस्तक्षेप को महत्व देते हैं। अज्ञेय ने भी विवेक स्वातंत्र्य को ही महत्व दिया था। वे कविता में शब्द की सत्ता को स्वीकार करते हैं पर कला को जीवन या जीवन को कला का अनुचर बनाकर नहीं देखते। अज्ञेय की तरह ही श्रीकांत वर्मा भी आलोचनात्मक विवेक को महत्व देते हैं। मानवीय स्वातंत्र्य की चेतना को विशेष स्थान देते हैं। यहाँ युग बोध, मृत्युबोध और संस्कृतिबोध सक्रिय रूप में उपस्थित हैं। उनकी कविता अज्ञेय काव्य का अनुचर बनती दिखाई देती है।

अशोक वाजपेयी की कविता में एक भरा पूरा आदमी और रंगारंग दुनिया का कार्यव्यापार प्रगाढ़ हो उठा है। उनकी कविता में रोमांसवाद है, सतर्क और पैनी प्रत्यक्षता है। वाजपेयी संभावनाओं के कवि हैं। वे अपने समय और समाज को आश्वस्त करते हैं। उनकी कविता संसार में मानवीय

उपस्थिति हैं। मां, बच्चा, घर, परिवार, सडक आदि सभी मौजूद हैं किंतु वाजपेयी व्यक्ति स्वातंत्र्य पर बल देते हैं। वैचारिक दृष्टि से वाजपेयी अज्ञेय के विरोधी हैं किंतु उनके अवचेतन में यह धारा निरंतर प्रवाहित होती हुई दिखाई देती है। 'सहर अब भी संभावना हैं' कविता में वाजपेयी लिखते हैं, "जब मेरी बाहों में तेरा अक्लान्त लावण्य खिल आयेगा, एक मरणान्तक शोर होगा चारों ओर।"[22] अज्ञेय ग्रंथि के रूप में यहाँ अज्ञेय का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है, जिसके शिकार श्रीकांत वर्मा और अशोक वाजपेयी जैसे अन्य कवि भी हैं। मौन का आभामय आकाश लेकर वाजपेयी आते हैं, यह अज्ञेय की ही देन है। मशीनी जिंदगी की व्यस्तताएँ, प्रकृति के प्रति लगाव, प्रणय की अभिव्यंजना, अनुभव की जीवंतता आदि स्वर को लेकर वाजपेयी आते हैं। इसमें कहीं न कहीं अज्ञेय का स्वर मिला हुआ है। संजीदा सोच और मानवीय सदाशयता की रोशनी में वाजपेयी की कविता फलती-फूलती है, जो अज्ञेय के वैचारिक चिंतन का अनुताप है। चिंतन, संवेदन का कविता में एकाग्रता से विलयित होना अज्ञेय की याद दिलाता है।

अज्ञेय की कविता का प्रभाव उदय प्रकाश पर भी लक्षित होता है। उदय प्रकाश ऱ्हासशील जीवनमूल्यों के खिलाफ विकासशील जीवन पद्धति के हिमायती हैं। उनकी कविताएँ भारतीय संदर्भों की उपज है। यह कविता जनता की सामूहिक चेतना के उद्‌भव की कविता है। किंतु उदय प्रकाश का हाल ही में प्रकाशित कविता संग्रह 'रात में हार्मोनियम' प्रकाशित हुआ, जो हमें अज्ञेय की विख्यात कविता 'असाध्यवीणा' की याद दिलाता है। असाध्यवीणा और हार्मोनियम दोनों के बजने में कठिनाई है। यह कविता आत्मसंघर्ष के बिंदू को सर्वोत्तम शिखर पर पहुँचाती है। उदय प्रकाश की कविता में उपस्थित प्रतीक व्यवस्था पर अज्ञेय का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। प्रतीकों को नई अर्थवत्ता देने, लोकभाषा की शब्दावली, संबोधन, संवाद और बातचीत का लहजा, ये तमाम विशेषताएँ जो अज्ञेय की कविता में हैं, वे उदय प्रकाश में नजर आती है। शैली में समानता का भाव यहाँ लक्षित होता है। कथ्य के अनुरूप, व्यक्तित्व और भाषाजन्य उपलब्धियों के अनुरूप तथा ग्रामीण शहरी संस्कारों के अनुरूप, यह अनुरूपता उदय प्रकाश में हैं, जो अज्ञेय की परंपरा में उन्हें ला खड़ा कर ¤ÏŸÖß ÆîÛ...

अज्ञेय का प्रभाव उत्तरवर्ती कविता पर अनेक स्तरों पर दिखाई पड़ता है। पहला कारण यह है कि वे सप्तकों के माध्यम से चार पीढियों के अग्रज रहे, दूसरा कारण नई कविता का नेतृत्व अज्ञेय ने ही किया। तीसरा कारण अज्ञेय की आत्मसंवादी शैली और चौथा कारण है अज्ञेय का व्यक्तिवादी स्वर जो हिंदी कविता को स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर ले जाता है। समकालीन कविता के अचेतन में अज्ञेय का काव्य रूप विद्यमान है। अज्ञेय की यह धारा केंद्र से हटती गई किन्तु खत्म नहीं हुई। सृजन को इतना सरलीकृत नहीं किया जा सकता। यह कविता समय की मांग पर खड़ी है। यह अपनी

विलक्षण संवेदना, विदग्ध बौद्धिकता और अनुपम शैली के चलते प्रत्येक युग के कवि को प्रभावित करती रहेगी। क्योंकि जीवन के अंधेरे और उजाले में उसकी अपनी निर्णायक भूमिका है। अतः कविता पर अज्ञेय का प्रभाव कभी समाप्त नहीं होगा। समकालीन कविता के विकास में अंतर्वस्तु, भाषा और शैली के विकास में अज्ञेय की ऐतिहासिक भूमिका है, जिसे कोई भी आलोचक नकार नहीं सकता।

अज्ञेय बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। हिंदी कविता को उन्होंने जितना समृद्ध किया, उतना ही हिंदी गद्य को। गद्य की अनेक विधाओं में उनका लेखन परवर्तीयों के लिए एक नया पाठ रहा है। कहानी, उपन्यास, आलोचना, यात्रावृत्त, पत्रकारिता, निबंध आदि विधाओं में उनका प्रभावी संचार रहा है। पहले हमने अज्ञेय के कविता के क्षेत्र में परवर्तीयों पर पड़े हुए प्रभाव की चर्चा की है। यहाँ हम उपन्यास और आलोचना के क्षेत्र में उनके प्रभाव की चर्चा करेंगे। अज्ञेय ने गद्य को तराशा, उपन्यास को नयी शैली दी, कहानी को नये मोड़ पर खड़ा किया। जहाँ तक उपन्यासकार के रूप में अज्ञेय की उपस्थिति का सवाल है, अज्ञेय क्रांतदर्शी, नये मोड़ के उद्‌गाता बनकर हिंदी औपन्यासिक जगत में प्रवेश करते हैं। प्रेमचंद के बाद हिंदी उपन्यास को नया मोड़ देनेवाले उपन्यासकार के रूप में अज्ञेय ही हैं। जैनेंद्र ने नयी दिशा देने का प्रयास किया था। पहल की किन्तु किसी कारण उनके द्‌वारा निर्मित प्रवाह अवरूद्ध हुआ। 'परख', 'सुनीता', 'त्यागपत्र' और 'कल्याणी' अपने चार उपन्यासों के बाद दस वर्षों तक वे मौन ही रहे। इन उपन्यासों में नयी दिशा का संकेत मिलता है, विकास की सूचना नहीं मिलती। अज्ञेय ने प्रेमचंद की भविष्यवाणी को खरा साबित किया कि भावी उपन्यास चरित्र प्रधान होगा। वस्तुतः प्रेमचंद ने ग्राम केद्रित आदर्शोन्मुख यथार्थवादी उपन्यास की जमीन तैयार की और हिंदी उपन्यासों का 'कायाकल्प' भी किया। प्रेमचंद ने हिंदी उपन्यासों को समाज केंद्रित बनाया। ग्रामीण भारत का जीवंत दस्तावेज उनका साहित्य है। अज्ञेय ने समाज की भीड़ में खोये हुए व्यक्ति के आंतरिक स्वर को पकड़ा। वे प्रेमचंद की तरह पूरे समाज को नहीं, व्यक्ति को अपने उपन्यासों का विषय बनाते हैं। फलतः व्यक्ति प्रधान उपन्यास के लेखक के रूप में अपने को प्रतिष्ठित किया। 'शेखर : एक जीवनी' में पहली बार एक व्यक्ति पूरे उपन्यास का विषय बना। यहाँ समाज पृष्ठभूमि का काम करता है और व्यक्ति केंद्र में आ जाता है। इसलिए 'शेखर' के बारे में कहा गया 'व्यक्ति के बहाने शक्ति की गाथा।' प्रेमचंद पात्रों के बाह्य जगत का चित्रांकन कर रहे थे। अज्ञेय पहले लेखक हैं, जो पात्रों के आभ्यंतरिक यथार्थ को प्रस्तुत करते हैं। वैसे इलाचंद्र जोशी अज्ञेय के समकालीन हैं, वे पात्रों की मनोवैज्ञानिक कुण्ठा का चित्रण करते हैं, किंतु वह प्रत्ययकारी नहीं बन पाया। शेखर में भी कुण्ठा का अभाव नहीं है किन्तु अज्ञेय व्यक्ति शेखर से कलाकार शेखर के सफर का मर्मग्राही अंकन करते हैं। यह उपन्यास सृजनशील चिंतन की पृष्ठभूमि पर खड़ा है। इसलिए डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर

लिखते हैं, "सृजनशील चिंतन और उसकी मूर्त अभिव्यक्ति 'शेखर : एक जीवनी' का अतिरिक्त वैशिष्टय है। जैनेंद्र और अज्ञेय दो कलाकारों बाद इस दिशा में परवर्ती लेखकों में निर्मल वर्मा का नाम ही सामने आता है। अनुभव में चिंतन की घुलावट और उस चिंतन को कलात्मक स्तर पर ले जाने की क्षमता का यह पहला महत्त्वपूर्ण उन्मेष है।"[23]

'गोदान' के बाद 'शेखर' को एक क्लासिक रचना के रूप में मान्यता मिली, उसका कारण प्रस्तुत उपन्यास में अभिव्यक्त अज्ञेय का विद्रोह और प्रेमदर्शन रहा है। मनोविज्ञान को समेटते हुए यह जीवनविषयक मूलभूत प्रश्नों से टकराने का सामर्थ्य रखती है।

अज्ञेय का दूसरा उपन्यास 'नदी के द्वीप' भी व्यक्तिप्रधान उपन्यास ही है, पर इसमें आधुनिक संवेदना के चार प्रतिनिधि पात्र हैं। यह एक प्रेमदर्शन की सुचिंतित अभिव्यक्ति करनेवाला उपन्यास है। सर्वश्रेष्ठ मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के श्रेणी में इसे रखा जा सकता है। और सार्वकालिक रूप का अभिव्यंजन करते हैं, वह आधुनिक परिस्थितियों की देन है। समकालीन नैतिक मान्यताओं को चुनौती देनेवाला यह उपन्यास सुचिन्तित प्रेमदर्शन की सशक्त अभिव्यक्ति कराता है।

अज्ञेय का तीसरा उपन्यास 'अपने अपने अजनबी' एक विचारप्रधान उपन्यास है। 'शेखर' में 'व्यक्तित्व की खोज', 'नदी के द्वीप' में 'अस्तित्व की खोज' और 'अपने अपने अजनबी' में 'मृत्यु की खोज' बनाम 'वरण की स्वतंत्रता' का स्वर उभारा गया है। केवल विषय की दृष्टि से ही नहीं, शिल्प, प्रविधि और भाषा की दृष्टि से अज्ञेय का यह उपन्यास विशिष्ट स्थान घेरता है। अज्ञेय ने 'शेखर' में आत्मकथात्मक प्रविधि,'नदी के द्वीप' में प्रत्यग्दर्शन,पत्र लेखन तथा डायरी लेखन प्रणाली का समन्वय किया। वही 'अपने अपने अजनबी' डायरी लेखन का उत्कृष्ट पाठ है। अज्ञेय ने जहाँ शैली वैविध्य को अपनाया, वहाँ वे विषय,शिल्प और भाषा की सूक्ष्मता का परिचय दे जाते हैं। आत्मान्वेषण, जीवन के मूल्यों का चिंतन करने वाले लेखक के रूप में अज्ञेय प्रतिष्ठित हैं। किंतु अज्ञेय दार्शनिक उपन्यासकार भी हैं। क्योंकि ठीक कविता की तरह दर्शन को अनुभूति में घुलाने की राह वे निकालते हैं।

प्रेमचंदोत्तर उपन्यासों की परंपरा में अज्ञेय का सही महत्व उनके 'व्यक्तित्व' और 'कृतित्व' के सम्मिलित प्रभाव में है। वे प्रेमचंद, जैनेंद्र के बाद हिंदी साहित्य प्रवाह में खडे होते हैं और 'नयी दिशा' देने की कोशिश करते हैं। इसलिए विजयमोहन सिंह अज्ञेय के साहित्य को 'अंतरालों का साहित्य' कहते हैं और अज्ञेय के प्रभाव की चर्चा करते हुए लिखते हैं, "उनका प्रभाव सभी रूपों और सभी स्तरों पर समान रूप में पड़ा है। कथा साहित्य, कविता और मुख्यतः इन्द्रिय बोध तथा संवेदना पर। अज्ञेय और प्रेमचंद के बीच जैनेंद्र हैं। दिशा परिवर्तन की प्रक्रिया जैनेंद्र से ही प्रारम्भ हो जाती है किंतु जैनेंद्र और अज्ञेय में मौलिक अंतर भी यही है। जैनेंद्र किसी विशेष संवेदना और बोध का निर्माण करने में असमर्थ रहे। परवर्ती साहित्य को प्रेमचंद के पश्चात अज्ञेय ने सर्वाधिक प्रभावित किया Æ..."[24]

अब यह देखना युक्तिसंगत होगा कि उपन्यासकार अज्ञेय का प्रभाव अपने समकालीनों और परवर्तीयों पर कहाँ और कैसे पड़ा। अज्ञेय के समकालीन उपन्यासकारों में जैनेंद्र, भगवतीचरण वर्मा, इलाचंद्र जोशी, यशपाल, हजारीप्रसाद द्विवेदी, नागार्जुन, रेणु, अमृतलाल नागर, वृन्दावनलाल वर्मा, नरेश मेहता आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें भगवतीचरण वर्मा, यशपाल और अमृतलाल नागर विषय की दृष्टि से एक अलग तरह के उपन्यासकार हैं और अज्ञेय से उनकी तुलना का कोई सामान्य आधार नहीं है। जहाँ तक अंतर्वस्तु का सवाल है, अज्ञेय में व्याप्त बौद्धिकता, मनोवैज्ञानिकता, अस्तित्ववादी दर्शन का प्रत्यय, बौद्ध दर्शन का प्रभाव, 'वस्तु' और 'शिल्प' का प्रायोगिक संधान आदि स्तर पर अनेक उपन्यासकार प्रभावित होते नजर आते हैं। इलाचंद्र जोशी अज्ञेय के सबसे निकट माने जा सकते है। क्योंकि वे अज्ञेय की तरह मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार हैं। पर जोशी अपने उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक कुण्ठाओं को विषय बनाते हैं और सैद्धांतिक ढंग पर चित्रण करते हैं। जोशी जी शिल्प का अन्वेषण नहीं कर पाये किंतु अज्ञेय के प्रभाव को उनमें स्पष्टतया देखा जा सकता है। नरेश मेहता का 'डूबते मस्तुल' एक महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक उपन्यास है, जिसमें प्रत्यग्दर्शन प्रविधि का सार्थक उपयोग किया गया है। इसे अज्ञेय की परम्परा का ही उपन्यास माना जा सकता है। विषय और शैली की दृष्टि से अज्ञेय का यहाँ अनुकरण स्पष्टतया दीख जाता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास लिखकर नयी राह का अन्वेषण किया है। यह आत्मकथात्मक प्रविधि में लिखा गया उपन्यास है, जो 'शेखर' की परंपरा का नया प्रवर्तन करता है। प्रस्तुत उपन्यास में आत्मकथात्मक प्रविधि को एक ऊँचाई पर पहुँचाया गया है। तत्सम प्रधान और गद्यकाव्यात्मक भाषा इस उपन्यास की उपलब्धि है। अर्थात शैली, भाषा और शिल्प की दृष्टि से यह उपन्यास अज्ञेय की परंपरा का है। अमृतलाल नागर ने 'मानस का हंस' उपन्यास प्रत्यग्दर्शन प्रणाली में लिखा है, जो अज्ञेय की परंपरा को आगे बढ़ाता है। एक बात निश्चित कहीं जा सकती है कि हिंदी उपन्यासकारों ने अज्ञेय के औपन्यासिक शिल्प का सजग अनुकरण किया है।

अज्ञेय का महत्व इस बात में है कि हिंदी कथा साहित्य में 'आधुनिकता' का विकल्प अज्ञेय ने ही किया। पूर्व परंपरा में हिंदी साहित्य में हम देखते हैं कि आधुनिकता का विकास तथाकथित मनोरंजन से दूर जाने का क्रम है। अपनी घोषणा के बावजूद प्रेचमंद के अनेक उपन्यास मनोरंजन के वाहक बनते हैं। (अपवाद 'गोदान' और रंगभूमि') जैनेंद्र भी इससे मुक्त नहीं हो पाए। बंगाली कथा का आश्रय लेकर उन्हें भी यही करना पड़ा। 'शेखर' का विद्रोह इसी परम्परा के विरूद्ध पहला विद्रोह है। रूप, वस्तु विन्यास, सभी कुछ तत्कालीन परंपरा के विरूद्ध विद्रोह है। विद्रोह का यह दूसरा रूप हम आँचलिक उपन्यासों की परंपरा के प्रवर्तक रेणु में देख सकते हैं। यह कडी कहीं न कहीं अज्ञेय और रेणु को एक दूसरे से जोडती है।

समकालीन उपन्यासकारों में अज्ञेय का स्थान विशिष्ट है। सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति की दृष्टि से अज्ञेय यशपाल, नागर, रेणु और हजारीप्रसाद द्विवेदी की तुलना में पीछे पड जाते हैं किन्तु अभ्व्यिक्ति कला की दृष्टि से उनका सानी नहीं है। शिल्प और भाषा संबंधी जो कसावट उनमें हैं, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

अज्ञेय के उपन्यासों में 'वस्तु' और 'शिल्प' का प्रायोगिक संधान है। रचना प्रक्रिया की बौद्धिकता तथा संप्रेषणीयता है। बौद्ध दर्शन, ईसाई सफरिंग और अस्तित्ववादी धारणा की पुष्टि उनमें होती है। विशेषतः परवर्ती उपन्यासकारों में तमाम झांकियाँ हमें देखने को मिलती है। अज्ञेय ने जिस प्रयोगधर्मिता का अवलंब किया, वह उत्तरोत्तर विकसित होती गई। परवर्ती साहित्यकारों ने उसका अनुकरण किया।

अज्ञेय की सबसे बड़ी उपलब्धि है- शैल्पिक नव्यता और प्रायोगिक संधान। वे पहले उपन्यासकार हैं, जिन्होंने आधुनिकता की चुनौती का साक्षात्कार संवेदना के स्तर पर किया। अपने अनोखे शिल्प के कारण वे जीवन के आवरणों और परतों को अनावृत्त तथा विश्लेषण करते हैं। इसी बात का संधान करते हुए डॉ. नंदकुमार राय लिखते हैं, "उनके उपन्यासों का वस्तु तत्व जितना जटिल और गहरा है, शिल्प उतना ही नया, आधुनिक और जीवंत। उनकी यही 'जीवंतता' उनके परवर्ती उपन्यासकारों का पथप्रदर्शन करती रही है।"[25]

अर्थात् यह कहा जा सकता है कि अज्ञेय हिंदी के जैम्स जॉयस, फॉकनर, मार्शल प्रूस्त और वर्जीनिया वुल्फ नहीं है, पर वे उनके पूर्ववर्ती जरूर हैं। इस दिशा में उन्होंने जो प्रयोग किये हैं, वे अपने आप में अनुकरणीय है। तात्पर्य यही है कि उपन्यासकार अज्ञेय ने अपनी परवर्ती पीढ़ी को संवेदना, शैली और भाषा के स्तर पर अनेक स्थलों पर प्रभावित किया है, जो अज्ञेय की महत्ता को रेखांकित करता है। अनुभव की भाषा रचनेवाले लेखक के रूप में उन्हें स्थापित करती है। विशेषतः साहित्य और जीवन में सामंजस्य बिठाने का उनका प्रयास सराहनीय है। आधुनिकता के संदर्भ की पहचान अज्ञेय से शुरू होती हे, और उनके परवर्ती उपन्यासकार उसे आगे बढ़ाने का काम करते हैं। अंत में, उपन्यासकार अज्ञेय की अनेक रूपाकृतियाँ उनके परवर्ती साहित्यकारों में देखने को मिलती Æ...

आधुनिक हिंदी आलोचना में अज्ञेय को मनोवैज्ञानिक समीक्षक के रूप में स्वीकृति हैं। किंतु अज्ञेय विशुद्ध समीक्षक नहीं हैं। वे जिस प्रकार संक्रान्तिकालीन कथाकार हैं, उसी प्रकार संक्रांतिकालीन विचारक भी हैं। अपने समय के साहित्यिक, सांस्कृतिक प्रश्नों की चर्चा वे अपने चिंतन के द्वारा करते हैं। इसलिए एक आलोचक के रूप में उनका परवर्ती आलोचना पर प्रभाव बहुत उल्लेखनीय नहीं रहा है। उनके आलोचकीय चिंतन को 'विवेक की व्याख्या' जरूर कहा जा सकता है। हाँ वे कला,

साहित्य और संस्कृति संबंधी अपनी मौलिक मान्यताएँ जरूर अभिव्यक्त करते हैं। युग की सही समस्याओं को उठाते हैं। मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों के आधार पर हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियों का अध्ययन करते हैं। रचना प्रक्रिया पर दो टूक बात रखते हैं। 'अनुभूति की प्रामाणिकता' को प्रधान स्थान देते हैं। इसी वजह से अपने विचारों में वे काफी हद तक नीतिवादी और मर्यादावादी हैं। अज्ञेय में आलोचक के रूप में सत्यान्वेषण' की प्रवृत्ति हैं। जो परवर्ती आलोचकों के लिए पाथेय बन सकती है। किंतु एक आलोचक के रूप में हिंदी आलोचना पर अज्ञेय कोई स्थायी प्रभाव नहीं छोडते।

अज्ञेय ने अपनी आलोचना में जिन सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है, उन सिद्धांतों के अनुगामी बनते हम अन्य आलोचकों को नहीं देख पा रहे हैं। वस्तुतः अज्ञेय का चिंतन कई बार संस्कृति, परम्परा और जिज्ञासा पर ही समाप्त हो जाता है। उनका चिंतन कई बार 'अमूर्त निष्कर्षों' तक पहुँचता है। इसलिए डॉ. विजयमोहन सिंह के शब्दों में कहना पडता है, "विचारक के रूप में 'अज्ञेय' की उपलब्धियाँ हमें कहीं ले नहीं जाती। एक ईमानदार और परिश्रमी विचारक का दर्शन वहाँ अवश्य होता है- पर ईमानदारी एक असहाय स्थिति तक ही पहुँच पाती है। वे साहित्य के संदर्भ को व्यापक कर सके हैं जैसी कि उनकी प्रतिज्ञा है, अनेक प्रश्नों, समस्याओं को साहित्य के 'संकुचित घेरे' से निकाल भी सके हैं, अन्तर्विरोधों, असंगतियों और अन्तर्धाराओं को पहचानने की अद्‌भूत क्षमता उनमें हैं। एक अभ्यस्त और ट्रेंड विचारक की अनुशासनप्रियता भी उनके विचारों में मिलती है। किंतु अपनी निर्बंध स्वातंत्र्यप्रियता के कारण, और किसी वस्तुगत प्रतिबद्धता के अभाव में, उनकी विचारप्रणाली हमें कहीं नहीं ले जाती क्योंकि उसकी परिणति 'अमूर्त' समाधानों में होती है।"[26] †£ÖÖŸÖ †-ÖµÖ आलोचक विचारक के रूप में कोई स्थायी प्रभाव हिंदी आलोचना पर नहीं छोड़ते।

निष्कर्षत : अज्ञेय ने कवि, कथाकार के रूप में अपने परवर्तीयों को आलोकित, उद्‌वेलित किया है। वे साहित्य की इन दो विधाओं में मानक बने। अपने साहित्य विषयक अवदान से कई पीढ़ियों पर संस्कार किए। कई साहित्यिक पीढ़ियाँ उन्हें अपना अग्रज मानने में सोत्साह दिखाती रही है। विशेषतः उनके कवित्व, उपन्यासकार और कहानीकार रूप में साहित्य में श्रीवृद्धि ही नहीं की बल्कि साहित्य में नये प्रतिमान स्थापित किए। पर सच्चाई यह है कि एक आलोचक के रूप में स्वतंत्र स्वीकृति नहीं मिल पायी या स्थायी प्रभाव छोड़ने में उनकी आलोचना सफल नहीं मानी जा सकती। अर्थात आज के अनेक साहित्यकारों के साहित्य-व्यक्तित्व पर अज्ञेय का प्रभाव अनेक रूपों, अनेक स्तरों पर देखा जा सकता है, इसमें कोई दो राय नहीं है।

6.2 बा. सी. मर्ढेकर के साहित्य-व्यक्तित्व का बाद के मराठी साहित्य पर प्रभाव

मराठी साहित्य परंपरा में बा. सी. मर्ढेकर का स्थान विशिष्ट है। सन् 1939 से 1955 के बीच जो कविता लिखी गई उसे नवकविता या 'मर्ढेकरी कविता' कविता कहा गया। मर्ढेकर बहुआयामी

व्यक्तित्व के धनी थे। कविता, उपन्यास, समीक्षा, संगीतिका (एक नाट्य प्रकार), पत्रकारिता, अनुवाद के क्षेत्रों में उन्होंने अपनी लेखनी से नवसर्जना की। साहित्य के क्षेत्र में नये मानदंड स्थापित किए। वर्तमान समय की आँखों में आँखें डालकर बात करनेवाला यह लेखक है। औद्योगिकरण, दो विश्वयुद्ध, बदलते सांस्कृतिक मूल्य, मनुष्य जीवन में आयी अर्थशून्यता, रिक्तता, मोहभंग, निराशा, महानगरीय जीवन की दुर्दशा, कामगार जीवन, स्त्री जीवन का असहाय रूप, मूल्यों का विघटन आदि परिस्थिति के बीच मर्ढेकर का लेखन फलता-फूलता है। अपने आसपास का परिवेश, निम्न वर्ग का पीड़ामय जीवन तथा मशीनी सभ्यता के आगमन से मनुष्य का जीवन क्षुद्र बनते जाना आदि को लेकर मर्ढेकर आते हैं। विशेषतः उनका समग्र लेखन सामाजिक व्यवस्था की परंपरा का विरोध करता है। यह पूर्व परंपरा को नकारकार अपना विशिष्ट स्थान घेरता हुआ लेखन है। इसमें नव्यता है, आधुनिकता है, आधुनिकवाद है। इसी कारण मराठी के समीक्षक डॉ. सुधीर रसाळ लिखते हैं, "मर्ढेकर को अपने परिवेश की गतिविधियों में, अपने आसपास घटित होनेवाले जीवन में आस्था थी। इस कारण मर्ढेकर की कविताओं में आसपास के जीवन का चित्रण हुआ है।"[27]

प्रस्तुत उपबंध में मर्ढेकर के साहित्य-व्यक्तित्व के बाद के साहित्य पर किस रूप में, किन स्तरों पर प्रभाव पड़ा है, इस पर विचार करना आवश्यक है। विशेषतः परवर्ती कविता, उपन्यास और समीक्षा साहित्य पर प्रभाव देखना नितांत जरूरी है। यह प्रभाव अंतर्वस्तु, भाषा और शैली के स्तर पर कैसे पड़ा है, यह देखना नितांत जरूरी है।

मर्ढेकर की कविता पर सर्वप्रथम हम विचार करेंगे। मर्ढेकर की कविता 'नवकविता' है। यह कविता विषय, शैली, भाषा और संवेदना सूत्रों की दृष्टि से नवीनता लिए हुए हैं। मनुष्य के जीवन में आयी 'अर्थशून्यता' का अनुभव लेकर यह कविता आती है। अर्थशून्यता का यह अनुभव 'विरोध तत्व' पर आधारित है। मर्ढेकर अपने समय की उपज हैं। इसलिए यह कविता अपने समय से संवाद करती हैं। इसलिए उसमें 'अर्थसघनता' को देखा जा सकता हैं। भिन्न-भिन्न अनुभवों से यह कविता समृद्ध हुई है। इस अनुभव में सादगी है, विश्रृंखलित चेतना है। इस कविता में दुःख की अभिव्यक्ति हुई है। यह कवि दुःख मुक्ति का सपना देखती हैं। 'अभंग' और 'ओवी' (छंद प्रचार) छंद में उनकी रचनाएँ संतकवियों की याद दिलाती है। नये प्रतीक, नये बिंब, नयी शब्द योजना (संयुक्त शब्द, संकर शब्द) के माध्यम से अभिव्यक्ति का नया संसार रचती है। यह कविता जीवन वास्तव को चिह्नित करती है। काव्य के विषय, काव्य की संरचना, काव्य के प्रतीकों, काव्य की भाषा को वे पूरी तरह बदल देते हैं। इसलिए मराठी समीक्षक गंगाधर गाडगीळ उन्हें 'दूसरा केशवसुत' कहते हैं। अर्थात् मर्ढेकर ने अंग्रेजी कविता को पचाया, मात्र उसका अनुकरण नहीं किया। मराठी काव्य परंपरा, मराठी भाषा, मराठी मन के भीतर उतरकर अपनी स्वतंत्र मुद्रा अंकित की। इसलिए डॉ. सुधीर रसाळ ने जो बात मर्ढेकर की

कविता के बारे में उठायी है, उससे सहमत हुआ जा सकता है। वे लिखते हैं, "मर्ढेकर की कविता इतनी नयी थी कि उन्नीसवीं एवं बीसवीं शती की कोई भी कविता से उसका संबंध जोड़ना संभव नहीं Æ..."[28] बा. सी. मर्ढेकर मराठी के यथार्थवादी कवि हैं। एक क्लासिक कविता के सर्जन में उनकी प्रतिभा ने निर्णायक भूमिका अदा की है। उनकी कविता का प्रभाव समकालीन, परवर्ती कवियों पर स्पष्ट देखा जा सकता है अर्थात् तीनों स्तरों पर अंतर्वस्तु, भाषा और शैली के संदर्भ में। मर्ढेकर ने अपने समकालीनों को प्रभावित किया। समकालीनों ने परवर्तीयों को प्रभावित किया। मर्ढेकर अनेक कवियों की प्रेरणा बनें। उनके प्रभाव की श्रृंखला निरंतर चलती रही हैं।

मर्ढेकर की कविता ने मराठी कविता के क्षेत्र में मुक्त परिवेश की निर्मिति की। जिसकी वजह से मराठी कविता को नयी राह दिखायी दी। मर्ढेकर के प्रभाव को लेकर मराठी में मराठी कवियों की तीन श्रेणियाँ पड़ती हैं। विंदा करंदीकर, अनिल जैसे कवि जो परवर्ती और समकालीन रहे हैं। समकालीनों में य. द. भावे, वसंत हजरनीस, पु. शि. रेगे का समावेश होता है। परवर्तीयों में इंदिरा संत पर काफी गहरा प्रभाव रहा है। तो सन् 1960 के बाद जो पीढ़ी कविता के क्षेत्र में आई, उनमें दिलीप पुरूषोत्तम चित्रे, आरती प्रभु, ना. धों. महानोर, नारायण सुर्वे, वसंत आबाजी डहाके तथा समष्टि का कवि नामदेव ढसाळ आदियों पर स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। मर्ढेकर ने कविता के परिवेश, पृष्ठभूमि और प्रत्यय को पूरी तरह बदला। अर्थात् पूर्व परंपरा की कविता से परवर्ती कविता हमेशा समृद्ध होती आयी है। मर्ढेकर ने अपनी पूर्व परंपरा में मध्यकालीन संत कवि और रामदास (दासबोध) को अपना पूर्ववर्ती मानते हुए उनका कहीं-कहीं अनुकरण किया है।

मर्ढेकर की कविता से मराठी कविता में अनुभूति को नये प्रतिमान मिल गए। यह कवि मशीनी युग के अनुभवों को लेकर आती हैं। स्वाभाविक था कि मर्ढेकर के समकालीनों ने मशीनी युग से खुद को जोड़ने का प्रयास किया। यह कविता 'समकालीनता' से संवाद करने लगी। स्वप्न की अवस्था खत्म कर यह कविता यथार्थ को दामन पकड़ रही थी। इस दिशा में मर्ढेकर ने बड़ी महत्वपूर्ण पहल की है। समकालीन जीवन की वास्तविकताओं को यह कविता केंद्र में रखकर लिखी गई। परिणामत: मर्ढेकर की कविताओं में भी समकालीनता के विविध रूप देखने को मिलते हैं। समकालीन मुड्स, प्रश्न, संघर्ष और उसका समग्र विश्लेषण यह कविता करती गई। यह कविता प्रतीकोन्मुखी भाषा को अपनाने लगी। मर्ढेकर की इस प्रकार की काव्य-विषयक प्रेरणा ने मराठी काव्य-परंपरा को आमूलचूल बदला। कविता के विषय और आशय में क्रांतिकारी परिवर्तन आया। इसलिए यह कहा जा सकता है कि मर्ढेकर की इसी प्रवृत्ति को केंद्र में रखकर मराठी कविता धीरे-धीरे विकसित होती गई।

मर्ढेकर की वजह से परवर्ती कविता के समान ही, कविता की समीक्षा में भी महत्त्वपूर्ण

परिवर्तन आया। मात्र मर्ढेकर की कविता के बारे में दुर्बोधता, अश्लिलता को लेकर प्रश्न खडे नहीं किये गए बल्कि समकालीन कविता उपरोक्त प्रश्नों के घेरे में आ खड़ी हुई। उस कविता में अनुभवों के तीन स्तर मिलते हैं- वैयक्तिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक। इसी समग्र चेतना को लेकर विंदा करंदीकर की कविता का आगमन होता है। यह कविता प्रतीक व्यवस्था, अलंकार, शैली, छंद और विषय वैविध्य के संदर्भ में नये संस्कार करती हैं। मर्ढेकर की तरह ही विंदा करंदीकर (ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त कवि) प्रयोगवादी कवि हैं। मशीनी सभ्यता में जी रहे मनुष्य का द्वंद्वमय जीवन, टूटते जीवनमूल्य, घटती मानवीयता, स्त्री की दुर्दशा का अर्थवाही चित्रण करंदीकर करते हैं। अर्थात करंदीकर में सामाजिक विषमता के प्रति आक्रोश भाव भी हैं। जो उन्हें साम्यवादी चिंतन का अनुगामी बनाता है। किंतु मर्ढेकर की तरह करंदीकर कविता के आशय, शैली और रूप के बारें में नये प्रयोग करते हैं। मर्ढेकर की परंपरा का विस्तार और उस परंपरा को स्थैर्य देने का काम करंदीकर करते हैं।

विंदा करंदीकर और दिलीप चित्रे का मर्ढेकर के साथ भावनात्मक संबंध रहा है। मर्ढेकर की मृत्यु पर दोनों ने कविताएँ लिखी है, जिसमें दोनों ने मर्ढेकर का प्रशंसागान किया है। करंदीकर ने 'ब्रह्मसत्ता' नामक कविता लिखी है-

"व्यथेची खपली उचलून ज्यांनी जीवन पाहिले आहे
Ÿµöö“µöö >öôµöö“öß †ö¸Ÿöß
†ö•ö Ÿö»öö Ãöö´öö¸ß µö‡»ö." (¬ö¯ö¤, 1980, ¯öÂš 80)

दिलीप चित्रे ने 'वीस मार्च एकोणीसशे छपन्न' (कविता, पृष्ठ 89) नामक कविता लिखकर मर्ढेकर के बारे में कृतज्ञता भाव व्यक्त किया है। करंदीकर ने 'माझ्या कवितेची वाटचाल' (मेरी कविता यात्रा) लेख में मर्ढेकर को अपनी काव्य यात्रा का प्रेरणाबिंदू मानते हुए लिखा, "संमिश्र आणि संयम चिंतनातून स्फुरणारी मर्ढेकरांची कविता जी नवी रसिकता घडवित होती ती रसिकता काही प्रमाणात माझ्या काव्याच्या आस्वादाला ही उपकारक ठरत गेली."[29]

अर्थात् करंदीकर ने यह सहर्ष स्वीकार किया है कि मर्ढेकर की चिंतनशील कविता का प्रभाव उन पर रहा है। साथ ही कविता में 'सहृदय' की अवधारणा का स्रोत मर्ढेकर को ही मानते हैं। आस्वादमूलक कविता लिखने की प्रेरणा मुझे उन्हीं से मिली, ऐसा करंदीकर का कहना है। मराठी कवयित्री इंदिरा संत ने भी मर्ढेकर को अपनी कविता का स्रोत मानते हुए लिखा, "मर्ढेकरांच्या कविता मला पूर्वीच आवडल्या होत्या. त्यांच्या प्रतिमांच्या व अभिव्यक्तीच्या नावीन्याने मला जाग आली होती. पण आता त्यांच्या कविता समजल्या. त्यांचे श्रेष्ठत्व कळून आले. कांही विशिष्ट पुस्तकांचा समज यायला मनही तसे समर्थ व्हावे लागते, त्यांच्या कवितांपूढे आता इतर सर्व फिक्या वाटत होत्या

माझ्या ही. हे माझे मत अजूनही बदलत नाही."[30] कवयित्री इंदिरा संत की कविता पढ़ते समय मर्ढेकर के प्रभाव को स्पष्ट देखा जा सकता है। करंदीकर ने अपनी कविता यात्रा का विश्लेषण करते हुए स्पष्ट लिखा कि, काव्य लेखन के आरंभिक दिनों में मर्ढेकर की प्रयोगशीलता ने मेरी कविता को दिशा दी। पाश्चात्य काव्य परंपरा का प्रभाव, चिंतनशीलता, समाज का अंतर्विरोधमूलक चेहरा, भाषा के बारे में रूढ़ संकेतों को नकार, ये कुछ तत्व हैं, जो मर्ढेकर और करंदीकर को एक समान भूमि पर खड़ा कर देते हैं। मर्ढेकर की 'शब्द टराटर फाडुनि टाकी' तथा करंदीकर की 'शब्दब्रह्म' (जातक, 1983, ¯ÖÂŠ 3) कविता की तुलना करना अधिक उपयुक्त होगा। इन दो कविताओं में अभिव्यक्त भाषा विषयक भूमिका में अद्‌भूत समानता है। इसी प्रकार मर्ढेकर के 'नाठाळ अभंग' तथा 'करंदीकर के 'आततायी अभंग' में तुलना हो सकती है। इन दोनों कविताओं के केंद्र में दबाया गया मनुष्य है। आशय की दृष्टि से दोनों में अद्‌भूत समानता हैं। विशेषतः मर्ढेकर ने अपनी कविताओं में 'मातृगौरव' किया है। वे कविताएँ हैं- 'पोरसवदा होतीस', 'बाळगुनी हा पोटी इवला', करंदीकर ने भी मातृगौरव की दो महत्वपूर्ण कविताएँ लिखी हैं- 'बाळ होऊनी कुशीत यावे', 'फितुर •ÖÖÆ»ÖÖß ŸÖ•Ö»ÖÖ †²Ö¸ü'...

करंदीकर ने मर्ढेकर की कविता में अंतर्भूत 'विज्ञानवाद' को जैसे के तैसे स्वीकारा है। मर्ढेकर ने लिखा, 'आहे, बुद्धीशी इमान। जाणे विज्ञानाचि ज्ञान।' करंदीकर ने भी 'मृदगंध' कविता संग्रह में 'आइन्स्टाइन' पर कविता लिखकर विज्ञानवाद का दामन पकड़ा है। विज्ञाननिष्ठा, बुद्धिवादी भूमिका लेकर समाज में जी रहे अपूर्ण, दबे हुए मनुष्य की व्यथा का वर्णन करंदीकर करते हैं। 'मृदगंध' कविता संग्रह में उनकी कविता है- 'नाही रे झेपत' जो इस बारे में द्रष्टव्य है-

"नाही रे झेपत
कारण माझ्या
×¯Ö“ÖŒµÖÖ ÆÖ›ÖôŸÖ
असाध्य रक्तक्षय."

इन पंक्तियों को पढ़ते समय मर्ढेकर की 'येशिल तेंव्हा जपून ये तू', 'गोंधळलेल्या अन् चिंचोळया', 'ठायी ठायी रूप तुझे' आदि कविताओं की याद आती है। तात्पर्य यही है कि, आशय और शैली की दृष्टि से करंदीकर मर्ढेकर का अनुकरण करते दिखाई देते हैं।

करंदीकर ने मर्ढेकर पु. शि. रेगे की तरह अपनी कविता में आधुनिकवाद को अविष्कृत किया है। बंधी बंधायी चौखट को नकारकर वे काव्य के बारे में मुक्त दृष्टिकोण स्वीकार करते हैं। मार्क्सवादी चिंतन से करंदीकर की कविता जरूर प्रेरित है किंतु यह कविता धीरे-धीरे सामान्य मराठी पाठक तथा नवकविता में जो दूरी निर्माण हुई है उसे खत्म करने का काम करती है। अर्थात मंचीय

कविता के प्रदेश में भी करंदीकर हाथ आजमाते दिखाई देते हैं। वैश्विक जीवनदृष्टि का परिचय करंदीकर की कविता देती है।

मर्ढेकर के समकालीन कवि हैं पु. शि. रेगे। 'अक्षरवेल' और 'गंधर्व' कविता संग्रह के माध्यम से वे निसर्ग कविता को लेकर आते हैं, ठीक मर्ढेकर की तरह जिनकी कविता में प्रकृति के अनेक रूप देखने को मिलते हैं। 'देवापुढचा दिवा' संग्रह में मर्ढेकर की परंपरा का निर्वाह रेगे करते हैं। वैयक्तिक मोहभंग के साथ अर्थशून्यता का अहसास उनकी कविता में अभिव्यक्त हुआ है। मर्ढेकर और शरदचंद्र मुक्तिबोध की तरह उनकी कविता में सामाजिक दुरावस्था के प्रति अंतर्मुख होने का भाव व्यक्त हुआ है। मर्ढेकर की तरह सामाजिक यथार्थ के प्रति व्याकुलता का भाव जरूर नहीं है अथवा शरदचंद्र मुक्तिबोध की तरह मार्क्सवादी चेतना भी नहीं किंतु रेगे की कविता चेतनाप्रवाह शैली में सामाजिक आशय तक पहुँचती है। विशेषतः काम भाव-भावनाओं के उलझावों को अनेक रूपों में पकडने का प्रयास करती हैं। रेगे की कविता विज्ञान से प्रभावित हैं। यह कविता बुद्धिवादी चेतना को व्यक्त करती है। बुद्धिवाद विज्ञान युग की ही देन हैं। अतिबौद्धिकवाद, संदर्भ बहुलता और विवेचकता गुणों को लेकर यह कविता आती है, जो मर्ढेकर की कविता के गुण हैं। यह कविता 'लघुमानव' को प्रतिष्ठित करती है। लैंगिक अनुभूति से मशीनी अनुभूति के सरोकार को लेकर यह कविता उदित होती है। रेगे की कविता मुक्तछंद का अवलंब करती हैं। किन्तु मर्ढेकर ने 'पादाकुलक' छंद में रचनाएँ की हैं।

मुक्तिबोध, पु. शि. रेगे के बाद समकालीन नई कविता की पहली पीढ़ी में य. द. भावे को महत्वपूर्ण कवि के रूप में स्थान हैं। 'आद्रा', 'हळवे भिंग' इन काव्य कृतियों में नवकाव्य का बोध होता है। आशय तथा अभिव्यक्ति को मर्ढेकर की शैली को आधार बनाकर भावे अपनी सर्जना करते हैं। इनकी कविता के बारे में मराठी समीक्षक डॉ. न. पु. काळे लिखते हैं, "सामाजिक जीवन की विवशता, विषमता, मूल्यों का ·हास आदि का चित्रण भावे ने किया है। 'विवस्त्र पाँचाली' उनकी लोकप्रिय कविता रही है।' आर्थिक विषमता पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है।"[31] पु. शि. रेगे ने मुक्तछंद के साथ मर्ढेकर का अनुकरण शैली की दृष्टि से करते हुए 'गंधरेखा' काव्यसंग्रह में 'पादाकुलक ' छंद का अवलंब किया है। 'गंधरेखा' में उनके द्वारा लिखी गयी 'पेपर' कविता द्रष्टव्य है। आधुनिक शहरी जीवन पर इसमें व्यंग्य किया गया है। 'मानवा ' कविता की पंक्तियाँ 'चेतवितो जो विश्वाचि सारे' कविता की याद दिलाती है। द्रष्टव्य है 'मानवा' कविता की पंक्तियाँ

"सुख दुःखाची गुंफुनी नाती
काळाच्याही सीमेवरती
x¤¾ÖÃÖÆüß ¸Ö¡Ößü Ÿµööü““Ö ¯ÖÆüÖŸÖö

त्याच नसांतून वारा वाहतो
†Ö•Ö¾Ö¸üß Æü ´ÖÖ–ÖÖ “ÖÖÔüÖ
मलाहि माझा हेतु न कळला."

विं. दा. करंदीकर की तरह इंदिरा संत ने अपने आपको मर्ढेकर की काव्य परंपरा से अपना नाता जोडा है। 'मेंदी' (मेहंदी) काव्य संग्रह से यह रिश्ता जुड़ा हुआ है। 'गर्भरेशीम', 'चित्कळा' संग्रह की अनेक कविताओं को पढ़ते समय मर्ढेकर की याद आती है। मर्ढेकर की कविता के केंद्र में 'दु:ख बोध' है। ठीक उसी तरह इंदिरा संत की कविता 'दु:ख' बोध का साक्षात्कार कराती है। 'एक हवे मज' (´Ö¤üß, 1967 , ¯ÖÅŠ 56) कविता में इंदिरा संत कहती है,

"एक हवे मज, एक हवे मज,
दु:ख हवे मज असेच कांही,
जखम जयाची सदाच ताजी
तीव्र वेदना घुमवित राही."[32]

इस कविता को पढ़ते समय मर्ढेकर की 'ह्या दु:खाची कढईची गा' कविता की संवेदना में साम्य दिखाई देता है। दु:ख से दूर न भागते हुए दु:ख को भोगने की अभिलाषा यहाँ व्यक्त हुई है। हालांकि इंदिरा संत की कविता में अभिव्यक्त दु:ख वैयक्तिक है। मर्ढेकर की कविता में दु:ख को व्यापक संदर्भ है। इस दु:ख में समाज का दु:ख समाया हुआ है। अर्थात् इंदिराजी सामाजिक विषमता के चित्र भी उपस्थित करती है। 'मेंदी' काव्य संग्रह में 'वाटचाल' नामक इंदिराजी की कविता है जो मर्ढेकर की 'न्हालेल्या जणु', 'आला आषाढ श्रावण' कविताओं की याद दिलाती Æî… द्रष्टव्य है काव्य ¯ÖÓŒŸÖµÖÖ-

"सुखवस्तुंचे महाल इकडे,
इकडे कोंगाट्यांची पाले,
इकडे हिरवा माळ तापतो,
इकडे पिवळी लक्ष्मी खेळे."

इंदिरा संत तथा मर्ढेकर की कविता का प्रकृति धर्म अलग है। किंतु दोनों में समान सूत्र यह है कि प्रकृति को लेकर दोनों आस्थावान Æï और बताते हैं कि प्रकृति ही मनुष्य जीवन को चेतना देनेवाली शक्ति है। इंदिरा जी की कविता पर मर्ढेकर की प्रतीक योजना अभिव्यक्ति शैली और भाषागत संस्कार हुए हैं। इसलिए इंदिरा संत ने 'एका पीढीचे आत्मकथन' (एक पीढी का आत्मवृत्त) में लिखा, 'मर्ढेकरांच्या कवितेतील प्रतिमांच्या व अभिव्यक्तीच्या नावीन्याने मनाला जाग आली होती.' करंदीकर और इंदिरा संत एक पीढ़ी के प्रतिनिधि कवि हैं, इसलिए उन दोनों का मर्ढेकर के साथ कैसे

अभिन्न संबंध रहा है, इसकी हमने उपर चर्चा की है।

1960 के आस-पास मराठी नवकविता का दूसरा कालखंड आरंभ हो जाता है। दिलीप पुरूषोत्तम चित्रे तथा आरती प्रभु इस कालखंड के प्रतिनिधि कवि Æ... चित्रे की कविता का मर्ढेकर के साथ अन्योन्य संबंध Æ। इन दोनों में सम भाव इसी में है कि चित्रे मर्ढेकर की तरह प्रस्थापित काव्य परंपरा के विरोध में विद्रोह करते हैं। चित्र की कविता समकालीन जीवन का विविध अंगों से चित्रण करती Æ। उनका पहला कविता संग्रह 'कविता' (1960) प्रकाशित हुआ। जिस पर मर्ढेकर की कविता की छाप स्पष्ट देखी जा सकती है। पर चित्रे की विशेषता यह है कि उन्होंने मर्ढेकर की कविता के शक्तिस्थानों और सीमाओं को समझा। इन दोनों की कविता में सबसे बड़ा साम्य है, पाश्चात्य काव्य परंपरा का प्रभाव। चित्रे ने 'आधुनिक कवितेला साद छेद' (सत्यकथा, जानेवारी से जुलाई 1964) नामक लेख में मर्ढेकर का बार-बार उल्लेख किया है। अर्थात् मर्ढेकर को वे विशिष्ट परंपरा में 'मानने' का प्रयास करते Æ। मर्ढेकर की कविता का अंतर्वस्तु, शैली और भाषा की दृष्टि से उन्होंने अध्ययन किया था। इसलिए यह कवि अनुकरण नहीं करता किंतु उनके प्रभाव से अपने आपको बचा नहीं पाया है। 'कविता संग्रह में जो 'गजलें' और 'सुनीत' आये हैं, उन पर मर्ढेकर की शैली का खूब प्रभाव है। 'शिशिरागम' की एक कविता 'माझ्या कशा पापण्या न कळे क्षणी ओलावल्या' - कविता की याद चित्रे की कविताओं को पढ़ते समय आती है। 'गे' संबोधन का बार-बार प्रयोग, संवेदन चेतना का अनुनय आदि संदर्भ हमें चित्रे में मिलते हैं। मर्ढेकर ने चित्रे की संवेदन शक्ति को जागृत किया है। मर्ढेकर की कविता में आया हुआ अज्ञान, विश्व के बारे में कुतुहल, अर्थशून्यता आदि आशय सूत्र हमें चित्रे की कविता में भी लक्षित होते हैं। अंतर् बाह्य विश्व में आया हुआ परिवर्तन दोनों की कविता में देखा जा सकता है। जीवन में आयी अर्थशून्यता, असंबंधता दोनों की कविता में देखी जा सकती है। विशेषतः मर्ढेकर की भाषा का चित्रे पर बहुत प्रभाव रहा है। संयुक्त शब्द योजना (वेदना-निर्झर, दुःख-केंद्र, अशांती-कळ) आदि शब्दों में देखा जा सकता है। सामासिक शब्द योजना, संकर शब्द और अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग आदि में प्रभाव के अंग को देखा जा सकता है। मर्ढेकर के आशय और भाषा के सौंदर्य को चित्र की इस कविता में द्रष्टव्य हैं-

"ओढाच नच जार वाळला
तरी झेप ही, त्या गुंगीस्तव!
कुणास ठाऊक, सूर्य उद्यांचा
¸Öi¡ÖÖß“µÖÖ ¯Ö¤ü¸ÖÖ×ŸÖ»Ö ×¾ÖÃÖŸÖÖ¾Ö."[33]

मर्ढेकर के काव्य में अभिव्यक्त संवेदन, अभिव्यंजना की पद्धतियों को करंदीकर के मार्फत चित्रे तक पहुँचने का यह सफर है। बीच में अपने आपको और स्वस्थ और कलात्मक बनाते हुए

कविता का यह प्रवाह विकसित होता गया।

चित्रे की कविता भी आधुनिकता का दामन पकडती है, ठीक मर्ढेकर की तरह। आशय, विषय, शैली और भाषा की दृष्टि से यह कविता जीवन-यथार्थ का बोध कराती है। विद्रोह और संघर्ष को प्रत्यय बनाकर यह कविता समय के उलझनों को रेखांकित करती है। इसी कारण दिलीप चित्रे को मर्ढेकरी काव्य परंपरा का कवि माना जा सकता Æ…

आरती प्रभु चित्रे के समकालीन हैं। उनका पहला कविता संग्रह 'जोगवा' के पश्चात उन्होंने जो कविता लिखी, उस पर मर्ढेकर की काव्य दृष्टि, काव्य चेतना का स्पष्ट प्रभाव है। आरती प्रभु की कविता के केंद्र में भी 'दु:ख' ही है। मर्ढेकर से उनका सहसंबंध 'दिवेलागण' (1962) कविता संग्रह से बनता है। इसमें वैयक्तिक और सामाजिक दु:ख अनुभूति का चित्रण है। इन कविताओं में मर्ढेकर की आशयात्मक अभिव्यक्ति, शैलीगत दृष्टि और भाषागत संस्कार की छाया देखी जा सकती Æ… ‡ÃÖ काव्यसंग्रह की अधिकांश कविताएँ 'अभंग' छंद में लिखी गई है। 'अभंग' छंद की प्रेरणा आरती प्रभु ने मर्ढेकर से ली। वस्तुतः 'अभंग' छंद का अनुकरण गोविंदाग्रज, माधव ज्युलियन, मधुकर केचे ने भी किया है। मर्ढेकर ने 'नाठाळ अभंग' लिखकर इन्हें प्रेरणा दी। 'जगायची पण सक्ती आहे' का भाव 'दिवेलागण' की उनके कविताओं में स्पष्ट देखने को मिलता हैं. जैसे -

'नको पाहू दुर भ्रमातंला प्रांत
तुझ्या पायांसाठी कचेरीची वाट." (वाट पृष्ठ 19)

विशेषत :लीक में बंर्धकर जीने में, बंदिस्त जीवन में ही मृत्यु छिपी हुई है, ऐसा आरती प्रभु को इन पंक्तियों के माध्यम से कहना है,

"आमच्या गोवऱ्या। आम्हींच थापाव्या
आम्हीच राखाव्या मरणापर्यंत." (मरणापर्यंत, पृ. 100)

यह जीवन मृत्यु पर किया गया भाष्य हमें मर्ढेकर की याद दिलाता है। एक और महत्वपूर्ण कविता आरती प्रभु की है जो हमें मर्ढेकर की परंपरा की याद दिलाती है। मर्ढेकर ने कविता लिखी है, 'वावडी वाह्यात माझी' शीर्षक से। तो ठीक उसी आशय को लेकर प्रभु ने 'एक शून्य बाजीराव' कविता लिखी है, जो शैली और संवेदन का साम्य दर्शाती है। मर्ढेकर और आरती प्रभु के अनुभव संवेदन में सबसे बड़ा साम्य है, दोनों की मानसिक बुनावट में। जीवन की गहराई में जाकर एक जिद तथा उत्कटता से अपने जीवनानुभवों का अंकन दोनों करते है। जिसने दोनों की कविता को समृद्ध, संपन्न किया और स्वतंत्र अस्तित्व भी मिला।

मर्ढेकर की कविता के बारे में यह कहना सरलीकरण करना होगा कि यह कवित्व युद्ध के परिणामों की कविता है अथवा सामाजिक, आर्थिक विषमता का चित्रण करनेवाली कविता है।

वस्तुतः उनकी कविता भौतिक जगत् और उसमें बेचैनी में जीनेवाले मनुष्य की कविता है। उसके समग्र दुःखों की अभिव्यक्ति करनेवाली यह कविता है। आत्मिक पीड़ा का चित्रण करनेवाली यह कविता है। भय, विफलता, निराशा, परात्मभाव, अकेलापन, युद्धोतर स्थिति का बेबाक चित्रण करनेवाली यह कविता है, जिसका परवर्ती परंपरा पर स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।

चित्रे, आरती प्रभु की पीढ़ी के पश्चात मराठी काव्य परंपरा में ना. धों. महानोर और नारायण सुर्वे की पीढी का उदय होता है। महानोर का अनुभवविश्व अलग है। मराठी में भा. रा. तांबे, ना. घ. देशपांडे और बा. भ. बोरकर ने भाव कविता लिखी, महानोर वस्तुतः इनके नजदिक पड़ते हैं। किंतु महानोर अपने आपको मर्ढेकर के प्रभाव से बचा नहीं सके हैं। मर्ढेकर और महानोर में बालकवि (अनिल बापुजी ठोंबरे) के बारे में श्रद्धाभाव समान रूप में लक्षित होता है। यह नाता धीरे-धीरे विकसित होता गया। परिणामतः मर्ढेकर शहर की कविता लिखते हैं तो महानोर गांव की, खेत-खलिहानों में जी रहे ग्रामीण मनुष्य की।

मर्ढेकर और महानोर की कविता में एक और विलक्षण साम्य दिखाई देता है। जिस प्रकार मर्ढेकर नयी प्रतीक व्यवस्था, बिंब योजना लेकर आते हैं ठीक उसी तरह महानोर भी ग्रामीण समाज के जीने को यथार्थवादी दृष्टि से वर्णित करते हैं। महानोर अपनी कविता में प्रतीकों की नयी लड़ी पिरोते हैं। अपने अनुभव के नये जगत् का साक्षात्कार कराते हैं। इसलिए यह कहना अधिक तर्कसंगत होगा कि मर्ढेकर की काव्य दृष्टि का निरंतर प्रभाव महानोर की कविता पर अनेक रूपों में, अनेक स्तरों पर पड़ा हुआ है, जिसे नकारना संभव नहीं है।

छठे दशक पर तीन मराठी कवियों का दबदबा रहा है। जिसमें ना. धों. महानोर, नारायण सुर्वे तथा ग्रेस (माणिक गोडघाटे) का समावेश होता है। इन तीनों ने नयी पीढी के कवियों को अनेक अंगों से संस्कारित किया। वसंत आबाजी डहाके तथा गुरूनाथ धुरी भी इसी कालखंड के कवि हैं। इनकी कविता पर उपर्युक्त तीनों की वृत्ति- प्रवृत्ति का प्रभाव देखा जा सकता है। वसंत डहाके की कविता अपने आसपास के परिवेश को लेकर बात करती है। परिवेश के बारे में कवि की प्रतिक्रिया सजग रूप में व्यक्त हुई है। डहाके तथा मर्ढेकर में यह समान सूत्र मिलता है। इसलिए विजया राजाध्यक्ष लिखती हैं कि, "मर्ढेकरांच्या परंपरेशी डहाक्यांइतके निकट नाते असणारा कवी आमच्या पीढीत तरी दुसरा कुणी नाही."[34] वसंत डहाके का कविता संग्रह 'योगभ्रष्ट' 1972 में प्रकाशित हुआ। इस कविता को छठे-सातवें दशक की सामाजिक, राजनैतिक तथा साहित्यिक परिस्थिति का संदर्भ जुड़ा हुआ है। विशेषतः कुछ वैयक्तिक संदर्भ भी संलग्न हैं। मर्ढेकर की कविता भी वैयक्तिक संदर्भों से सम्पृक्त हैं। मर्ढेकर की कविता में चौथे-पांचवे दशक के भारतीय वैश्विक संदर्भ जुडे हुए हैं। उनकी कविता में आया हुआ 'परात्मभाव' (दूरस्थ शहरात, कविता, पृ.2), अर्थशून्यता का अहसास, ईश्वर के बारे

में दृष्टिकोण (कीटक, पृ.92) आदि तत्व मर्ढेकर की याद दिलाते हैं। मर्ढेकर की कविता का जन्म भी दु:ख के अनुभव से हुआ है। इस बारे में 'योगभ्रष्ट' कविता द्रष्टव्य है- 'एखाद्या माणसाच्या छातीत जखम झालेली असावी, त्या दु:खातून सारख्या वेदनेच्या कळा निघाव्यात, त्या दुखाच्या व्यथेच्या गुंगीत डोळे मिटावे, स्वप्ने पडावी, कण्हावे, मध्येच सुस्कारे उसासे दबलेल्या ओठांतून बाहेर पडावे, जे व्यक्तच करता येत नाही असे दु:ख एखाद्या शब्दातून साकार होत पहावे, तशा ह्या कविता."[35] तात्पर्य मेरी कविता वेदना, दु:ख से उपजी है। यही भाव मर्ढेकर की कविता में भी लक्षित होता है। सन् 60 के पश्चात डहाके-धुरी की कविता ने मराठी साहित्य को समृद्ध किया। किंतु इसी दौरान कुछ नये साहित्य धाराओं का भी उद्गम हुआ। इस नयी धारा के पीछे मर्ढेकर का धुंधला चेहरा दिखाई देता है। कविता के बारे में प्रश्न, असुरक्षा की भावना, भयग्रस्तता, सामाजिक प्रवृत्तियों पर की जानेवाली टीका आदि चीजें मर्ढेकर की कविता से उद्भूत हुई है। इसी समय मंगेश पाडगांवकर जैसे कवि का उदय होता है। उन्होंने 'विदूषक', 'सलाम' आदि काव्य संकलनों के माध्यम से अपनी उपस्थिति दर्ज की। किंतु पाडगावकर की कविता जिस सामाजिक अंतर्विरोध का पर्दाफाश करती है, उसे चिंतन सामग्री देने का काम मर्ढेकर करते हैं। मर्ढेकर की काव्य दृष्टि का स्पष्ट असर हम पाडगांवकर पर देखते हैं।

मर्ढेकर मराठी कविता को निरंतर उद्वेलित, आंदोलित और दिशागामी बनाने में महत् भूमिका निभाते रहे हैं। नारायण कुलकर्णी कवठेकर, उत्तम कोळगावकर, वसंत पाटणकर, हेमंत जोगलेकर, र. भा. धामणकर आदि आज के कवियों ने भी मर्ढेकर से प्रेरणा ग्रहण की है। इसी अर्थ में मर्ढेकर आज की कविता के भी पथप्रदर्शक बनते हैं।

मर्ढेकर की कविता का बहुत अनुकरण हुआ। यह कवि नये कवियों का प्रस्थानबिंदु बनता रहा है। युवा कवियों में संवेदनशीलता, प्रगल्भता और चिंतनशीलता को भरने का काम मर्ढेकर करते रहे हैं। इसी कारण मराठी कविता समृद्ध और विविधांगी बन गई। इसी अर्थ में हम कह सकते हैं कि मर्ढेकर ने नयी कविता परंपरा का निर्माण किया। आज पीछे मुडकर देखते हैं तो महसूस होता है कि आज का युवा कवि खुद को मर्ढेकर की परंपरा का कवि कहलाने में गौरव का अनुभव करता है। काव्य की इस परंपरा में खड़े होकर हम अनुभव करते हैं कि समकालीन जीवनबोध और वर्तमान अनुभव विश्व को खोलने का प्रयास होने लगा है। मर्ढेकर ने कविता धारा को यथार्थ (अतियथार्थ) से जोड़ा। वह वर्तमान से भीड़ने लगी। कविता की भाषा के बारे में नयी दृष्टि विकसित होने लगी। आशय में संपन्नता, भाषा में कलात्मकता और शैली में वैविध्यता की वजह से मराठी कविता ने निकृष्ट कविता को नकारा, उसे एक अर्थ में पराजित किया। विगत ओर वर्तमान की कविता को 'स्वत्व' और 'सत्व' देने में मर्ढेकर की कविता अहम् भूमिका अदा करती है। इसलिए कल की और

आज की दोनों कालखंडों में लिखी गई मराठी कविता हमेशा मर्ढेकर की ऋणी रहेगी।

निष्कर्षतः मर्ढेकर की कविता भविष्योन्मुखी है। वह मानवी जीवन में व्याप्त विसंगतियों की ओर इशारा करती है। एक बेचैनी का सजग भाव उसमें है। दुर्बोधता, अश्लिलता, निराशावादिता के बावजूद यह कविता जीवन यथार्थ का कटू वास्तव अंकित करती है। एक अर्थ में मराठी कविता के क्षेत्र में 'वैचारिक क्रांति' निर्माण करनेवाली यह कविता है। इस कविता में परिस्थिति से लड़ते हुए, मशीनी सभ्यता में असहाय, अकेलेपन के बोध को लेकर जीते हुए मनुष्य की व्यथा का भाव अभिव्यक्त हुआ है। चिंतनशीलता उसका स्थायी भाव है। वैश्विक अनुभवों को जोडकर यह कविता विचार और भावना का सुयोग्य संगम स्थापित करती है। मर्ढेकर ने नयी भाषा, नयी प्रतीक व्यवस्था, नयी बिंब योजना के माध्यम से 'प्रयोगशीलता' का परिचय दिया। 'प्रयोग के लिए प्रयोग' न करते हुए प्रयोगशीलता से नवीनता तक की यात्रा की। छंद योजना, वाक्य योजना तथा भाषा का आंतरिक स्वरूप बदलने में मर्ढेकर ने महती भूमिका निभायी। मर्ढेकर की समस्या काव्य दृष्टि, भाषा दृष्टि और साहित्य सौंदर्य से समकालीन पीढ़ी का प्रभावित होना स्वाभाविक ही था। परिणामतः हम देखते हैं कि मर्ढेकर प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से परवर्ती पीढ़ी को अनेक स्तरों, रूपों में प्रभावित करते हैं। कविता का संवादीपन कविता को जीवंत बनाता है। मराठी कविता आज भी मर्ढेकर की 'संवादी' वृत्ति से लाभाविन्त हैं। अंत में हिंदी-मराठी के सुविख्यात समीक्षक तथा अनुवादक डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे के शब्दों में उभय कवियों के अंतः संबंध और प्रभाव को देखा जा सकता है,"अज्ञेय के नेतृत्त्व में प्रयोगवादी कवियों ने विषय, भाषा तथा शिल्पगत परिवर्तन कर दिया। मराठी में आंदोलन के रूप में इस प्रकार का कार्य मात्र मर्ढेकर ने ही किया है।"[36]

मराठी उपन्यासों की परंपरा में उपन्यासकार मर्ढेकर का विशिष्ट स्थान है। 1942-1948 के दौरान इन्होंने तीन उपन्यास लिखे। 'रात्रीचा दिवस' (रात का दिन, 1942) 'Ÿöö²ö›ü ´ööŸöü' (»öö»öö ×´ö¼ü 1943) तथा 'पाणी (पानी 1948) आदि इनके चर्चित उपन्यास हैं। 'रात्रीचा दिवस' उपन्यास में पत्रकार दिक्पााल के एक दिन के जीवन की घटनाओं, कार्यकलापों, उलझावों, चेतन, अचेतन और अवचेतन अवस्था के जीवंत चित्र खींचे गये हैं। 'चेतनाप्रवाह शैली' में की गयी रचना अपने शैली तत्व के कारण अधिक चर्चित रही। विशेषतः यह उपन्यास व्यक्ति मन के आभ्यंतरिक यथार्थ को उघाडने में सफल हुआ है। अर्थात् युद्धोतर (प्रथम महायुद्ध) मनुष्य की मनोदशा, आशा, आकांशा एवं सपनों को अत्यंत कलात्मक दृष्टि से वर्णित किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास के केंद्र में महानगरीय जीवन है। मर्ढेकर का दूसरा उपन्यास 'तांबडी माती' तथा 'पाणी' में ग्रामीण परिवेश का जीवंत का चित्रण हैं। इन दोनों उपन्यासों में किसान जीवन, ग्रामीण पारिवारिक संबंध, श्रद्धा, मोह, परंपरा आदि का मर्मग्राही चित्रण हुआ है। गांव का सीधा सादा चित्रण करने में लेखक को सफलता मिली है।

ग्रामीण परिवेश में जी रहा मनुष्य माटी में से उगता है और किसी पौधे की तरह प्रकृति के प्रकोपों को झेलते हुए अपना 'स्पेस' बनाता है। इन तीनों उपन्यासों ने औद्योगिकरण, साम्राज्यवाद और महायुद्ध के भीषण परिणामों की दखल ली है। ये उपन्यास मनुष्य के क्षणभंगुर, क्षुद्र जीवन की दुर्दशा का मर्मग्राही अंकन करते हैं।

जहाँ तक मर्ढेकर के उपन्यासों का परवर्ती पीढ़ी पर प्रभाव की बात है। आशय, विषय और शैलीगत दृष्टि से मर्ढेकर विशिष्ट रहे हैं। डॉ. आशा सावदेकर ने मर्ढेकर के उपन्यासों का मूल्यांकन करते हुए उसके प्रभाव का संधान किया है, "1940 नंतर मराठी कादंबरीच्या प्रवाहात रचना तंत्र आणि भाषाशैली यांच्या संदर्भात खूप मोठे प्रयोग झालेले दिसत नाहीत. त्या दृष्टीने 'रात्रीचा दिवस' मधील संज्ञाप्रवाहाचा प्रयोग महत्वाचा ठरतो. जागृत, अर्धजाग्रत आणि सुप्त अशा जाणिवा नेणिवांचा आविष्कार त्यातील व्यामिश्रतेसह टिपणे ही सोपी गोष्ट नव्हती."[37]

अर्थात् आशा सावदेकर ने मर्ढेकर को मराठी उपन्यासों की परंपरा में 'चेतनाप्रवाह शैली' का प्रवर्तन करते हैं, ऐसा मानती है। मर्ढेकर के पूर्व 'रणांगन' (विश्राम बेडकर) में 'चेतना प्रवाह शैली' का अवलंब हुआ था। मनुष्य के समग्र अस्तित्व (अस्तित्त्ववादी चिंतन) के प्रति चिंतन-भाव तथा उसके आसपास के परिवेश का जीवंत चित्रण मर्ढेकर ने किया। मर्ढेकर की इस शैली को सहर्ष स्वीकारा वसंत कानेटकर ने। कानेटकर ने 'घर' उपन्यास में इस शैली का प्रगल्भता से अनुकरण किया है। शैली की दृष्टि से कोई स्थायी प्रभाव मर्ढेकर निर्माण नहीं कर पाये क्योंकि चेतना प्रवाह शैली की अनेक सीमाएँ थी।

जहाँ तक अंतर्वस्तु का प्रश्न है। मर्ढेकर ने इसमें काफी प्रयोग किये हैं। महानगरीय जीवन की वास्तविकता, ग्रामीण जीवन का यथार्थवादी चेहरा उनकी रचनाओं में देखने को मिलता है। मर्ढेकर देहात की ओर रोमांटिक दृष्टि से नहीं देखते। देहाती जीवन में जो सादगी है, किसान जीवन की जो दुर्दशा है और युद्ध का तूफान सामान्य जनों को कैसे घसीटते हुए लेकर जाता है, इसका अत्यंत जीवंत चित्रण मर्ढेकर करते हैं। इसी वजह मराठी उपन्यासों में उनकी यथार्थवादी, अतियथार्थवादी, नग्नयथार्थवादी तथा अस्तित्ववादी दृष्टि का अनुकरण परवर्ती उपन्यासकारों ने किया। मशीनी युग का सामना करते हुए मनुष्य के भीतर चल रही कसमसाहट को वे जीवंतता के साथ चित्रित कर सके हैं। 'रणांगन' से 'कोसला' (भालचंद्र नेमाडे) इन उपन्यासों की धारा में मर्ढेकर के उपन्यास 'प्रयोगशीलता' तथा 'चेतनाप्रवाह' शैली के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। औद्योगिक विकास, महायुद्ध तथा नगरीय जीवन का सामान्य मनुष्य पर क्या प्रभाव पडता है, इसका मर्ढेकर ने चित्रण किया है। प्रभाव के ये तीनों बिंदू उनके परवर्ती उपन्यासकारों में देखे जा सकते हैं। उनके इसी महत्व को दिखाते हुए डॉ. अनिल उगले मर्ढेकर के शक्तिस्थानों और सीमाओं की ओर संकेत करते हुए लिखते हैं, "मराठी कादंबरी च्या

प्रवाहात मर्ढेकर युग निर्माते ठरले नसले तरी कथा आणि कांदबरी यांचा भाषावकाश आणि आशयसूत्र यांच्या सुसंघटनातून कलाकृतीच्या अस्तित्वाकडे लक्ष वेधणाऱ्या कादंबऱ्या म्हणून मर्ढेकरांच्या कादंबऱ्यांचा उल्लेख करावा लागेल."[38]

अर्थात् मर्ढेकर ने मराठी उपन्यासों में कोई युग का निर्माण नहीं किया। किंतु उनके उपन्यास भाषा, आशय तथा संरचना की दृष्टि से निश्चित ही उल्लेखनीय हैं। 'प्रयोगशीलता' उनका स्थायी भाव है। बावजूद इसके कि 'रात्रीचा दिवस' उपन्यास के आशय में इसी प्रयोगशीलता की वजह से बाधा उत्पन्न हुई है। किंतु परवर्ती उपन्यासों में मर्ढेकर के दो महत्वपूर्ण गुण वैशिष्टय को देखा जा सकता है। एक है रोचकता, कौतुहल का भाव और दूसरी बात है रंजनात्मकता की। किंतु एक बात स्पष्ट है कि मर्ढेकर के उपन्यासों का आशयात्मक एवं शैलीगत प्रभाव निरंतर बना रहेगा। इसी बात का संधान करते हुए डॉ. अनिल उगले लिखते है "मर्ढेकरोत्तर कालखंडात मर्ढेकरांची परंपरा निर्माण झाली नसली तरी वास्तववादी आणि सामाजिकतेच्या अंगाने, त्याचप्रमाणे औद्योगिक प्रगतीच्या पार्श्वभूमीवर बदलल्या जीवनमूल्यांच्या अंगाने लिहिण्याचा प्रघात नक्कीच पडला असे म्हणण्यास ¾ÖÖ¾Ö †ÖÆê."[39]

अर्थात् मर्ढेकर के परवर्ती कालखंड में मर्ढेकर की स्वतंत्र परंपरा जरूर निर्माण नहीं हो पाई। किंतु मर्ढेकर का यथार्थवाद, जीवन को सामाजिक दृष्टि से देखने का सजग भाव, औद्योगिक विकास की पृष्ठभूमि में बदलते जीवनमूल्यों के परिप्रेक्ष्य में मराठी उपन्यासों का स्वरूप बदलता गया। इसलिए यह कहना अधिक युक्तियुक्त होगा कि मर्ढेकर के उपन्यासों का कोई स्थायी, निरंतर टिकनेवाला प्रभाव हम नहीं देख सकते। परंतु आशय की दृष्टि से निश्चित ही उनके उपन्यास अनुकरणीय हैं।

जैसे उपर कहा गया है, मर्ढेकर के उपन्यास शैली और भाषा की दृष्टि से नयी पीढी के लेखकों को दिर्घ समय तक प्रभावित नहीं कर पाये। किंतु 'आधुनिक मराठी उपन्यास' लिखने का श्रेय मर्ढेकर को ही जाता है। 'औद्योगिकरण से प्रभावित विश्व' का निर्माण पहली बार मर्ढेकर करते हैं। वैश्विक दृष्टि, समकालीन जीवन की मीमांसा, मनुष्य की केंद्र में स्थापना, भाषा और जीवन को लयात्मकता की ओर ले जाने का प्रयास आदि तत्व उनके यहाँ मिलते हैं। रोमांटिसिझम का अंत करते हुए मर्ढेकर आधुनिकतावाद का दामन पकड लेते हैं। देहात, नगर, महानगरीय जीवन में आयी मशीनी सभ्यता, मूल्यहीनता का दौर, मनुष्य के जीवन में व्याप्त निराशा, द्वंद्व तथा असहायता का मर्मग्राही अंकन यहाँ होने लगा। मर्ढेकर ने आधुनिकता को प्रधान मानते हुए वास्तव जीवन का या जीवन वास्तव का रूपबंध अंकित किया हैं। अंतर्मुखता, विश्लेषण, चिंतन और कल्पना सामर्थ्य को महत्व देते हुए, समकालीन जीवन का वास्तवदर्शी चित्र मर्ढेकर प्रस्तुत करते हैं। 'रणांगण' तथा

'रात्रीचा दिवस' उपन्यासों को मराठी के आधुनिकतावादी उपन्यासों का आरंभबिंदू मान सकते है।

आधुनिकतवादी उपन्यासों का एक महत्वपूर्ण सूत्र होता है- 'विस्थापन'। मर्ढेकर के 'तांबडी माती' और 'पाणी' उपन्यास में 'विस्थापन की पीड़ा' का अत्यत सजीव अंकन हुआ है। मनुष्य के अस्तित्व के प्रश्नों को लेकर लेखक में चिंताभाव है। बाह्य विश्व में फैली हुई अराजकता, विध्वंस और पतनोन्मुख सामाजिक, सांस्कृतिक स्थिति का अत्यंत कलात्मक चित्रण यह लेखक करता है। मर्ढेकर ने 'पाणी' और 'तांबडी माती' उपन्यासों में जिसे विस्थापन' प्रश्न को उठाया है उसका दिर्घ प्रभाव मराठी उपन्यासों में मिलता है। 'रणांगन', 'पाणी', 'शिप्रा', 'सरहद्द', 'बनगरवाडी', 'धग', 'कोसला', 'एन्कीच्या राज्यात', 'झाडाझडती', 'ताम्रपट' आदि उपन्यासों पर देखा जा सकता है। विस्थापन आधुनिक मनुष्य की नियति है। इसे अस्तित्व से संलग्न करते हुए सर्जनशील कृति का सृजन करना चुनौतीपूर्ण काम होता है। मर्ढेकर इस चुनौती को स्वीकार करते हैं।

मर्ढेकर ने आधुनिकतावाद से रिश्ता जोड़ते हुए अपने उपन्यासों के माध्यम से एक और महत्वपूर्ण बिंदू की ओर संकेत दिया है। वह बिंदू है 'लैंगिक प्रेरणाएँ'। अपने तीनों उपन्यासों में नायक की लैंगिक प्रेरणाओं का सजग अंकन हुआ है। लैंगिक रूप की विरूपता को (भाई कुमार) भी दर्शाया गया है। यह प्रभाव परवर्ती उपन्यासों में 'रात्र काळी घागर काळी', 'अजगर', 'काळा समुद्र', 'काळोखाचे अंग', 'उभयान्वयी अव्यय' आदि उपन्यासों में आया है। अर्थात् कामभावना का अत्यंत मार्मिक अंकन इन उपन्यासों में सहसंवेदना के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। मर्ढेकर अपने उपन्यासों में व्यक्तिगत, सामाजिक और आध्यात्मिक स्वर की चिंतावृत्ति, द्वंद्व को दर्शाते हैं। जिसका असर परवर्ती उपन्यासों में होता हुआ दिखाई देता है।

उपन्यासकार मर्ढेकर अपने समकालीन जीवन से जुड़े हुए लेखक हैं। वे अपने आसपास के परिवेश, दैनिक घटनाएँ तथा दिर्घकालीन परिणामों को लेकर चिंतीत हैं। यह चिंताभाव उनके उपन्यासों में अनेक स्थानों पर लक्षित होता है। यह उपन्यासकार अपनी यथार्थवादी दृष्टि से निरंतर मराठी उपन्यासों को प्रभावित करता रहेगा, इसमें कोई संदेह नहीं है। अर्थात् शैल्ी और भाषा की दृष्टि से नहीं आशय की दृष्टि से।

मर्ढेकर का सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन दो महत्वपूर्ण ग्रंथों के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है। 'सौंदर्य आणि साहित्य' (सौंदर्य और साहित्य) तथा 'Art and Man' (कला और मानव) शीर्षक से ये दोनों ग्रंथ उनके सौंदर्यशास्त्रीय- साहित्यशास्त्रीय चिंतन के परिप्रेक्ष्य को निर्धारित करते हैं। मर्ढेकर का सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन कई पीढ़ियों को, समीक्षकों को विवेचन विश्लेषण के लिए उद्वेलित करता रहा है। प्रत्येक पीढ़ी के समीक्षकों ने इस पर आक्षेप या समर्थन या मूलगामी विश्लेषण करने का प्रयास किया है। वस्तुतः मर्ढेकर के सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन के प्रभाव को परवर्ती आलोचकों, चिंतकों

पर किस रूप में, किस स्तर पर पड़ा है, यह देखना अधिक रोचक होगा।

मर्ढेकर का समग्र सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन शास्त्र आधारित नहीं है बल्कि चिंतन, अनुभव और प्रतीति की धारणाओं से पुष्ट है। वे 'सौंदर्यशास्त्रज्ञ' नहीं बल्कि 'सौंदर्य तत्वचिंतक' हैं। उसका कारण यह है कि उनका सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन सौंदर्यशास्त्र की किताबें पढकर नहीं निर्मित हुआ है। यह चिंतन सौंदर्य के आस्वाद और सौंदर्य की निर्मिति के अनुभव से उद्भूत हुआ है। वस्तुतः 'मर्ढेकर का साहित्यशास्त्रीय चिंतन एक कलाकार का आत्मचिंतन, आत्माविष्कार एवं आत्मशोध है। इसमें दर्शनशास्त्र और मनोविज्ञान के आधारभूत सिद्धांतों का प्रतिपादन है। मर्ढेकर ने अपने सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन में मूलतः तीन सिद्धांतों का उपोद्घात किया है जो उनकी मौलिकता का प्रत्यय कराता है। वे सिद्धांत हैं- लय सिद्धांत, भावनानिष्ठ समानानुभूति का सिद्धांत तथा 'वाङ्मयीन महात्मता' (साहित्य की महत्ता)। इन सिद्धातों के माध्यम से सौंदर्य, सौंदर्यविधान, रूप विचार, कला का प्रतिफलन, लय, माध्यम, साधन, संवेदना, भावना, सौंदर्यवृत्ति आदि अवधारणाओं पर तार्किक दृष्टि से प्रकाश डाला है। इसमें उनके भीतर बैठा हुआ दर्शनशास्त्री और मनोविश्लेषणवादी बार-बार झांकता हुआ नजर †ÖÏÖÖ Æü…

हम पहले ही कह चुके हैं कि, मर्ढेकर के सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन पर रसेल, क्लाईव बेल, मूर के चिंतन का स्पष्ट प्रभाव रहा है, इसे मर्ढेकर ने कभी नकारा नहीं है। किंतु मर्ढेकर के सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन ने मराठी आलोचना में एक नयी परंपरा का सूत्रपात किया। मराठी चिंतन परंपरा में 'सौंदर्य', सौंदर्य विधान, रूप विचार बहुत प्राथमिक अवस्था में था, उस पर विचार किया गया। किंतु मर्ढेकर पहली बार स्वतंत्र प्रज्ञा से इस जटिल और बौद्धिक विषय पर अपनी प्रतिभाशील वृत्ति से बुनियादी चिंतन करते हैं। उनके सौंदर्य विचार में तीन इकाईयाँ केंद्र में हैं- कलाकार, कलाकृति और कलास्वाद। इन तीनों की मूलभूत समीक्षा मर्ढेकर ने की। साथ ही तार्किकता, प्रगल्भता और चिंतनशीलता का ¯Öx¸ü“ÖµÖ x¤üµÖÖ Æü…

मर्ढेकर का समग्र सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन पश्चिमी धारणाओं और भारतीय काव्यशास्त्रीय चिंतन का सुयोग्य मिलाफ है। रस विचार और साधारणीकरण (तादात्म्य) के भारतीय सिद्धांतों उन्होंने सहर्ष स्वीकारा है। इन सिद्धांतों को विश्लेषण हेतु उन्होंने मनोविज्ञान को आधार बनाया। 'सौंदर्य' एक स्वतंत्र, स्वायत्त और अंतिम मूल्य है, यह धारणा उनके चिंतन का केंद्रीय तत्व रही है। कलानंद, ब्रह्मानंद सहोदर, साहित्य आनंद आदि शब्दों का प्रयोग काव्यशास्त्रीय बोध दिलाता है। मर्ढेकर ने अपने चिंतन में सृजन-प्रक्रिया, कला विचार, साहित्य विचार और व्यावहारिक समीक्षा को प्रधान स्थान दिया है। अर्थात मर्ढेकर मराठी काव्यशास्त्र में चिंतन की नयी भूमि पर खडे थे। मर्ढेकर और अभिनव गुप्त, मर्ढेकर और अरस्तु, मर्ढेकर और लोकचित्रकला आदि के अन्योन्य संबंध लक्षित होते

हैं। इस पूरे परिप्रेक्ष्य में सौंदर्यतत्व चिंतक के रूप में मराठी समीक्षा ने उन्हें कितना आत्मसात किया, स्वीकारा या नकारा-को देखना कौतुहलवर्धक होगा।

मर्ढेकर के सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन पर पिछले पचास वर्षों में अनेक आयामों से चर्चा हुई है। उनके सौंदयशास्त्र पर अनेक आक्षेप लिए गए। उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों की कठोर समीक्षा हुई। तीन पीढ़ियों को समीक्षकों ने मर्ढेकर के सौंदर्यशास्त्र पर लिखा है। इसी से पता चलता है कि यह चिंतन प्रत्येक पीढ़ी के समीक्षक को विचार विमर्श के लिए उकसाता है। उसका नया पाठ करने हेतु आंदोलित करता है। उनके सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन पर जिन्होंने मुख्य आक्षेप दर्ज किये हैं उनमें कुसुमावती देशपांडे, प्रभाकर पाध्ये, शरदचंद्र मुक्तिबोध, नरहर कुरूंदकर, रा. भा. पाटणकर तथा संभाजी कदम आदि दिग्गजों का समावेश होत है। अन्य आलोचकों में ग. न. लवांदे, मे. पुं. रेगे, अशोक रानडे, पु. ग. सहस्त्रबुद्धे, म. द. हातकणंगलेकर, तर्कतीर्थ लक्ष्मणशास्त्री जोशी, ब. ग. खापर्डे, रा. श्री. जोग, पु. शि. रेगे, वा. ल. कुलकर्णी, माधव मनोहर, ल. म. भिंगारे, दु. का. संत, सुधीर बेडेकर, वि. रा. करंदीकर, भा. ज. कविमंडन, भी. रा. जहागीरदार, दिगंबर पाध्ये तथा सुरेंद्र बारलिंगे आदियों का समावेश होता है। कुसुमावती देशपांडे से लेकर सुरेंद्र बारलिंगे तक विविध अध्येताओं ने मर्ढेकर के सौंदर्यशास्त्र पर आलोचनात्मक लेखन किया है। यह समग्र लेखन आक्षेप, उनकी घोर चिंतनशील वृत्ति की ही प्रतीति कराते हैं। मर्ढेकर के सौंदर्यशास्त्र पर पांच पद्धतियों से विचार किया गया है। 1. ज्ञानशास्त्रीय सत्ताशास्त्रीय आक्षेप 2. मानसशास्त्रीय शरीरशास्त्रीय आक्षेप 3. सौंदर्यशास्त्रीय आक्षेप 4. साहित्यशास्त्रीय आक्षेप 5. साहित्यिक आक्षेप। हम संक्षेप में इन आक्षेपों की चर्चा करते हुए मर्ढेकर के सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन के महत्व को रेखांकित करेंगे।

रा. भा. पाटणकर का आक्षेप है कि मर्ढेकर सौंदर्य और कृति व्यक्तित्व में स्थित अंतर को वे समझ नहीं पाये हैं। इन दोनों में स्थित सामान्य तत्व की खोज करने का उनका प्रयास गलत है। रा. भा. पाटणकर ने ही दूसरा आक्षेप लगाया है, मर्ढेकर ने लयसिद्धांत का प्रतिपादन कर सौंदर्यवाचक विधानों को ज्ञानविधान बताया है। शरदचंद्र मुक्तिबोध ने प्रश्न उठाया है कि प्रत्येक मनुष्य सजीव है, इसलिए मनुष्य का सजीवत्व मूलभूत तत्व नहीं बन सकता। उसी तरह प्रत्येक कलाकृति में सौंदर्य होता है, किंतु सौंदर्य ही उसका मूलभूत तत्व नहीं हो सकता। प्रभाकर पाध्ये ने 'संवेदना बोध' के बारे में प्रश्न उठाते हुए लिखा कि, संवेदना की संवेदना के रूप में कभी प्रतीति नहीं होती, वह बोधन रूप में ही लक्षित होती है। इसलिए विशुद्ध संवेदना की कसौटी पर आधारित मर्ढेकर का सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन अपूर्ण, एकांगी और दोषपूर्ण है। प्रभाकर पाध्ये ने दूसरा आक्षेप यह उठाया है कि जैविक भावना और सौंदर्य भावना में अंतर नहीं हो सकता। किंतु मर्ढेकर अंतर बताते हैं, उसकी कल्पना कर लेते हैं। मर्ढेकर के सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन पर सौंदर्यशास्त्रीय दृष्टि से आक्षेप दर्ज करते हुए कुसुमावती

देशपांडे 'लय सिद्धांत' पर सवाल उठाती है। वे कहती हैं कि उनका लय विवेचन अपूर्ण, एकांगी और मशीनी है। कुसुमावती देशपांडे साहित्यशास्त्रीय आक्षेप अंतर्गत लिखती हैं कि मर्ढेकर ललित कलाओं से साहित्य, संवेदना से अर्थ की ओर प्रस्थान करते हुए संवेदना, लय, रूप विचार पर सौंदर्यशास्त्र के अर्थनिष्ठ वाङ्मय कला के निकष लागू नहीं हो सकते। मर्ढेकर के साहित्य विषयक चिंतन पर आक्षेप दर्ज करते हुए प्रभाकर पाध्ये कहते हैं कि मर्ढेकर ने जिन तीन सिद्धातों (लय सिद्धांत, भावनानिष्ठ समानानुभूति का सिद्धांत तथा वाङ्मयीन महात्मता का सिद्धांत) को साहित्य कृतियों पर परखा नहीं, मूल्यांकन नहीं किया। साथ ही इस प्रकार उसका मूल्यांकन होना संभव नहीं है, ऐसा पाध्ये जी का मानना है। कुसुमावती देशपांडे ने 'साहित्य विचार' पर भाष्य करते हुए कहा है, मर्ढेकर का साहित्य विषयक चिंतन जीवन उन्मुख, समाजोन्मुख है। परिणामतः मर्ढेकर के पश्चात मराठी साहित्य में अत्यंत सामान्य दर्जे का साहित्य लिखा गया, ऐसा उनका कहना है। सुधीर बेडेकर का कहना है कि मर्ढेकर का सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन तथा उनके काव्य में अंतर्विरोध है। उनका काव्य मानवतावादी स्वर से आप्लावित है तो सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन 'आकृतिवादी' है। इन तमाम आलोचकों ने मर्ढेकर के सौंदर्यशास्त्र की कमियों पर उंगली रखी है। साथ ही उसका परिशोधन, संशोधन और परिवर्द्धन करने की बात उठायी है। तात्पर्य यही है, मराठी में मर्ढेकर के सौंदर्यशास्त्र पर अनेक अंगों से लिखा गया है। यह दर्शाता है कि मर्ढेकर का सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन कितना विवाद, मूलगामी तथा पृथक है, जिसकी चर्चा मराठी समीक्षा में आज भी होती है। बावजूद इसके मर्ढेकर की आलोचना पर सटीक भाष्य करते हुए उनके शक्तिस्थानों और सीमाओं का संकेत मराठी समीक्षक प्रभाकर पाध्ये कुछ इस तरह वक्तव्य देते हैं "आता मर्ढेकरांच्या सौंदर्यशास्त्राचे इतके उत्साहवर्धक स्वागत होऊनसुद्धा त्याचा फारसा प्रभाव मराठी समीक्षेवर पडला नाही हे खरे. त्याचे कारण असे दिसते की त्याचा वेध घेणारे मर्ढेकरांचे सौंदर्यमापन यंत्र हाताळायला वाटते तितके सोपे नाही. किंबहूना कांही एका मर्यादेपलीकडे ते चालतच नाही. पण तरी सुद्धा त्यांच्या माध्यमादी कल्पनांनी महाराष्ट्रीय टीकाकारांच्या मनाची इतकी पकड घेतली आहे की महाराष्ट्रात आज मर्ढेकरांच्या मीमांसेचा उल्लेख झाल्याखेरीज कोणतीही सौंदर्यचर्चा पार पडत नाहीं."[39]

अर्थात् मर्ढेकर के सौंदर्यशास्त्र का मराठी में अपूर्व स्वागत हुआ। किंतु उनके चिंतन का ज्यादा प्रभाव मराठी समीक्षा पर नजर नहीं आता। उसका कारण है उनके द्वारा प्रतिपादित 'लय सिद्धांत'। इस सिद्धांत का साहित्यकृति में मूल्यांकन कर पाना कठिन है। बावजूद इसके उनकी 'माध्यम' (Medium) अवधारणा ने महाराष्ट्र के समीक्षकों को पूरी तरह प्रभावित किया है, जिसके चलते मराठी में सौंदर्यशास्त्र पर चर्चा आरंभ होते ही मर्ढेकर का उल्लेख अनिवार्य हो जाता है। प्रभाकर पाध्ये मर्ढेकर के सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन को अनेक अंगों से देखते हैं। विशेषतः उनके योगदान

की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं तो दूसरी ओर उनकी सीमाओं को भी बताते हैं। अंत में हम प्रभाकर पाध्ये जी के शब्दों में ही मर्ढेकर के साहित्य, सौंदर्य विषयक चिंतन का मूल्यांकन करेंगे। वे लिखते हैं, "आज मर्ढेकरांच्या निरनिराळया विचारांची चिकित्सा फार नेटाने होत आहे. अगदी चिरफाड होत आहे. पण त्यांच्या सौंदर्य मीमांसेने टाकलेली छाप इतकी मोठी आहे की त्यांचे प्रत्येक विधान विवाद्य किंवा चुक ठरले तरी मराठी साहित्यशास्त्रातल्या त्यांच्या स्थानाला धक्का लागेल असे वाटत नाही."[40] (अर्थात् आज मर्ढेकर के चिंतन की समीक्षा बड़ी मात्रा में हो रही है। उनके द्‌वारा प्रतिपादित सिद्धांतों, धारणाओं की कठोर आलोचना हो रही है। किंतु उनके द्वारा प्रतिपादित सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन का प्रभाव इतना व्यापक, गहरा है कि उनका प्रत्येक वक्तव्य विवाद्य या गलत साबित हुआ तो भी मराठी काव्यशास्त्र में स्थित उनके स्थान को चुनौती नहीं मिल सकती।)

तात्पर्य, मर्ढेकर के सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन के बारे में मराठी में अनेक आयामों से चर्चा हुई है। उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धातों को लेकर भी जेरे बहस हुई। अनेक आक्षेप कर आलोचना भी उन्हें सहनी पड़ी। बावजूद इसके मराठी आलोचना में उनके इस योगदान को कदापि नहीं भुलाया जा सकता।

निष्कर्ष : अज्ञेय और मर्ढेकर के साहित्य-व्यक्तित्व का बड़ा प्रभाव हम परिवर्ती लेखकों, कवियों और आलोचकों पर अनेक रूपों में देख सकते हैं। जहाँ अज्ञेय और मर्ढेकर बडे कवि हैं, उतना ही व्यापक प्रभाव उनके कवि रूप में हिंदी-मराठी साहित्य पर लक्षित होता है। अर्थात् उपन्यासकार के रूप में अज्ञेय निश्चित दो कदम आगे हैं। वे नयी प्रवृत्ति, नयी शैली और नयी तकनीक की धारा को निर्मित करते हैं। कहानीकार के रूप में तो अत्यंत श्रेष्ठ कहानीकार हैं। मर्ढेकर ने कहानियाँ नहीं लिखी। मर्ढेकर के उपन्यासों की परंपरा का निर्वाह आगे विकसित नहीं हो सका। जहाँ तक आलोचना का प्रश्न मर्ढेकर के 'सौंदर्यशास्त्र' ने मराठी परंपरा को समृद्ध किया। साथ ही चिंतन की नयी भूमि पर लाकर खड़ा किया। वाद-विवाद और संवाद का नया कलेवर उपस्थित किया। अज्ञेय आलोचक के रूप में न स्थापित हो सके और न ही कोई स्थायी प्रभाव निर्माण कर सके। पर सच्चाई यह है कि इन दोनों साहित्यकारों ने दो भिन्न भाषा में नया प्रवर्तन किया, अपनी प्रतिभा से नये कीर्तिमान स्थापित किए। इतना ही नहीं आनेवाली पीढी को 'लीक छोड़ते वायूयान' की तरह पथप्रदर्शन किया। इसी कारण इन दोनों के योगदान को भारतीय साहित्य हमेशा याद करता रहेगा, पुनर्पाठ करता रहेगा।

■ ■ ■

ÃÖ¤ü³Ö ÃÖ“Öß :

1. अज्ञेय की काव्यतीतिर्षा, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, प्र. सं. 2001, ¯Ö. 108
2. ¾ÖÆüß, ¯ÖéÂšü 109
3. तारसप्तक, संपा. अज्ञेय, नेमिचंद्र जैन का वक्तव्य, पृष्ठ 25
4. समकालीन हिंदी कविता : अज्ञेय और मुक्तिबोध के संदर्भ में, पृष्ठ 149
5. नयी कविता : स्वरूप और समस्याएँ, डॉ. जगदीश गुप्त, पृष्ठ 294
6. तारसप्तक, सं. अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, पृष्ठ
7. ¾ÖÆüß, ¯ÖéÂšü
8. मुझे और भी कहना है, गिरिजाकुमार माथुर, पृष्ठ 102
9. सात गीत वर्ष, पृष्ठ 20
10. ठण्डा लोहा, पृष्ठ 46
11. संशय की एक रात, नरेश मेहता, पृष्ठ
12. दूसरा सप्तक, पृष्ठ 118
13. ग. मा.मुक्तिबोध, नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली 1971, ¯ÖéÂšü 56
14. दूसरा तारसप्तक, संपा. अज्ञेय, पृष्ठ
15. चौथा तारसप्तक, संपा. अज्ञेय, पृष्ठ 138
16. ¾ÖÆüß, ¯ÖéÂšü 158
17. ¾ÖÆüß, ¯ÖéÂšü 270
18. ¾ÖÆüß, ¯ÖéÂšü
19. शमशेर, संपा. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ 103
20. लक्ष्मीकांत वर्मा, नई कविता, पृष्ठ 1
21. पूर्वग्रह, सं. अशोक वाजपेयी, उदयन वाजपेयी का लेख, पृष्ठ 22
22. ¾ÖÆüß, ¯ÖéÂšü 68
23. कथाकार अज्ञेय, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ, प्र. सं. 1993, ¯ÖéÂšü 60
24. अज्ञेय कथाकार और विचारक, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र. सं. 2012, ¯ÖéÂšü 7
25. अज्ञेय की औपन्यासिक संचेतना, शारदा प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ 136
26. अज्ञेय : कथाकार और विचारक,, पृष्ठ 79
27. कांही मराठी कविता : जाणिवा आणि शैली, पृष्ठ 122
28. ¾ÖÆüß

29. परंपरा आणि नवता, पृष्ठ 96

30. एका पीढीचे आत्मकथन, संपा. पु. शि. रेगे, वा. ल. कुलकर्णी, मुंबई मराठी साहित्य संघ, ´Ö²Ö‡ü 1975, ¯ÖÅšü 327

31. धूमिल और नारायण सुर्वे का कवि कर्म शैलजा प्रकाशन, कानपुर, संस्करण-2013, ¯Ö.54

32. ‡×¤üÖ ÃÖŸÖ, ´Ö¤üß, 1967

33. कविता, पृष्ठ 10

34. मर्ढेकरांची कविता : स्वरूप आणि संदर्भ, खंड पहिला, मौज प्रकाशन गृह, मुंबई, दुसरी आवृत्ती ¯ÖÅšü 204

35. योग भ्रष्ट, पृष्ठ 133

36. आधुनिक मराठी साहित्य का प्रवृत्तिमलक इतिहास, डॉ. रणसुभे, पृष्ठ 39

37. कांदबरीचा आशय वेध, पृष्ठ 121

38. मर्ढेकरांच्या कांदब-या : एक शोध, डॉ. अनिल उगले

39. ¾ÖÆüß, ¯ÖÅšü 121

40. मर्ढेकरांची सौदर्य मीमांसा, प्रभाकर पाध्ये, पृष्ठ 206

■ ■ ■

निष्कर्ष एवं मूल्यांकन

निष्कर्ष और मूल्यांकन

अज्ञेय और मढेकर हिंदी-मराठी के दो प्रमुख साहित्यकार रहे हैं। दो भिन्न भाषा, भिन्न प्रदेश, भिन्न सांस्कृतिक स्थितियाँ और भिन्न परिवेश में दोनों व्यक्तित्वों की बुनावट इन दोनों में वैषम्य के कारक हैं। किंतु दोनों ने अपनी-अपनी भाषा-साहित्य को समृद्ध करने में महती भूमिका निभायी। विशेषतः आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में इन दोनों ने साहित्य सर्जना में मौलिक योगदान दिया है। विविध विधाओं, विविध शैलियों और विविध संवेदनाओं का प्रत्याख्यान किया है। अपनी अनुभूति की प्रामाणिकता को सर्वोपरि मानते हुए अपने अनुभव जगत को सार्वकालिक सत्य के साथ सम्पृक्त किया है। दोनों लोकधर्मी चेतना के लेखक हैं। दोनों अनुभव की भाषा, अपने आसपास का जीवन, अपने अनुभव जगत की सहवेदना का साक्षात्कार कराते हैं।

हमने आधुनिक हिंदी साहित्य की पृष्ठभूमि तथा आधुनिक मराठी साहित्य की पृष्ठभूमि के संबंध में विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। हमने ये भी देखा कि आधुनिक हिंदी साहित्य में आधुनिकता और आधुनिकीकरण का दौर कहाँ से शुरू होता है? आधुनिकता के उदय के मूल में स्थित भूमि और भूमिका पर भी विचार किया है। ठीक उसी तरह आधुनिक मराठी साहित्य में आधुनिकता और आधुनिकीकरण का दौर कहाँ से प्रारंभ होता है? मराठी साहित्य में आधुनिकता से उदय के मूल में कौन-सी स्थितियाँ कारणीभूत रही है आदि पर हमने विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है।

आधुनिक हिंदी साहित्य में उदित आधुनिकता की पृष्ठभूमि और आधुनिक मराठी साहित्य में उदित आधुनिकता की पृष्ठभूमि पर तुलनात्मक दृष्टिक्षेप डालेंगे। विशेषतः दोनों भाषाओं के साहित्य में आधुनिकता के उदय संबंधी और सम-विषम रेखाओं का अध्ययन करना आवश्यक है। वे सम और विषम स्थितियाँ इस प्रकार हैं- आधुनिक हिंदी साहित्य में आधुनिकता तथा आधुनिक मराठी साहित्य में आधुनिकता के उदय के मूल में ब्रिटीशों का आगमन, औद्योगिक क्रांति, विज्ञान का प्रचार और प्रसार तथा नवीन इहलौकिक दृष्टिकोण कारक तत्व के रूप में काम कर रहे हैं। तकनीकी विकास दोनों भाषाओं में आविर्भूत आधुनिकता के केंद्र में कार्यरत है। आधुनिक हिंदी साहित्य में आधुनिकता तथा आधुनिक मराठी साहित्य में आविर्भूत आधुनिकता की वैचारिक पृष्ठभूमि में काफी समानता है। पश्चिमी चिंतक, कवि टी. एस. इलियट, डार्विन, फ्रायड, मार्क्स, नीत्शे की बड़ी भूमिका रही है। इनके चिंतन ने हिंदी तथा मराठी साहित्य में आधुनिकता के उदय हेतु उर्वरा भूमि बनायी। हिंदी में आधुनिकता का आरंभ हिंदी नवजागरण से और आधुनिकतावाद का आरंभ प्रयोगवाद से होता है। ठीक उसी तरह मराठी में आधुनिकता का आरंभ म. फुले के साहित्य (1855) से होता है और आधुनिकवाद की चर्चा 1939-45 के बीच होती है। दोनों भाषाओं में लगभग एक ही समय में

आधुनिकता के उदित होने का तथ्य सामने आता है। हिंदी साहित्य में आधुनिकता का जन्म साहित्य की स्थापित मान्यताओं को चुनौती देने के लिए हुआ है। ठीक यही स्थिति मराठी साहित्य में भी दिखाई देती है। आधुनिक हिंदी-मराठी साहित्य की पृष्ठभूमि में समरेखाएँ यही है कि, दोनों भाषाओं के साहित्य में प्रयोगशीलता, प्रखर बौद्धिकता, नगरीय बोध, सूक्ष्म सौंदर्यबोध तथा शिल्प में नवीनता को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया। परिणामतः नया काव्य बोध, नया मूल्य बोध और नया भाव-बोध हिंदी मराठी साहित्य में प्राप्त होता है। हिंदी-मराठी साहित्य में आधुनिकता के तमाम लक्षण लक्षित होते हैं। विशेषतः व्यक्तिवादी चेतना की प्रवृत्ति दोनों में समान रूप से दिखाई देती है। आधुनिक हिंदी-मराठी साहित्य की पृष्ठभूमि में सार्त्र का अस्तित्ववाद, मार्क्स का द्वंद्वात्मक भौतिकवाद, स्वच्छंदता-विरोध, महानगरीय बोध आदि तत्व पाये जा सकते हैं। विशेषतः शिल्प में रूपवाद और भाव में व्यक्ति सत्य या सत्यान्वेषण की झांकी प्राप्त होती है। मनोलोक की जटिलताएँ लेकर इन दोनों भाषाओं में साहित्य सृजन हुआ। आधुनिक हिंदी-मराठी साहित्य की पृष्ठभूमि में 'वरण की Ã¾ÖÖŸÖ¡ÖÖŸÖÖ' †Ö¸ü 'स्वाधीनता की चेतना' (रचनाशीलता की स्वाधीनता) इन दो मूल्यों को सर्वाधिक महत्व दिया गया। आधुनिक हिंदी-मराठी साहित्य में दुर्बोधता और प्रश्नाकुलता को अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। बदला हुआ समाज जीवन और बदली हुई समाज मानसिकता बनाम व्यक्ति मानसिकता को केंद्र में रखकर सन् 1940 के बाद हिंदी-मराठी साहित्य में समाज चिंतन के स्थान पर व्यक्ति सत्य का दौर चला। आधुनिक हिंदी- मराठी साहित्य में आधुनिकता एक प्रवृत्ति विशेष के रूप में उभरी। करीब-करीब दोनों भाषाओं के साहित्य में व्यक्ति की अनुभूति की प्रामाणिक अभिव्यक्ति होने लगती Æü…

सारांश रूप में, यह कहा जा सकता है कि आधुनिक हिंदी-मराठी साहित्य में आधुनिकता के उदय के मूल में लगभग सम रेखाएँ अधिक दीखती है, तुलना में विषम रेखाओं के। हिंदी में आधुनिकता के मुख्य प्रवर्तक के रूप में अज्ञेय अर्थात् सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन का आगमन एक ऐतिहासिक परिघटना बनती है। ठीक उसी तरह आधुनिक मराठी साहित्य के प्रणेता के रूप में बा. सी. मर्ढेकर का आगमन भी धमाकेदार तरीके से होता है। अर्थात् सन् 1940 के पश्चात हिंदी-मराठी साहित्य में आधुनिकता के दर्शन होते हैं। साहित्य के परिवेश और परिदृश्य को बदलने में इस तत्व ने महती भूमिका निभायी है।

आधुनिक मराठी साहित्य की पृष्ठभूमि का अवलोकन करने के बाद कुछ तथ्य उभरते हैं। वे इस प्रकार के हैं- डॉ. कोत्तापल्ले आधुनिक मराठी के प्रवर्तक के रूप में म. फुले को मानते हैं। डॉ. केशव सद्रे और अधिकांश विद्‌वान केशसुत (कृष्णाजी केशव दामले) की काव्ययात्रा से आधुनिकता की मराठी में शुरूआत मानते हैं। डॉ. वसंत पाटणकर तथा डॉ. चंद्रशेखर जहागिरदार 'मर्ढेकरी युग'

से आधुनिकता का आरंभ मानते हैं। आधुनिकता और आधुनिकवाद में स्थित अंतर को मराठी समीक्षकों ने रेखांकित किया है। इन तमाम मतों को केंद्र में रखकर इतना ही कहा जा सकता है कि, मराठी में आधुनिकता की शुरूआत म. फुले की रचनाओं से होती है और आधुनिकवाद एक आंदोलन के रूप में 1940 केआसपास उभरता है। जिसका नेतृत्त्व बा. सी. मर्ढेकर ने पूरी क्षमता के साथ किया।

किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास के दो मूलाधार होते है। एक उस व्यक्ति की जन्मजात योग्यता और दूसरा उस व्यक्ति की योग्यता के अनुकूल परिवेश का होना। व्यक्ति में जन्मजात योग्यता प्रतिभा से विकसित होती है, उसकी संवेदना को वह साकार करती है। किन्तु व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास के लिए अनुकूल परिवेश की निर्मिति उसे खुद ही करनी पड़ती है। जब इन दो आधारों का सुयोग्य सम्मेलन होता है, तब प्रतिभा के अंकुर फुटने लगते है। वह प्रतिभा ही है जो व्यक्ति को कवि कलाकार बनाती है। पर ये भी सच है कि, कई प्रतिभाएँ आलसीपन की वजह से नष्ट हुई या कुछ प्रतिभाओं को पता ही नहीं चला कि उनके भीतर एक अद्वितीय प्रतिभा समायी हुई है। एक वाक्य में कह सकते हैं कि, प्रतिभा व्यक्ति की पूंजी होती है, व्यक्तित्व विकास का प्रधान अंग बन जाती है।

हिंदी के मूर्धन्य चिंतक कवि सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन '†-ÖµÖ' और मराठी के अत्यंत चर्चित, विवादाग्रस्त एवं नव कविता के प्रणेता बाळ सीताराम मर्ढेकर का व्यक्तित्व कई मायनों में साम्य-वैषम्य की रेखाओं से पुरित हैं। दोनों का जन्म एक सुसंस्कृत ब्राह्मण परिवार में हुआ। हालांकि किसका जन्म कहाँ हो, ये उसके हाथ में नहीं होता किन्तु पारिवारिक पृष्ठभूमि व्यक्तित्व विकास में सहायक होती है। परिवार के संस्कार व्यक्तित्व के विकास में मौलिक भूमिका निभाते हैं। अज्ञेय के पिता पुरातत्व विशेषज्ञ थे। एक सधन परिवार में उनका भरण पोषण हुआ। पिता संस्कृत के प्रकांड विद्वान थे। इसलिए बचपन से उन पर भाषा, साहित्य और संस्कृति के मूलगामी संस्कार हुए। ठीक उसी तरह मर्ढेकर के पिता भी शिक्षक थे। शिक्षक से मुख्याध्यापक एवं बाद में वे डेप्यूटी बने। उन्होंने भी अपने बच्चों पर साहित्य, संस्कृति और भाषा के मौलिक संस्कार किये। दोनों की पारिवारिक स्थिति दोनों के व्यक्तित्व विकास के अनुकूल दिखाई देती है।

वात्स्यायन जी युवावस्था में क्रांतिकारी आंदोलन से जुड़े। देश की गुलामी के प्रति चीढ़ उनके मन में कहीं न कहीं थी। इसलिए स्वाधीनता आंदोलन में उन्होनें सक्रिय सहभाग लिया। भूमिगत होकर आंदोलन में सक्रिय सहभागिता दर्शायी। पकडे गए, जेल गये। अर्थात् वात्स्यायन जी गुलाम देश में स्वाधीनता का सूर्य उदित होते हुए देखने चाहते थे। मर्ढेकर के संबंध ऐसे संदर्भ उपलब्ध नहीं है। किन्तु उनकी रचनाओं में किसान, मजदूर, कामगार, दलित की व्यथा का जीवंत

चित्रण हुआ है। ये कहीं न कहीं उनकी स्वतंत्र-चेता वृत्ति को दर्शाता है। अज्ञेय को साहित्य के अलावा चित्रकला, शिल्पकला, वास्तुकला और बढ़ईगिरी में गहरी रूचि थी। देश-विदेश की यात्राओं ने उनके भीतर कलाप्रेम जागृत किया था। एक सौंदर्य प्रेमी रचनाकार या व्यक्ति के रूप में वे हमारे सामने आते हैं। किन्तु मर्ढेकर साहित्य के अलावा अन्य कलाओं के प्रति गहरी रूचि नहीं दिखाते। हाँ, ये जरूर है कि आकाशवाणी के माध्यम से उभरते हुए कलाकार और लोककलाओं को बढ़ावा देने का महत्वपूर्ण प्रयास उन्होंने किया। कला प्रेम जरूर उनमें रहा होगा किन्तु उन्होंने खुलकर अभिव्यक्ति नहीं दी।

अज्ञेय यायावर बनकर जिए। भ्रमण उनका शौक था। राजी सेठ ने प्रस्तुत पंक्तियों के शोधार्थी को वार्तालाप में बताया कि, 'देश और दुनिया के रमणीय, मनोहर एवं यादगार स्थानों की जानकारी रखनेवाले एक संस्कृति पुरूष थे अज्ञेय।' अज्ञेय देश विदेश घूमें। घूमक्कड़ी उनका शौक था। देश के अनेक स्थानों पर जाने, देखने का सुअवसर उन्हें प्राप्त हुआ। ऊटी, कश्मीर, लखनऊ आदि स्थानों पर उन्होंने निवास किया। विदेश में अनेक स्थानों पर गये, वहाँ के रमणीय सौंदर्य का आस्वाद लिया। वे हमेशा कहते थे कि कोई योजना बनाकर नहीं घूमना चाहिए। घूमने के लिए संयम, तैयारी की कोई जरूरत नहीं। किन्तु मर्ढेकर का नौकरी के निमित्त घूमना हुआ। हालांकि यायावरी कोई उनका शौक नहीं था। पर देश के विविध स्थानों में जाने का अवसर उन्हें प्राप्त हुआ। मर्ढेकर ने सौंदर्य, प्रकृति को अपने अनुभव विश्व का हिस्सा बनाया। पटना, दिल्ली, तिरूचरणपल्ली तथा गुवाहत्ती (हालांकि गये नहीं) में नौकरी के बहाने गये। उनके अचेतन मन में सृष्टि का सौंदर्य, गाँव का सौंदर्य बसा हुआ था। इसलिए सौंदर्य के प्रति एक गहरी आसक्ति उनके भीतर समाहित थी।

अज्ञेय बचपन से एकान्तप्रियता के प्रति आसक्त रहे। उन्हें मौन का शिल्पी भी कहा जाता है। तोल मोल के बोलना उनकी जीवन वृत्ति बनी। जेल जीवन ने उन्हें अधिक चुप्पा बनाया था। साथ ही उनके दाम्पत्य जीवन में जो उतार-चढ़ाव आये, उसने और भी अधिक उन्हें अकेला बनाया था। अकेलेपन का दंश उनके भीतर निरंतर व्यक्त होता है। अज्ञेय स्वयं कहते हैं, 'चुप एक निर्जीव चीज नहीं है, चुप से भी बातचीत हो सकती है।' उनका मौन एकांत का संगीत बन जाता है। जिसमें जीवनानुभव का रस भरा हुआ है। अज्ञेय ने एकान्त को जीवन का अंग बनाया। विशेषतः यह एकान्त का संगीत उनकी कविता में बार-बार आरोहित होता है। मर्ढेकर भी भयंकर चुप्पा थे। दूसरे व्यक्ति से बात करना भी उन्हें सहज नहीं होता था। एक आत्ममग्न, आत्मलुब्ध और आत्म की गहरी गुफा में खोये हुए कलाकार थे मर्ढेकर। किन्तु ये भी सच है कि, उन्होंने अपनी चुप्पी को साधा था, अभिव्यक्ति के लिए एक हथियार के रूप में हस्तेमाल किया। वस्तुतः मर्ढेकर का चुप्पापन पारिवारिक आघात, बचपन से बनी हुई मानसिक स्थिति और प्रशासकीय तनातनी के बीच ढलता संतुलन ये कुछ

स्थितियाँ रही, जिनकी वजह से वे मौन की प्रतिमा बने।

मर्ढेकर मराठी साहित्य में अपनी अभिव्यंजना के बलबुते शिखर पर पहुँचे। रेडिओ पर नौकरी की वजह से देशभर घूमते रहे। अनुभव की संपन्नता, अभिव्यक्ति की कुशलता, अभिव्यंजना में प्रयोगधर्मिता और चिंतन की गंभीरता इनके व्यक्तित्व की विशेषताएँ थी। मर्ढेकर ने प्रकृति सौंदर्य, वैज्ञानिक युग और साधारण मनुष्य, व्यक्ति की महत्ता/क्षण का महत्व, महानगरीय जीवन बोध, कामगार, श्रमिक, मजदूर, दलित की कथा-व्यथा का प्रस्फुटीकरण किया है। किन्तु मर्ढेकर के साहित्य का मुख्य स्वर व्यक्तिवाद और अहं से संबंधित है।

मर्ढेकर अनेक अर्थों में विद्रोही थे। जीवन, काव्य-भाषा, सौंदर्यशास्त्र के स्थापित मानदंड तथा अभिव्यक्ति का शैली पक्ष इन सभी के प्रति मर्ढेकर ने विद्रोह किया। मर्ढेकर ने शहरी जीवन की विद्रुपता का बेबाक चित्रण किया, जिसके आधार पर उन्हें अश्लिलता के आरोप से भी गुजरना पड़ा। मराठी के प्राचीन छंदों का प्रयोग, भूतकाल में वापसी, संत साहित्य का छंद विधान आदि चीजों को बेझिझक उन्होंने अपनाया। मर्ढेकर पूर्व कविता जमीनी सच से दूर गई थी। उसे जमीनी यथार्थ से जोड़ने का काम उन्होंने किया। संवेदना और शिल्प में किये गये प्रयोग उनकी इसी विद्रोही-चेतना को दर्शाते हैं। अर्थात् मर्ढेकर चेतनाप्रवाह शैली, समकालीन यथार्थ की कुरूपता को दर्शानेवाले यथार्थोन्मुख रचनाकार, सौंदर्यवादी समीक्षक और जीवनोमुखी वृत्ति के चलते अमिट छाप छोड़ते हैं।

मर्ढेकर घोर परिश्रमी थे। साहित्य के प्रति समर्पण का निस्संग भाव उनमें पुरजोर तरीके से व्यक्त होता है। अपनी कविताई से उन्होंने युगीन जीवन संदर्भो की तलाश की। अनुभूति के दायरे को विस्तार देते रहे, पुरी गहराई के साथ। इसी वजह से मराठी साहित्य में इनके नाम पर एक युग का प्रचलन हुआ जिसे 'मर्ढेकर युग' के नाम से संबोधित किया गया।

अज्ञेय और मर्ढेकर के स्वभाव में अनेक साम्य-वैषम्य नजर आते हैं। दोनों का व्यक्तित्व, दोनों की प्रकृति, दोनों का राजनीति, समाजनीति और अर्थनीति की ओर देखने के दृष्टिकोण में साम्य वैषम्य की अनेक रेखाएँ नजर आती है। अज्ञेय कला, साहित्य, संस्कृति, भाषा, पर्यटन और प्राकृतिक सौंदर्य के प्रति अभिभूत थे। मर्ढेकर ने जीवन की आपाधापी में यंत्रवत बनते जीवन में, महायुद्धोत्तर पृष्ठभूमि में मनुष्य की मूल से उखड़ जाने की पीड़ा लेकर आते हैं। पर विशेष उल्लेखनीय बात है कि, दोनों ने 'अनुभूति की प्रामाणिकता' को सर्वाधिक महत्त्व दिया। जीवनमूल्य, प्रतिरोध की भावना तथा समझौता परस्ती की स्थिति को लेकर दोनों ने प्रतिक्रियाएँ दी। हालांकि आजादी के पहले अज्ञेय स्वाधीनता आंदोलन से जुड़े हुए थे। किन्तु आजादी के बाद सत्ता के सबसे नजदिक रहे। नेहरू से उनकी गहरी मित्रता थी। पर मर्ढेकर के जीवन में सत्ता सोपानों की स्थिति कहीं भी बनती हुई नहीं दिखायी देती।

स्वातंत्र्योत्तर भारत के काव्यत्येहास में अज्ञेय और मर्ढेकर का स्थान ऊँचा है। परिवर्तित स्वातंत्र्योत्तर भारत की छवि उभारने का काम दोनों ने किया। नवीन संवेदना की सार्थक अभिव्यक्ति अपनी रचनाओं के माध्यम से दोनों ने की। रोमांटिक काव्यधारा के प्रभाव को नकारते हुए व्यक्ति को प्रतिष्ठा दिलाने में दोनों ने महती भूमिका निभायी। दोनों के चिंतन और सृजन पर टी. एस. इलियट और येटस् का गहरा प्रभाव लक्षित होता है। बौद्धिकता, वैचारिकता, शैलीगत वैचित्र्य, प्रयोगशीलता की दृष्टि से दोनों में गहरा सादृश्य भाव नजर आता है। दोनों ने कविता की परंपरा में एक नयी काव्यधारा का प्रवर्तन किया। अज्ञेय ने प्रयोगवाद चलाया और नयी कविता के वे मसीहा बने। ठीक उसी तरह मर्ढेकर ने रोमांटिसिज्म को नकारकर नवकविता का प्रवर्तन किया। एक ओर अज्ञेय ‘Ÿöö¸¡ सप्तक’ लेकर आते हैं तो दूसरी मर्ढेकर अपने समकालीनों और उत्तरवर्तीयों को कविता का नया मार्ग प्रशस्त करते हैं। दोनों ने पूर्व परंपरा को नकारते हुए अपनी यथार्थ अनुभूति और व्यक्तिवादी चेतना का प्रगल्भ अविष्कार किया। इस संपूर्ण प्रक्रिया में दोनों की ठोस भूमिका रही।

साहित्य साधना की परंपरा में दोनों का मौलिक योगदान रहा है। अज्ञेय ने विपुल मात्रा में साहित्य की अनेकानेक विधाओं में मूलगामी लेखन किया। काव्य, कहानी, उपन्यास, निबंध, डायरी-लेखन, यात्राभ्रमण और संपादन का विशाल काम खड़ा किया। उनकी रचनाएँ उनकी पहचान बनती गयी। साहित्य साधना में अपनी प्रतिभा से अज्ञेय ने अनेक विधाओं में लेखनी चलायी। विशेषतः समीक्षा के क्षेत्र में भी उनका अत्यंत महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। अज्ञेय की तुलना में मर्ढेकर ने वस्तुतः कम ही लिखा किन्तु गुणवत्ता में कोई कमी नजर नहीं आती। हालांकि संख्या के आधार पर कोई श्रेष्ठ-कनिष्ठ नहीं हो सकता। किन्तु गुणात्मकता दोनों में भी थी। दोनों ने अनुवाद का कर्म भी किया। दोनों का साहित्यिक दृष्टि से अमूल्य योगदान रहा। अपने युग को, अपने समकालीनों को और अपने उत्तरवर्तीयों को प्रभावित करने का काम दोनों ने किया।

अज्ञेय अनुकरणवादी नहीं, अनुसरणवादी हैं। नियतिवादी नहीं किन्तु भविष्य पर उनकी नजर बराबर रही है। मर्ढेकर के व्यक्तित्व में अनुकरण की प्रेरणा बराबर रही है। विशेषतः साहित्य और जीवन में जो भी अनुकरणीय हैं, उसे स्वीकारने का साहस मर्ढेकर ने दिखाया। यह वृत्ति उनमें बराबर लक्षित होती है।

अज्ञेय और मर्ढेकर का दाम्पत्य जीवन लौकिक दृष्टि से सफल नहीं माना जा सकता। दोनों को जीवन में खुशी, उल्लास और आनंद के क्षण बहुत कम मिले। अज्ञेय की दोनों शादियाँ असफल रही। संतोष मलिक और कपिला मलिक के साथ संबंध निर्वाह नहीं हो पाया। इला डालमिया के साथ वे अपने जीवन के अंत तक बिना विवाह के रहे। आज की भाषा में कहूँ तो ‘लिव इन रिलेशनशिप’ में रहे। अज्ञेय के देहांत के बाद इला डालमिया ने किसी कोईराला के साथ विवाह किया। मर्ढेकर का

प्रेमविवाह, अंतर्धर्मिय विवाह हुआ था। अपनी मेधावी छात्रा होमाय नल्लासेठ से विवाह किया। पहला विवाह दस वर्ष ही चल पाया, लड़खड़ाते संबंधों ने अंततः तलाक का रास्ता अख्तियार लिया। उनका दूसरा विवाह पंजाबी युवती, आकाशवाणी की सहकर्मी अंजना सयाल से हुआ किन्तु विवाह के छह साल बाद नियति ने ही मर्ढेकर को हम से छिना। तात्पर्य यह है कि, दोनों का वैवाहिक जीवन सुखद नहीं रहा। अकेलेपन का दंश उनके जीवन और साहित्य में साफ झलकता हुआ दिखाई देता Æü...

अज्ञेय तमाम विचारधाराओं का अतिक्रमण करते हैं। किसी एक विचारधारा से बंधे रहना उनकी प्रकृति नहीं थी। विचारधारा की अपनी सीमाएँ होती है। विशेषतः किसी भी विचारधारा में कालांतर में दोष आते हैं, मर्यादाएँ स्पष्ट होने लगती है। अर्थात् कोई भी विचारधारा परिपूर्ण नहीं है, ऐसी उनकी धारणा थी। अज्ञेय की पूर्ववर्ती कविता विचारधारा का अनुकरण कर रही थी। प्रचार-प्रसार का माध्यम ही कविता बन चुकी थी। ऐसी स्थिति में अज्ञेय तमाम प्रकार की विचारधाराओं को नकारते हुए मनुष्य मात्र की बात कर रहे थे। मनुष्य मन के सूक्ष्म कोनों में झांक रहे थे। इसी अर्थ में वे सूक्ष्म विद्रोही थे। मनुष्य मन की सूक्ष्मता में झांकते समय यास्पर्स के मनोविश्लेषणशास्त्र का आधार ले रहे थे। अस्तित्ववादी दर्शन की छाया उनकी रचनाओं में अभिव्यक्त होती है। मर्ढेकर ने भी किसी एक विचारधारा से प्रतिबद्धता की बात नहीं की। समाज के स्थान पर ‘¾µÖÛŒÖ ÃÖÏµÖ’ को काव्य-विषय बनाने में मर्ढेकर को हिचकिचाहट नहीं हुई। मनुष्य के जीवन में आयी यांत्रिकता, अकेलापन छटपटाहट, असहायता आदि बातों का समावेश मर्ढेकर ने अपने चिंतन में किया। मनुष्य जीवन की क्षूद्रता और महानगरीय जीवन बोध की अभिव्यंजना मर्ढेकर ने की।

अज्ञेय और मर्ढेकर दोनों प्रकृति के कवि हैं। ‘¸ÖÖ’ के कवि हैं। प्रकृति के मनोहारी रूप, सूक्ष्म सौंदर्यबोध का गहरा परिचय दोनों ने दिया। प्रकृति के अनेक रूप दोनों की रचनाओं में स्पष्टतया नजर आते हैं।

अज्ञेय ने अनुभूति की अद्वितीयता पर बल दिया। अनुभूति की प्रामाणिकता ही किसी भी कवि व्यक्तित्व की मूलभूत प्रकृति होनी चाहिए, ऐसा उनका मानना था। क्षणवादी अनुभूति को बड़ा महत्व है। दर्शन को अनुभूति में घुलाने की राह अज्ञेय ने निकाली थी। बड़े संकल्पशील व्यक्तित्व के धनी थे अज्ञेय। मर्ढेकर ने भी साहित्य सर्जना में अनुभूति के गहरे सरोकारों को बड़ा महत्व दिया था। उनका चिंतन स्वातंत्र्योत्तर मनुष्य की चिंताओं का अवगाहन करता है। मर्ढेकर की अनुभूति का फलक विशाल था। साहित्य में केवल सूक्ष्मता की बात ही नहीं करते बल्कि मानव समाज के जटिल और द्वंद्वग्रस्त प्रश्नों से रू-ब-रू होते हैं।

अज्ञेय की कविता में सूक्ष्मता है, दुर्बोधता नहीं। इस सूक्ष्मता में नयी संवेदना का साक्षात्कार

है। किंतु मर्ढेकर की संवेदना में दुर्बोधता का भाव छिपा हुआ। उनकी रचनाएँ वाच्यार्थ नकारती है, व्यंग्यार्थ का आश्रय लेती है।

अज्ञेय और मर्ढेकर की सबसे बड़ी देन भाषा को है। भाषा में, अभिव्यक्ति में प्रयोगशीलता का बड़ा सरोकार दोनों में नजर आता है। भाव, भाषा, शैली, प्रतीक, बिंब, छंद आदि में दोनों ने विद्रोही वृत्ति का अवलंब किया। भाषा का एक नया रूप गढ़ते हुए अनुभूति के नये संसार को दोनों ने रचा।

कुल मिलाकर अज्ञेय और मर्ढेकर जी के बहुमुखी व्यक्तित्व की सम एवं विषम रेखाएँ इस प्रकार हैं.....

अज्ञेय का जन्म 7 ´ÖÖ“Ö 1911 को कसिया के पुरातत्व खुदाई शिविर में हुआ था तो मर्ढेकर का जन्म महाराष्ट्र के खानदेश में ‘´Öœ’ नामक छोटे से गांव में 1 ×¤ÃÖ²Ö¸¡ 1909 को हुआ। दोनों कवियों का परिवार सुसंस्कृत ब्राह्मण परिवार था। बाल्यकाल से ही दोनों साहित्यिक वातावरण में पले। अपनी अल्पायु में ही काव्य रचना में प्रवृत्त हो गये। अज्ञेय ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में प्रत्यक्ष सहभाग लिया। जेल भी गए। वैसी कोई प्रत्यक्ष घटना मर्ढेकर के जीवन में नहीं हुई। अज्ञेय एकान्तप्रिय, मौन शिल्पी थे। तो मर्ढेकर में भी यही वृत्ति बराबर दिखाई देती है। मर्ढेकर भयंकर चुप्पा थे। अज्ञेय सौम्य, सूक्ष्म विद्रोही थे तो मर्ढेकर में भी कई अर्थों में विद्रोहीपन लक्षित होता है। उभय कवियों ने पूर्व प्रचलित काव्यधारा के विरोध में एक नयी काव्य प्रवृत्ति का प्रवर्तन किया। अज्ञेय प्रयोगवाद के पुरोधा बने, नयी कविता के मसीहा भी कहलवाए। ठीक उसी तरह मर्ढेकर ने स्वच्छंदतावाद को नकारते हुए नवकविता का प्रवर्तन किया। उभय कवियों ने अपने विभिन्न लेखों आत्मानुभवों, कविताओं आदि द्वारा नयी काव्यधारा को मूलभाषा प्रवाह के साथ जोड़ा। नये कवियों का मार्ग प्रशस्त किया। हिंदी-मराठी कविता की परंपरा में एक नया अध्याय जोड़ा। दोनों का वैवाहिक जीवन असफल रहा। निराशा की अभिव्यक्ति दोनों में है। भयंकर निराशा दोनों में व्यक्त हुई है। व्यक्ति की क्षुद्रता का अहसास मर्ढेकर में हैं। पर अज्ञेय मनुष्य जीवन को क्षुद्र नहीं कहते। बल्कि मनुष्य की सीमाओं को बतलाते हैं। मर्ढेकर शहरी जीवन के प्रॉडक्ट थे। उनकी सर्जना के केंद्र में मुंबई जैसा महानगर विराजित है। अज्ञेय महानगरीय जीवन और मशीनी संस्कृति का संकट जरूर ²ÖÝÖÖÝÖ Æü...

अज्ञेय ने मनुष्य की असाहयता, जहरीलापन (सांप) का वर्णन किया तो मर्ढेकर मनुष्य जीवन की क्षुद्रता को बताते हैं। भाषा के प्रति दोनों ने विद्रोह किया। परंपरागत भाषा, शैली और अभिव्यंजना के तमाम तेवर बदलें। अज्ञेय और मर्ढेकर के व्यक्तित्व और पारिवारिक स्थिति में वैषम्य दिखाई देता है। अज्ञेय एकांतप्रिय क्रांतिकारी, विद्रोही किन्तु मर्ढेकर में क्रांतिकारिता का अभाव है। अज्ञेय सधन

परिवार से थे। आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी थी और अपने अंतिम दिनों में दूसरों को आर्थिक सहायता कर सके, इतनी सधनता जरूर थी। किन्तु मर्ढेकर जीवन के आरंभिक समय से लेकर अंत तक आर्थिक अभावों में जीते रहे। कर्जे में ही जीवन समाप्त हुआ। अज्ञेय स्थायी रूप में एक जगह टिके नहीं, यायावरी, भटकन और अलग-अलग व्यवसाय, पेशे से जुड़े रहे। किन्तु मर्ढेकर आरंभिक वर्ष छोड़ दें तो निरंतर रेडिओ में नौकरी करते रहे, टिके रहे। अज्ञेय में महत्वाकांक्षा अधिक नहीं थी। किन्तु जीवन से उन्हें बहुत कुछ मिला। मर्ढेकर भयंकर महत्वाकांक्षी, जिद्दी थे किन्तु जीवन में असफलता (आई. ए. एस. परीक्षा में अनुत्तीर्ण) ही हाथ लगी। अज्ञेय और मर्ढेकर उभय कवियों ने हिंदी-मराठी कविता का चेहरा-मोहरा ही बदल दिया। अज्ञेय ने कविता के अतिरिक्त कहानीकार, उपन्यासकार,पत्र संपादक, निबंधकार, डायरी-लेखक तथा अतिथि व्याख्याता के रूप में हिंदी साहित्य और भाषा की सेवा की। किन्तु मर्ढेकर ने कविता, उपन्यास और नाट्य का एक प्रकार संगीतिका का सृजन किया। अज्ञेय के लेखन में वैविध्य है, अनेक विधाओं में अज्ञेय ने हाथ आजमाया किन्तु मर्ढेकर ने दो-तीन विधाओं में ही अपनी अभिव्यक्ति दी। अज्ञेय को दिर्घायु प्राप्त हुई। करीब 76 वर्ष की आयु अज्ञेय को प्राप्त हुई। जिसमें उन्होंने जीवन का भरपूर आस्वाद लिया। किन्तु मर्ढेकर को केवल 46 वर्ष का अल्पायु जीवन मिला। पर उल्लेखनीय बात ये है कि दोनों ने भारतीय भाषाओं (हिंदी-मराठी) की श्रीवृद्धि की।

अज्ञेय और मर्ढेकर दोनों ने तीन-तीन उपन्यास लिखे हैं। अज्ञेय के 'शेखर:एक जीवनी', 'नदी के द्वीप' तथा 'अपने अपने अजनबी' नामक उपन्यास उनकी प्रतिभाशीलता, सर्जनशीलता और चिंतनशीलता के सच्चे प्रमाण है। मर्ढेकर ने भी 'रात्रीचा दिवस (रात का दिन), 'तांबडी माती' (लाल मिट्टी) तथा 'पाणी' (पानी) नामक उपन्यास लिखे हैं। अर्थात अज्ञेय के 'छाया मेखल' और 'बीनू भगत' नामक दो असमाप्त उपन्यास भी रहे हैं। पर वास्तविकता यह है कि दोनों उपन्यासकारों की सर्जनशीलता इन रचनाओं के माध्यम से लक्षित होती है।

अज्ञेय और मर्ढेकर दोनों समकालीन उपन्यासकार हैं। दोनों का लेखनकाल लगभग एक-सा है। बीसवीं सदी के चौथे दशक में दोनों ने लिखना शुरू किया था। समकालीन जीवन के प्रभावों के कई रूप उभय रचनाकारों में दिखाई देते हैं। अज्ञेय का पहला उपन्यास 'शेखर : एक जीवनी' (1941) में प्रकाशित होता है। तो ठीक उसी समय मर्ढेकर का 'रात्रीचा दिवस' उपन्यास (1943) प्रकाशित हुआ है। यह विलक्षण संयोग की बात है कि दोनों भिन्न भाषा में, भिन्न परिवेश में लगभग एक ही समय लिखना आरंभ करते हैं। दोनों अपने समय के साक्षी बनकर अपनी अद्भूत सर्जनशीलता का परिचय देते हैं। अर्थात् दोनों उपन्यासकारों का रचना समय 1941 ÃÖ 1961 के बीच का रहा है। रचना और रचनाकाल के बीच द्वंद्व को स्थापित करते हुए ये रचनाकार अपने समय के भीतर उतरकर अभिव्यक्ति

का एक नया संसार रचते हैं। इनकी रचनाओं में अपने समय की अनुगूंज सुनाई पड़ती है। जहाँ अज्ञेय ने 'शेखर : एक जीवनी' में स्वतंत्रता आंदोलन, स्वातंत्र्य के प्रश्न को उठाया है (व्यक्ति स्वातंत्र्य) वहीं मर्ढेकर की रचनाओं में दोनों विश्वयुद्ध, बदलते समाजार्थिक प्रश्नों की गूंज सुनाई देती है। विशेषतः उभय उपन्यासकार अपने रचना समय में ' समग्रता' का परिचय देते हैं।

अज्ञेय और मर्ढेकर प्रयोगशील उपन्यासकार हैं। दोनों ने आशय, रूप, संरचना, भाषा और शैली के क्षेत्र में विलक्षण प्रयोग किये हैं। अज्ञेय ने जहाँ आत्मकथात्मक शैली (शेखर : एक जीवनी), पत्रात्मक शैली (नदी के द्वीप) डायरी शैली (अपने अपने अजनबी) का सार्थक उपयोग किया है। वही मर्ढेकर ने चेतनाप्रवाह शैली (रात्रीचा दिवस, तांबडी माती, पाणी) का प्रयोग इन तीनों उपन्यासों में किया है। विशेषतः स्वगत और निवेदन शैली का उत्कृष्ट अविष्कार मर्ढेकर करते हैं। जहाँ 'संवेदना पक्ष' का सवाल है, अज्ञेय ने मानव मन के आभ्यंतर लोक का सूक्ष्म विवेचन किया है। 'शेखर' में व्यक्ति के बहाने शक्ति की गाथा, 'नदी के द्वीप' प्रेम भाव का उत्कट रूप, भुवन, रेखा और गौरा के माध्यम से आधुनिक मनुष्य की तीन आधुनिक प्रवृत्तियों का उद्‌घाटन किया है। 'अपने अपने अजनबी' आसन्न मृत्यु की छाया में जी रहे पात्रों के जीवनबोध और मृत्युबोध का जीवंत साक्षात्कार कराता है। ठीक उसी समय मर्ढेकर भी संवेदना पक्ष की दृष्टि से वैविध्य को लेकर आते हैं। 'रात्रीचा दिवस' में दिकपाल की मन:स्थिति का बोध (यंत्रवत होती जिंदगी का दस्तावेज) कराया गया है। वही 'तांबडी माती' में मनुष्य की जुझारू प्रवृति के दर्शन कराये गये हैं। ठीक उसी समय 'पाणी' उपन्यास में विस्थापन की पीड़ा को उभारा गया है। अर्थात उभय रचनाकारों के उपन्यासों में संवेदना की दृष्टि से भी प्रयोगशीलता नजर आती है।

उभय उपन्यासकारों ने भाषा के विविध रूपों पर बल दिया है। वे दोनों भाषा के उत्तम कारीगर है। भाषिक चुनाव और प्रयोग में कुशलता, दक्षता का सुघड़ परिचय दोनों कराते हैं। विशेषतः शब्द चयन, वाक्य विन्यास, बोलीभाषा का प्रयोग, भाषा का सम्मिश्रित रूप उजागर किया है। यहाँ आकर दोनों नये शब्दों का निर्माण, अनुकूलन एवं समन्वयन करते हैं। यह भाषिक प्रयोगशीलता दोनों का प्रधान वैशिष्टये रहा है।

दोनों उपन्यासकारों की कृतियों में व्यक्ति और समाज के बारे में चिंताएँ व्यक्त हुई हैं। अज्ञेय हो या मर्ढेकर व्यक्ति और समाज के बीच निहित द्वंद्व को उभारते हैं। दृष्टियों में भिन्नता है किन्तु व्यक्ति के बहाने समाज और समाज के माध्यम से व्यक्ति जीवन की तमाम हलचलों को अंकित करते हैं। विशेषतः स्वतंत्रता आंदोलन, क्रांतिकारी आंदोलन तथा महायुद्धों की पृष्ठभूमि में व्यक्ति जीवन के बदलते संदर्भों की पड़ताल दोनों करवाते हैं। जहाँ अज्ञेय व्यक्ति के विद्रोह को अंकित करते हैं। (परिस्थिति, सामाजिक मूल्य, आत्मभान आदि के प्रति विद्रोह) वही मर्ढेकर विद्रोह तो नहीं

किंतु व्यक्ति के भीतर अंतरनिहित जुझारू (लाल मिट्टी) प्रवृत्ति को दर्शाते हैं। दोनों रचनाकारों ने मनुष्य के अस्तित्व से संबंधित प्रश्नों पर चिंता और चिंतन व्यक्त किया है। अज्ञेय का समग्र चिंतन अस्तित्ववाद से प्रेरित है। उन्होंने पूर्व और पश्चिम के दर्शन का सम्मिलन किया, पचाया। मनुष्य के आभ्यंतरिक लोक को उघाडते हुए उसकी स्थिति का बोध वे कराते हैं। इसलिए अज्ञेय के उपन्यासों में अस्तित्ववादी शब्दावली या अवधारणाओं का प्रत्यय यत्र तत्र मिलता है। स्वतंत्रता, वरण, विसंगति, मृत्यु का डर ये ऐसे शब्द हैं जो अस्तित्ववादी चिंतन की पृष्ठभूमि से उभरते हैं। अज्ञेय ने क्षण का महत्त्व, स्वतंत्रता का प्रश्न, मृत्युबोध की पीड़ा, वरण की स्वतंत्रता को गहरे में उभारा है। अपने तीनों उपन्यासों के केंद्र में वे अस्तित्ववाद को लेकर आते हैं। इसलिए यह कहना युक्तियुक्त होगा कि 'हिंदी में पहली बार उपन्यास को दर्शन का धरातल मिला, वह पश्चिमी लेखन की समकक्षता में आ गया।'

मर्ढेकर की तीनों रचनाएँ मनुष्य के अस्तित्व से संबंधित प्रश्नों से जूझती है। 'रात्रीचा दिवस' का दिकपाल यंत्रयुग से संत्रस्त है। मशीनी सभ्यता ने मनुष्य जीवन को घेर लिया है। मनुष्य यंत्र का पूर्जा बनकर रह गया है। अपने अस्तित्व को लेकर मनुष्य चिंतामग्न है। हाथ से सबकुछ फिसलते जाने का (हरिणी सेशाल) भाव व्यंजित हुआ है। वहीं 'लाल मिट्टी' में टुटे, हारे, विकलांग अवस्था में क्षुद्र जीवन जीने के लिए विवश मनुष्य की कथा-व्यथा मर्ढेकर बुनते हैं। तो 'पानी' के माध्यम से विस्थापित मनुष्य के दर्द को अंकित करने का सशक्त प्रयास किया गया है। अर्थात दोनों रचनाकार अपने उपन्यासों में अस्तित्वबोध कराते हैं। यह पश्चिमी दर्शन का अनुकरण नहीं है, यह भारतीय अस्तित्ववाद है जो अपने समय, सभ्यता और संस्कृति से जुड़ा हुआ है।

उभय उपन्यासकारों की रचनाओं में ' आधुनिकता' का अक्स मिलता है। आधुनिक जीवन के परिप्रेक्ष्य में उभरते हुए आधुनिक चरित्र, आधुनिक संवेदनाओं का विकास, परंपरागत प्रतिमानों को तोड़ने का प्रयास, स्वतंत्रता, मुक्ति, मृत्युबोध जैसे प्रत्ययों का सहज उद्‌घाटन इन रचनाओं में मिलता है। आधुनिकता के आईने में रचनाकार मनुष्य जीवन पर भाष्य करता है। आधुनिकता के अनेक बिंदुओं को दोनों रचनाकारों ने पूरी शिद्दत से उभारा है। अज्ञेय ने 'शेखर' में आधुनिकता की चुनौती को गहरे रूप में स्वीकारने के लिए शिल्पगत प्रयोग किए। यहाँ आकर अज्ञेय आस्था-अनास्था, नैतिकता-अनैतिकता, हिंसा-अहिंसा के सवालों पर खुलकर सोच-विचार करते हैं। विशेषतः सामंतवाद का खुलकर विरोध (बाबा, रामजी, मोहसीन) करते हैं। इतना ही नहीं आधुनिकता के झूठे मानों से प्रभावित और यांत्रिक जीवन की नीरसता से ऊबे हुए ये व्यक्ति (नदी के द्वीप) उत्तेजना की खोज में अपनी एक-रसता को डूबो देते हैं। आधुनिकता की बुनियादी समस्याओं से अज्ञेय हमें परिचित कराते हैं। उन्होंने इसे सर्जनात्मक स्तर और वैचारिक स्तर पर उठाया है, इसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। 'अपने अपने अजनबी' में भी अज्ञेय ने मृत्यु का साक्षात्कार कराते हुए

आधुनिकता का बोध कराया है। विशेषतः आधुनिक मनुष्य असुरक्षा, असहायता और मृत्यु का डर लेकर जीने के लिए कैसे अभिशप्त है, इसे बखूबी दर्शाया गया है।

अज्ञेय के तीनों उपन्यासों में आधुनिक मनुष्य के जीवन की नियति का सजग अंकन हुआ है। विशेषतः आधुनिकता का प्रमुख लक्षण 'प्रखर बौद्धिकता' है। प्रखर बौद्धिकता के समावेश से उनकी कृतियाँ कहीं-कहीं जटिल, बोझिल और वैचारिक दृष्टि से आक्रांत लगती है। किन्तु वास्तविकता ये है कि अज्ञेय अपनी रचनाओं में बौद्धिकता, गैर रोमांटिक वृत्ति, स्वचेतनता और भाषिक सर्जनात्मकता पर बल देते हुए नजर आते हैं। मानव जीवन और मानव व्यक्तित्व के अधिकाधिक निर्वेयक्तिक होते जाने के खतरे का भी संकेत देते हैं। व्यक्तित्वपरक मूल्यों का विघटन और उससे उत्पन्न खतरे की ओर लेखक संकेत करता है।

मर्ढेकर के तीनों उपन्यासों में आधुनिकता का परिप्रेक्ष्य देखने को मिलता है। यह उपन्यासकार औद्योगिकरण, मशीनी सभ्यता का आगमन, महायुद्धों के भयावह प्रभावों से गुजरता हुआ मनुष्य, उसके जीवन की असहायता, अकेलापन, ऊब और संत्रास का प्रभावी अंकन करता है। 'मनुष्य जीवन में आये बिखराव का चित्रण जहाँ 'रात का दिन' उपन्यास में हुआ है' वही लेखक बताता है कि मनुष्य का वस्तु में कैसे रूपांतरण हो रहा है। मनुष्य का वस्तुकरण होते जाना भयावह चीज है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में उत्पादित मशीनी मानव, उसका जीना, उसके अपने अद्भूत संसार का अनुभव आदि को मर्ढेकर अंकित करते हैं। भीतर से पूरी तरह बेचैन नायक को खड़ा करना (रात का दिन) मर्ढेकर का उद्देश्य है और इसमें उन्हें अपार सफलता मिली है। ठीक उसी तरह 'तांबडी माती' उपन्यास में मर्ढेकर बताते है कि आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से मनुष्य के जीवन में आयी रिक्तता, मनुष्य के व्यक्तित्व और सामाजिक संस्थाओं का विघटन होते जाना, पूंजीवादी व्यवस्था के अंतर्गत मनुष्य जीवन का क्षूद्र होते जाना आदि को उभारा गया है। अर्थात आधुनिकता के अनुकूल, प्रतिकूल प्रभावों को झेलते हुए मनुष्य को अंकित करना लेखक का उद्देश्य दिखाई देता है। इस आधुनिकीकरण के परिणाम गांव और शहर पर बराबर दीख रहे है। मनुष्य पर हो रहे इन परिणामों की दखल वे अपने उपन्यासों में लेते हैं। उपन्यासकार नवपूँजीवाद से प्रेरित इकाईयों पर प्रकाश डालता है। उत्पादन व्यवस्था में आया हुआ परिवर्तन, सत्ता का क्रूर चेहरा, उपनिवेशवाद, विश्वयुद्धों के भयावह परिणाम, अंततः अकेलापन, ऊब और पीड़ामय जीवन जीने के लिए विवश मनुष्य की दुर्दशा को बताना लेखक का उद्देश्य है। मर्ढेकर अपने पात्रों के द्वारा आधुनिकता के बरक्स औद्योगिकरण के परिणामों को झेलते हुए दिखाते हैं। लेखक आधुनिकता के अंतर्विरोध को बखूबी चित्रित करता है। जीवन में आयी अस्थिरता, विडंबनामय जीवन स्थितियों का प्रभावी वर्णन आया है। 'लाल मिट्टी' के माध्यम से एक सवाल उठाया गया है, 'विश्व में कौन किसका होता है? यह सनातन प्रश्न हमें बेचैन

कर देता है। मिट्टी से दूर होते जाने का दर्द भी यहाँ अंकित हुआ है। वस्तुतः आधुनिकता के परिणामों को भुगतते मनुष्य को वर्णित किया गया है। यह मूल्य विघटन का समय है। पुराने मूल्य ध्वस्त हो रहे हैं नये मूल्यों के उदय के चिह्न नजर नहीं आ रहे हैं। ऐसी स्थिति में कशमकश में जी रहे मनुष्य को लेखक उभारता है। मनुष्य के भीतर जो सनातन द्वंद्व चल रहा है, उसे साकार करने का प्रयास यहाँ हुआ है। मर्ढेकर ने अपने तीसरे उपन्यास 'पानी' में विस्थापन की समस्या को उठाया है। औद्योगिकरण, भौतिक विकास, ग्रामीण समाज तक आधुनिकता की चकाचौंध का आगमन, परिवेश का बदलते जाना, टूटने का दर्द, गांव से विलगाव, संक्रमण अवस्था से गुजरता हुआ ग्रामीण समाज, युद्ध की भयावह स्थिति का मार्मिक अंकन इस उपन्यास में आया है। विशेषतः युद्ध आधुनिक जीवन का प्रतीक बनकर उभरता है। अज्ञात कारणों के लिए लडते हुए मनुष्य को वर्णित किया गया है। मूल से उखड जाने का दर्द, बीच में लटके रहने की दशा, कहीं पर भी टिक न पाने की बेचैनी, अस्तित्व से संबंधित मूलभूत प्रश्न, व्यक्तित्व की खोज, जीवन में आयी हुई रिक्तता, उदासीनता आदि का प्रभावी चित्रण मर्ढेकर करते हैं। अर्थात जीने के लिए निरंतर चल रहे संघर्ष को कलात्मक ढंग से लेखक उभारता है। कुल मिलाकर मर्ढेकर के तीनों उपन्यासों में 'आधुनिकता' के अनेकानेक आयाम लक्षित होते हैं। आधुनिकता से प्रभावित व्यक्ति और समाज को वर्णित करना लेखक का उद्देश्य दिखाई देता है, जिसमें उन्हें सफलता मिली है। मराठी आधुनिकतावादी उपन्यासों का प्रमुख लक्षण 'विस्थापन' है। इस आशयसूत्र को लेकर 'रणांगन', 'पानी', 'शिप्रा', 'सरहद', 'बनगरवाडी', 'धग', 'कोसला', 'झाडाझडती', 'ताम्रपट' आदि उपन्यास लिखे गये हैं, जो विशेष उल्लेखनीय बात है।

अज्ञेय और मर्ढेकर दोनों ने आधुनिकता की चुनौती का साक्षात्कार संवेदना और चिंतन के स्तर पर किया। दोनों की कृतियों में समस्याओं का निदान न होकर प्रश्नवाचक चिह्नों का आकलन अधिक हैं। जहाँ अज्ञेय अपने उपन्यासों के माध्यम से परम्परा और निष्क्रिय मूल्यों को नकारने का उपक्रम करते हैं वही मर्ढेकर भी ठीक उसी समय मराठी में परंपरागत मूल्यों को नकारते हुए नये मूल्यों का आग्रह करते हैं। बौद्धिकता, मनोवैज्ञानिकता, अस्तित्व से संबंधित प्रश्नों की चर्चा दोनों ने की हैं। दोनों अनुभव के लेखक हैं। इसलिए दोनों अनुभव की भाषा रचते हैं, बोलते हैं। भाषा के क्षेत्र में दोनों ने नूतन प्रयोग किये। नये शब्दों का निर्माण, अनुकूलन और समन्वयन करते हैं। पुराने शब्दों में नया अर्थ भरते हैं। दोनों के उपन्यासों में अन्य भाषा-भाषियों की कविताओं का समुचित उपयोग हुआ है। काव्यमय गद्य और गद्यमय काव्य का पाठ चुनते हैं। भाषा में दृश्यात्मकता, बिंब प्रधानता और ताजगी का अनुभव होता है। इसलिए ये कहा जा सकता है कि दोनों ने 'अनुभव के सच की भाषा' का इस्तेमाल किया है। ये दोनों भाषा के जादूगर है। भाषा को सूक्ष्म, मर्मग्राही और अर्थवाही बनाने में दोनों ने महारत हासिल की है।

अज्ञेय शहरी जीवन का मार्मिक अंकन करनेवाले उपन्यासकार हैं। उनके उपन्यासों में गांव नहीं के बराबर हैं। 'शेखर', 'नदी के द्वीप' और 'अपने अपने अजनबी' में गांव या देहात का चित्रण नहीं है। मर्ढेकर गांव और शहर की पृष्ठभूमि का कलात्मक चित्रण करते हैं। वे जितने गांव के लेखक हैं, उतने ही शहर के। शहरी सभ्यता, उसके अंतर्विरोध, तमाम विसंगतियों का सूक्ष्म वर्णन मर्ढेकर करते हैं।

अज्ञेय के उपन्यासों में प्रखर बौद्धिकता या गहरी चिंतनशीलता का बोध होता है। परिणामतः प्रखर बौद्धिकता से कहीं कहीं नीरसता, ऊबाउपन आ जाता है। बौद्धिकता और वैयक्तिकता के आग्रह से अज्ञेय के उपन्यास आक्रांत हैं। मर्ढेकर के उपन्यासों में बौद्धिकता या वैयक्तिकता की अपेक्षा सीधी, सरल सामाजिकता का आशय दृष्टिगोचर होता है।

अज्ञेय ने 'शेखर' में मुक्ति की खोज, 'नदी के द्वीप' में वरण की स्वतंत्रता और 'अपने अपने अजनबी' में मृत्यु बोध कराया है। व्यक्ति, अस्तित्व, अस्मिता से संबंधित प्रश्नों को उठाते हैं। 'नदी के द्वीप' में अस्तित्ववादी चिंतन के दोनों पक्ष 'वरण की स्वतंत्रता' और 'मृत्युबोध' का सहज अंकन हुआ है। वस्तुतः 'नदी के द्वीप' प्रेमप्रधान उपन्यास है। 'अपने अपने अजनबी 'एक दार्शनिक उपन्यास है, 'वरण् की स्वतंत्रता' इसका प्रमुख स्वर रहा है। अज्ञेय के उपन्यासों में 'प्रश्नाकुलता' झांकती है। उनके कृतित्व में अनुभव के सातत्य और नैरंतर्य को समग्रता में पाया जा सकता है। किंतु मर्ढेकर दार्शनिक बातें नहीं करते। सामाजिक यथार्थ का उज्ज्वल पक्ष लेकर आते हैं। मनुष्य जीवन में आयी रिक्तता, असहायता और ऊब को पूरी ताकत से उभारते हैं। वे मिट्टी से जुड़कर संघर्ष की मुद्रा धारण कर लेते हैं। मनुष्य दुःखी क्यों है? अकेला क्यों है? आदि प्रश्नों से जूझते हैं।

अज्ञेय ने हिंदी उपन्यासों की परंपरा में अमर पात्रों का निर्माण किया। तीनों उपन्यासों के पात्र अपनी विशिष्टता, युगबोधता और जीवनोन्मुखी दृष्टि के चलते अपनी अमिट छाप छोड़ देते हैं। 'शेखर : एक जीवनी' के शेखर और शशि, 'नदी के द्वीप' के भुवन, रेखा और गौरा तथा 'अपने अपने अजनबी' के सेल्मा और योके अपने समय और समाज के प्रतिनिधि पात्र बनकर आते हैं। किंतु मराठी उपन्यासकार मर्ढेकर अपने तीनों उपन्यासों (रात का दिन, लाल मिट्टी और पानी) के माध्यम से किसी विशिष्ट या उल्लेखनीय पात्र का सृजन नहीं कर पाते हैं। शायद वह उनका उद्देश्य भी न रहा हो। किंतु अपने समय और परंपरा पर प्रभाव डालने वाले किसी भी पात्र की सृष्टि मर्ढेकर नहीं कर पाते हैं।

उभय उपन्यासकारों की औपन्यासिक सर्जना में सबसे बड़ा विसादृश्य 'स्त्री' की रचना को लेकर है। अज्ञेय ने अपने रचनात्मक धरातल पर शशि, रेखा और गौरा जैसे अमर स्त्री पात्रों का निर्माण किया। ये स्त्रियाँ अपनी परंपरा, युगीन मान्यताओं को तोडती हुई नजर आती है। ये पुराने दायरे को तोडकर मूल्यों और संवेदनाओं का नया घरौंदा बनाती है। नारी जीवन को 'आँसू' और 'दूध' से अलग करके उन्हें उसे एक नयी सार्थकता प्रदान करते हैं। उनके पास चुनाव की स्वतंत्रता है। वे

अपने निर्णय ले सकती हैं। इन स्त्री पात्रों के भीतर प्रबल आत्मविश्वास हैं और निरंतर जीवन के अर्थ की तलाश में लगी हुई है। सहजता, निश्छलता और समर्पित प्रेम संवेदना ने उनके व्यक्तित्व को एक स्वतंत्र किस्म की निजता और गरिमा दी है। अज्ञेय द्वारा वर्णित स्त्री पात्र अपनी विशिष्टता और विभिन्नता में जिस दिशा में अग्रसर होती है वह स्वतंत्रता की ओर जाती है। किंतु मराठी उपन्यासकार मर्ढेकर अपने तीनों उपन्यासों में 'स्वतंत्र स्त्री की छवि' उभारने का प्रयास करते नजर नहीं आते। विशेषतः उनके उपन्यासों में जो स्त्री पात्र आए हैं, वे सहायक या गौण रूप में। अधिकांश स्त्री पात्र ग्रामीण जीवन से संबंधित हैं अपवाद 'तांबडी माती' उपन्यास की सुलभा लिखिते। उसमें भी आत्मसंघर्ष या आत्मचेतना या आत्मशोध का अभाव दिखाई देता है। स्त्री पात्रों की दृष्टि से मर्ढेकर के उपन्यास परंपरा का निर्वहन करते हुए नजर आते हैं। अपनी स्वतंत्र मुद्रा अंकित नहीं कर पाते। विसादृश्यता का एक और महत्त्वपूर्ण बिंदू लक्षित होता है उभय रचनाकारों की वस्तुपरकता और अंतर्दृष्टि में भिन्नता। अज्ञेय आत्मनिष्ठ हैं तो मर्ढेकर उनसे भिन्न खडे होते दिखाई देते हैं। वे वस्तुनिष्ठ हैं। अज्ञेय जहाँ साहित्य में समाज रच रहे थे वही मर्ढेकर साहित्य को सीधे समाज से जोड रहे थे।अज्ञेय के साहित्य की मूल ध्वनि व्यक्तित्व चेतना की ओर प्रवाहित है। भिन्न परिवेश और भिन्न मानसिक बुनावट को जीते हुए व्यक्ति किस प्रकार कार्य व्यवहार करता है, इसे अज्ञेय दर्शाते हैं किंतु मर्ढेकर अपने सृजन में 'परिस्थिति बोध' को दर्शाना अपना उद्देश्य मानते हैं।

अज्ञेय ने अपने उपन्यासों में शैली वैविध्य को अपनाया है। अपनी बात को पूरजोर तरीके से रखने के लिए शैली में वैविध्य लाना भी आवश्यक होता है। 'शेखर : एक जीवनी' में आत्मकथात्मक शैली, 'नदी के द्वीप' में पत्रशैली तथा 'अपने अपने अजनबी' में डायरी शैली का समुचित उपयोग किया है। अलावा इसके यथास्थान उद्धरण शैली, प्रत्यग्दर्शन शैली, चेतनाप्रवाह शैली और स्वप्न शैली का प्रयोग किया है। वही मर्ढेकर अपने तीनों उपन्यासों में निवेदन, स्वगत, चेतनाप्रवाह और पत्र शैली का अवलंब करते हुए दिखाई देते हैं। शैली की दृष्टि से अज्ञेय अधिक सशक्त हैं।

हम कह सकते हैं कि अज्ञेय और मर्ढेकर के आलोचकीय चिंतन में कई साम्य स्थल और वैषम्य के कई बिंदू दिखाई पडते हैं। अज्ञेय सौंदर्य विधान में 'सत्य' और 'तथ्य' के निरूपण को महत्व देते हैं, तो मर्ढेकर सौंदर्य ही एकमेव और अंतिम मूल्य मानते हैं। दोनों सौंदर्यवादी, कलावादी आलोचक हैं। दोनों अपनी साहित्य परंपराओं से जुडे हुए हैं। दोनों ने पश्चिमी चिंतन को पचाकर भारतीय दर्शन में ढालने का सशक्त प्रयास किया है। ये दोनों समीक्षक साहित्य समीक्षकों को उत्तरदायित्व की प्रेरणा देते हैं। साथ ही अपने चिंतन के प्रति 'प्रामाणिकता' का बोध कराते हैं। दोनों आलोचक मनुष्य के सत्य और मूल्यबद्ध अंतः सूत्र को तलाशते हैं। और दोनों छोरों के बीच सत्य को बचाना चाहते हैं। दोनों में मनुष्य के सत्य के प्रति रागात्मकता का बोध होता है। विशेषतः दोनों की

समीक्षा परअनेक आक्षेप उठाये गये हैं किंतु समय की कसौटी पर दोनों की समीक्षाएँ खरी उतरती हुई नजर आती है। वर्तमान समय में इन दोनों की समीक्षा का पुनर्पाठ होने की आवश्यकता है, यही समय की मांग है।

अज्ञेय और मर्ढेकर के साहित्य-व्यक्तित्व का बड़ा प्रभाव हम परिवर्ती लेखकों, कवियों और आलोचकों पर अनेक रूपों में देख सकते हैं। जहाँ अज्ञेय और मर्ढेकर बडे कवि हैं, उतना ही व्यापक प्रभाव उनके कवि रूप में हिंदी-मराठी साहित्य पर लक्षित होता है। अर्थात् उपन्यासकार के रूप में अज्ञेय निश्चित दो कदम आगे हैं। वे नयी प्रवृत्ति, नयी शैली और नयी तकनीक की धारा को निर्मित करते हैं। कहानीकार के रूप में तो अत्यंत श्रेष्ठ कहानीकार हैं। मर्ढेकर ने कहानियाँ नहीं लिखी। मर्ढेकर के उपन्यासों की परंपरा का निर्वाह आगे नहीं हो सका। जहाँ तक आलोचना का प्रश्न मर्ढेकर के 'सौंदर्यशास्त्र' ने मराठी परंपरा को समृद्ध किया। साथ ही चिंतन की नयी भूमि पर लाकर खड़ा किया। वाद-विवाद और संवाद का नया कलेवर उपस्थित किया। अज्ञेय आलोचक के रूप में न स्थापित हो सके और न ही कोई स्थायी प्रभाव निर्माण कर सके। पर सच्चाई यह है कि इन दोनों साहित्यकारों ने दो भिन्न भाषा में नया प्रवर्तन किया, अपनी प्रतिभा से नये कीर्तिमान स्थापित किए। इतना ही नहीं आनेवाली पीढी को 'लीक छोड़ते वायूयान' की तरह पथप्रदर्शन किया। इसी कारण इन दोनों के योगदान को भारतीय साहित्य हमेशा याद करता रहेगा, पुनर्पाठ करता रहेगा।

मूल्यांकन :

उपर्युक्त तमाम निष्कर्षों के आधार पर अज्ञेय और मर्ढेकर के साहित्य का मूल्यांकन किया जा सकता है। विशेषतः दो भिन्न भाषी, भिन्न प्रदेश, भिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेश में पले साहित्यकारों का निम्नांकित मुद्दों के आधार पर मूल्यांकन किया जा सकता है। इन दोनों के व्यक्तित्व, साहित्यिक योगदान और संभावनाओं को लेकर कुछ प्रश्न हैं, इन प्रश्नों के आलोक में इन दोनों साहित्यकारों का भारतीय परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन हो सकता है-

1. हिंदी-मराठी साहित्य में उद्भूत 'आधुनिकता' की पृष्ठभूमि में कौन-सी सम-विषम रेखाएँ दिखाई देती है?
2. साहित्य में आधुनिकता के तत्व को ले आने का श्रेय क्या अज्ञेय और मर्ढेकर को दिया जा सकता है?
3. अज्ञेय और मर्ढेकर के साहित्यिक अवदान को 'मील के पत्थर' के रूप में माना जा सकता Æ?
4. अपनी अभिव्यक्ति से इन दोनों ने कथ्य, संवेदना, चरित्र, भाषा और शैली के स्तर पर कौन-से नये प्रतिमान स्थापित किए?

5. इन दोनों ने शिल्प के स्तर पर कौन-से नये प्रयोग किए हैं?
6. क्या इन दोनों कृतिकारों ने अनुभूति की नई जमीन तैयार की है? क्या अनुभूति के नये क्षितीजों को स्पर्श किया है?
7. क्या इन दोनों रचनाकारों ने नई-पीढी की सर्जनशीलता पर गहरा प्रभाव निर्माण किया है?
8. क्या इन दोनों साहित्यकारों में भारतीय साहित्य की दिशा बदलने, उसे नया मोड़ देने का सामर्थ्य दिखाई देता है?

आधुनिक हिंदी साहित्य का दौर नवजागरण काल से होता है। भारतेंदु आधुनिक युग के प्रणेता बने, गद्य के उन्नायक बनें। ब्रिटिशों का आगमन, शिक्षा का आरंभ, मशीनी सभ्यता का विकास, विज्ञान के खोज, तकनीकी विकास और देश का बदलता आर्थिक ढाँचा, ये वे पदचिह्न हैं, जिनसे आधुनिकता के आने की करतल ध्वनि सुनाई देती है। समाज, संस्कृति और भौतिक जीवन में आते बदलावों ने आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को गति दी। किंतु आधुनिकता को एक तत्व के रूप में साहित्य के अंतर्गत प्रतिष्ठित करने का श्रेय अज्ञेय को ही जाता है। 'तारसप्तक' (1941) का प्रकाशन आधुनिकता का प्रस्थानबिंदू है। यहाँ से साहित्य की पूर्व परंपरा को नकारकर नये मूल्यों का आग्रह, प्रतिष्ठा करने का प्रयास दिखाई देता है। अज्ञेय प्रयोगवाद के प्रवर्तक ही नहीं, नयी कविता के पुरोधा बने। परिणामतः आधुनिकता को एक मूल्य के रूप में स्वीकारने का साहस और पूर्व परंपरा को नकारकर एकदम नयी चेतना पैदा करने का उद्दाम उत्साह उनमें दिखाई देता है। इसलिए 'तारसप्तक' और अज्ञेय की सर्जनात्मक उपस्थिति 'आधुनिकता' का प्रस्थानबिंदू है। ठीक इसी तरह मराठी में म. फुले को (तृतीय रत्न 1855) आधुनिक मराठी साहित्य का उद्गाता माना जा सकता है। हालांकि इसका विकास 'तुतारी' (तुरही) में नये युग का नया आगाज हुआ है। मराठी प्रदेश में 1940 तक आते-आते मध्यवर्ग का उदय, यंत्र युग का प्रारंभ, दो महायुद्धों की विभीषिका को झेल चुका मनुष्य, असहायता, क्षुद्रता और विवशता को अनुभव किया जा रहा था। निराशा, अनास्था, परंपरा को तोड़ने की चाह और परात्मभाव मराठी भूमि में प्रवेश कर चुका था। मर्ढेकर का आगमन इस पूरे परिप्रेक्ष्य होता है। वे 'बेचैनी का समाजशास्त्र' रचते हैं। उनकी 'कांही कविता' (कुछ कविताएँ) और 'शिशिरागम' की कुछ कविताओं से आधुनिकता का प्रस्थान होता है। इसलिए मराठी में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया 1885 के आसपास होती है किंतु आधुनिकता का प्रारंभ मर्ढेकर की कृतियों से होता है।

यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि, हिंदी-मराठी साहित्य में 'आधुनिकता ' को एक मूल्य के रूप में स्थापित करने का श्रेय अज्ञेय और मर्ढेकर को ही जाता है। उसका कारण यह है कि, दोनों की रचनाएँ एक युग समाप्ति की घोषणा करती है और नये युग के आगमन का सूचन करती है। अर्थात स्थापित मूल्य व्यवस्था से विद्रोह करते हुए दोनों ने साहित्य के क्षेत्र में अपना स्वतंत्र 'स्पेस'

निर्माण किया। ये एक प्रकार से 'अनुभूति' की प्रामाणिकता' को लेकर आग्रह का रूप धारण कर लेता है। साहित्य अब अनुभव की भाषा बोलने लगता है। सूक्ष्म अनुभूति, आभ्यंतरिक लोक ओर जीवन के कोलाहल (अंतर-बाहय) का जीवंत चित्रण होने लगता है। इसी वजह से अज्ञेय और मर्ढेकर को हम आधुनिकता का प्रतिभू मान सकते हैं।

अज्ञेय और मर्ढेकर ने हिंदी मराठी साहित्य को अपनी अनाविल दृष्टि से समृद्ध किया। ऐसी रचनाएँ दी, जिन्होंने नये युग का सूत्रपात किया। अज्ञेय ने 'शेखर : एक जीवनी' , 'नदी के द्वीप' और 'अपने अपने अजनबी' ने आधुनिकता की नयी व्याख्या भी। स्वाधीनता की चेतना, वरण की स्वतंत्रता, मूल्यबोध को नया अविष्कार किया। अज्ञेय अपने समस्त रचना संसार से हिंदी साहित्य में 'मील के पत्थर' के रूप में माने जाते हैं। उनका साहित्यिक कर्म आनेवाले समय का पथ प्रदर्शन करता है।

इन दोनों रचनाकारों ने अभिव्यक्ति के स्तर पर नये प्रयोग किए। कथ्य,संवेदना, चरित्र, भाषा और शैली के स्तर पर नूतनता का दामन पकड़ा। अज्ञेय व्यक्ति के आभ्यंतरिक यथार्थ को लेकर आए। अस्तित्ववादी चिंतन और मनोविज्ञान के गहरे में जाकर मानवीय चिंताओं का अवगाहन अपने साहित्य के माध्यम से उन्होंने किया। 'व्यक्तिप्रधान उपन्यास' लेखन का सूत्रपात अज्ञेय ने ही किया। चेतना प्रवाह शैली, प्रत्यग्दर्शन प्रणाली और आत्मकथात्मक उपन्यास लेखन का प्रस्थान अज्ञेय से ही होता है। 'शेखर' में व्यक्ति, 'नदी' में प्रेम, अपने अपने अजनबी में वरण की स्वतंत्रता आदि मुद्दों को उठाकर भारतीय जनमानस को आंदोलित किया। व्यक्ति के बहाने शक्ति की गाथा, आधुनिक संवेदनाओं का विकास और आसन्न मृत्यु की छाया में जी रहे मनुष्यों की छटपटाहट उनको पूरी परंपरा में अलग स्थान प्रदान करती है। अपनी कविता के माध्यम से भी उन्होंने कथ्य, भाषा और बिंबों, प्रतीकों में नयी दृष्टि का प्रत्यय दिया। साथ ही अनुभव के नये विश्व से परिचित कराया। एक नया मोड उपस्थित किया। यह मोड़ व्यक्तिवादी चेतना का है। यहाँ साहित्य के केंद्र में 'व्यक्ति' आता है, व्यक्ति के बहाने समाज। अपनी क्रांतदर्शी जीवनदृष्टि, समकालीनता और समकालीनता से आगे निकलकर सार्वभौमिकता तक पहुँचने का उनका प्रयास नये कीर्तिमान स्थापित करता है।

उनकी जीवनदर्शी कहानियाँ हिंदी साहित्य के शिखरकलश बनती है। मर्ढेकर ने भी मराठी साहित्य प्रवाह को एकदम परिवर्तित किया। युद्ध पीड़ित मनुष्य की दुर्दशा, यंत्र सभ्यता से कुचले जाने की स्थिति, महानगरीय जीवनबोध और जीवन की आपाधापी का जीवंत चित्र मर्ढेकर उपस्थित करते हैं। ग्रामीण परिवेश के साथ जोड़कर वैश्विक परिदृश्य तक फैलने का सामर्थ्य उनकी रचनाओं में लक्षित होता है। इसी कारण उनकी कविताएँ बेचैनी का भाव निर्माण करती हैं। अमूर्तता और बौद्धिकता का दामन पकडती है। नये समाज के नये प्रश्नों से हमें जोडती है, अंतर्मुख करती हैं। सौंदर्य आणि साहित्य (सौंदर्य और साहित्य) कृति ने मराठी समीक्षा में नया भावबोध, चिंतन प्रदेश सुनिश्चित

किया। आज भी मर्ढेकर के सौंदर्यशास्त्र की चर्चा किए बगैर मराठी सौंदर्यशास्त्र अधूरा है। मर्ढेकर ने मराठी में कथ्य, संवेदना, भाषा और शैली के स्तर पर नूतन प्रयोग किए। चेतनाप्रवाह शैली में लिखे गये उपन्यास, 'पादाकुलक' छंद में लिखी गई कविताएँ और सौंदर्यशास्त्रीय दृष्टि से की गई कलावादी स्थापनाएँ उन्हें अपने पूर्ववर्तीयों से पृथक कर देती है। उनकी प्रतिभा का लोहा मानना ही पडता है। विशेषतः रात्रीचा दिवस (रात का दिन) में व्यक्ति की आंतरिक छटपटाहट, द्वंद्व, सपनों को टूटते जाने की कशमकश अंकित हुई है। तांबडी माती (लाल मिट्टी) में ग्रामीण परिवेश में जी रहे मनुष्यों के आंतरिक और बाह्य संघर्ष को उभारा गया है। तो 'पानी' में विस्थापन की पीड़ा का सजग अविष्कार हुआ है। स्वगत, निवेदन, चेतना प्रवाही विवेचन एक नये परिदृश्य को खोलता है। इसी कारण इन दोनों ने अनेक विधाओं में अपनी सीमाओं को पहचानते हुए नयी चीजें दी। 'शेखर' का शेखर, 'नदी के द्वीप' की रेखा और 'अपने अपने अजनबी' की सेल्मा हमें नया बोध देते हैं। अपने युग और वर्ग का सजग प्रतिनिधित्व करते हैं। इसलिए यह कहा जा सकता है कि अज्ञेय और मर्ढेकर ने इस क्षेत्र में निश्चित रूप से उल्लेखनीय योगदान दिया है।

अज्ञेय और मर्ढेकर ने शिल्प के स्तर पर नूतन प्रयोग किये। शेखर में आत्मकथात्मक, प्रत्यग्दर्शन प्रविधि का अवलंब, नदी के द्वीप में पत्र शैली, प्रत्यग्दर्शन प्रणाली का सुबोध परिचय तथा 'अपने अपने अजनबी' में डायरी शैली का उत्कृष्ट नमूना पेश किया गया है। उनकी कविताएँ भी अभिव्यंजना की दृष्टि से नया कलाबोध और मूल्यबोध अंकित करती है। मर्ढेकर ने भी लय सिद्धांत का प्रतिपादन करते हुए साहित्य को सौंदर्यशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में देखा। प्रत्यग्दर्शन प्रणाली, चेतनाप्रवाह प्रविधि का अवलंब करते हुए शिल्प सजगता का प्रमाण दिया है। उनकी कविताएँ महानगरीय जीवन के जीवंत दृश्य उपस्थित करती है। विशेषतः दुःखबोध चिरंतन रूप में अभिव्यक्त हुआ है। तात्पर्य यही है कि अज्ञेय और मर्ढेकर ने शिल्प योजना में विलक्षण प्रयोग किये। शब्द योजना, वाक्य योजना, छंद योजना, अलंकार योजना, और पुराने शब्दों में नया अर्थ भरने का सामर्थ्य उनके यहाँ दिखाई देता Æ...

इन दोनों कृतिकारों ने अनुभूति की नई जमीन तैयार की है। व्यक्ति और समाज का द्वंद्व, व्यक्ति को समग्रता में पकडने का प्रयास, प्रकृति के साथ अभिन्नतम जुड़ाव, समकालीन जीवन यथार्थ से परिचित कराते हुए स्वाधीनता बोध, वरण की स्वतंत्रता, कलाबोध, मूल्यबोध उन्होंने जगाया। निर्मित किया। ये दोनों अनुभूति के नये क्षितीज को स्पर्श करते हैं। जहाँ अज्ञेय व्यक्ति प्रधान उपन्यासकार के रूप में स्थापित हुए। वहाँ मर्ढेकर ग्रामीण परिवेश में सांस ले रहे, अपनी भूमि और माटी से जुड़े हुए लोगों की व्यथा-कथा की प्रस्तुति करते हैं। युद्ध की मार झेलते हुए गांव को दिखाते हैं। उनके भीतर उभरी हुई असुरक्षा, भय, असहायता को प्रस्तुत करते हैं। अनुभूति का नया कलेवर

लेकर ये दोनों आते हैं। अपनी कविता, उपन्यास, कहानियाँ (अज्ञेय) और समीक्षा से हिंदी-मराठी साहित्य को संपन्न बनाते हैं।

अज्ञेय और मर्ढेकर का परवर्ती पीढ़ी पर गहरा प्रभाव दिखाई देता है। यह प्रभाव अंतर्वस्तु, भाषा और शैली के स्तर पर लक्षित होता है। अज्ञेय के प्रभाव को लेकर धर्मवीर भारती, श्रीकांत वर्मा, गिरिजाकुमार माथुर, जगदीश गुप्त, लक्ष्मीकांत वर्मा, श्रीराम वर्मा, स्नेहमयी चौधरी, नंदकिशोर आचार्य, राजेंद्र किशोर, अशोक वाजपेयी और उदय प्रकाश की कविता पर लक्षित होता है। तो उपन्यासकार के रूप में अमृतलाल नागर, नरेश मेहता, निर्मल वर्मा, इलाचंद्र जोशी आदि पर दिखाई देता है। संवेदना, शिल्प और भाषा के स्तर पर ये तमाम लेखक अज्ञेय का उत्तरदायित्व निभाते हैं, उनके पदचिह्नों का अवलंब करते दिखाई देते हैं। मराठी में मर्ढेकर की कविता निरंतर प्रभाव निर्माण करती रहे है। पु. शि. रेगे, बालकवि, विंदा करंदीकर, दिलीप चित्रे, ना. धों. महानोर, नारायण सुर्वे, वसंत आबाजी डहाके तथा नामदेव ढसाळ पर स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। उनके औपन्यासिक संचेतना का स्पष्ट प्रभाव नहीं है। किंतु उनके सौंदर्यशास्त्र की जितनी चर्चा मराठी में हुई है, उतनी किसी ग्रंथ की नहीं। उनके सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन का प्रभाव कई पीढ़ियों पर रहा है। अर्थात ये दोनों रचनाकार अपनी चिंतनशीलता और प्रतिभा से दोनों भाषाओं में एक नये युग का निर्माण करते हैं। नई पीढ़ी इन दोनों को अपना पूर्ववर्ती आधार बनाने में गौरव का अनुभव करती है।

अज्ञेय और मर्ढेकर ने भारतीय साहित्य को नये सरोकारों से मण्डित किया। इन दोनों के साहित्य को आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में भारतीय समाज जीवन की नयी व्याख्या की। अनुभव के नये लोक से परिचित कराया। अपने समकालीन समाज जीवन के प्रश्नों से जुड़ते हुए वैश्विक मनुष्य को स्थापित करने का सजग प्रयास किया। विशेषतः आधुनिक भावबोध, प्रयोगशील वृत्ति, चिंतनशील दृष्टि और वैविध्यपूर्ण अभिव्यक्ति से भारतीय साहित्य को समृद्ध करने में महती भूमिका निभायी है। संवेदना, शैली, चरित्र, शिल्प और भाषा के स्तर पर उनके योगदान को भारतीय समाज और साहित्य रसिक वर्ग हमेशा याद करता रहेगा। क्योंकि भारतीय साहित्य को वैश्विक स्तर पर ले जाने का दोनों का प्रयास अत्यंत स्पृहणीय रहा है। अर्थात दोनों में अनेक सीमाएँ हैं। बावजूद इसके भारतीय साहित्य के परिप्रेक्ष्य को बदलने में दोनों का विशिष्ट योगदान रहा है। अर्थात् आनेवाला समय दोनों की रचनाओं का समय-समय पर पाठ करता रहेगा। समय की कसौटी पर खरा उतरने का सामर्थ्य दोनों ´Ö ¸ÆÖ Æî…

दोनों का व्यक्तित्व, लेखन, चिंतन और सामाजिक सरोकारों को लेकर जितने प्रकार का साम्य है, उतने प्रकार से वैषम्य भी दिखाई देता है। विषम रेखाओं के अनेक स्थल हैं, जिनसे हम परिचित हो सकते हैं। वस्तुतः दो भिन्न व्यक्ति कभी भी समान नहीं हो सकते। व्यक्तित्व, दृष्टि,

अभिव्यक्ति पक्ष और चिंतन को आयाम हर एक की अलग होती है। अज्ञेय और मर्ढेकर की वृत्ति-प्रवृत्ति में अनेक विषम रेखाएँ हैं, जिनकी चर्चा हम कर चुके हैं। अंततः इतना ही कहेंगे कि दोनों के योगदान से भारतीय साहित्य निश्चित रूप से लाभान्वित हुआ है, बहुत अधिक समृद्ध हुआ है।

प्रस्तुत अध्ययन की उपलब्धियाँ :

अज्ञेय और मर्ढेकर के साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन से अन्य भारतीय भाषाओं में भी आधुनिकता के स्वर कब से फूटते हैं, किस रूप में ध्वनित हुए हैं, आधुनिकता के मूल्य कब से उभरते हैं, इस प्रकार के नये अध्ययन को दिशा मिलेगी। विशेषतः यह अध्ययन देश की मानसिकता को उद्‌घाटित करने में महती भूमिका निभायेगा। प्रत्येक प्रदेश की सामाजिक रचना, प्रदेश के लोगों की मानसिकता और साहित्य में अंकित समाज के देखने, परखने मूल्यांकन करने की नयी राह बनती है। आधुनिकता के प्रभाव को लेकर दो भाषाएँ कैसे समृद्ध हुई, इसे हमने देखा। अब अन्य भारतीय भाषाओं में भी इसी सूत्र को परखा जा सकता है। विशेषतः अज्ञेय और मर्ढेकर के साहित्य के अध्ययन से उन दोनों के व्यक्तित्व चिंतन और जीवनदृष्टि का परिचय भारतीय परिप्रेक्ष्य में होगा, ऐसा विश्वास है। राष्ट्रीय स्तर पर इस विषय को लेकर अलग-अलग भाषाओं के अंतर्गत प्रभावी काम हो सकता है।

ÃÖß´ÖÖ‹ :

वस्तुतः किसी की अध्ययन की अपनी सीमाएँ होती है। किसी केंद्रीय विषय को ध्यान में रखकर किया गया अध्ययन परिपूर्ण हो ही संभव नहीं, अज्ञेय और मर्ढेकर का अध्ययन करते समय मैंने अनुभव किया कि कहानीकार वात्स्यायन को हमने छोडा है, श्रेष्ठ कहानीकार हैं अज्ञेय। उसका कारण यह था कि मर्ढेकर ने कहानियाँ नहीं लिखी। अर्थात् ठीक इसी तरह मर्ढेकर संगीतिका (एक नाट्य प्रकार) लिखी। उसको भी हम न्याय नहीं दे सके हैं। क्योंकि अज्ञेय नाटककार के रूप में नहीं है। भाषा की अपनी कुछ सीमाएँ हैं। बावजूद इसके विषय के प्रति पूरी तरह न्याय करने का प्रयास हमने किया है। हमने हिंदी और मराठी भाषाओं में आधुनिकता की खोज करने का प्रयास किया है। अन्य भारतीय भाषाओं में क्या स्थिति है, मैं नहीं जानता। भविष्य में नये अनुसंधाता इस पर काम करेंगे, ऐसी आशा करता हूँ।

संभावनाएँ :

इस शोध विषय के संबंध में अनेक संभावनाएँ दिखाई देती है। भविष्य में अनुसंधान करनेवाले अनुसंधाताओं के लिए बृहत् शोध परियोजना के अंतर्गत नये शोध विषय कुछ इस प्रकार हो सकते हैं। नये शोध विषय के अंतर्गत आधुनिकता को केंद्र में रखते हुए अन्य भारतीय भाषाओं में

अध्ययन हो सकता है। प्रस्तुत विषय के अंतर्गत भारतीय स्तर पर भिन्न-भिन्न आयामों से काम हो सकता है। •ÖÃÖ -

1. भारतीय भाषाओं में आधुनिकता का प्रारंभ
2. कन्नड और मलयालम भाषा में आधुनिकता का आरंभ
3. भारतीय भाषाओं की कविता में आधुनिकता का प्रवेश
4. भारतीय भाषाओं के उपन्यासों में आधुनिकता
5. भारतीय भाषाओं की कहानियों में आधुनिकता
6. तेलुगु और बंगाली साहित्य में आधुनिकता
7. आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में भारतीय समीक्षा पद्धति का अध्ययन आदि, विषयों पर काम हो सकता है।

■ ■ ■

¯Öx¸¦x¿ÖÂ™¦

साक्षात्कार

(प्रो. डॉ. मैनेजर पांडेय, प्रो. डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल,
श्रीमती राजी सेठ, डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे)

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि डॉ० जगदीश यादव, सहयोगी प्राध्यापक, शिवाजी महाविद्यालय रेणापुर जि. लातूर (महाराष्ट्र) ने 'यूजीसी शोध परियोजना' के अन्तर्गत मेरे पास आये। उनसे 'अज्ञेय के साहित्य में आधुनिकता' विषय पर लंबा वार्तालाप हुआ। मैं उनके कार्य से संतुष्ट हूँ।

बधाई के साथ --

स्थान: नई दिल्ली

तिथि: 14.02.14

मैनेजर पाण्डेय
14.2.2014

साक्षात्कार

हिंदी के वरिष्ठ आलोचक तथा मूर्धन्य चिंतक **प्रो. डॉ. मैनेजर पांडेय •ÖÛ ÃÖ ›Ö. ÃÖÝÖÖß¿Ö µÖÖ¤¾Ö** की बातचीत। प्रस्तुत वार्तालाप बृहत् शोध परियोजना के अंतर्गत हुआ। साक्षात्कार का विषय Æî- **'अज्ञेय और मर्ढेकर के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन'(आधुनिकता के संदर्भ में)** ¥ÖÖ. पांडेय जी ने बडे बेबाक होकर अज्ञेय जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर सटीक भाष्य प्रस्तुत किया। प्रस्तुत हैं - उनके विवेकशील और निर्भीक विचारों का प्रस्फुटीकरण....

ÃÖÝÖÖß¿Ö µÖÖ¤¾Ö : आधुनिकता से तात्पर्य क्या है? आपकी दृष्टि से आधुनिकता के मायने क्या है?

मैनेजर पांडेय : देखिये, हिंदी में आधुनिकता पर जो बातचीत और बहस हुई है, उसके आधार पर आधुनिकता के तीन अर्थ बनते हैं। हिंदी साहित्य में आधुनिक काल माना जाता है भारतेंदु हरिश्चंद्र से, रामचंद्र शुक्ल ने भारतेन्दु हरिश्चंद्र की प्रशंसा में बहुत लिखा है। उन्होंने एक निबंध में लिखा है कि भारतेंदु की कविताओं में आधुनिकता कम ही पायी जाती है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र की अस्सी प्रतिशत कविताएँ जो स्वतंत्र लिखते थे, वह ब्रज भाषा में लिखते थे और लगभग भक्तिकाल के कवियों की तरह लिखते थे। इसीलिए शुक्ल जी ने कहा कि उसमें आधुनिकता कम पायी जाती है। दूसरा इससे निष्कर्ष यह भी निकला कि उनके नाटकों में आधुनिकता है, निबंधों में आधुनिकता है, लेकिन कविता में कम है। इसका एक अर्थ रामचंद्र शुक्ल का आधुनिकता के बारे में यह है, जो मैं अपनी ओर से कह रहा हूँ, उन्होंने कहा नहीं कि 'स्वाधीनता की चेतना आधुनिकता का प्राण है।' अब यह स्वाधीनता की चेतना भारतेंदु के प्रसंग में देश की स्वाधीनता की चेतना है, जो नाटकों में हैं। क्योंकि नाटकों में उन्होंने देश की पराधीनता से उत्पन्न दुर्दशा का वर्णन किया है। जाहिर है कि जिसके मन में स्वाधीनता की चेतना होगी, वही पराधीनता की दुर्दशा की चर्चा करेगा। तो पहला संदर्भ आधुनिकता का तो स्वाधीनता की चेतना और देश की स्वाधीनता की चेतना है। दूसरा संदर्भ आधुनिकता का यह है कि हिंदी में आधुनिकता पर बहस प्रयोगवाद और अज्ञेय के नेतृत्व में शुरू हुई, प्रयोगवाद के भी नेता वही थे। तारसप्तक से माना जाता है कि प्रयोगवाद शुरू हुआ, यद्यपि इस पर भी विवाद है कि वहाँ से हुआ कि नहीं, पर मैं यह मानता हूँ कि वही से हुआ। अज्ञेय ने आधुनिकता के बारे में बहुत लिखा है। यहाँ जो आधुनिकता प्रयोगवाद के दौर से शुरू हुई उसमें भी स्वाधीनता की चेतना थी, पर उसमें स्वाधीनता का अर्थ बदल गया। उसमें एक तो रचनाशीलता की स्वाधीनता महत्वपूर्ण मानी गई। हम परंपरा से कुछ ग्रहण करें ये संभव है पर रचना जो करती है उसे अपनी इच्छा, सोच और समझ के मुताबिक करती है। दूसरा क्या है कि पश्चिम में आधुनिकता पर बहुत बहस हुई है। और यहाँ एक दूसरा शब्द हिंदी में चलने लगा, आधुनिकता के बदले आधुनिकतावाद और आधुनिकताबोध। इन सबका संदर्भ रचना केंद्रित था, मतलब रचना के प्रसंग में प्रयोग की

स्वाधीनता। हम जिस तरह चाहे कविता लिखे। छंदों से मुक्ति की स्वाधीनता। जो शुरू तो निराला ने किया लेकिन इस दौर में आकर सबसे अधिक हुआ। यही नहीं बल्कि प्रयोगवाद के दौर तक आते-आते और बाद में नयी कविता में प्रयोग की विविधता इतनी बढ़ी कि अराजकता की सीमा तक चली गई, तो आधुनिकता का दूसरा संदर्भ यह है। तीसरा व्यापक सामाजिक संदर्भ यह जुडता है कि आधुनिकता मूलतः समाज से जुड़ी हुई चीज है। समाज में जब आधुनिकता बुनियादी स्तर पर आती है तभी वह रचनाकारों,लेखकों,आलोचकों के मन में चिंतन के स्तर पर आती है। ऐसा नहीं है कि समाज में आधुनिकता तो हो नहीं और लेखन में आधुनिकता आ जाए। स्वाधीनता के बाद जो देश में नवनिर्माण की प्रक्रिया शुरू हुई उसका संदर्भ भी आधुनिकता से जुड़ता है। आपको याद होगा, यहाँ चलते-चलते एक प्रसंग कह रहा हूँ कि भाखड़ा नांगल डॅम बना तो जवाहरलाल नेहरू ने घोषणा की कि यह 'आधुनिक मंदिर है'। तो ऐसे जो निर्माण के काम देश में हो रहे थे। इसलिए रचना, आलोचना में भी आधुनिकता की विस्तृत चर्चा होने लगी। अब रही बात लेखकों के बीच आपसी मतभेद की, वह हमेशा रहते हैं, रहेंगे।

ÃÖÝÖß¿Ö µÖÖ¤¾Ö : आधुनिकता के संदर्भ में भारतीय दृष्टिकोण और आधुनिकता के संदर्भ में पश्चिमी दृष्टिकोण - इसमें क्या अंतर है?

मैनेजर पांडेय : अभी थोड़ी देर पहले आपसे कहा है कि आधुनिकता का मूल संदर्भ तो समाज से जुड़ता है। भारतेंदु के प्रसंग में भी यह जुड़ा हुआ है और अज्ञेय के प्रसंग में भी जुड़ा हुआ है। भारतेंदु के प्रसंग में इस बात से जुड़ा हुआ है कि देश उस समय पराधीन था। तो स्वाधीनता का एक अलग अर्थ था। अज्ञेय के प्रसंग में ये है कि देश तो स्वाधीन हो गया था लेकिन जो नवनिर्माण की कोशिश देश में हो रही थी उससे समाज बदल रहा था। लोगों की मानसिकता बदल रही थी, लोगों की जरूरतें बदल रही थी। इसलिए पश्चिम की आधुनिकता से भारत की आधुनिकता का एक फर्क ये है कि भारत की आधुनिकता भारतीय समाज से जुड़ी हुई आधुनिकता है। पश्चिम की आधुनिकता पश्चिमी समाजों से जुड़ी हुई आधुनिकता है।

ÃÖÝÖß¿Ö µÖÖ¤¾Ö : सर, अज्ञेय की कविता की क्या प्रेरणाएँ हैं और जिस दौर में वह कविता लिखी जा रही थी, वह कविता किस दृष्टिबोध को लेकर आती है ?

मैनेजर पांडेय : पहली बात ये है कि अज्ञेय जी प्रगतिवाद से मतभेद रखते थे। प्रगतिवाद सामूहिकता या सामाजिकता का आग्रह करता है। इसके ठीक विपरित अज्ञेय जी साहित्य के प्रसंग में वैयक्तिकता का आग्रह करते थे। व्यक्ति को महत्त्व देते थे। उनकी प्रसिद्ध कविता है - 'नदी के द्वीप।' ^ÃÖÃÖ ³Öß यही निष्कर्ष निकलता है। वे यह मानते थे जरूर, उसी कविता में है, हम हैं नदी के ही हिस्से, याने जो द्वीप होता है बनता तो नदी से ही याने व्यक्ति बनता है समाज से ही, वे इतना तो स्वीकार करते थे।

लेकिन व्यक्ति की स्वायत्तता, स्वतंत्रता का भी महत्त्व समाज में होना चाहिए, खाली समाज की चिंता, चर्चा काफी नहीं। तो पहला तो यही मतभेद उनका प्रगतिवाद से था। उनकी कविता में शुरू से अंत तक वैयक्तिकता का आग्रह दिखाई देता है। दूसरी बात यह है कि वात्स्यायन जी हिंदी के दूसरे आंदोलनों से प्रभावित होने के बदले अन्य आंदोलनों को खुद प्रभावित कर रहे थे। मतलब इसको यों आप देखिये कि प्रयोगवाद का प्रवर्तन उन्होंने किया। प्रयोगवाद जब ज्यादे नहीं चला तो '¤ÃÖ¸üÖ सप्तक' निकाला। और मैं व्यक्तिगत रूप से मानता हूँ और बहुत लोग मानते है कि 'दूसरा सप्तक' से ही नयी कविता की शुरूआत होती है। उसके भी अगुवा और नेता वही बनें। इसके बाद उन्होंने किसी काव्यांदोलन का नेतृत्व नहीं किया। जब नयी कविता के बाद अकविता आई जिससे अज्ञेय का कोई मेल नहीं था। बाद के दिनों में संभवतः 1959 ´Ö 'तीसरा सप्तक' निकला और उसके बाद वात्स्यायन जी ने लगभग उस प्रयत्न को छोड़ दिया। चौथा जो सप्तक उन्होंने निकाला वह न अज्ञेय के लिए महत्वपूर्ण था न हम लोगों के लिए, वह किसी मतलब का है नहीं। मैं यह कह सकता हूँ कि आदत और परंपरा का निर्वाह है। लेकिन उनकी जो दृष्टि कविता के प्रसंग में वैयक्तिकता के आग्रह की थी और ये खाली उनकी कविता में नहीं, ये उनके उपन्यासों में हैं, उनकी कहानियों में हैं। वह प्रवृत्ति वात्स्यायन जी की जीवन भर रही। रही बात कविता और प्रेरणाओं की, तो देखिए वात्स्यायन जी एक संवेदनशील और ग्रहणशील व्यक्ति थे। कई स्त्रोतों से कविताओं की प्रेरणा उन्होंने प्राप्त की थी। जैसे जापानी 'हायकु' ÃÖ ²ÖÆüÖ ¯Ö³ÖÖ×¾ÖŸÖ £Ö… ‡ÃÖ×»Ö‹ 'अरी ओ करूणा प्रभामय', उसमें उन्होंने उसी जापानी 'हायकु' के तर्ज पर कविताएँ लिखी, ये किसी को नहीं मालूम, वात्स्यायन जी को छोड़कर। और कोई निर्णयात्मक रूप से बता भी नहीं सकता कि कितनी जापानी हायकु के अनुवाद हैं। दूसरी बात प्रेरणा की यह भी है कि जो उनकी प्रसिद्ध कविता है 'असाध्यवीणा'… †²Ö 'असाध्यवीणा' कविता में दो-दो परंपराएँ मिली-जुली है, भारतीय परंपरा और जापानी परंपरा। तो इसीलिए वात्स्यायन जी अब शुरू के दिनों में पश्चिम के आधुनिकतावादी कवियों से प्रभावित थे, जुड़े हुए थे। जैसे टी. एस. इलिएट, टी. एस. इलिएट का एक प्रसिद्ध निबंध है - 'ट्रेडिशन ॲन्ड इंडिविजिवल टैलेंट'… उन्होंने उसका अनुवाद किया है जो 'त्रिशंकु' में छपा हुआ है। इसीलिए मैंने शुरू में आपसे कहा था कि वात्स्यायन जी सारी दुनिया के काव्यांदोलनों से जुड़े हुए थे। वैसे भी वात्स्यायन जी अनेक भाषाएँ जानते थे और खास तौर से हिंदी के अलावा अंग्रेजी अच्छी तरह जानते थे। वे बाहर के विश्वविदयालयों में पढ़ा चुके थे। इसलिए बाहर के साहित्य से अंग्रेजी के माध्यम से बहुत जुड़े हुए थे। उस सबका कुछ न कुछ असर उन पर पड़ा है - अब कौन कितना असर पड़ा है आप जैसे, जो उस पर केंद्रित करके काम कर रहे हैं, वही खोजें।

ÃÖÖŸÖß¿Ö µÖÖ¤¾Ö : हिंदी कविता की परंपरा में प्रगतिवादियों का अपना एक बड़ा योगदान रहा, जो

कविता को सामाजिक आशय तक लेकर गये और समाज में जो गरीबी है, अन्याय है, अत्याचार है, असमानताएँ हैं, उसके खिलाफ आवाज उठायी, यह स्वर था। अज्ञेय की कविता में कौन-सा स्वर नजर आता है?

मैनेजर पांडेय : मेरी अपनी व्यक्तिगत राय यह है कि आजादी के पहले की अज्ञेय की कविता में सामाजिकता मौजूद है। इसके दो उदाहरण आपको दूँगा। जैसे- ‘चल चुकी क्या हवाएँ चैत की’,आगे उसमेंआया है कि फसल कट गयी है क्योंकि चैत में, बैसाख में फसल कटती है ‘और गिन रहा होगा महाजन सेत की’, याने सेत-मेत कहते हैं। हमारे यहाँ एक शब्द चलता है सेत की, याने कह सकते हैं कि झूठ की, लूट की। मतलब ये है कि जिसके मन में किसानों की मेहनत और अपनी मेहनत के फल से वंचित होने का बोध नहीं होगा वह ऐसी कविता क्यों लिखेगा, दूसरी बात ये है कि जिस पर मैंने एक लंबा लेख लिखा है, वात्स्यायन जी के उस प्रसंग की चर्चा बहुत कम हुई है। विभाजन के समय वात्स्यायन जी विभाजन की त्रासदी से बहुत जुड़े हुए थे और बहुत विचलित और हिले हुए थे। तो उन्होंने 47 ÃÖ 48 के बीच ग्यारह महीने में विभाजन पर ग्यारह कविताएँ लिखी। सबका शीर्षक एक ही Æü- ‘शरणार्थी’… ‘शरणार्थी’ शीर्षक से वह ग्यारह कविताएँ हैं। उसी पर मैंने एक अलग लंबा लेख लिखा था, जो मेरी नयी किताब में भी हैं और ‘कथादेश’ पत्रिका में भी छपा था। उसमें जो विभाजन के कारण बर्बादी, घृणा, तबाही और विध्वंस हुआ, उस सबका उन्होंने व्यवस्थित और मार्मिक चित्रण किया है। वे कविताएँ एक तरह से उनकी सामाजिक चेतना और मानवीय चेतना के दस्तावेज हैं। ‡ÃÖ×»Ö< ¯Ö“ÖÖÃÖ तक उनके यहाँ सामाजिकता दृष्टिगत होती है। आपसे एक ओर बात कहूँ कि इस बात पर कम ध्यान दिया जाता है कि तारसप्तक यद्यपि प्रयोगवाद का संग्रह माना जाता है लेकिन उसमें जो कवि हैं, अधिकांशतः वे सब प्रगतिशील और मार्क्सवादी हैं। जैसे उसमें मुक्तिबोध हैं, रामविलास शर्मा हैं, उसमें भारतभूषण अग्रवाल हैं। ये सब लोग उस समय मार्क्सिस्ट थे। अज्ञेय उस समय तक प्रगतिवाद और मार्क्सवाद के अगर पूरे विरोधी होते तो काहे को इन सबको शामिल करते। उस समय तक मार्क्सवाद से, प्रगतिवाद से ये सब जुड़े हुए थे और उसमें प्रभाकर माचवे भी हैं, तो इसीलिए मैं कह रहा था आपसे कि पचास के पहले अज्ञेय समाज की चिंताओं से जुड़े हुए थे। ‡ÃÖ×»Ö< ¯Ö“ÖÖÃÖ तक उनकी कविताओं में सामाजिकता, सामाजिक चेतना, सामाजिक सरोकार अनेक रूपों में दिखाई देता है। इक्यावन के बाद मतलब ‘दूसरा सप्तक’ निकलने के बाद और ‘नयी कविता’ के शुरू होने के दौरान उनका जो वैयक्तिकता का आग्रह है, वह बढ़ा। अच्छा वह बढ़ने का एक व्यावहारिक संदर्भ भी हैं। अज्ञेय को प्रयोगवादी के नाम पर प्रगतिशीलों ने बहुत आलोचना की, तो इसका रिॲक्शन तो होगा न किसी के मन में, तो उनके मन में भी उत्पन्न हुआ होगा। इसलिए वात्स्यायन जी अपनी वैयक्तिकता के आग्रह पर दृढ़ता से डटे ही नहीं बल्कि यह भी हुआ कि

प्रगतिशीलों की खुलेआम आलोचना भी करने लगे। पहले खुलेआम आलोचना नहीं करते थे। मतभेद रखना अलग बात है।

ÃÖÝÖß¿Ö µÖÖ¤¾Ö : तो क्या इसे मुख्य स्वर कह सकते हैं।

मैनेजर पांडेय : नहीं, नहीं... सामाजिकता का स्वर मुख्य नहीं, मुख्य स्वर तो वैयक्तिकता का ही है। क्योंकि वह वैयक्तिकता उस दौर में भी थी। जब सामाजिकता का दौर मैं कह रहा हूँ। उस दौर में भी क्योंकि मेरा अपना अनुमान है इस समय सन् याद नहीं पर 'नदी के द्वीप' कविता सन् ¯Ö“ÖÖÃÖ के पहले की है, संभवत:। यही नहीं पचास के पहले की उनकी रचना 'शेखर : एक जीवनी', 'शेखर : एक जीवनी' में दोनों हैं, समाज भी और व्यक्ति भी। तो मैं इसीलिए अभी भी कह रहा हूँ कि ¯Ö“ÖÖÃÖ तक दोनों के बीच एक संतुलन था। बाद के दिनों में उनकी कविता में वैयक्तिकता का आग्रह बढ़ा।

ÃÖÝÖß¿Ö µÖÖ¤¾Ö : अज्ञेय जी का व्यक्तित्व विवादास्पद रहा, व्यक्तित्व के रूप में भी और कृतित्व के रूप में भी, मुद्दा यह है कि हिंदी के अधिकांश आलोचक अज्ञेय और मुक्तिबोध को आमने-सामने खड़ा करते हैं, या तो घुर विरोधी बताते हैं या उन दोनों की तुलना करके मुक्तिबोध कैसे बड़े कवि या लेखक थे तुलना में अज्ञेय कैसे सीमित सरोकार के कवि या लेखक हैं। आप इससे सहमत हैं?

मैनेजर पांडेय : उस सबका भी एक ऐतिहासिक संदर्भ है। संदर्भ यह है कि जब प्रगतिशीलों और अज्ञेय और अज्ञेयवादियों का विवाद उग्र होने लगा तो दोनों ओर से अतिवादी बातें होने लगी। मतलब प्रगतिशीलों ने अज्ञेय को नकारना स्वीकार किया। आपको एक घटना बताऊँ तो आपको हँसी आएगी, दो साल पहले हिंदी के तीन-चार बड़े कवियों के साथ अज्ञेय की भी जन्मशती थी, 2011 में। यहाँ अशोक वाजपेयी ने उन पर बड़ा समारोह किया। तो मुझसे कहा कि आप उसमें आइये और एक व्याख्यान दीजिए। उन्होंने जो विषय बताया मुझे ठीक नहीं लगा। तो हमने कहा कि उस विषय पर तो नहीं बोलूँगा पर 'विभाजन की त्रासदी और अज्ञेय' पर बोलूँगा। उसी बीच मैं अज्ञेय पर काम कर रहा था, विभाजन की त्रासदी पर लिखी कविताओं के संदर्भ में। वे बोले कि जिस विषय पर बोलना हो आईये, बोलिए। गया मैं, भाषण दिया मैंने लंबा, लोगों को पसंद भी आया। लेकिन प्रगतिशीलों में मेरे खिलाफ अभियान चल गया, अभियान के दो कारण थे। पहला यह कि वाजपेयी के समारोह में गये ही क्यों? दूसरा ये कि अज्ञेय की तारीफ में इतना भाषण क्यों दे आये। इसलिए यह जो प्रगतिशीलों और अज्ञेय और अज्ञेयवादियों के बीच का जो विवाद है उसका परिणाम था प्रगतिवादियों द्वारा अज्ञेय की उपेक्षा का। दूसरा क्या है कि दोनों नयी कविता के दायरे के कवि हैं, अज्ञेय भी और मुक्तिबोध भी। मुक्तिबोध मार्क्सवादी थे, इस पर किसी को कोई संदेह नहीं है और मार्क्सवादी होने के नाते उनका दृष्टिकोण अज्ञेय के दृष्टिकोण से भिन्न था। समाज के बारे में, साहित्य के बारे में, कला के बारे में, जीवन के बारे में। मुक्तिबोध जो हैं, प्रगतिवादियों को और खास तौर से

आलोचकों को एक हथियार के रूप में मिल गये, अज्ञेय के खिलाफ प्रगतिशीलों को उपयोग करने। इसलिए वह अतिवाद हुआ। अन्यथा, अतिवाद इस स्तर पर गया कि उन्हें 'हिंदी का चिंपाजी' कहा गया। यह तो असभ्यता है। जिन्होंने उन्हें 'हिंदी का चिंपाजी' कहा था वही नामवरसिंह शताब्दी वर्ष में अज्ञेय का केवल गुणगान करते रहे। यही नहीं नॅशनल बुक ट्रस्ट से अज्ञेय की कविताओं का एक संग्रह उन्होंने निकलवाया। 'कविता के नये प्रतिमान' में मुक्तिबोध को केन्द्र में रखा। उसमें भी उन्होंने अज्ञेय की बहुत आलोचना की, 'असाध्यवीणा' की आलोचना की, मुक्तिबोध की कविता '†¬Ö¸¡ ´Ö' को उपर चढ़ाया। ये तो क्या है आलोचकों का अपना उत्थान या पतन है। उसमें तो कुछ कह नहीं सकते। इसलिए वह अतिवाद ही है जिसको अब हम तो कम से कम महत्त्व नहीं देते। हमने नामवरसिंह के उस सारे अभियान को कभी महत्त्व नहीं दिया और अज्ञेय विरोधी अभियान को भी और अज्ञेय के पक्ष में अभी शताब्दी वर्ष में जो अभियान चलाया, उसे भी नहीं।

ÃÖÝÖß¿Ö µÖÖ¤¾Ö : कवि अज्ञेय पर हम बहुत बात कर चुके हैं। सवाल है उपन्यासकार वात्स्यायन जी, कहानीकार वात्स्यायन जी, निबंधकार वात्स्यायन जी, आलोचक वात्स्यायन जी, यात्रा वृत्तकार वात्स्यायन जी कई रूप हैं अज्ञेय के, इनमें आपको कौन-सा रूप प्रभावित करता है?

मैनेजर पांडेय : सबसे अधिक प्रभाव तो उनकी कविता का ही पड़ता है। दूसरे स्तर पर मुझे वात्स्यायन जी के उपन्यासों से अधिक महत्त्वपूर्ण उनकी कहानियाँ लगती है। मैं जिस 'शरणार्थी' शीर्षक कविताओं की बात कर रहा था, उसी के साथ अज्ञेय जी ने विभाजन की त्रासदी पर पाँच-सात कहानियाँ भी लिखी हैं। बल्कि आपको मैं बताऊँ, मुझे मालूम नहीं आपके ध्यान में है कि नहीं, 'शरणार्थी' शीर्षक कविताएँ और उससे जुड़ी हुई कहानियों की किताब छपी सन् 48 ´Ö… ×•ÖÃÖ´Ö '²ÖÖ¤¡»ÖÖ और अन्य कहानियाँ समाविष्ट है, जिसमें आठ कहानियाँ हैं। मैंने उस लेख में उन कहानियों की भी चर्चा की हैं। उपन्यास तो उनके महत्वपूर्ण दो ही है-'शेखर : एक जीवनी' †Ö¸¡ 'नदी के «ß¯Ö'। तीसरा उपन्यास- उपन्यास कम उनका वैचारिक विवेचन, विश्लेषण ज्यादे हैं जो कि 'अपने-अपने अजनबी' है। वह जिस भाषा और अंदाज में लिखा गया है, उससे अनुभव होता है कि वह उपन्यास है नहीं, वे सारे मेरे पास पडे हैं। लेकिन मैं कहानीकार अज्ञेय को उनकी एक से एक अद्‌भूत कहानियों के लिए यादगार मानता हूँ, जिसमें - '¸Ö•Ö' है, हीलीबोन की बत्तखें' Æ¨ †Ö¸¡ ²ÖÖÆÜÖ ÃÖÖ¸ß मार्मिक और मन को और दिल-दिमाग दोनों को छूनेवाली कहानियाँ रही हैं। यद्यपि शिल्प की दृष्टि ÃÖ 'शेखर : एक जीवनी' का बहुत महत्त्व है। हिंदी के अगर कोई आदमी दस उपन्यासों की सूची बनाएँ, तो एक नाम 'शेखर : एक जीवनी' का भी होगा। लेकिन उसके बावजूद व्यक्तिगत रूप से मुझे उनकी कहानियाँ ज्यादे प्रभावित करती है। रह गयी बात आलोचना की तो देखिए, आलोचना वात्स्यायन जी ने कम लिखी है। उनकी आलोचना के नाम पर साहित्य की विभिन्न समस्याओं पर

लिखी हुई टिप्पणियाँ हैं, जो ‘आत्मनेपद’ †Ö¸ü ‘¿ÖÖ¿¾ÖŸÖß’ में हैं। ऐसे कई संग्रह उनके छपे हैं,पर वैसी कोई आलोचना उन्होंने कभी नहीं लिखी। जैसी मुक्तिबोध ने ‘कामायनी : एक पुनर्विचार’नाम से जो किताब आलोचना की - जो व्यावहारिक और सैद्धांतिक आलोचना की है। तो उस तरह से वे आलोचक नहीं। याने किसी कवि के बारे में, कवियों के बारे कुछ राय जहाँ-तहाँ है तो कुछ पत्रों के रूप में। जैसे धर्मवीर भारती की ‘कनुप्रिया’ पर एक पत्र उन्होंने लिखा जो अब ‘कनुप्रिया’ के साथ ही छपता है। इसलिए आलोचक के रूप में वे साहित्य की विभिन्न समस्याओं पर विचार करनेवाले लेखक जरूर हैं और उनकी आलोचना के बारे में एक और बात आपसे कहूँ। टी. एस. इलिएट ने अपनी आलोचना के बारे में एक बात कही थी, जो अज्ञेय पर भी लागू होती है। टी. एस. इलिएट ने कहा था कि, My Criticism is workshop critisim... workshop में काम करनेवाला एक मजदूर मशीन के बहुत सारे गुणों को और दोषों को अपने व्यक्तिगत अनुभव से जानता है। अब वह किसी को लिखकर, पढ़कर बताने लगे तो वह Workshop critisim होगा। वही हालत वात्स्यायन जी की भी हैं। वे बड़े रचनाकार थे, रचनाकार मानो तीनों-चारों अर्थों में, कवि भी, कहानीकार भी, उपन्यासकार भी, तो वही अनुभव उनकी आलोचनाओं में मौजूद हैं।

ÃÖÖ×ÆüŸµÖ ¯ÖÏ¾ÖÖÆü : एक पुस्तक लिखी है डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल जी ने जिसका शीर्षक है - ‘आलोचक अज्ञेय की उपस्थिति’ तो ये थोड़ी उत्सुकता थी कि आलोचक अज्ञेय कैसे हैं?

मैनेजर पांडेय : डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल भी अज्ञेयवादी हैं। इसलिए ऐसे लोगों की समस्या यह होती है कि, बहुत ही खराब भाषा में मैं बोलने जा रहा हूँ। एक फिल्मी गीत है कि मेरे महबूब में क्या नहीं, वह तो लाखों में एक हैं हँसी, माने जो जिसके पक्ष में हैं, उसकी हर अच्छी-बुरी चीज की केवल तारीफ करता है, ये आलोचना नहीं है, ये विवेकपूर्ण आलोचना तो एकदम नहीं है। विवेकपूर्ण आलोचना का मलतब होता है, विवेक शब्द ही इससे बना हुआ है कि जो दूध और पानी में फर्क करें। इसी को ‘नीर-क्षीर-विवेक’ कहते हैं। तभी आलोचना आलोचना बनती है। जो अज्ञेय में अच्छाइयाँ हैं उसको रखे, पर संसार का कोई ऐसा बड़ा लेखक या कवि नहीं है जिसमें कमजोरियाँ न हों, अब आप उनके बारे में बात नहीं करेंगे, तो खाली वाह-वाह करेंगे।

ÃÖÖ×ÆüŸµÖ ¯ÖÏ¾ÖÖÆü : अज्ञेय के समग्र साहित्य का अध्ययन करने के पश्चात ऐसी क्या सीमाएँ हैं इस लेखक की, जो प्रखर रूप से सामने आती है ?

मैनेजर पांडेय : ऐसा है कि अज्ञेय जी एक बड़े लेखक हैं और उनकी सीमा की बात करना अपनी सीमा को लांघना है। फिर भी क्या है कि अज्ञेय की कविताओं में वैचारिकता या बौद्धिकता का आग्रह बहुत हैं। और उसके कारण वह पाठकों के मन को छू नहीं पाती। मुझे एक तो कविता के प्रसंग में सबसे बड़ी सीमा यही लगती है। उपन्यासों, कहानियों के प्रसंग में-उनके उपन्यास और कहानियों को

बिगाड़ने का काम उनके वैयक्तिकता के आग्रह ने किया। याने 'नदी के द्वीप' जो उपन्यास है, बहुत अच्छी भाषा में लिखा हुआ उपन्यास है। लेकिन जो उसके पात्र हैं उनका जो हश्र होता है, वह उनकी वैयक्तिकता के कारण लगभग नष्ट हो जाता है। मेरी विचारधारा तो आप जानते हैं उसको अलग रखकर मैं कहता हूँ कि कविता का एक काम पाठकों के मन तक पहूँचना है। इसी कारण से वाल्मिकि भी महत्त्वपूर्ण कवि हैं और आज का भी कोई कवि वैसी कविता लिखेगा तो अच्छा लगेगा। पर कोई ऐसी कविता लिखे जो केवल मुट्ठीभर बौद्धिकों को की समझ में आये। और उनकी भी चेतना की जटिलता को ही व्यक्त करें तो जाहिर है कि वह सीमित समुदाय का कवि माना जाएगा।

ÃÖÝÖß¿Ö µÖÖ¤¾Ö : अज्ञेय जी से कई बार मिले होंगे, कुछ संस्मरण बताएँ ...

मैनेजर पांडेय : संस्मरण मुझे वात्स्यायन जी के दो-तीन ध्यान में हैं। एक तो जब मैं जोधपुर विश्वविदयालय में पढ़ाता था तो वहाँ के वाइस चान्सलर थे बी. बी. जॉन। वे विद्वानों को अपने विश्वविदयालय में ले आने के बड़े आग्रही थे। उसी क्रम में उन्होंने वात्स्यायन जी को भी जोधपुर बुलवाया, अपने विश्वविदयालय में। और एक पूरा विभाग बनाने का जिम्मा दे दिया, तुलनात्मक साहित्य का। वात्स्यायन जी के साथ उस विभाग में एक सज्जन थे जुगजीत नौलपुरी जो काफी बड़े अपने समय के ट्रांसलेटर थे। उन्होंने कई भाषाओं से हिंदी में अनुवाद किया है। तो वात्स्यायन जी उन दिनों जोधपुर में रहते थे। यह बात 1971 के लगभग की है। वात्स्यायन जी बहुत ही दृढ़ निश्चय वाले आदमी थे। उसका एक प्रमाण दे रहा हूँ। वात्स्यायन जी जहाँ रहते थे वह जोधपुर की ऐसी एरिया थी, जहाँ एअरफोर्स का भी हेडक्वॉर्टर है। और दो रात पहले वहाँ पाकिस्तान ने बमबारी की थी। और दो-तीन-पाँच लोग भी मरे थे। तो शहर से एक-दो प्रोफेसर जो अच्छे भले लोग थे और जोधपुर के ही थे। एक सज्जन थे मोहन स्वरूप माहेश्वरी वे मेरे पास आये। मुझसे बोले कि भाई वात्स्यायन जी ऐसी जगह पर हैं जो खतरे से खाली नहीं है। एक बार बमबारी हो चुकी है, दुबारा भी हो सकती है। तो चलिए वात्स्यायन जी को कहा जाए कि वे वहाँ से आकर कहीं शहर में रहे और उनके रहने की व्यवस्था हम करवा देंगे। तो मैं गया, मोहन स्वरूप माहेश्वरी के साथ वात्स्यायन जी के यहाँ, जब हम लोग पहूँचे तो वात्स्यायन जी अपने गार्डन में कुछ खुरपी से फूलों-वूलों साफ-सफाई कर रहे थे। गये हम लोग, वात्स्यायन जी खड़े होकर बोले, कहिए कैसे आये? तो हमने वह सारी मोहनस्वरूप माहेश्वरी वाली बातें, चिंता और सब बता दिया। वात्स्यायन जी ने थोड़ी देर सुना। फिर मुझे बोले कि क्या आपको मालूम या याद नहीं है मैं मिलीट्री में रह चुका हूँ। तो हमने कहा कि याद है मुझे। तो बोले कि ये बमबारी मेरे लिए कोई अद्भूत, अपूर्व चीज नहीं है। दूसरी बात ये कि मैंने सुना है कि बहुत सारे लोग जोधपुर विश्वविद्यालय के अध्यापक, इस विश्वविद्यालय को छोडकर युद्ध के डर के मारे चले गये। इसकी बहुत चर्चा है। क्या आप भी मुझे उन्हीं भगौड़ो में शामिल करना चाहते हैं। इसलिए

मैं तो कहीं नहीं जाऊँगा। यही रहूँगा,आप लोग आये, चिंता व्यक्त की, इसके लिए आभारी हूँ। दूसरा प्रसंग,अब उस बीच में मिलना-जुलना होता था पर कुछ बताने लायक कोई प्रसंग नहीं है, क्योंकि, उन दिनों नामवरसिंह भी वहीं हिंदी के हेड थे। नामवर जी से उनके संबंध तब तक अच्छे नहीं थे। इसलिए उनका ज्यादा मिलना-जुलना होता नहीं था। हम लोग तो अभी बच्चे, लड़के थे। इसलिए बड़े लेखक हैं, मिल लिया, बतिया लिया। दूसरा जो उनका एक लेखक का आत्मसम्मान है उसका एक प्रसंग याद पड़ रहा है। यहाँ भगवतीचरण वर्मा राज्यसभा के मेंबर थे। वे रिटायर हो गये। वे यहाँ से छोड़ के जा रहे थे, तो उनके बेटे ने एक दिन एक समारोह किया। दिल्ली के कई लेखकों को निमंत्रित किया। मुझे भी न्योता दिया था कि पिताजी जा रहे हैं तो चाय पीने, अमूक तारीख की शाम को छः बजे मेरे घर पर आ जाए। तो गये हम लोग, वहाँ वात्स्यायन जी भी आए हुए थे। भगवतीचरण वर्मा से उनके अच्छे संबंध थे, थोड़ी देर बाद क्या हुआ कि तत्कालीन इन्फॉर्मेशन ब्राडकास्टिंग मीनिस्टर वसंत साठे आए। वात्स्यायन जी जहाँ बैठे थे, वही बैठे रहे, उठकर उन्होंने नमस्कार भी नहीं किया। बल्कि वसंत साठे आए, देखा, वात्स्यायन जी को नमस्कार किया और बैठे रहे। थोड़ी देर बाद हेमवतीनंदन बहुगुणा आए। बहुगुणा उस समय काँग्रेस में बहुत ही उपेक्षित थे। कोई नहीं पूछता था उन्हें, वास्त्स्यायन जी को यह खबर मिली कि बहुगुणा जी आ रहे हैं। तो बहुगुणा से उनके व्यक्तिगत संबंध रहे होंगे। उठकर वात्स्यायन जी गए और बहुगुणा को नमस्कार किया और लेकर आये और फिर बैठे। याने एक लेखक का आत्मसम्मान यह कि एक मीनिस्टर है केंद्र का, उसकी उपेक्षा की और एक ऐसे नेता जो उस समय सरकार से बहिष्कृत था, उपेक्षित था, लेकिन व्यक्तिगत उनका मित्र था, उसको उन्होंने सम्मान ×¤üµÖÖ…

स्थान : मुनिरका, दिल्ली

×ÿÖ×£Ö : 14 ±ú¸ü¾Ö¸üß 2014

›ü. ÃÖÖ¾ÖÖß¿Ö µÖÖ¤ü¾Ö,
अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
शिवाजी महाविद्यालय, रेणापुर (´ÖÆüÖ¸üÖÂ™ü)

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि डॉ. सन्तोष यादव, सहयोगी प्राध्यापक, शिवाजी महाविद्यालय, उदयपुर 'बृहद् शोध परियोजना' के अन्तर्गत साक्षात्कार लेने हेतु मेरे पास दि. 14.02.14 को आये। आपके साथ 'अज्ञेय के साहित्य में आधुनिकता' इस विषय पर साक्षात्कार चर्चा हुई।

स्थान: नयी दिल्ली

दिनांक: 14.02.14

अपूर्व सावधान उत्तेजी से

[illegible]

14-02-14

: साक्षात्कार :

हिंदी के वरिष्ठ आलोचक **डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल** ÃÖ >Ö. ÃÖŸÖß¿Ö µÖÖ¤ü¾Ö की बातचीत। बातचीत का विषय है - **'अज्ञेय और मर्ढेकर के साहित्य का आधुनिकता के संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन।'**

ÃÖŸÖß¿Ö µÖÖ¤ü¾Ö : पालीवाल जी सबसे पहले मैं आपका अभिनंदन करता हूँ कि आपने अज्ञेय के समग्र साहित्य को संपादन के रूप में पाठकों के सम्मुख लाए। आप अज्ञेय-साहित्य के बहुत बड़े अध्येता रहे हैं। आपको वर्षों से मेरी पीढ़ी पढ़ती आयी है। मैं एक शोध-परियोजना के अंतर्गत **'†-ÖµÖ †Ö¸ü मर्ढेकर के साहित्य का आधुनिकता के संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन'** इस शीर्षक के अंतर्गत काम कर रहा हूँ। आपसे बात करते समय मुझे बहुत खुशी हो रही है कि मैं हिंदी के एक विवेकी और निर्भयशील आलोचक से बात कर रहा हूँ ...

कृष्णदत्त पालीवाल : आपने बहुत महत्त्वपूर्ण विषय चुना है। आपने यह भी स्पष्ट किया कि आपका विषय अज्ञेय और मर्ढेकर को लेकर तुलनात्मक है और इसमें विश्लेषणात्मक स्थितियों की समीक्षा होगी, यह बात भी आपने स्पष्ट कर दी। दूसरी बात जो सबसे महत्त्वपूर्ण है कि अज्ञेय और मर्ढेकर में जो तुलनीय स्थितियाँ हैं उन पर आपको आधुनिकता के संदर्भ में विचार करना है। सबसे पहले तो आप ये देखियेगा कि अज्ञेय ने आधुनिकता पर जितनी पश्चिमी दृष्टियाँ थी, उन्हें रिजेक्ट कर दिया। उसे अस्वीकार कर दिया, अस्वीकार का साहस अज्ञेय में हैं। और उन्होंने कहा कि 'अपने को निरंतर संस्कारित करना ही आधुनिकता है।' तो जब हम अपने को निरंतर नया बनाते रहते हैं, तो हम नवीन होते रहते हैं। पुरानापन झड़ता रहता है। यही काम मर्ढेकर ने मराठी कविता में किया है कि पुरानेपन को झाडकर परंपरा के भीतर से फुटती हुई जो आधुनिकता है, उसे केंद्र में लाए और यही काम अज्ञेय ने किया। अज्ञेय विद्रोही या रेवेलियन या क्रांतिकारी जो दिखते हैं, वह जब साहित्य के क्षेत्र में जाता है तब वह चिंतक में बदल जाता है। ऐसे बदल जाता है जैसे हीरे का क्रिस्टल, जो बहुत ठोस हो जाता है। और ठोस अज्ञेय निरंतर ये बात करेंगे कि **'मैं वह धनु हूँ जिसे तानने में प्रत्यंचा टूट गई है, स्सखलित हुआ है बाण, लेकिन ध्वनि दिगंत में फुट गयी है।'** मेरा काम यह था कि मैं नया प्रकाश पैदा करूँ, नये भाव पैदा करूँ। नये उपमान पैदा करूँ, जो उपमान मैले हो गये हैं, इनसे अब काम चलनेवाला नहीं है। इसलिए भाषा का, छंद का, लय का, तुक का, यति का, गति का संस्कार और पुनर्निर्माण भी अज्ञेय ने किया।और यही काम मराठी में मर्ढेकर ने किया। तो ये जो बदलाव है, जिसे आप रेखांकित कर रहे हैं, यह बहुत महत्त्वपूर्ण पक्ष है।

ÃÖŸÖß¿Ö µÖÖ¤ü¾Ö : अज्ञेय ने स्वयं कहा है कि मैं विचारधारा को नहीं मानता। मैं संवेदनाओं का कवि हूँ। अज्ञेय जिस युग में कविता लिख रहे थे, उस समय कविता में कई साहित्य धाराएँ प्रवाहित हो रही

थी। अज्ञेय को हिंदी साहित्य की, विशेषतः कविता की परंपरा में आप कहाँ देखते हैं?

कृष्णदत्त पालीवाल : ये सोचकर बहुत आश्चर्य होता है हमारे पुरानी पीढ़ी के संस्कारवाले मित्रों को कि अज्ञेय जी मैथिलीशरण गुप्त को अपना काव्यगुरू क्यों मानते? मैथिलीशरण गुप्त पुरानों में नए और नयों में पुराने हैं। क्लासिक, और मैथिलीशरण गुप्त की जो विचारधारा है अगर आप उसे बहुत घुमाते फिराते रहते हैं, तो कभी वैष्णव कह देते हैं, कभी मानववादी कह देते हैं, कभी गांधीवादी कह देते हैं। इनसे कोई बात बनती नहीं। क्योंकि, मैथिलीशरण गुप्त इन विचारधाराओं का निरंतर अतिक्रमण करते हैं। यही अज्ञेय करते हैं।अज्ञेय जितनी विचारधाराएँ है उनका अतिक्रमण करते हैं। मार्क्सवादियों का अज्ञेय विरोधी दिखाई देते हैं, मार्क्सवादी अज्ञेय का बहुत विरोध करते हैं। अज्ञेय ने स्वयं कहा है, मैंने मार्क्सवादियों का विरोध नहीं किया, मार्क्सवादी ही मेरे विरोधी हुए। ऐसे ही अस्तित्ववाद, जो अज्ञेय के यात्रा संस्मरण हैं, उसमें अज्ञेय तमाम अस्तित्ववादियों से मिले थे और जब कीर्केगार्द और इन तमाम लोगों से, यास्पर्स से बातचीत हुई तो अज्ञेय ने स्वयं कहा कि मैं दार्शनिक तो हूँ नहीं। इसलिए जो अस्तित्ववादी दर्शन की गहराइयाँ हैं मुझे नहीं पता। लेकिन मैं साहित्यकार हूँ। साहित्यकार होने के नाते मैं जीवन में कुछ छवियाँ हाँकता हूँ। तो जो छवि हाँकते हैं अज्ञेय, उसमें अज्ञेय कई बार अपने विचार रखते हुए कहते हैं, हम तो मानवीय धारा के एक अंग हैं। हम किसी विचारधारा के गुलाम कैसे हो सकते हैं? **'हम नदी के द्वीप हैं, हम नहीं कहते कि हमको छोड़कर स्रोतस्विनी बह जाए, माँ है वे हमें आकार देती है, हमारे स्रेतस्वी वार अंतरिक्ष सब गोलाईयाँ, उसकी गढ़े हैं, हम बहेंगे तो रहेंगे ही नहीं।'** क्योंकि बहना रेत होना है। हम रेत नहीं होना चाहते। हम सार्थक होना चाहते हैं, हम उपयोगी होना चाहते हैं। तो ये जो अज्ञेय की मानवीय आस्थावाली दृष्टि है, इसमें अस्तित्ववाद है। और ये जो भारतीय अस्तित्ववाद है, दुनिया भर में अस्तित्ववादी कुछ भी कहे, मानवीय स्रोतों से आज सिद्ध हो गया है कि उसके मूल में गौतम बुद्ध का दर्शन है। और गौतम बुद्ध के दर्शन के मूल में है करूणावाद और करुणावाद केवल बौद्ध दर्शन की ही शाखा नहीं है। सभी जितने भारतीय चिंतन हैं, उन सबमें करुणा उनका मूल है। क्योंकि हमारे चिंतन का केन्द्र है 'वाल्मिकि रामायण'आदि ग्रंथ।और आदि ग्रंथ एक अपार करुणा का महासागर है। अज्ञेय उसी महासागर में उच्छलित होते हैं और अज्ञेय की कविता में सागर बहुत है। मछली बहुत है, जल बहुत है। मैंने मर्ढेकर का ज्यादा अध्ययन नहीं किया, मैं समझता हूँ, ये जो सागर है, ये सागर मर्ढेकर में भी जरूर उछलता होगा, इसमें कोई संदेह नहीं।

ÃöÝöß¿ö µöö¤¾ö : मेरा दूसरा सवाल यह है कि बार-बार अज्ञेय की कविता के बारे में कहा जाता है, पहले भी कहा जाता था और आज भी कहा जा रहा है कि अज्ञेय की कविता सार्त्र, यास्पर्स और कीर्केगार्द से, उनके अस्तित्ववादी दर्शन का अनुकरण करती है। हालांकि इस चीज को अज्ञेय ने

नकारा है। सवाल यह है कि क्या ये सही में अनुकरण है या भारतीय अस्तित्ववाद है?

कृष्णदत्त पालीवाल : ज्यादातर हिंदी के लोगों ने अंग्रेजी नहीं पढ़ी। वे अंग्रजीदा झूठ बनते हैं। डॉ. रामविलास शर्मा ने बदनियती से एक किताब लिखी, जिसका नाम है, 'नयी कविता और अस्तित्ववाद'... और उस नयी कविता और अस्तित्ववाद में उन्होंने पूरे के पूरे जितने थे नामवरसिंह से लेकर सबको उन्होंने बदनाम अस्तित्ववादी सिद्ध किया। और सबसे ज्यादा अस्तित्ववाद को लेकर पीठ पर छूरा भोंका अगर किसी के तो वे हैं अज्ञेय। कि ये व्यक्तिवादी हैं, ये कलावादी हैं, ये रूपवादी हैं, ये बिंबवादी हैं, ये पाखंडवादी हैं, ये दंभवादी हैं, कौन-सी गाली है जो उन्होंने अज्ञेय को नहीं दी। और एक दिन तो नामवरसिंह यह कहने लगे, इस जोश में उन्होंने कहा कि ये हिंदी का 'x"Ö´¯ÖÖ•Öß' Æî... लेकिन अज्ञेय जी नहीं बोले। अज्ञेय बोले नहीं, अज्ञेय इसीलिए नहीं बोले कि अज्ञेय जी यह जानते थे कि उन्हें तय करके टार्गेट किया जा रहा है। अज्ञेय जी ने बार-बार यह कहा भी है कि, और अज्ञेय के जो बड़े आलोचक हैं उनका नाम है विजयदेव नारायण साही। साही जी ने यह बात हमेशा कही कि जो लोग अंग्रेजी कम जानते हैं जिन्होंने अंग्रेजी के निबंध थोड़े बहुत पढ़ लिए हैं, वे अंग्रेजीदा बहुत बनते हैं। जितनी चीजें अज्ञेय ने सीखी थी, जानी थी, उनमें अज्ञेय के उपर बौद्ध दर्शन का गहरा प्रभाव था। अज्ञेय का हमने इसीलिए आपको ध्यान दिलाया कि अज्ञेय का अस्तित्ववाद यास्पर्स की ओर नहीं मूड़ता, जहाँ भेंट-वार्ता हुई, वहाँ भी उन्होंने कहा कि, नहीं, मैं दार्शनिक नहीं हूँ। मुझे पश्चिम के दर्शनों की बुनियादी बातें नहीं मालूम। लेकिन हम भारतीय हैं, हमारी कविता में दर्शन है। हमारी कविता में व्याकरण है। हमारी कविता में भूगोल है, हमारी कविता में इतिहास है। इसलिए भारतीय संस्कृति के निर्माण में जितना योगदान भारतीय कवियों का रहा है उतना योगदान दुनिया के किसी भी देश में कवियों का नहीं है। वाल्मिकि और व्यास ने हमारा सामूहिक अवचेतन मन गढ़ा है। इसलिए अज्ञेय की कविता में जो मिथक आते हैं, वे इस बात का प्रमाण देते हैं कि अज्ञेय पश्चिमी अस्तित्ववादी नहीं है। नहीं तो यह मिथक आ ही नहीं सकता। **'नर जिसकी अनझिप आँखों में नारायण की ¾µÖ£ÖÖ ³Ö¸üß Æî'** और कई बार कहेंगे, **'ÆÖµÖ'! मुझे इस रूप में व्यक्त मिले रामायण, 'न जइयों राधा जमुना के तीर'**... †Ö¸ü µÖ ¸üÖ¬ÖÖ ŒµÖÖ Æî? '¸üÖ¬ÖÖ' शब्द का अर्थ होता है, आप तो मराठी के विद्वान है, आप देखें, राधा का अर्थ है 'रांधने वाली।' जो हमारे चित्त को रांधती है, जो हमारे चित्त को पक्का करती है। जो हमारे चित्त को नया रंग देती है वह '¸üÖ¬ÖÖ' Æî... ‡ÃÖß×»Ö< Æî´ÖÖ¸üß ¯Ö¸üß ¯Ö¸ü¯Ö¸üÖ राधामय परंपरा है। पुरूष उस स्त्री के चरणों में बिछा हुआ है। आधुनिक हिंदी कविता के प्रवर्त्तक भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद्र, यही से अज्ञेय में वही परंपरा रंग लाती है। **'गुलाम राधारानी के, सखा प्यारे कृष्ण के, गुलाम राधारानी के।'** भारतेन्दु ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के लिए लिखा था, **'सेवक गुणीजन के, चाकर चतूर के हैं, कवन के हीत मित, दान गुण दानी के और सुधन सो सुधे,**

महाबाके हम बाकन सौ, हरिचंद नगर दमाद अभिमानी के।' किसी के हम गुलाम नहीं है, गुलाम राधारानी के। अगर हम गुलाम है, तो विक्टोरिया के नहीं है राधा के हैं। प्रकृति और पुरूष का जो हमारा सम्बन्ध है, अज्ञेय उसे व्यक्त करते हैं। अज्ञेय की शुरूआत की जो कविताएँ हैं, 'चिन्ता' की, वे सब कविताएँ, वे प्रकृति और पुरुष के संबंधों की कविताएँ हैं। वह प्रेम और प्रणय की कविताएँ हैं। इसलिए, उड़ 'ÆÖ×¸¡»Ö'। तो अज्ञेय का मन हारिल से बंधा हुआ है। यह 'ÆÖ×¸¡»Ö' ¾ÖÆüß Æü •ÖÖ ÃÖÓ¸üÛ¤üÖÃÖ ´Ö ×´Ö»ÖŸÖÖ Æü… µÖÆü 'ÆÖ×¸¡»Ö' ¾ÖÆüß Æü •ÖÖ ÃÖÓŸÖ ÃÖÖ×ÆüŸµÖ ´Ö ×´Ö»ÖŸÖÖ Æü… †²Ö ¾ÖÆü 'ÆÖ×¸¡»Ö' ¾ÖÆüß है जो पूरे भारतीय साहित्य में मिलता है। हमने सुना है, हमें किसी ने बताया, असम और इधर बंगाल की कविता में भी 'ÆÖ×¸¡»Ö' बहुत मिलता है। इसका मतलब है कि बंग साहित्य में भी जो परंपरा रही होगी रवीन्द्रनाथ की, ब्रज और उन सबकी, उनमें इस सबका सन्नीवेश हैं। क्योंकि, रचनावलियों में यह बार-बार आया है। अज्ञेय ने लिखा, **'ऊपर, ऊपर, ऊपर, ऊपर, चढ़ा चीरता चल नभ, अनझिप पंखों की मारों से नभ में एक मचा दे हलचल।'** एक नई हलचल पैदा की। ये जो 'ÆÖ×¸¡»Ö' मन है। ये पश्चिमी अस्तित्ववाद की गढ़न नहीं है। इसमें भारतीय आधुनिकता है, जिसे हम 'Indian modernization' कहते हैं। उसके तमाम तत्व मिले हुए हैं। सभी तत्व आ गये हैं, ऐसा मैं नहीं कहता। अज्ञेय का एक निबंध है उसका नाम है '³ÖÖ¸üŸÖßµÖŸÖÖ'। लेकिन अज्ञेय का और एक निबंध है 'मेरी स्वाधीनता सबकी स्वाधीनता।' 'स्वाधीन होने का मतलब है अपनी चरम संभावनाओं तक विकसित होना' यही आधुनिकता है।

ÃÖÓŸÖÖß¿Ö µÖÖ¤ü¾Ö : प्रयोगवादी कविता, जिसके पुरोधा अज्ञेय जी रहे हैं। हालांकि अज्ञेय ने कहा कि प्रयोगवाद कोई वाद नहीं है। यह साफतौर से उन्होंने 'तारसप्तक' की भूमिका में भी लिखा है। लेकिन अज्ञेय जी ने प्रयोग किए। भाषा में, प्रतीकों में, बिंबों में, नये प्रतीक लाए ....

कृष्णदत्त पालीवाल : अज्ञेय जी ने यह प्रश्न उठाया कि प्रयोग कब नहीं हुए। जो कोई यह कहता है कि मैंने प्रयोग नहीं किया है वह झूठ बोलता है। इसलिए अज्ञेय जी ने जब प्रयोगवाद नाम दिया। नंददुलारे वाजपेयी ने जोरावारी, तो अज्ञेय ने उसका विरोध किया। हमें प्रयोगवादी कहना उतना ही सार्थक है, निरर्थक है जितना हमें कवितावादी कहना। और हम प्रयोग को नये सत्य को खोजने का माध्यम मानते हैं। विज्ञान का माध्यम मानते हैं। प्रयोग सफल भी होते हैं असफल भी होते हैं। लेकिन अगर हम प्रयोग करेंगे ही नहीं तो हम नये की ओर बढ़ नहीं सकेंगे। हम यथास्थितिवाद का शिकार हो जाएँगे। उन्होंने कहा कि क्या प्रयोग श्रीधर पाठक ने नहीं किए ? अज्ञेय का निबंध है 'खड़ीबोली कविता आंदोलन'। उसमें उन्होंने कहा श्रीधर पाठक ने प्रयोग नहीं किये? श्रीधर पाठक अपनी कविता को 'नयी कविता' कहते थे। **'कविता नयी, निराला छंद, दालभात में मूसर चंद, करिए नहीं लेखनी बंद और श्रीधर सच सब कवि स्वच्छंद।'** कवियों को स्वच्छंद होना चाहिए, रूढ़ि

विरोधी होना चाहिए। नयी लीकों पर उसे पैर रखना चाहिए। नये प्रयोग करने से घबराना नहीं चाहिए तो अज्ञेय उसी परंपरा में आते हैं। अज्ञेय और मैथिलीशरण गुप्त, मैथिलीशरण गुप्त आपको दिखाई देते हैं पुराने, लेकिन बड़े क्रांतिकारी हैं। गुप्त जी बड़े रेवेलियन है। नारी का जो पूरा ढाँचा था, मध्ययुगीन नारी का पूरा बदल दिया। प्रबंध काव्य का जो पूरा सांचा और ढाँचा था, उसे मैथिलीशरण गुप्त ने बदल के नये खांचे बनाये। उसमें नयी लकीरें डाली और उन नयी लकीरों के भीतर नया भावबोध भरा। और उन नये भावबोध में एक जो अखंड भारतीय, अविजित भारतीय व्यक्तित्व है उसे खड़ा किया। और नारी की दुर्बलता का एक-एक इंच तोड दिया।**‘²Ö»Ö ÆÖ ŸÖÖ ØÃÖ¤¸ ز֤ ŸÖ´Æ Æ¸ नेत्र निहारों, मुझे फूल मत मारो।’** उर्मिला ये कहती अगर तुम्हारी नेकदम है, हमारी मांग जो है यह शिवजी की तीसरी आँख हैं। इसे जो देखेगा वह जल जाएगा। तो यह राजनीति से दूर हमारी घरों में बैठी हुई तपस्विनी स्त्रियाँ हैं। गुप्त जी ने उनका गौरव बचाया है। इसीलिए मैथिलीशरण गुप्त को अज्ञेय अपना काव्यगुरू मानते थे।

ÃÖŸÖßÖ¿Ö µÖÖ¤¾Ö : अज्ञेय जी की कविता के प्रसंग में एक प्रश्न बार-बार उठाया गया है कि ये व्यक्ति-सत्य की बात करते हैं समाज-सत्य की नहीं। ये व्यक्ति-चेतना की बात करते हैं समष्टि की नहीं। यह प्रकृति की ओर जानेवाला कवि हैं, अध्यात्म की ओर जानेवाला कवि हैं, नव रहस्यवाद की बात करनेवाला कवि हैं। यह तो यथार्थ से भाग रहा है......

कृष्णदत्त पालीवाल : यह बात भी हिंदी आलोचना में नववामपंथियों ने उठायी और अज्ञेय की कविता में रहस्यवाद को खोजा, नवरहस्यवाद खोजा। आज पश्चिम से भी हम पूछते है जहाँ ‘x´ÖÃ™ßxÃÖ•´Ö’ “Ö»ÖÖµÖÖ £ÖÖ... What is new mistrysicism, he cant define, वे उसकी व्याख्या नहीं कर सके। हिंदी में भी, अज्ञेय में नवरहस्यवाद है कहाँ? आत्म, आत्मा और परमात्मा का जो परंपरागत संबंध है, उसे अज्ञेय नहीं मानते। ऐसे ही अज्ञेय यात्राएँ करते हैं, जन जनक जानकी यात्रा करेंगे। भागवत यात्रा करेंगे, सब करेंगे। लेकिन अज्ञेय जो पूजापाठ करने वाला, आपका जो परंपरागत कर्मकांड है, उसका निषेध करते हैं। लेकिन व्यक्ति अगर आस्थावान हो तो जरूरी नहीं उसे अनास्थावादी बना दिया जाए, अगर व्यक्ति कुछ मूल्यों के लिए जीता है तो जरूरी है कि आप उसे संशयवादी बना दें? तो यह बात खारिज होती है।

दूसरी बात यह जो व्यक्ति-सत्य है और समाज-सत्य है, इसके बीच आप समानांतर रेखा कहाँ खीचेंगे। यह बात अज्ञेय ने बार-बार उठायी कि क्या कोई समाज-विरोधी होकर लेखक हो सकता है? क्या हो सकता है कोई? किसी भी भाषा में क्या हिंदी में ही नहीं भारतीय भाषाओं में ही नहीं, क्या विश्व भाषा में ऐसा कोई उदाहरण मिलता है कि आदमी व्यक्ति विरोधी होकर समाजलेखक हो सका। एक भी लेखक नहीं है। रचनाकार वही है जो सामाजिक चिंताओं से गहरा जुड़ा होता है।

सामाजिक सरोकारों से गहरा जुड़ा होता है। अगर सामाजिक सरोकारों से न जुड़ा होता तो अज्ञेय का जो पूर्ववर्ती काव्य है और अज्ञेय का जो उत्तरवर्ती काव्य है उसमें देखिए कि बुनियादी फर्क आ गया है। उसमें हमेशा अज्ञेय ने ये कहा है,**'मैं बन की तरह खुला हूँ, बन की तरह मैं बंद हूँ, छंद में मेरी समायी नहीं होगी, मैं सन्नाटे का छंद हूँ।'** ये जो सन्नाटे का छंद है, यह सब सुनता है। जब हम अकेले होते हैं, तो हम ज्यादा सुन रहे होते। जब हम सबके बीच में होते हैं, तो हम बहुत कम सुन रहे होते, हम सुन ही नहीं रहे होते। तो ये जो अकेले में सुनना है,अपनी अस्मिता को पहचानना है। इसलिए अज्ञेय आत्मसमर्पण की बात करते हैं, आत्मनिर्माण की, आत्मपरिष्कार की बात करते हैं। यह बात हमारी पूरी परंपरा करती रही है। इसका मतलब है निर्वेयक्तिकता, साधारणीकरण। अज्ञेय ने तारसप्तक में भी कहा था कि ऐसा नहीं कि, हम रस को नहीं मानते लेकिन यह नहीं कि हम साधारणीकरण को भी नहीं मानते। हम संप्रेषण व्यापार को गहरा आदर देते हैं। जो कवि अपने पाठक से, अपने समाज से निरंतर संप्रेषण की चिन्ताओं से जुझता है, उस कवि को आप न तो व्यक्ति-सत्य में डूबा कवि कह सकते हैं न व्यक्तिवादी। इसलिए अज्ञेय भी, जो 'तारसप्तक' के जितने भी कवि हैं, जिन पर तरह-तरह के आक्षेप लगाये जाते हैं। उनमें से पश्चिमी ढंग का व्यक्तिवादी कोई हमारे में एलिनियेशन आया ही नहीं। समाज में, हमसे लोग बेरूखी से बोलते हैं। लेकिन बोलते हैं। बोलते हैं लोग मुँह फेरकर, लेकिन बोलते तो हैं। समाज ने अभी हमसे बोलना बंद नहीं किया। अज्ञेय का समाज से संवाद रूक नहीं गया था। इसीलिए अशोक वाजपेयी ने जो डिबेटे करायी है 'पूर्वग्रह' में, डिबेटे छपी हैं। वे डिबेटे आप इकट्ठे कीजिए। चार-पांच 'पूर्वग्रह' के अंक में गये हैं और जो डिबेटे हुई भोपाल में। पचास-साठ हिंदी साहित्यकारों के बीच में, वहाँ अज्ञेय ने भुजा उठायी कि आज मैं आपके सामने हूँ। और आप मुझे जो व्यक्तिवादी, व्यक्ति-सत्य की जो बातें कहते हैं। मैं आज उनसे बातें करना चाहता हूँ। ये व्यक्ति-सत्य क्या होता है। एक तो होता है, हर आदमी अपना सत्य अपने संघर्षो से कमाता है। यह मेरा व्यक्ति-सत्य है। और जो मेरा व्यक्ति-सत्य है, वह आपका भी व्यक्ति-सत्य हो, यह जरूरी नहीं है। जिस काम को मैं कहता हूँ कि, 'ØÆ¤ß ¯Öœü, ØÆ¤ß पढ़ने से रमा प्रसन्न होती है।' यह हिंदी रमा प्रसन्न भाषा है। लेकिन हमारा लड़का कहता है कि हिंदी तुम्हारे लिए रमा प्रसन्न भाषा है, मेरे लिए तो रमा प्रसन्न भाषा एम. बी. ए. की अंग्रेजी है, मैं तो उसमें जाऊँगा। तो यह उसका सत्य है। उसने अपनी, उस क्षेत्र की, इतिहास का आदमी, भूगोल का आदमी, सबकी चीजें हो, सबके रास्ते अलग-अलग हैं। और विभिन्नता में ही सौंदर्य है मित्रवर, एकरसता में सौंदर्य नहीं है। यह तो भारतीय चिंतन है, विभिन्नता में एकतावाला **'´Ö›ü ´Ö›ü ´ÖŸÖ ×³Ö®Ö:'**। इसलिए अनुभूति की अद्वितीयता पर अज्ञेय का बल है। फूल को देखकर आपकी अलग अनुभूति है, मेरी अलग अनुभूति है। रंगों को भी, एक साडी जिसे हर आदमी रिजेक्ट कर जाता है

और मैं जाता हूँ कनॉट प्लेस में उसे देखने के लिए और मैं उसे उठा लेता हूँ और मैं कहता हूँ कि, मैं यही खोज रहा था। और दुकानदार कहता है कि सालभर से यह ठोकरे खा रही थी आज ऐसा ग्राहक आया जो इसे खरीदना चाहता है। तो इसलिए व्यक्ति-सत्य और समाज-सत्य में आप निर्णय नहीं कर सकते। उनके बीच में रेखा कौन-सी खीचेंगे आप। अज्ञेय ने यह बात ‘आत्मनेपद’ ´Ö ²ÖÖ¸¡-²ÖÖ¸¡ उठायी, एक तो यह किताब। अज्ञेय की दूसरी किताब का नाम है ‘स्मृतिछन्दा’... ˆÃÖ´Ö µÖÆü ²ÖÖŸÖ उठायी है। तीसरी बात,अज्ञेय ने साहित्य अकादमी में दो भाषण दिये। ‘देश और काल’ †Ö¸ü ‘¤ü¿Ö †Ö¸ü Ã´ÖéןÖ’। उन्होंने कहा कि आज पश्चिम चाहता है कि हमारी स्मृति मिट जाए। हमें कुछ भी याद न रहे। क्योंकि स्मृति को मिटाकर ही हमें विस्मृति के अंधकार में धकेला जा सकता है। और हम स्मृति को मिटाने पर आमादा नहीं। इसलिए वे आधुनिकतावादी, पश्चिमी ढंग के आधुनिकतावादी नहीं है। वे बार-बार अपनी परंपराओं के भीतर टटोलते हैं, परखते हैं, उन्हें रिजेक्ट करते हैं। उन्हें लतियाते हैं, लेकिन उनके भीतर जो छिपा हुआ जीवन-सत्य है, उसके लिए बार-बार कहते हैं, ‘ÃÖÖ¸ü-सार को गहि रहे और थोथा दियो उड़ाय।’ इसी चक्कर में हूँ कि मैं इस पूरी परंपरा के तात्विक आधार को ग्रहण कर सकूँ। इसलिए अज्ञेय भारतीयता पर निबंध लिखते हैं, उन्होंने भारतीयता पर निबंध लिखा है। इसीलिए अज्ञेय ने ‘आधुनिकता और सम्प्रेषण’ नाम से निबंध लिखा है। अज्ञेय की एक किताब है, जिसका नाम है ‘Ã´ÖéןÖ““”¡¤ü’। उसके निबंध देखिये। उन सब में, आपका जो विषय है आधुनिकता, उस पर बहुत लिखा है। ये जो ई-कॉमर्स और इन्टरनेट क्रांति, मीड़िया क्रांति जो आ रही थी। इन सबकी चर्चा अज्ञेय ने ‘त्रिशंकु’ के निबंधों में की है। आप देख लीजिएगा। सबकी, जिसकी चर्चा आज हम इक्कीसवीं शताब्दी में कर रहे हैं। उसकी चर्चा अज्ञेय 1944 में कर रहे थे। 1944 ´Ö ‘त्रिशंकु’ का प्रकाशन हुआ। वह आप समझिये, अज्ञेय अपने समय के कितने आगे के कवि थे। हमारे यहाँ जो कहा जाता है, कवि द्रष्टा होता है, स्रृष्टा होता है, ये धारणा आपको माईकेल मधुसुदन दत्त में मिलेगी। माईकेल मधुसुदन दत्त जिन्होंने ‘मेघनाद’ लिखा। यह धारणा आपको मराठी में मर्ढेकर में मिलेगी। यह धारणा केशवसुत में मिलेगी। यह धारणा आपको असमिया के फकीर मोहन सेनापति में मिलेगी। यह धारणा आपको कन्नड़ के बल्लतोल में मिलेगी। ईषान में मिलेगी, तमिल के सुब्रहमण्यम भारती में मिलेगी। कौन है जिसमें नहीं मिलेगी। उसका नाम बता दीजिएगा। इसलिए अज्ञेय ने कहा कि कवि व्यक्तिवादी नहीं हो सकता और कुछ हो सकता है। कवि वही है जिसमें संप्रेषण व्यापार हो और निर्वेयक्तिकता, Personal को जो Impersonal बना देता है इसीलिए अज्ञेय ने टी. एस. इलियट के निबंध का अनुवाद ‘रूढ़ि और मौलिकता’ शीर्षक से किया। परंपरा रूढ़ि है। लेकिन उन रूढ़ियों के भीतर से जो सार छिपा हुआ है, उसे खोजना ही कवि का काम है। अगर वाल्मिकि ही अन्तिम मान लिये गये होते तो तुलसीदास ‘रामायण’ क्यों लिखते ? और

तुलसीदास ही अंतिम मान लिए होते तो निराला को ‘राम की शक्तिपूजा’ लिखने की क्या जरूरत थी ? †Ö¸ ¡ ‘राम की शक्तिपूजा’ ही अंतिम मान ली जाती तो नरेश मेहता को ‘संशय की एक रात’ लिखने की क्या जरूरत थी? यानी निरंतर प्रयोग होते हैं, निरंतर नये होते रहते हैं। **‘×±Ö¸ ¡ ¯ÖŸÖ–Ö›¡, ×±Ö¸ ¡ कुसुमन, फिर पल्लवन, फिर पतझड़, फिर कुसुमन, फिर पल्लवन, फिर बीज बन जाना, फिर उजाना, फिर वृक्ष हो जाना। फिर वृक्ष होकर पल्लवन, कुसुमन, पतझड़, हम इसे ‘¸ ¡ŸÖÖ’ कहते हैं ‘¸ ¡ŸÖÖ’...** आपने कहा था अज्ञेय प्रकृति के कवि हैं, अज्ञेय ‘¸ ¡ŸÖÖ’ के कवि हैं। ‘ŠÖ¯ŸÖ’ ÃÖ ¸ ¡ŸÖÖ... रेता होना है, आवर्तन-विवर्तन,आवर्तन-विवर्तन, हम पेड़ हैं, बीज बन जाएँगे, फिर उगेंगे। फिर पल्लवन होगा, कुसुमन होगा, फलन होगा। फिर बीज बन जाएँगे। फिर झड़ जाएँगे, फिर उगेंगे। **‘×±Ö¸ ¡ खड़ा होगा व्यक्तित्व का नया आकार, हम नहीं कहते कि हमको छोड़कर स्त्रोतस्विनी बह •ÖÖ‹, ´ÖÖ Æ ½ÖÆ...’** इसलिए परंपरा माँ है, निरंतर नया होते रहता है। विजयदेव नारायण साही जी ने अज्ञेय और प्रसाद की तुलना की है। प्रसाद ने ‘कामायनी’ ´Ö µÖ ‘£Ö¾ÃÖ¾ÃÖ’ रखा था। **‘प्रकृति है यौवन का श्रृंगार, करेंगे कभी न बासी फूल, मिलेंगे वे जाकर अतिशीघ्र आप सुख है उनकी ¬Ö»Ö...’** पश्चिम का आदमी प्रकृति को गुलाम बनाकर दुह लेना चाहता है। लेकिन भारतीय दर्शन कहता है प्रकृति को दुहो मत, प्रकृति को नष्ट मत करो, प्रकृति को नष्ट करोगे तो तुम नष्ट हो जाओगे। ‘कामायनी’ में मनु खुद कहते हैं,**‘प्रकृति रही दुर्जेय, पराजित हम सब थे भूले मद में; भोले थे, हाँ तिरते केवल सब विलासिता के नद में। वे सब डूबे; डूबा उनका विभव, बन गया पारावार; उमड़ रहा है देव सुखों पर दुःख जलधि का नाद अपार।’** तो प्रकृति जीती, प्रकृति जीतेगी। तो प्रकृति से मनुष्य संघर्ष नहीं करता। आज हम प्रकृति से संघर्ष कर रहे तो आप देख रहे हैं प्रदुषण की समस्याएँ पैदा हो रही हैं। नदियाँ अपना बहाव-कटाव छोड रही हैं। पर्वतों के ढाँचे टूट रहे है। यह जो परिवर्तन है प्रकृति से टकराने का इसे रोका जा रहा है। पश्चिम में इकॉलॉजी पर बहुत काम हो रहा है। और भूमंडलीकरण में सब चीजें, खदानों को लेकर, कोयले की खदाने खोद डालोगे, तो उपयोग तो कर लोगो, भोग तो कर लोगो, लेकिन ये बनेंगे नहीं दुबारा, नहीं बनेंगे। तो प्रकृति और कुछ कर लेगी। उपद्रव होंगे, एक ऐसी बाढ़ आयी, अभी जो बाढ़ आयी थी उत्तराखण्ड में, बद्रीनाथ, केदारनाथ में, उस पर रिसर्च हो रही है। परसो मैं ‘™Ö‡´Ö’ नाम की एक मैग्जिन आती है यूरोप की, उसे पढ़ रहा था। उन्होंने कहा, यह खोजा जा रहा है कि इतनी तेज आयी कैसे? धरातल होता, समतल होता। ठीक है आयी। अथाह पहाड़ों की ऊँचाई पर आयी कैसे? तो अज्ञेय ने इकॉलॉजी की चिन्ता की है। मैं आपसे ध्यान दिलाऊँ अज्ञेय की दस कविताएँ आप अपने शोध में ले, मर्ढेकर का तो हमें पता नहीं है, अज्ञेय का हमें पता है कि अज्ञेय ने नंदादेवी नाम से बहुत कविताएँ लिखी। उनमें ये लिखा है कि यह नंदादेवी के बनों को हिन्दुस्तान के ठेकेदारों ने काट के उजाड़ दिया। नंदादेवी उजड़ गयी।

अज्ञेय नंदादेवी में जाया करते थे। ‘नंदादेवी, बीस-तीस वर्षों के बाद जब हम आएँगे,तो तुम्हारी जड़ों पर आर्य चढ़ चुके होंगे। तुम्हारे वृक्षों से लोदी बनाकर लोग अखबार छाप चुके होंगे। नंदादेवी, तुम नंदादेवी नहीं रहोगी। बनस्थली में देवता मर रहे हैं क्योंकि तलहटी सूख गयी है।’ इसलिए अज्ञेय का अंतिम काव्य संकलन है ‘बारह कविताएँ’… ‘मरूथल और बारह कविताएँ’ हैं। मरूथल पर हिंदी के बड़े चित्रकार रामकुमार ने चित्र भी बनाये। उनमें अज्ञेय की चिन्ता, इकॉलॉजी की चिन्ता है। यही कहा है, अगर बनों की कटायी हिन्दुस्थान में इसी ढंग से रही तो इस देश में राजनीतिक परिवर्तन हो न हो भौगोलिक परिवर्तन होगा। प्रलय होगी, बाढ़ आएगी, अकाल होगा, असमय रोग फैलेंगे, इस बारे में अज्ञेय ने सब लिखा। जब कभी कालिदास को आप पढ़ेंगे, तो कालिदास और अज्ञेय का सम्बन्ध यही है। ऐसा कोई भारतीय भाषा का कवि नहीं जिसका सम्बन्ध कालिदास और रवीन्द्रनाथ टैगोर से ना हो। कालिदास ने ‘¸¡“Ö¾Ö¿Ö’ में लिखा था कि जो गाय हमारी आ रही है, इसे ऋषि देख रहे Æî… **‘संचारी पुतानी दिगंतरानी कृत्वा दिनान्ते निलया गन्त, पृचक्रमे पल्लव राग ताम्रात तंगस्य मनुष्यत्वा।’** मुनीवर आँख खोलकर देखो कि जैसे लाल सूर्य की आभा है, ऐसे लाल रंग वाली हमारी गाय चमक-धमक रही है। जीवन चमक रहा है। हरियाली बिछी हुई है। इसीलिए पन्त के लिए अज्ञेय का आकर्षण बहुत है। उन्होंने लिखा है कि वे स्वरसिद्ध कवि हैं। **‘लहलह पालक, महमह धनिया, लौकी और सेंध फलीफूली, मखमली टमाटर हुआ लाल, मिरचियों की बड़ी Æî¸üß थैली, गंगा की रेती में फैली ये सुंदर सतरंगी।’** और ये गंगा पार्वती है। मेरी माँ है। **‘सैकतसैया पर दुग्ध धवल, तन्वंगी गंगा ग्रीष्म विरल, लेती है भ्रांत निश्चल, तापसबाला गंगा निर्मल, मृदुजल से दीपित मृदु कर्तल, और गोरे अंगों पर सिहर-सिहर लहर हराना तार तरल सुंदर, चंचल अंचल-सा नीला।’** बिंब देखो, जिसे आप बिंब, प्रतीक कहते हैं, उसमें आप विराटता देख सकते हैं। ये मेरी माँ है। यह कल्पना अज्ञेय में काम करती है। केशवसुत को मैंने पढ़ा। केशवसुत में भी यह कल्पना बड़ी जोरदार है। केशवसुत की जो कविता ‘ŸÖ¸üÆîß’ Æî, ˆÃÖ´Ö Œµ ÖÖ बताऊँ। भारतीय भाषाओं में वैसी कविताएँ बहुत कम है। सन्नाटे की बात भवानीप्रसाद मिश्र में भी है और यही सन्नाटे का छंद अज्ञेय में भी मिलता है।

ÃÖÖŸÖÖß¿Ö µÖÖÖ¤ü¾Ö : क्या कथाकार अज्ञेय फ्रायड़, एडलर, युंग से प्रभावित नजर आते हैं?

कृष्णदत्त पालीवाल : हमारी बात सुनिये, हिंदी उपन्यास को पहला मोड़ प्रेमचंद ने दिया। उस मोड़ को आप सामाजिक सरोकारों से रेखांकित कर सकते हैं, जो कृषक समस्या का मोड़ है। हिन्दुस्तान में पहली बार प्रेमचंद उसके सबसे बड़े प्रवक्ता हैं। दूसरा, हिंदी के आँचलिक उपन्यासों को सबसे बड़ा मोड फणीश्वरनाथ रेणु ने दिया। ऐसा बड़ा मोड किसी के पास नहीं होगा। हिंदी में जिन्हें आप मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास कहते हो, उसका सबसे बड़ा मोड़ अज्ञेय ने ‘शेखरः एक जीवनी’ ´Ö

दिया। जिसे स्वाधीनता आंदोलन से भी जोड़ा, विशेषत: दूसरा खंड। ‘¿Ö×¿Ö’ का स्वाधीनता आंदोलन से जुड़ा हुआ खंड। यह कहना कि कोई रचनाकार विचारधारा से प्रभाव ग्रहण करता है। रचनाकार लालटेन का प्रकाश ग्रहण करता है, लालटेन नहीं बन जाता। अज्ञेय फ्रायड के नकलची बन गये हो, ऐसी बात नहीं। प्रेमचंद ने गांधी से प्रभाव ग्रहण किया लेकिन प्रेमचंद पूरी तरह से गांधीवादी नहीं बने। वे आर्यसमाजी भी थे। रचनाकार विचारों को मधुमक्खी की तरह इकट्ठा करता हुआ भी उनका संक्रमण करता है,संश्लेषण और विश्लेषण करता है। यही अज्ञेय करते हैं। तो यह जो कहा जाता है कि अज्ञेय ने फ्रायड से लिया। अज्ञेय पर फ्रायड के और युंग के बहुत हलके प्रभाव है। ज्यादातर अज्ञेय ने, ये जो स्वाधीनता आंदोलन के हमारे संघर्ष की जो परिस्थितियाँ थी उसका मनोवैज्ञानिक चित्रण किया। वह आदमी जो औरत में डूब जाना चाहता था, शेखर। शशि ने कहा कि क्या मैं केवल हाडमांस की ही पुतली हूँ। तुम्हारे लिए मैं कुछ नहीं हूँ शेखर क्या? और शेखर की हिचकी बंध गयी। उसने कहा, नहीं शशि, मैं गलत समझ रहा था। उसने कहा मैं, बहुत मेरे रूप हैं जैसे तुम्हारे, पुरूष के बहुत रूप हैं ऐसे मेरे भी बहुत रूप हैं। उनका स्वाधीनता आंदोलन में कुद पड़ना। शशि ने शेखर को प्रेरणा दी। देश पराधीन है। इसके लिए कुछ करो। केवल औरत पर ही प्राण न्योछावर कर देना जीवन नहीं परमतुच्छ। **‘नवखग पशु का उपमेय हमारा तन हैं, प्रकृति सुंदरी हमारा यौवन अस्थिर धन है।’** यह तो आज है कल चला जायेगा। लेकिन जो मानवीय मूल्य है स्वाधीनता, उसे अर्जित करो शेखर। और ‘शेखर : एक जीवनी’ उसी के लिए लिखा है। इसीलिए अब उसकी नयी व्याख्याएँ बनी हैं। इस व्याख्या को, यह जो किताब है हमारी, उसमें बहुत संदर्भ प्राप्त होंगे। उसका शीर्षक है, ‘†–ÖµÖ’ जो प्रकाशन विभाग से छपी है। ‘अपने-अपने अजनबी’ को जो अस्तित्ववादी मान रहे थे, तमाम प्रमाण देकर उसे खारिज कर दिया है, उन्हें आप देख लीजिए। सहमत होना जरूरी नहीं है, लेकिन देखना जरूरी है। अज्ञेय को रामविलास शर्मा ने कहा था कि ये अमेरिका का दलाल है। उसके लिए हमने बहुत कोशिश की, एक किताब हमने छपवायी, प्रभात प्रकाशन से ‘†–ÖµÖ : विचार का स्वराज।’ सब विदेशी प्रमाण दिये हैं कि अज्ञेय ने कहाँ से पैसा लिया और पैसा है कहाँ? कहाँ है पैसा? रामविलास शर्मा ने झूठ कह दिया कि वे अमेरिकन दलाल हैं। वे डाक्यूमेंट हमने सब छाप दिये, डेट, प्रमाणसहित। जो पैसा मिला था अज्ञेय को, उसमें आचार्य नरेन्द्र देव, इलाहाबाद के डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, विश्वभारती के हजारीप्रसाद द्विवेदी, ये हिंदी के पच्चीस विद्वान थे। हमारे हिंदी के पच्चीसों विद्वान अमेरिका के दलाल थे? रामविलास जी की इस बात में कुटनीति है। हजारीप्रसाद और अज्ञेय ने 1920 से लेकर 1940 तक इकट्ठा काम किया। उनकी पाँच किताबें मैंने ‘ÃÖÃŸÖÖ साहित्य मण्डल’ से छापी, हजारीप्रसाद द्विवेदी और अज्ञेय। ये अमेरिकन दलाल-वलाल नहीं, इनका पैसा होता तो कहीं मिलता, पैसा कहाँ गया? बताइये आप। उनकी डायरियों में भी नहीं, जितना पैसा

था अज्ञेय ने सब दान कर दिया। मुझे दिला दो पैसा कहाँ है?

ÃÖÝÖß¿Ö µÖÖ¤ü¾Ö : हमारे हिंदी के आलोचकों की ये आदत कहिए या चिढ़ाना जिसे कहा जाता है कि बार-बार अज्ञेय को मुक्तिबोध के सामने खड़ा किया जाता है और उन दोनों की तुलना करके अज्ञेय को छोटा साबित करने पर तुले हुए हैं। तो ऐसी स्थिति में आप क्या सोचते हैं?

कृष्णदत्त पालीवाल : तुलना में अलग-अलग निष्कर्ष आने चाहिए। उनसे विचार करने की नयी संभावनाएँ पैदा होती है। तो यह जो अज्ञेय और मुक्तिबोध की तुलना होती है, ये होनी चाहिए। ये दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। इन्हें एक-दूसरे का विरोधी दिखा देना साहित्यिक समझदारी नहीं है, लिटररी गुंडागर्दी है। ऐसे ही नरेश मेहता और अज्ञेय अध्यात्म की बात करते दिखायी देते हैं किन्तु दोनों अध्यात्मवादी नहीं हैं। गिरिजाकुमार माथुर और निराला में बहुत छवियाँ एक-सी हैं। उनकी तुलना उसी समझ से करनी चाहिए। गिरिजाकुमार माथुर को अंग्रेजी कविता का दलाल सिद्ध कर देंगे, तो क्या मिलेगा? मिलता क्या, बचता क्या? कुछ नहीं मिलेगा। तुलना के लिए संगति के पक्ष खोजने चाहिए, विसंगति के पक्षों का निषेध है। Comprative Litrature नामक एक किताब है, उसमें मैंने बार-बार एक ही वाक्य याद किया है कि विसंगति के लिए निषेध है। तभी तो हम मैथिलीशरण गुप्त की और तुकाराम की तुलना कर सकते हैं। तुलना तो होनी चाहिए, क्योंकि परंपराओं से तुलना होती है, विचारों से तुलना होनी चाहिए। कई बार एक युग का कवि होना जरूरी नहीं। हम तुलसीदास और निराला की तुलना करते हैं और हमारे मित्रों ने पचासों निबंध लिखे।अभी हमने किताब कल ही छापी ‘वाल्मिकि और निराला’। हमारे मित्र राधावल्लभ त्रिपाठी ने लिखी है। बहुत बड़ा स्कॉलर, सबकी तुलना की है। तो यह तुलनात्मक आलोचना की एक किताब है। इस किताब में यही बताया कि तुलनीय स्थितियाँ कैसे बनती हैऔरआदर्श तुलना कैसे हो सकती है।

ÃÖÝÖß¿Ö µÖÖ¤ü¾Ö : अज्ञेय की कविता से,अज्ञेय के प्रभाव को लेकर हिंदी कविता कितनी विकसित हो ¯ÖÖµÖß Æü?

कृष्णदत्त पालीवाल : बहुत विकसित हुई है। नये कवियों पर अज्ञेय का बहुत ज्यादा प्रभाव है। अज्ञेय पर निर्मल वर्मा ने अपने एक निबंध में लिखा है, अज्ञेय जो अपनी जिंदगी में चुप दिखायी देते हैं। आज अज्ञेय नहीं है, तो आज के तमाम कवियों के मुख से बोलते हुए सुने गये और उन सबने गौरव लौटाया है।

ÃÖÝÖß¿Ö µÖÖ¤ü¾Ö : संक्षेप में बताए ...

¯ÖÖ»ÖßÃ¾ÖÖ»Ö : ये बहुत बड़ा प्रश्न है। संक्षेप में, ना। इसका संक्षेपीकरण करने से इसकी नाशव्याप्ति होगी। क्योंकि अज्ञेय पर भवानीप्रसाद मिश्र का गहरा प्रभाव है। और अज्ञेय के प्रभाव को लेकर हमारे ये जो नये लड़के लिख रहे हैं इनके उपर अज्ञेय के प्रभाव की तमाम ध्वनियाँ हैं। तो आप कह

रहे हो ना कि कैसे आप अज्ञेय का प्रभाव देखते हैं, तो आप ये देखें कि अज्ञेय का प्रभाव उदय प्रकाश पर कहाँ दिखायी दे रहा है। उन्होंने अपने संकलन का नाम रखा है- 'रात में हार्मोनियम' †Ö¸ü †-Öµö की 'असाध्यवीणा' और हार्मोनियम दोनों के बजने में कठिनाई है, यह एक उदाहरण, ऐसे पचासों उदाहरण है। बहुत प्रभाव है। वे स्वीकार करें या न करें लेकिन आगे का आलोचक और आगे का विद्यार्थी स्वीकार करेगा। दो तरह की फेलसी होती है, इन्टेशनल फेलसी और इफेक्टीव फेलसी। जो कवि कहता है उस पर विश्वास मत करो। जो कविता कहती है उस पर विश्वास करो। कवि तो सफाई देता है। कुछ चीजें हैं जो पाठक कविता पर आरोपित करता है। जैसे अगर मैं मार्क्सवादी हूँ, तो मैं मार्क्सवादी दृष्टि से कविता को आरोपित कर देता हूँ, कविता नष्ट हो जाती है। आपकी धारणाएँ पुष्ट हो जाती है। इसीलिए जो नयी आलोचना है वह पाठकवादी आलोचना है। Reader oriented critism… वहाँ तुलनात्मक आलोचना का गहनतम हिस्सा है। एक आदमी है, उसका नाम लेकर हम उठ खड़े होते हैं, पाल्डी मान। पाल्डी मान की जो किताब है उसका नाम है Comparative Idia… •Öö तुलनात्मक विचार होते हैं, उन्हें हम मिलाते हैं।

दिनांक : 14 ±Ú¸¾Ö¸ß, 2014

स्थान : कार्यालय, सस्ता साहित्य मण्डल,

कनॉट प्लेस, दिल्ली

›ü. ÃÖÓÖß¿Ö µÖÖ¤ü¾Ö,

अध्यक्ष, हिंदी विभाग,

शिवाजी महाविद्यालय, रेणापुर (´ÖÆüÖ¸üÖÂ™ü)

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि, डॉ० सन्तोष यादव, सहयोगी प्राध्यापक, शिवाजी महाविद्यालय, रेणापुर जि. लातूर' वृहत शोध परियोजना (यू.जी.सी. पुरस्कृत) के अन्तर्गत साक्षात्कार लेने हेतु मेरे पास दि. 14.02.14 को आये। इनके साथ 'अज्ञेय के साहित्य में आधुनिकता' इस विषय पर साकारात्मक चर्चा हुई।

स्थान: नयी दिल्ली
तिथि: 14.02.14

राजी सेठ.

राजी सेठ
एम-16 साकेत
नई-दिल्ली 110017

यादव जी से मिलकर अतीव आनन्द हुआ। उत्कर्ष के लिए उनको मेरी अशेष शुभकामनाएं

राजी सेठ.

: साक्षात्कार :

सुविख्यात वरिष्ठ लेखिका **¸ÖÖ•Öß ÃÖêšü ÃÖê >Öß. ÃÖÓÝÖß¸ü µÖÖê¤üÖ¾Ö** की बातचीत। वार्तालाप का ×¾ÖÂÖµÖ Æî,**‘अज्ञेय और मर्ढेकर के साहित्य का आधुनिकता के संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन…’** चूंकि राजी सेठ के अज्ञेय जी के साथ पारिवारिक संबंध रहे। अज्ञेय जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर लेखिका ने प्रकाश डाला है… व्यक्तिगत संस्पर्श की ऊर्जा से अभिभूत राजी जी अज्ञेय के अनेक अनछूए पहलूओं को उजागर करती हैं… पेश है राजी सेठ के साथ हुई बातचीत…

ÃÖÓÝÖß¸ü µÖÖê¤üÖ¾Ö :- आपका पहली बार अज्ञेय जी से मिलना कब हुआ ?

¸ÖÖ•Öß ÃÖêšü :- उस पीरियड में एक डॉ. भोलाभाई पटेल गुजरात विश्वविद्यालय से थे। उन्होंने अज्ञेय पर एक पुस्तक भी लिखी है, जिसका शीर्षक है **‘अज्ञेय: एक अध्ययन:।’** उस पुस्तक के बारे में वे मुझसे बात करने आते थे… हिन्दी भाषी थे नहीं और ये पोस्टेड थे अहमदाबाद में… वे हमसे बात किया करते थे, तो जब मैं उनको मिली तो कहने लगे कि मुझे ऐसा लगता है कि आप जरूर कुछ लिखती Æïü… मेरी सिस्टर को उन्होंने कहा था, मेरी सिस्टर उनकी स्टुडन्ट थी… आप जो भी लिखती हैं, जो भी, तो दिखाइये तो सही… उन्होंने मेरी सिस्टर से शिकायत की कि आपकी बहन तो बहुत अजीब है, सुदामा की पोटली की तरह कुछ लाती है और वापस ले जाती है। हमें कभी नहीं दिखाती। तो एक दिन उस बात से चिढके, मैंने कहा, लीजिए, देखिए। तो वह कहानी थी जो पेन्सिल से लिखी हुई थी… वह उन्होंनें रख ली क्योंकि उनका सम्बन्ध वात्स्यायन जी से था… उन्होंने अहमदाबाद से वह कहानी वात्स्यायन जी के पास दिल्ली भेज दी… और आप विश्वास नहीं करेंगे, आठ दिन के बाद पेन्सिल की लिखी हुई वह कहानी छपकर आ गयी। मैं तो चौंक गयी… मिलिंद, पात्र के नाम को पढ़कर याद आया कि ये तो मेरे किसी पात्र का नाम है… तो एकदम मैंने देखा, अरे ये तो मेरी ही कहानी है। फिर मैंने ऑफिस में इनको फोन किया… उन्होनें फोन उठाया तो इधर से मैंने रोना ही शुरू कर दिया, तो ये घबरा गये, बोले कि घर में सब कुशल है… मैंने कहा कि नहीं, मेरी कहानी छपी है…ü ŸÖÖê ‡ÃÖÛê ŸÖÖ¸üÆü ÃÖÛê वात्स्यायन जी थे, फिर वात्स्यायन जी का पत्र आया… उन्होंने और कहानी भेजने के लिए मुझे कहा…ü फिर मैंने भेज दी…ü ¤üÃÖÖ¸üß ”û¯ÖÖß… फिर उन्होंने तीसरी छापी… ´Öï †Æü´Ö¤üÖ²ÖÖ¤ü ´Öë £Öß ¾Öê ×¤ü»»Öß ´Öë £Öê… •Ö²Ö उनका पत्र आया तो मैं ऐसे उसको छूके देखूं, क्या ये वात्स्यायन जी का लिखा हुआ है… क्योंकि मैने जब एम.ए. किया न, मैंने एक सब्जेक्ट हिंदी लिया था… एम.ए. मैंने अंग्रेजी में किया तो एक पेपर हिंदी का था… तो हिंदी में दो स्टूडेन्ट थे, जिन्होंने अज्ञेय को लिया था… क्योंकि अभी मैंने ताजा पढ़ा भी हुआ था। उसी दौरान फिर से वात्स्यायन जी का एक और पत्र आया… उन्होंने कहा कि मैं आपकी इतनी सूक्ष्मदर्शी प्रतिभा से चौंका। विश्वनाथ तिवारी जी ने वात्स्यायन जी के पत्रों की एक किताब ”û¯ÖÖß Æîü ^ÃÖ´Ö ´Ö¸ü µÖÖ ¯Ö¡Ö Æîü… वात्स्यायन जी ने कहा कि आप जरूर कविताएँ लिखती होंगी तो आप हमें

पंद्रह-बीस अपनी कविताएँ भेजिए… ¯Ö¡Ö¾µÖ¾ÖÆÖ¸ü ÃÖ ÃÖ¾ÖÖÖ¤ü ¿Öãºþ ÆÜ†Ö…और फिर उसके बाद मैंने कविताएँ भेजी… तो एक कविता तो उनको इतनी पसंद आयी, कहने लगे मेरा बस चलता तो बाकी की लौटा देता। वे बोले मैंने रघुवीर सहाय को वह पंच दिखाया तो उन्होंने उसमें से दस कविताएँ चुनी हैं,उसे उन्होनें छापने की ठान ली है। सारी कविताएँ ‘नया प्रतीक’ ´Ö ”¯ÖßÓ, ¤üÃÖ¸üß •ÖÖ 3Öß £Öß ¾ÖÆü 'धर्मयुग' में…। 1977 में दिल्ली में हमारी ट्रान्सफर हो गयी। मैंने अज्ञेय जी को चिट्ठी लिखी, आप वहाँ हैं या नहीं… हम आपको मिलना चाहते हैं… तो कोई जवाब नहीं आया… •Ö²Ö Æü´Ö ¿ÖÆüÖ•ÖÆüÖ¯Ö¸ü •ÖÖ ¸üÆê £Öê, तो बीच में मैंने उनसे टाईम मांगा। उनके घर गये तो पारिश्रमिक का जो भी होता है वह हमें दिया। जरा-सी इधर-उधर की बातें की। वात्स्यायन जी वामपंथियों की बातें करने लगे… सेठ साहब के बारे में ¯Ö”ÖŸÖ ¸üÆê… बस, तो हम चले गये… पर मुझे तो नहीं पता था कि वे मेरे जो कर्म को मानते हैं, ये नहीं ´ÖÖ»Ö´Ö £ÖÖ… ये हमें तब पता लगा जब विद्यानिवास जी ने 'अभिरूचि' निकाली और मेरे उपर दबाव डाला कि मैं अज्ञेय जी का इंटरव्यूव करुँ। ‘I am a women in stuck at home’ मुझे कुछ नहीं आता। मैं उनका इंटरव्यूव कैसे कर सकती हूँ, वे तो कह रहे हैं आप ही करें। और विद्यानिवास जी भी अड-से गये, वह भी जाएगा तो पहले ही अंक में जाएगा ‘†×3Ö¦ú×“Ö’ में। फिर वात्स्यायन जी हमारे घर आये। अपना टेप वगैरह लेके। मैं एकदम थरथर कांप रही थी कि कैसे हो गया ये। वह संस्मरण मैंने लिखा है। उसके बाद फिर बात तो चाहे मैं घबराते हुए करती थी लेकिन वह बहुत जैसे इतनी वात्सल्य, इतनी सुरक्षा इस तरह से कहते थे जैसे कोई बच्चा हो दूसरा। बिलकुल इस तरह से हमको ट्रिट करते थे। तो बस इसी तरह से, कभी हम लायब्ररी में पढ़ रहे हैं, बाद में वात्स्यायन जी आये हुए हैं, इण्डिया इन्टरनेशनल सेंटर लायब्ररी में, जिसकी मैं मैंबर हूँ पिछले तीस- पैंतीस साल से। वहाँ मैं जाती थी, पहले हमारी जायन्ट फॅमिली थी, मेरे देवर का परिवार नीचे रहता था, सेठ साहब मुझे ऑफिस जाते वक्त लायब्ररी में उतार देते थे और शाम को वापिस ले आते थे। मैं सारा दिन लायब्ररी में काम करती भी, अपनी पढ़ाई-लिखाई करती थी। वात्स्यायन जी वहाँ अक्सर आया करते थे, कभी देखते थे तो कहते चले चाय पी लेते हैं। तो फिर चाय पीए, तो बाद में मुझे पता लगा कि ‘ŸÖÖŸÖÖÃÖ´Ö’ ŸÖÖ उन्होंने, मतलब उनकी मृत्यु के बाद भी मुझे बहुत से लोग ऐसे मिले, वात्स्यायन जी ने सबको कहा था कि देखो ‘ŸÖÖŸÖÃÖ´Ö’ जरूर पढ़ना। अच्छा मैंने जब उनको उपन्यास दिया, तो उन्होंने कहा कि अच्छा, मैं पढूँगा। पढ़ाकु तो इतने थे, हर नये से नये लेखक को पढ़ते थे। हर नये से नये लेखक को पढ़ना उनका खूबी थी। तो उसके बाद मुझे बड़ी उत्सुकता थी। मैंने कहा वात्स्यायन जी किताब पढ़ ली। तो ²ÖÖê»Öê ‘ÆÖ’किताब पढ़ ली लेकिन अभी मैं आपसे बात नहीं करूँगा क्योंकि उसके पात्र जो हैं, मेरे घर में मंडरा रहे हैं। जब मैं उससे मुक्त हो लूंगा, फिर मैं आपसे बात करूंगा। तो मैंने कहा, आप फिर हमें फोन करेंग? तो उन्होंने कहा करुँगा और करते थे। अक्सर फोन करते थे। और ‘Can you Imag-

ine', ढ़ाई घंटे बात की उन्होंने मेरे से 'ŸÖŸÃÖ´Ö' पर, उनके किताब में निशान लगे हुए हैं और उन्होंने बताया कि यहाँ इस पॉइन्ट पर गलती है। इस शब्द का ऐसे नहीं यूज करना। अच्छा इसमें भाषा नहीं मिक्स चाहिए। ये नहीं करना चाहिए। इतनी छोटी-छोटी बातें बतायी उन्होंने। लेकिन जो मुझे लगा था कि जो करैक्टर उनको पसंद आएगा, उससे दूसरा पसंद आया, तो बस इसी तरह सिलसिला चला। बाद में तो घर में भी आए। हमारे जन्मदिन पर आए थे। जब हमारे देवर की बेटी साथ थी तो उनको 'किंग अंकल' कहके पुकारने लगी। हमें समझ में नहीं आया कि ये 'किंग अंकल' किस तरह से शब्द आया, कहाँ से। तो वात्स्यायन जी ने फिर उसको दो कविताएँ लिखके दी। वह लंदन में हैं वे कविताएँ उसी के पास हैं। बाद में उनकी मृत्यु हुई। जिस दिन उनकी मृत्यु हुई थी उसके अगले दिन हम लोग जाने वाले थे। सेठ साहब से तो उनकी अच्छी दोस्ती थी। सेठ साहब हठ पड़ जाते थे,अब हमें बताइए, अब अगला ट्रीप हमें कहाँ करना है।अब हमें कहाँ जाना है। हमें कैलिफोर्निया कब जाना है। वे सब की जलवायु, सब बताते रहते थे।

ÃÖŸÖß¿Ö µÖÖ¤¾Ö : एक सवाल है, अज्ञेय आपको कवि रूप में, कहानीकार के रूप में या उपन्यासकार के रूप में प्रिय हैं ?

¸Ö•Öß ÃÖš : हर रूप में, क्योंकि, उनका जो संस्कृतिबोध है, वह मुझे प्रिय लगता है। मैं भी थोडी-सी ज्यादा ही देशभक्त हूँ। तो जो उनका संस्कृतिबोध है, एक्सपीरिमेंटल रूचि, खुला दिमाग और अपने को एलिवेट करना, मतलब मैं तो देखते रह जाती कि लोगों ने इतनी नालायकी की उनके साथ। जिसे कहना चाहिए छाती पर मुक्के मारना, मैं देखती थी, यह आदमी कैसे सहता है। शांत...शांत, बुरा लगता है ? हाँ, मैंने कहा, फिर, फिर क्या? फिर कुछ नहीं, अपना काम करिए? कभी किसी बात से परेशान हुए तो यही कहते थे दिमाग से काम लेना है। इसको शांत नहीं रखेंगे तो कभी काम नहीं करोगे। गेट बीजी, गेट बीजी, गेट बीजी, तो उनकी खूबियाँ थीं। मतलब उनका सारा जीवन, इस तरह अपने को समेटकर एक बड़े पर्पज के लिए रखा। जिस तरह एक नेशनलिस्ट थे वे...पता नहीं, क्या-क्या बातें उड़ाई, आप पढके देखो, हमने तो 'भवन्ती', 'अन्तरा' ये सब, ये सब पढ़ा। बहुत सी किताबें हमें उन्होंने व्यक्तिगत रूप में दी। पालीवाल जी को कोई किताब जरूरी हो तो मेरे से ले जाते थे। बाद में वह फोटो कॉपी करके रख लेते थे। मुझे गर्व है इस बात का कि एक इतने बड़े आदमी का हमने स्नेह पाया। तो एक तो उनका संस्कृतिबोध, He love for Tradition, हमारी परंपरा और उनको यह लगता था कि हमारी परंपरा भी रहे और हम पिछडे हुए ना हो। मॉडर्न हो।

ÃÖŸÖß¿Ö µÖÖ¤¾Ö : वात्स्यायन जी के बारे में मॉडर्निटी की बातें की जाती है, अज्ञेय को आधुनिक हिंदी कवि कहा गया..

¸Ö•Öß ÃÖš : अभी मेरी नयी किताब में आप देखियेगा। जैनेन्द्र कितने आधुनिक? नाम से मैंने एक

लेख लिखा है। तो उसमें मैंने सारी ट्रेडीशन की परिभाषा दी है।और मैं यह बार-बार कहती हूँ कि हमारी आधुनिकता जो है, वह क्या है? वह इस सेन्स में परंपरा है कि जो परंपरा में मरने लायक हो जाता है, रुढ़ि बन जाता है वह मर जाता है जो बाकी रह जाता है वह आधुनिकता। जो मरता जाता है वह रूढ़ि है, जो परंपरा से निकलता जाता है। हम अपने आपको नया करते जाते हैं। तो वात्स्यायन जी को ये लगता था कि, हर एक को अपनी परंपरा खुद बनानी चाहिए।और फिर उसके साथ जो विश्वबोध है,उसको जोडते जाना चाहिए।अभी मैंने 'कथादेश' में इस सवाल को बहुत डिटेल में डील किया है। कहीं न कहीं मेरे फादर के इस प्रकार के विचार थे। वह भी बहुत बडे स्केल पर सोचते थे। यह बात अलग है कि विभाजन की वजह से हम लोग बहुत डिफीकल्टी में फंस गये लेकिन मैं आपको सुझाव दूंगी कि मेरी एक कहानी है ढाई पेज की 'मुलाकात'। उसमें किसी प्रकार की कल्पना लाये बिना मैंने वह कहानी अपने पिता पर लिखी। बौद्धिक विश्वबोध के साथ उस सारी चेतना को वात्स्यायन जी, सारा टाइम, शिष्टाचार में लगा देते। आपको मैं बता नहीं सकती इतना सोफिकेटेड आदमी।

ÃÖŸÖß¿Ö µÖÖ¤¾Ö : अज्ञेय जी की कविता पर ये बार-बार आक्षेप लगाया गया कि यह अस्तित्ववादी दर्शन से प्रभावित है। विशेषत: कीर्केगार्द हो, यास्पर्स हो, उनकी विचारधारा का प्रभाव है, इससे आप ÃÖÆ´ÖŸÖ Æ?

¸Öו֟ Ã֚ : नहीं, मैंने इस सवाल को एक इंटरव्यूव में टच किया है। मनुष्य जिम्मेदार है। जब हम कहते है मनुष्य उत्तरदायी है, अपने प्रति उत्तरदायी है उसको इस बात की स्वतंत्रता है कि वह स्वतंत्रता का चुनाव करें। 'वरण् की स्वतंत्रता' यह अज्ञेय का सबसे बड़ा चिंतन सूत्र रहा है।'असाध्यवीणा' देख लीजियेगा। वरण् की स्वतंत्रता ही अस्तित्ववाद को बचाती है। क्योंकि हम स्वतंत्र है तो काहे को अस्तित्व के कैदी है। देखिये, मैंने तो नहीं चाहा था कि मैं जन्म लूँ। लेकिन मेरा जन्म हुआ। मैंने तो नहीं चाहा था कि, मैं इन माता-पिता के यहाँ पैदा हूँ। मुझे तो नहीं पता था कि इस देश में अस्तित्व की जो जकडन है हर इन्सान की, उससे हम कैसे मुक्त होते हैं। We choose things। हम अपनी स्वतंत्रता को चुन लें। स्वतंत्रता तो उनके लिए सबसे बडी Value थी, वे तो फूल भी नहीं तोडना "ÖÖÆŸÖ £Ö, •ÖÖ 'असाध्यवीणा' में था। लेकिन उसे डाली से विलगा नहीं सकी। क्योंकि वे इतनी स्वतंत्रता की चाहत रखते थे। शायद आपने वह मेरा लेख नहीं पढ़ा 'अज्ञेय : स्वतंत्रता का अर्थ' ¾ÖÆ छूट गया होगा। वह बहुत जगह छपा। वह मैंने उनके जीवनकाल में ही लिखा था, तो वे बहुत खुश हुए। कहने लगे, मैं तो अभी तक गालियाँ ही खा रहा हूँ, किसी ने मेरी रग पर हाथ रखा है। तो मेरा ये कहने का मतलब है कि what he was, और उन्होंने ट्रेडीशन का जो अर्थ लगाया अगर आप उनके लेख पढ़े, मैं सीरियसली कह रही हूँ कि मुझे भी अपना मत रिवाईज करना पड़ा, क्योंकि पिछले साल

मुझे बहुत काम करना पड़ा। एक बार उन्हें हाथ लगाऊँ तो छूटता नहीं। इस वजह से इतना रीच है, इतना समृद्ध है और ये है कि आज सारे लोग पछताते हैं। उन्हें सबसे ज्यादा गलत समझा गया। वे सबसे गलत समझते गये और हमारे गुरूजी मतलब देवराज जो Well known व्यक्ति थे। मुझे लगा कि हमारा वास्ता इन दोनों से पड़ना था।

ÃöÝöß¿ö µöö¤¾ö : एक सवाल बार - बार अज्ञेय जी की कविता के प्रसंग में उठाया जाता है कि अज्ञेय जी व्यक्ति- सत्ता की बात करते हैं, समाज-सत्ता की क्यों नहीं? समष्टि की क्यों नहीं ? सामाजिक प्रश्नों को लेकर चुप क्यों हैं ?

¸ö•öß Ãöšî : ये तो वही कहेंगे, जिन्होंने अज्ञेय को ठीक से पढ़ा नहीं है। 'उसको भी पंक्ति को दे दो' जिसने पढ़ी है वे ऐसा नहीं कहेंगे। मैं कह रही हूँ कि अगर आप एक बार, एक बार मतलब दिमाग को खाली करके बिना किसी पूर्वग्रह के,अगर आप अज्ञेय को पढ़ते हैं, बिलकुल दिमाग में ये नहीं हो, वह नहीं, तो बात मैं मान लूंगी। मतलब, मैं उनकी एक-एक पंक्ति को देखकर हैरान हो गयी। मैंने पिछले साल उनको पुनःपढ़ा, उनके सारे लेख, उनकी 'अंतःप्रक्रियाएँ'। मतलब वे तो समाज से बाहर अपने को देखते ही नहीं थे। लेकिन वे ये सोचते थे कि व्यक्ति जो हैं वह समाज का युनीट है और समाज कोई चीज थोडी ही हैं। व्यक्तियों का समूह समाज है। अगर हर व्यक्ति विकसित हो, समृद्ध हो, मानसिक रूप से कंट्रीब्यूटरी पोजीशन में हो तो अच्छा समाज बनता है। उन्होंने देश के लिए लाठियाँ खायी। पांच-साढ़े पांच साल वे जेल में रहे। हमें तो नहीं मालूम कि उनके मन, शरीर पर क्या असर हुआ। पर उन्होनें कहा, ठीक है। अपने देश के लिए जेल गये। उसके लिए भी हिम्मत चाहिए। मुझे यह कहना है कि अगर आप किसी का मूँह पोतना चाहे तो पोत सकते हैं। लेकिन अगर आप जानना चाहे तो जान सकते हैं। जानने का रास्ता तो यह है कि उनके शब्दों से जुडो। अपने दिमाग को विकेट करो, आप जान सकते हैं। मुझे फिर से, हर बार मुझे नयी अनुभूति होती है, जैसे पालीवाल जी को होती है। हरीश त्रिवेदी जो अंग्रेजी के प्रोफेसर हैं, उन्होंने बताया कि अज्ञेय के पत्रों का संकलन किया जा रहा था। उसमें एक पत्र निकला वात्स्यायन जी का, जिस पर किसी ने पूछा है कि आपको अगली पीढ़ी में किस पर विश्वास है। मुझे तो बडा घमण्ड हुआ कि उसमें मेरा नाम है। आगे आने वाले लोगों में किन - किन पर मेरी आशा हैं, तो उन्होंने मेरा नाम लिया। मैं जो अनालिसिस कर रही हूँ, उसके कुछ प्रमाण हैं। मैं आपको कभी उनके तीन पत्र दिखा दूंगी। जिसमें लोगों ने ये लिखा कि काश अगर आपका लेख पहले पढ़ा होता तो हमारे जीवन में यह गलती ना होती कि हम उनकी अवहेलना करते। मैंने तो काफी कोशिश कि उनके व्यक्तित्व के बहुत से पक्ष लें, उस लेख में बहुत कोशिश की, जो-जो मुझे पता था, मैंने उसको कहने की कोशिश की। मुझे ऐसा लगा कि यहाँ से मुझे रियलायजेशन हुआ है। तो उसको मैंने टांकना चाहा था कि लोग जान सके।

ÃÖÝÖß¿Ö µÖÖ¤¾Ö : एक सवाल उनके उपन्यास को लेकर है, विशेषत:'शेखर: एक जीवनी' के बारे में कि कुछ समीक्षकों ने यह माना है कि 'शेखर: एक जीवनी' का शेखर और कोई नहीं अज्ञेय हैं।

¸Ö•Öß ÃÖêš : जिनका रचना तत्व और रचना प्रक्रिया से हर वक्त सामना पड़ता है, जो उसको देखते हैं तो उनके लिए तो चेतन-अचेतन, I and he, I and other, मतलब वह इस तरह का मिश्रण होता है रचना के अंदर कि कोई नहीं कह सकता। वैसे मैं दावा करती हूँ कि, इस कहानी में मैं नहीं हूँ, लेकिन हमारे तो आत्मीय लोग कहते हैं कि हम आपको हर कहानियों में देख सकते हैं। तो यह प्रक्रिया का अंश है। ये वात्यायन जी का नहीं है,आपका नहीं है, किसी का भी नहीं, ये रचना प्रक्रिया के अंदर व्यक्तित्व का दर्शन होता है। खास तौर से उस टाइम पर 'शेखर' एक जीवनी' का लिखा जाना, जब आदमी को फांसी चढ़नी है, जो इस संसार से खत्म होने वाला है। उसके सामने एक ही चीज है। जैसे जंगले के अंदर बंद एक अकेला व्यक्ति जिसको फांसी पर टांग दिया जाएगा। अब आप सोचिए, अपने को उसमें रखकर देखिये कि पांच-साढ़े पांच साल वे जेल में रहे। तो नेहरू जी ने जेल के जो संस्मरण लिखे हैं उसको पढ़कर मुझे वात्स्यायन जी का ध्यान आया था कि, मतलब उस वक्त एक इन्सान की मनस्थिति क्या होती है? जब आपको मारा-पीटा जा रहा है और आपको यह लग रहा है कि जीवन खत्म होने वाला है और उसके ऊपर हमें हँगिग किया जाएगा और उस वक्त इन्सान क्या कहना चाहता है? मैं तो सोचती हूँ कि अगर इतने टंगे हुए क्षण के नीचे उनकी चेतना ना होती तो 'शेखर' नहीं लिखा जाता। दूसरा यह है कि उस वक्त आप देखिये, इसाइयों में एक परंपरा है कन्फेशन की, लोग गिरजे में जाके कन्फेशन करते हैं। तो आप इसको उस दृष्टि से क्यों नहीं देखते कि जब इन्सान को पता है कि कल मैं नहीं हूँगा या परसों मैं नहीं हूँगा तो वह सब कुछ कह देना चाहता है। अगर उन्होंने 'शशि' के बारे में कुछ बातें कहीं हो, मैंने उस बारे में सवाल भी किये हैं। बल्कि मैं आप से कहूँगी कि कभी वह भी लेख पढ़ियेगा 'अज्ञेय स्वतंत्रता का अर्थ' नामक लेख।

ÃÖÝÖß¿Ö µÖÖ¤¾Ö : मॅम, विवाद कहे या समीक्षकों की आदत कहें कि बार-बार अज्ञेय को मुक्तिबोध के सामने खड़ा किया जाता है।

¸Ö•Öß ÃÖêš : नहीं, उसका देखिये न आप, एक बात समझिये, एक ह्यूमन दुर्बलता जो बहुत जबरदस्त है। लिटरेचर से आप सायकॉलॉजी या फिलॉसॉफी को काट नहीं सकते। हम दूसरे को उठता देख नहीं सकते। हम दूसरे को छाया जाना देख नहीं सकते। जब कि मैं यह कह रही हूँ कि, मैंने तो जीवन में यही सीखा कि अगर कल लिखे हुए रायटर की कोई भी अच्छी चीज आ जाती है तो मैं एकदम पोस्टकार्ड लेके कहना चाहती हूँ कि 'µÖ ›ß› ¾Ö¸ß ¾Ö»Ö…'कि पता नहीं किसी की एक थपकी या पता नहीं किसी के एक आवाज का, पता नहीं किसी के एक प्रोत्साहन का कितना बड़ा अर्थ है। कितना बड़ा अर्थ है हमने देखा है ना अपने जीवन में। इन लोगों के प्रोत्साहन से मैं खड़ी हो गयी।

ÃÖÝÖß¿Ö µÖÖ¤ü¾Ö : मैं आपसे ये जानना चाह रहा हूँ कि कवि के रूप में, कहानीकार के रूप में, उपन्यासकार के रूप में, मतलब अज्ञेय जी के कई सारे रूप हैं। अनेक रूपों में एक व्यक्ति और उनका लेखन, एक लंबा सफर वे तय कर चुके हैं।अज्ञेय जी की सारी खूबियों पर आपने बात की, आपको क्या लगता है कि इस लेखक की कुछ सीमाएँ भी थी ... ।

¸ÖÖ•ÖÖß ÃÖÖŠÖ : जरूर होंगी, पर हम उनके निजी जीवन में तो दखल देना नहीं चाहेंगे। साहित्य की तो मुझे नहीं समझ में आयी, क्योंकि मुझे तो हर बार ऐसा लगा कि नया परिदृश्य खुल रहा है। जैसे मैं इतना पढ़ चुकी हूँ कि मुझे कभी नहीं लगा कि वे अनगढ़ है। वे पूरी तौर से एक व्यक्ति थे और वे दूसरे का, न दूसरे के जीवन में इंटरफियर करते थे। जितना मैंने उनको निजता का अपनी और दूसरे की आदर करते देखा, मैंने सिर्फ पश्चिम में देखा है। मैं यह कह रही हूँ कि, ना उन्होंने किसी की निजता में पैर रखा और ना किसी को रखने दिया। पर वे वही जानेंगे ना जो उनसे जुड़े हुए हैं। हमारा तो टीचर और टॉट का संबंध रहा। हम सीख रहे हैं उनसे, बहुत सीखा। जैसे आप आए हैं, मुझे तो वहीं दिखाई देगा जो मैं देखना चाहती हूँ, ये नहीं है कि मैं देखूं इस आदमी में क्या कमी है, ये है, वह है। एक ॲटिट्यूड होता है लाईफ में, निगेटिव ॲटिट्यूड भी होता है, वह आप करें तो आप किसी को, हाथी को चिंटी बना दे। पर यह ॲटिट्यूड मैंने नहीं देखा। यह देखा और बाकी जहाँ तक, मैं उनकी प्रायवसी में कोई दखल नहीं देना चाहूँगी। ये मेरा जीवन नहीं है वह उनका जीवन है। I am nothing to do with that। एक इन्सान के चालीस हिस्से हैं। सवाल यह है कि आप किस इन्सान से छूते हों। वह बेटा भी है, एक मित्र भी है और पिता भी है, बताओ, वहीं, वहीं पुरूष, सेम पुरूष किसी का भाई है, किसी का मित्र, किसी का स्टुडन्ट है, ये हिस्से होते हैं। सो हमारा हिस्सा तो उनकी जो विज्ञान बुद्धि और सीखना और जानना इनसे रहा।वे बहुत बड़े व्यक्ति थे। मानते हैं उनको, दो व्यक्तियों को, दूसरे डॉ. देवराज...

दिनांक : 14 ±ú¸¾Ö¸ß, 2014

स्थान : साकेत, दिल्ली

›Ö. ÃÖÝÖß¿Ö µÖÖ¤ü¾Ö,

अध्यक्ष, हिंदी विभाग,

शिवाजी महाविद्यालय, रेणापुर (´ÖÆÖ¸ÖÂ™ü)

प्रमाण पत्र   दि.

प्रमाणित किया जाता है कि, डॉ. सतीश यादव, सहयोगी प्राध्यापक, शिवाजी महाविद्यालय, रेणापुर जि. लातूर ने अज्ञेय और नरेन्द्र के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन (आधुनिकता के संदर्भ) में इस विषय पर विस्तार से चर्चा हुई। मैं उनके अध्ययन से ~~[illegible]~~ ~~[illegible]~~ संतुष्ट हूँ।

स्थान : लातूर (महाराष्ट्र)

तिथि : 22.02.2014

डॉ. सूर्यनारायण
रणसुभे

सुविख्यात साहित्यकार
तथा आलोचक.

साक्षात्कार

हिंदी के सुविख्यात समीक्षक, श्रेष्ठ अनुवादक तथा वरिष्ठ समाजशास्त्री गुरूदेव **डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे** ÃÖ ›ÖÖ. ÃÖŸÖ߬Ö µÖÖ¤¾Ö की बातचीत...बातचीत का मुख्य विषय है, **'अज्ञेय और मर्ढेकर के साहित्य का आधुनिकता के संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन'**। डॉ. रणसुभे जी से बृहत् शोध परियोजना के अंतर्गत बातचीत हुई। चूंकि डॉ. रणसुभे जी हिंदी और मराठी साहित्य के विद्वान तथा 'ÖÖ¸ü †¬µÖ¾ÖÃÖÖµÖß ¸üÆü Æîü...

ÃÖŸÖ߬Ö µÖÖ¤¾Ö - आज मैं जिनके साथ हूँ वे हिंदी के वरिष्ठ समीक्षक तथा अनुवादक, वरिष्ठ समाजशास्त्री श्रद्धेय गुरूवर डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे जी। आप अज्ञेय साहित्य के बहुत बडे अध्येता तथा चिंतक रहे हैं। आपने अज्ञेय जी पर एक महत्त्वपूर्ण किताब लिखी है, जिसका शीर्षक है - 'कहानीकार अज्ञेय :संदर्भ और प्रकृति।' रणसुभे जी से आज हम अज्ञेय और मर्ढेकर के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन, विशेष संदर्भ आधुनिकता पर बातचीत कर रहे हैं। इन दो रचनाकारों के तुलनात्मक अध्ययन को लेकर हम बात कर रहे हैं। मेरा पहला सवाल आपसे यह है कि आधुनिकता ÃÖ ŸÖÖŸ¯ÖµÖÔ ŒµÖÖ Æîü ?

सूर्यनारायण रणसुभे : आधुनिकता को लेकर कोई व्यक्तिगत मत नहीं दिया सकता। क्योंकि इस पर यूरोप और भारत में अलग-अलग आयामों से चिंतन हुआ है। सामंती व्यवस्था के बाद जो पूंजीवादी व्यवस्था आई, उससे इस अवधारणा की चर्चा बुद्धिजीवियों में शुरु हुई। आधुनिकता से तात्पर्य मूल्य व्यवस्था के साथ है, बदली हुई मूल्य व्यवस्था से। आधुनिकता जो मनुष्य मात्र को केंद्र में रखकर सोचती है। इसके पहले जितनी भी विचारधाराएँ थी उसके मूल में कुछ अमूर्त प्रकार की अवधारणा थी। उसमें सत्य या ईश्वर या पारलौकिकता की अवधारणाएँ थी। मार्क्सवादी चिंतन की सबसे बड़ी देन यह है कि उसने मनुष्य को केंद्र में रखकर सोचना शुरु किया। इसलिए वह चिंतनधारा जो मनुष्य मात्र को केंद्र में रखकर सोचती है, वह आधुनिकता से संबंध रखती है। इसलिए आधुनिकता विशिष्ट काल से संबंधित अवधारणा नहीं है न किसी प्रदेश विशेष से सीमित। वह मनुष्य की चिंता को लेकर सोचनेवाली विचारधारा है अर्थात् यह एक आयाम है आधुनिकता का। उत्तर आधुनिकता ने आधुनिकता को इस अर्थ को रोमांटिक कहा कि समग्र नाम की बात होती नहीं। ये उनके अपने मूल्यात्मक मतभेद हैं, वे मतभेद अपनी जगह हैं। क्योंकि उत्तर आधुनिकता टुकडों-टुकडों में बांट कर सोचती है। आधुनिकता समग्रता को लेकर सोचती है। इसलिए आधुनिकता की अवधारणा विशेषतः भारत जैसे देश में, जहाँ मनुष्य को मात्र बांटकर सोचा जाता है वहाँ आधुनिकता एक इस अर्थ में क्रांतिकारी दृष्टि है। दूसरी एक परिभाषा जो मुझे बहुत महत्वपूर्ण लगती है वह यह कि जो सतत आत्मपरीक्षण के लिए विवश करती है, वह विचारधारा 'आधुनिक' ÆüÖŸÖß Æîü... •ÖÖ ¾µÖÖÛúŒŸÖ

आत्मपरीक्षण करता है वही आधुनिक होता है। जो आत्मपरीक्षण नहीं करता जो रोमानीयत में रहता है वह आधुनिक नहीं होता। जो खुद से लड़ता है वह आधुनिक, ऐसी भी एक व्याख्या तीस वर्ष पहले आधुनिकता पर एक जो राष्ट्रीय संगोष्ठी हुई थी उसके अंत में यह निष्कर्ष निकाला गया था। जो व्यक्ति, जो समाज सतत आत्मपरीक्षण की प्रक्रिया से गुजरता है वही आधुनिक होता है और जो अतीत के मोह में जीता है, अतीत को फिर से स्थापित करना चाहता है, वह बाकी जो कुछ भी हो, आधुनिक नहीं होता। इसलिए आधुनिकता का अर्थ खुद से लड़ना है। मुक्तिबोध ने अपनी एक कविता में खुद को तलाशने और खुद को तराशने की बात कही है। एक कवि को निरंतर तलाशने और तराशते रहना चाहिए। प्रकारांतर से मुक्तिबोध आधुनिकता की व्याख्या कर रहे थे। क्योंकि, वे खुद को तलाशना ही आधुनिकता मानते हैं। इसलिए हिंदी में अज्ञेय या मराठी में मर्ढेकर जो आते हैं, वे खुद को तलाशने की स्थिति से ही आए हैं। खुद के माध्यम से अपने परिवेश की तलाश, इस अर्थ में आधुनिकता का अर्थ लेते हैं।

ÃÖŸÖßü¿Ö µÖÖ¤ü¾Ö : आधुनिकता के संदर्भ में यह बार-बार कहा जाता है कि यह पश्चिम का अनुकरण है। विशेषतः अज्ञेय को लेकर या आधुनिकतावादियों को लेकर यह कहा जाता है कि यह पश्चिम का अनुकरण कर रहे हैं या यह एक फैशन है।

सूर्यनारायण रणसुभे : यह आरोप नवजागरण काल में उन विचारधाराओं ने लगाया, जो भारत के अतीत को स्वर्णिम समझते थे। फिर वह आर्य समाज हो या आर. एस. एस.। या और भी वे विचारधाराएँ जो भारतीय अध्यात्म को सर्वश्रेष्ठ मान रहे थे। आधुनिकता और अध्यात्म का वैरभाव तो है नहीं, न उसका किसी विशिष्ट प्रदेश से संबंध है। यह निश्चित है कि ये सारी विचारधाराएँ यूरोप की देन हैं। क्योंकि भारत में व्यक्ति हमेशा उपेक्षित रहा। व्यक्ति के अस्तित्व को ही यहाँ नकारा गया। जो है सो ईश्वर और ईश्वर के परे और कुछ नहीं। और इसीलिए जो व्यक्ति के अस्तित्व को ही नकारते हैं या उसको क्षूद्र मानते हैं या 'ब्रह्मसत्य जगत् मिथ्या' जो कह रहे वहाँ आधुनिकता की बात आ ही नहीं सकती। और इसीलिए वे लोग जो व्यक्ति को केंद्र में रखने के बजाए ईश्वर को केंद्र में रखना चाहते हैं, जाहिर है कि वे इसको पश्चिम की नकल कहेंगे। और यूँ भी कोई भी विचारधारा जो हमारे व्यक्तित्व विकास के लिए या समाज के विकास के लिए जरुरी होती है, वह किसी भी देश से आए उसको स्वीकारना जरुरी है। जिनके हितसंबंध खतरे में आ जाते हैं, वे इस प्रकार की विचाराधारा से, अलबत्ता आरोप लगाते है कि यह पश्चिम की देन है वगैरह-वगैरह। ऐसा आरोप लगाने का एक और भी कारण है,आधुनिकता के नाम पर हमारे यहाँ के अतिउत्साही लोगों ने जो आचरण शुरु किया था, वह वास्तव में आधुनिकता थी ही नहीं। रहन-सहन, वेशभूषा, आचरण की पद्धति इसका आधुनिकता के साथ वैसे कोई संबंध नहीं है। परंतु आधुनिकता के नाम पर यह जो फैशनपरस्ती शुरु

हुई और वर्तमान को महत्त्व देना शुरु हुआ, उस कारण इसकी बदनामी हुई। आधुनिकता वर्तमान को महत्त्व देकर चलती है। अतीत को नहीं, भविष्य को नहीं। वर्तमान में ही जीवन की सार्थकता का अनुभव करती है। इसलिए केवल वर्तमान में जीते हुए लोग, जो भविष्य की उपेक्षा कर रहे थे, ऐसी ही पीढ़ी के चाल-चलन को देखकर किसी भी विवेकशील आदमी में चीढ़ पैदा होना स्वाभाविक है और इस कारण भी आधुनिकता को बदनाम किया जा रहा था। उनके उस आचरण के कारण आधुनिकता को कटघरे में खड़ा किया गया। मूलतः उसका आधुनिकता के साथ वैसे कोई संबंध नहीं है। जीवनमूल्य के अर्थ में कबीर आज भी आधुनिक हैं। मीरा आज भी आधुनिक है। इसलिए जहाँ आधुनिकता की मूल्यबोध की कल्पना से जोड़ते हैं, तब हमें बुद्ध, फुले और कबीर और बसवेश्वर ये अधिक आधुनिक लगने लगते हैं। क्योंकि उनके चिंतन के मूल में मनुष्य है। जब हम यह मानकर चल रहे है कि आधुनिकता मनुष्य से संबंधित है, वह मनुष्य की चिंता से संबंधित है, उसके अस्तित्व और अस्मिता से संबंधित है, तो और जो कुछ भी चल रहा है, वह हमारी विचार कक्षा में नहीं आता। इसलिए उस पर बहस नहीं होनी चाहिए।

ÃÖŸÖß¿Ö µÖÖ¤¾Ö - हिंदी कविता की परंपरा में, विशेषतः काव्य इतिहास में कई आंदोलन आए, इस पूरी परंपरा में आप अज्ञेय का स्थान कैसे निधारित करेंगे।

सूर्यनारायण रणसुभे - मराठी के प्रसिद्ध कवि नामदेव ढसाळ ने, जो हिंदी साहित्य के मर्मज्ञ पाठक थे एक जगह उन्होंने ये लिखा है, जो मैंने उधृत भी किया है कि अज्ञेय ने हिंदी को एक चिंतन की दृष्टि दी। मुझे लगता है कि यह बहुत महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष है। जिस आधुनिकता की शुरूआत हम भारतेंदु से मानते हैं क्योंकि हरिश्चंद्र भी उस वक्त के बुद्धिजीवियों को समकालीन परिवेश से जोडने की कोशिश कर रहे थे। भाषा के स्तर पर, अभिव्यक्ति के स्तर पर, विषय, आशय के स्तर पर, इसलिए वे आधुनिक थे। उसके बाद जो स्थितियाँ आई विशेषतः मैथिलीशरण गुप्त की कविता, जो अतीत का गान कर रही थी, जो फिर से हमको अतीत में ले जा रही थी उसकी एक ऐतिहासिक जरूरत उस काल में थी। क्योंकि गुलामी में हम सबकुछ खो बैठे थे। और पूरी तरह से निराश और हताश हो चुके थे। ऐसे हताश और निराश समाज में ऊर्जा भरने के लिए अतीत का गुणगान करना बहुत जरूरी था। इसलिए मैथिलीशरण गुप्त जो अतीत में ले गए, उनका लक्ष्य बहुत स्पष्ट था। एक निर्जीव और यह कहें कि निर्बल समाज में प्राण फूँकना और अतीत में इतने महान पुरूष हो गए और तुम जो भी उनके वंशज हो तुम्हे भी उतनी ही ताकत के साथ खड़ा होना चाहिए। इसके बाद जो छायावादी कविता आई वह पूरी तरह से अपनी जमीन से कटकर अधिक रोमांटिक हो गई। वह प्रकृति के शरण में चली गई, न केवल प्रकृति के अपितु अध्यात्म की भी बात कर रही थी। और बहुत ही रोमांटिकता की ओर जा रही थी। महादेवी जी अपनी रहस्यवादी कविता के माध्यम से अध्यात्म की बात कर रही थी। पंत

‘युगवाणी’ लिखने के पूर्व तक मतलब ‘युगांत’ के पूर्व तक बहुत ही रोमांटिक ढंग से बात कर रहे थे। एक तो इन कवियों की भाषा जन से टूट चुकी थी। बहुत ही कोमल, बहुत ही रोमांटिक भाषा बनी थी। निराला भी छायावाद के काल तक कुछ इसी प्रकार की रहस्यवादी अध्यात्मिकता के स्वर को लेकर कविता कर रहे थे। परिणामतः अज्ञेय जैसे युवक को, उस काल की कविताओं में, अपनी समकालीनता जो ढूँढ रहे थे, वह उन्हें कहीं नहीं मिल रही थी। इसलिए कविता को फिर से मनुष्य के साथ जोडना, उसकी समकालीन स्थिति के साथ जोडना, सूक्ष्म सौंदर्य के साथ जोडना जरुरी है, ऐसा उन्हें लग रहा था। छायावाद में भी चिंतन है। परंतु वह चिंतन बहुत रोमांटिक चिंतन है या आधुनिकता का एक जो पक्ष है अतिआदर्शवाद का, वह उसमें ज्यादा मुखर हुआ है। और इसलिए उससे नाराजी व्यक्त करना एक स्वाभाविक बात थी। एक और यह कारण था कि इसी दौर में जो प्रगतिवादी कविता हिंदी में आई और पूरी ताकत के साथ आई तब तो उसकी सीमाओं का एहसास नहीं हुआ। अधिकांश कवि, पंत भी ‘युगांत’ की घोषणा कर ‘युगवाणी’ लिखने लगते हैं और निराला भी गुलाब के स्थान पर ‘कुकुरमुत्ता’ को स्थापित करने का प्रयत्न करने लगे हैं अर्थात् विशिष्टता से जन की ओर आने की यह प्रक्रिया थी। परंतु ये जो मार्क्सवादी स्वर उभरा, वह बाद की पीढ़ी को ऐसा लगा, अज्ञेय के समय में भी, नहीं आज की पीढ़ी में हम महसूस कर रहे हैं वह कितना किताबी था, जन से जुड़ा हुआ नहीं था। बाद की नागार्जुन की कविता बहुत ज्यादा जन से जुडती है। परंतु 1935 ÃÖ 1945 तक जो दस वर्ष का कालखंड है प्रगतिवादी कविता का, उसकी सीमाएँ बहुत खुलकर आज सामने आ रही हैं। ये सीमाएँ शायद अज्ञेय ने बहुत तीव्रता के साथ महसूस की होगी। क्योंकि वह सारा आक्रोश ज्यादा किताबी, ज्यादा बौद्धिक था। वह जन आंदोलनों से जुडा हुआ नहीं। मार्क्स को पढ़कर कविता लिखना और मार्क्स को पचाकर कविता लिखना ये दो अलग बातें हैं। प्रगतिवादी दौर था, मार्क्स को पढ़कर कविता लिखी जा रही थी, इसलिए उसमें बडबोलापन ज्यादा है और स्थूलता ज्यादा है। जब कि मार्क्स को पूरी तरह से पचाकर अपने भीतर अपने चिंतन का एक अंग मानकर मुक्तिबोध या केदारनाथ सिंह या धूमिल आते हैं। तो हमें स्पष्ट होने लगता है कि ये कहाँ तक मार्क्स के बहुत भीतर तक गए। जैसे मराठी में नारायण सुर्वे ने लिखा-मार्क्स मुझे मजदूरों में मिला। मार्क्सस् बाबा मजदूरों के भीतर मिला, तो हिंदी के उन बुद्धिजीवी मार्क्सवादियों को मार्क्स पुस्तकों में मिला। परिणामतः वह इसलिए इन दोनों आंदोलनों से वैचारिक स्तर पर मतभेद व्यक्त न करते हुए सृजनात्मक स्तर पर ही उन्होंने व्यक्त किया। क्योंकि इन दोनों काव्यआंदोलनों में व्यक्ति कहीं खिसक गया था। व्यक्ति था ही नहीं। और व्यक्ति का भीतरी अंतर्द्वंद्व भी कहीं नहीं था। व्यक्ति की तलाश भी नहीं थी। न छायावाद में थी न मार्क्सवाद में। मार्क्सवाद तो समष्टि की बात करते हुए व्यक्ति को नकार रहा था। और व्यक्ति को इस रूप में नकारना ये अज्ञेय जैसे व्यक्ति को ठीक नहीं

लग रहा था। इसलिए 'नदी के द्वीप' में उन्होंने अपना सारा चिंतन अत्यंत स्पष्ट किया है कि हम कैसे समष्टि से भी जुडे रहना चाहते हैं। व्यक्ति के स्वतंत्र अस्तित्व को बनाए रखकर जीना चाहते हैं। व्यक्तित्व का नाश करके नहीं। 'नदी के द्वीप' कविता का मुख्य स्वर यही है कि हम द्वीप हैं। हम बहना नहीं चाहते, ढहेंगे तो रहेंगे नहीं, रेत ही बन जाएँगे। हम अपना अस्तित्व बनाए रखना चाहते है। यह मार्क्सवादियों को उत्तर है। व्यक्ति के व्यक्तित्व को, उसकी अस्मिता को बनाए रखते हुए हम समष्टि की ओर देख रहे हैं। यह ज्यादा विवेकपूर्ण स्वर था।

ÃÖŸÖß¿Ö µÖÖ¤ü¾Ö - अज्ञेय की कविता का अध्ययन करने के बाद एक प्रश्न मन में उठता है कि अज्ञेय की कविता के प्रेरणा बिंदू कौन से हैं। बार-बार यह कहा जाता है कि अज्ञेय की कविता अस्तित्ववाद का आधार लेती है या अज्ञेय की कविता मनोविज्ञान का आधार लेकर चलती है।

सूर्यनारायण रणसुभे - आधार-वाधार कुछ लेती नहीं, देखिए कि किसी भी कवि की कविता आकाश से तो नहीं जन्मती। उसका अपने परिवेश के साथ, अपनी समकालीनता के साथ गहरा संबंध होता है। अज्ञेय विश्व स्तर का साहित्य पढ रहे थे। टी. एस. इलियट को पढ़ रहे थे। अंग्रेजी में जो रूसी कविता अनुवादित होकर आ रही थी उसे पढ़ रहे थे। जो भी साधन उपलब्ध थे, एक ओर से दर्शन के भी प्रभाव आ रहे थे। ये सब कुछ अपने भीतर पचाकर फिर उनकी कविता जन्म लेती है। उसके बाद समीक्षक उस पर प्रभाव ढूँढने लगते हैं। सबका जीवन ही प्रेरणा होती है। हम व्यक्तिगत रूप में जो जीवन जीते हैं वह भी प्रेरणा ही होती है। चिंतन को पढ़कर उस चिंतन पर कविता लिखना ये बात केवल हमारे यहाँ पर आई, मार्क्सवादी कविता के माध्यम से या फ्रायडवादी कविता के माध्यम से। उसके मन में अनेक चीजें आती है और वे सब जाने-अनजाने प्रेरणाएँ हो जाती हैं।

ÃÖŸÖß¿Ö µÖÖ¤ü¾Ö - अज्ञेय जी का साहित्य में जो संचार रहा विशेषतः कवि के रूप में वे जाने जाते हैं। लेकिन उसके अलावा उन्होनें उपन्यास लिखे, कहानियाँ लिखी, बहुत अच्छे निबंध लिखें, यात्रावर्णन की कुछ पुस्तकें लिखी और साथ ही कुछ ग्रंथ है समालोचना के। इस पूरे परिप्रेक्ष्य में अज्ञेय का ठोस योगदान किस क्षेत्र में हैं। और बाकी उनकी भूमिकाओं के बारे में आप क्या सोचते हैं?

सूर्यनारायण रणसुभे - मैनें पहले कहा है कि अज्ञेय ने आधुनिकता की व्याख्या करते समय वे व्यक्ति को केंद्र में लाते हैं, यह उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि है। जो व्यक्ति छूट गया था। क्योंकि प्रेमचंद की कहानियों में भी समाज और समाज में जी रहे व्यक्ति का द्वंद्व केंद्र में है। व्यक्ति के साथ - साथ अप्रत्यक्ष रूप से जाने - अनजाने में एक संवाद भी उभरता है। अज्ञेय में वैसा नहीं है। अज्ञ ेय में व्यक्ति ही उभरता है, मनुष्य ही उभरता है। चाहे उनकी कहानियाँ हो, व्यक्ति अपनी सारी सीमाओं के साथ वहाँ प्रतिबिंबित हुआ है। यह उनकी ताकत भी है उनकी सीमा भी है। और व्यक्ति के प्रति इतनी जबरदस्त निष्ठाएँ उनके मन में हैं कि बाकी बातें वे करते ही नहीं। शायद पाठकों को

यह सूचित करना चाहते हैं कि व्यक्ति ही सबकुछ होता है। व्यक्ति के माध्यम से ही समाज आता है। व्यक्ति के माध्यम से बाकी सभी चीजें आती है। इसलिए अब तक हम गलत दृष्टि से गए, समाज से व्यक्ति की ओर आए, ऐसा नहीं है। व्यक्ति ही सबकुछ है। उसका चित्रण मतलब समकालीन जीवन का चित्रण ऐसा लेते हैं। इसलिए दृष्टिकाण में अंतर है और उनके सारे साहित्य में यही एक केंद्र है व्यक्ति। व्यक्ति और उसकी संवेदनशीलता, उसकी चिंता, उसके अंतर्विरोध आदि-आदि। कहानी में भी वहीं है, उपन्यासों में भी वही हैं और बाकी सारी चीजों में भी।

ÃÖÝÖß¿Ö µÖÖ¤ü¾Ö - अज्ञेय पर कुछ आरोप लगे हैं। समकालीन आलोचकों ने भी और बाद में सारा वाद-संवाद-प्रतिवाद हुआ। विशेषतः अज्ञेय की रचनाओं को लेकर यह बार-बार कहा जाता है कि, ये व्यक्तिवादी रचनाकार हैं। यह रचनाकार यथार्थ से पलायन कर रहा है। अध्यात्म की बातें कर रहा Æî µÖÖ ø²Ö²ÖÖ ´Ö ^»Ö–ÖÖ Æî†Ö Æî…

सूर्यनारायण रणसुभे - पहली बात तो यह है कि, मैं ये सारी बातें पहली बार सुन रहा हूँ। मैंने पढ़ा भी नहीं है। उनकी किसी भी रचना में रहस्यवादी स्वर कहीं पर नहीं है। ठोस यथार्थ है। दूसरी बात उनकी कहानियाँ समकालीन जीवन से इतने गहरे रूप में जुड़ी हैं कि उन पर यह आरोप लगाना रोमांटिकता या पलायन का, उनकी कहानियों के प्रति अज्ञान घोषित करता है। क्योंकि उन्होंने देश विभाजन पर दस से अधिक कहानियाँ लिखी है। उनकी कुछ कहानियाँ क्रांतिकारी व्यक्तियों से संबंधित हैं और यह बहुत आश्‍चर्य है। वे खुद क्रांतिकारी थे। बम बनाना- वगैरह, तो जो व्यक्ति क्रांतिकारियों को लेकर लिख रहा है, उसके समर्थन को लेकर लिख रहा है और जिनकी कहानियाँ अपने समय के साथ गहरे रूप से जुड़ी है। उसे पलायनवादी कहना उनके साहित्य के प्रति अज्ञानता का दर्शन कराता है।

उनकी कविताओं में सूक्ष्मता है दुर्बोधता नहीं। सूक्ष्मता है जैसे-उनकी एक कविता है- 'इंद्रधनु ¸Ö¤ü Æî< µÖ'- शीर्षक पढ़ने के बाद, पहली बार जब संग्रह आया बाजार में, तब चौंक गये सब। इंद्रधनु रौंदे हुए क्या है। कुछ समझ में नहीं आ रहा था, इंद्रधनु को मनुष्य रौंद कैसे सकता है? यह प्रश्‍न है। वह तो ऊपर है आकाश में, अज्ञेय की जो सूक्ष्म सौंदर्य दृष्टि है, वह यहाँ है। सूर्यास्त के समय सूर्य की किरणें समंदर किनारे जब गिरती हैं, समंदर की रेत पर जब गिरती हैं तब वहाँ विकीर्ण होती है किरणें सात रंगों में और व्यक्ति उन पर पैर रखकर चलने लगता हैं। तो इंद्रधनु रौंदे हुए इस अर्थ में। तो है यह सूक्ष्म सौंदर्य बोध है। रेत के कण पर सूर्य की किरणें गिरना और उनमें से सफेद रंग या सात रंगो में बदल जाना और उस पर पैर रखना, यह इतनी सूक्ष्म सौंदर्य कल्पना है जो शायद ही किसी को सूझती ÆîÖ…

ÃÖÝÖß¿Ö µÖÖ¤ü¾Ö - अभी सन् 2011 में अज्ञेय का जन्मशती वर्ष मनाया गया और काफी कुछ लिखा

गया। काफी कुछ बोला गया। कल तक जो अज्ञेय को हिंदी साहित्य का ‘ x“Ö´¯ÖÖ•Öß’ कह रहे थे विशेषतः नामवरसिंह जी, जिन्होंने एक समय में बहुत विस्फोटक वक्तव्य दिया था। और वहीं नामवर जी अज्ञेय पर भाषण देने जोधपुर विश्वविद्यालय में जाते हैं। ‘अज्ञेय के काव्य में प्रकृति’ इस विषय पर भाषण देते हैं। अज्ञेय की कविता पर एक पुस्तक भी निकलवाई। इस पूरे संदर्भो को ध्यान में रखते हुए-क्या अज्ञेय का सही मूल्यांकन हुआ है?

सूर्यनारायण रणसुभे - एक तो नामवरसिंह जी की कोई भी बात, अपने समय के साथ, उस अवसर के साथ जुडी रहती। उम्र के साठ के पहले नामवरसिंह किसी विषय पर जिस गंभीरता से बोलते थे। वह सारी गंभीरता बाद में खतम हो जाती है और अवसरवादिता उनमें ज्यादा आ जाती है। इसलिए उनकी प्रतिक्रियाओं को गंभीरता से लेना ही नहीं चाहिए। क्योंकि एक उम्र तक उन्होंने बहुत ही ठोस काम किया, बुनियादी चीजें उन्होंने दी। अब उस आदमी से जिंदगी भर उम्मीदें करना ठीक बात नहीं है, यह स्थितियाँ स्वाभाविक होती हैं।

ÃÖŸÖß¿Ö µÖÖ¤ü¾Ö - प्रश्न यह था कि हिंदी का एक समीक्षक अज्ञेय को हिंदी का चिम्पाजी कहता है और वहीं समीक्षक फिर अज्ञेय को .... इस पूरे परिप्रेक्ष्य में अज्ञेय के साहित्य का समग्र मूल्यांकन हो ¯ÖÖµÖÖ Æîü...

सूर्यनारायण रणसुभे - किसी भी लेखक का मूल्यांकन किसी भी एक काल में पूरा नहीं होता, हो ही नहीं सकता। ऐसी उम्मीद ही करना बहुत गलत है। प्रत्येक काल के लोग अपने काल के अनुरूप उस कवि की कविताओं को पढ़ते रहते हैं। और अगर उन्हेंअपने समकालीन जीवन में उससे से कुछ प्राप्त होता होगा तो वे उसे श्रेष्ठ या प्रासंगिक वगैरह-वगैरह विशेषण लगाते हैं। अगर नहीं मिल रहा है तो फेंक देते हैं। इसलिए क्या ठीक मूल्यांकन हुआ इस प्रकार का प्रश्न करना बेमानी है। क्योंकि किसी भी कवि का मूल्यांकन किसी एक काल में नहीं होता। वह हो भी गया तो पूर्ण नहीं होता। अगली पीढ़ी और नए आयाम जोडती रहती है। इसलिए मूलतः प्रत्येक पीढ़ी की अपनी समझ पर यह निर्भर करता है। जैसे कालिदास को उस काल के कवि समझ पाए क्या? संस्कृत के भारवी तो कहते हैं कि कभी तो किसी काल में मुझे कोई रसिक मिलेगा। उसका तो यह दुख था कि मुझे कोई समझ नहीं पाया। प्रत्येक कवि का अपने काल के प्रति असंतोष होता ही है। इसलिए जिस काल में तुकाराम की कविता का बहुत विरोध हुआ, बाद की पीढ़ी ने उसको सबसे ज्यादा सिर पर लिया। अज्ञेय का मूल्यांकन प्रत्येक पीढ़ी अपनी पद्धति से करेगी। और प्रत्येक पीढ़ी को अपने काल की चिंताएँ उसमें दिखाई देने लगेगी तो उनके लिए वह श्रेष्ठ कवि होगा। नहीं दिखाई देगी तो नहीं होगा।

ÃÖŸÖß¿Ö µÖÖ¤ü¾Ö - अज्ञेय के संबंध में महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि अज्ञेय के बाद की जो हिंदी कविता है क्या अज्ञेय को ग्रहण कर आगे बढ़ रही है?

सूर्यनारायण रणसुभे - बहुत आगे बढ़ रही है। एक तो अज्ञेय की देन भाषा के क्षेत्र में अधिक रही है। उसी भाषा को बाद की पीढ़ी ने स्वीकार किया। अज्ञेय ने जिन पारंपारिक रूपकों, अलंकारों, उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं को नकारा था बाद की पीढ़ी ने उसमें और अधिक वृद्धि की। और नई उपमाएँ और नए अलंकार और उत्प्रेक्षाएँ विकसित हुई। अज्ञेय की विषय वस्तु का और अधिक विस्तार बाद की पीढ़ी ने किया। इसलिए हिंदी की कविता अज्ञेय के बहुत आगे गई। जैसे-मुक्तिबोध की कविता, यह अज्ञेय की चिंतन भरी कविता से बहुत आगे चली जाती है और अधिक सूक्ष्म चिंतन में चली जाती है। इसलिए जो भी क्षेत्र आप देखेंगे वहाँ अज्ञेय के ही कारण हम और आगे बढ़ गए। ऐसा नहीं कि अज्ञेय आज भी आगे हैं। अज्ञेय को आत्मसात कर या उनको नकारकर हिंदी कविता आगे बढ़ी है। क्योंकि नकारने से भी कविता आगे बढ़ती है। जैसे- पारंपरिक मराठी कविता को नकार कर ही दलित कविता का जन्म होता है। नकार में भी एक सृजन का स्वर होता है। इसलिए अज्ञेय के बहुत आगे गई है कविता और इसीलिए अज्ञेय का महत्त्व है। अगर किसी भाषा में, कोई कवि ऐसा है जिसके आगे अब तक कविता नहीं गई हो तो इसका मतलब बाद की पीढ़ी सृजन के क्षेत्र में नपुंसक रही। वह उसको आगे नहीं ले जा सकी यह उसकी कमी है।

ÃÖŸÖß¿Ö µÖÖ¤ü¾Ö - अज्ञेय के संबंध में एक मोह समीक्षकों को होता रहा है कि अज्ञेय और मुक्तिबोध को आमने - सामने खड़ा किया जाता है। विशेषतः नामवरसिंह जी ने 'कविता के नए प्रतिमान' ´Ö अज्ञेय को खारिज किया है और मुक्तिबोध कितने बड़े कवि है, ये दर्शाने की कोशिश की है...

सूर्यनारायण रणसुभे - एक तो विचारधारा का ही अंतर है। नामवर जैसे मार्क्सवादी जब तक अज्ञेय को नकारेंगे नहीं तब तक मुक्तिबोध को उभार नहीं सकेंगे।अज्ञेय मार्क्सवाद के विरोधी थे। अज्ञेय व्यक्तिवादी थे। अज्ञेय समष्टि चिंतन के खिलाफ थे। इसका मतलब अज्ञेय समता, मानवता के विरोधी थे ऐसी बात नहीं। तो मुक्तिबोध का बडप्पन अगर बताना है तो अज्ञेय को कटघरे में खडे करने की वैसे कोई जरूरत नहीं। परंतु कई बार तुलना से बात अधिक स्पष्ट होती है। इसलिए ये बात आती है। क्योंकि मुक्तिबोध अज्ञेय से व्यक्तिवाद लेते हैं और पूरी गहराई से लेते हैं। और व्यक्तिवाद को लेकर वे मार्क्सवाद का आख्यान या मार्क्सवाद की स्थापना करते हैं। '†¬Ö¸ü ´Ö' एक व्यक्ति का ही द्वंद्व है पूरी तरह से। परंतु व्यक्ति का द्वंद्व समष्टि की ओर ले जाता है। इसलिए ये तो अपने-आप में स्पष्ट है कि मुक्तिबोध अज्ञेय के और आगे निकल गए हैं, निश्चित ही। और मुक्तिबोध अज्ञेय की ही खोज हैं।

ÃÖŸÖß¿Ö µÖÖ¤ü¾Ö - चूँकि आप मराठी और हिंदी के चिंतक रहे हैं। अज्ञेय और मर्ढेकर के संबंध में तुलनीय स्थितियों के बारे में बताएँ?

सूर्यनारायण रणसुभे - एक तो दोनों के व्यक्तित्व में जमीन-आसमान का अंतर है। अज्ञेय अत्यंत

समृद्ध परिवार से रहे। उनके पिताजी अर्कियोलॉजी के डायरेक्टर थे वह भी अंग्रेजों के जमाने के। बड़े-बड़े शहरों में वे घुमते रहे। बचपन में अज्ञेय को किसी चीज की कोई कमी नहीं थी। कमी थी तो प्यार और स्नेह की, क्योंकि एक ओर पिता डायरेक्टर अंग्रेजों के जमाने का, बीस-बीस कमरे का घर, दूसरी ओर माँ पढ़ी लिखी, उसके यहाँ समय है नहीं। पिता के पास तो समय ही नहीं है। एक छोटी दूर की बहन जिससे उनके जो भी भावनात्मक संबंध रहे हो इसलिए वे एकांतप्रिय हो गए। इसके ठीक उलटे मर्ढेकर का है। अज्ञेय क्रांतिकारी भी रहे। देश को स्वतंत्र करने के लिए घर छोड़ दिया। बम बनाने का प्रयत्न किया। पकडे गए, फाँसी की सजा हुई। और फाँसी की कोठरी से ही उनके एक उपन्यास की शुरूवात होती है। बाद में किसी की सहायता से मुक्त हो गए। उनके निर्णय उनके अपने निर्णय होते थे। मर्ढेकर सामान्य मध्यवर्ग में जन्म लेते हैं। उनमें महत्त्वाकांक्षा बहुत थी। मर्ढेकर जी के सामने बहुत बड़े प्रश्न थे। उनका सपना था कि आई.ए.एस. अधिकारी बने, इसलिए वे इग्लैंड गए। दो बार फेल हुए। भयंकर निराश हुए। नैराश्य, विफलता, वैवाहिक जीवन सफल नहीं रहा। और फिर मजबूरी से वे आकाशवाणी में आए। इसलिए उनका जीवन जो है पूरी विफलता का है, निराशा का है। और कोई क्रांतिकारी निर्णय उन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन को लेकर नहीं लिए थे। एक बात में दोनों में समानता है। दोनों का वैवाहिक जीवन असफल रहा। मर्ढेकर के वैवाहिक जीवन को लेकर, मराठी में कुछ भी स्पष्ट नहीं लिखा गया। जिस विजया राजाध्यक्ष ने दो खण्डों में उन पर काम किया है वे इस पर मौन हैं। पहली पत्नी से क्यों अलग हो गए? वे डायव्हर्स क्यों हुआ था, नहीं मालूम। दूसरी पंजाबी औरत थी। उससे एक लडका भी हुआ है। जो आज आई.ए.एस अधिकारी है। परंतु वह अपने बाप से संबंध बताना नहीं चाहता। इसलिए उनमें एक ही बात में समानता है। अज्ञेय में जो सौंदर्य बोध है जो सूक्ष्मता है जो चिंतन है गहरा, वह मर्ढेकर में नही हैं। मर्ढेकर शहरी जीवन के प्रॉडक्ट हैं मूलतः। अज्ञेय भी शहरी जीवन से संबंध रखते हैं। परंतु उनके लेखन में जो गांव आते हैं, कहानियों में आते हैं, उसका कारण यह हैं कि अज्ञेय क्रांतिकारी रहे। फिर इनकी इच्छा हुई कि मिलिट्री का जीवन देखें। फिर द्वितीय महायुद्ध में मिलिट्री में गए। कॅप्टन पद पर थे। जबरदस्त ¾µÖÛŒÜÖÜ¾Ö £ÖÖ… 'हीलीबोन की बत्तखें' उसी समय लिखी गई। जब भटकते थे, अज्ञेय ने गाँव का जीवन बहुत निकटता से देखा है। वैसे भी भटकने वाले व्यक्ति कहीं पर भी भटकते हैं। और वे महीनों भटकते। पैसों की कोई कमी नहीं थी। किसी बात की कोई कमी नहीं थी। दूसरी बात अज्ञेय बहुत कम बोलते थे यह सच है। परंतु जिसको मराठी में 'माणुसघाणे ' कहते हैं, वैसे वे नहीं थे। मर्ढेकर किसी से बोलते नहीं थे वे 'माणुसघाणे' थे। किसी से संपर्क ही नहीं करते थे। चार लोगों में बैठे हैं ऐसा कभी नहीं हुआ। उनके कमरें में कोई दस मिनट से ज्यादा नहीं बैठते थे। क्योंकि वे बात ही नहीं करते थे। दो-तीन शब्दों में उत्तर देना, खतम। तो दोनों के व्यक्तित्व में यह भी तो अंतर है। भयंकर निराशा

थी मर्ढेकर में, यह घोर निराशा व्यक्तिगत जीवन से आई। उन्होंने उसको महानगरीय जीवन से जोडा। व्यक्ति की क्षूद्रता का अहसास मर्ढेकर को बहुत है। ‘तू एक मुंगी, मी एक मुंगी - मुंगीस मुंगी’- †£Ö¾ÖÖ ‘x¯Ö¯ÖÖŸÖ ´Ö»Ö †Ö»Ö ^¤ß¸’- ये सभी मनुष्य के ही प्रतीक हैं। मनुष्य की क्षुद्रता का चित्रण मर्ढेकर ने किया, अज्ञेय में कहीं पर भी नहीं। अज्ञेय मनुष्य को क्षूद्र नहीं कहते। महानगरीय जीवन और मशीनी संस्कृति का संकट जरूर बताते हैं। मनुष्य कितना असहाय हुआ है, इसको बताते हैं। मनुष्य कितना जहरीला हुआ है, इसको वे बताते हैं। मनुष्य की सीमाओं को बताते हैं। परंतु मर्ढेकर की तरह उसको क्षुद्र नहीं कहते। दोनों में यहअंतर है।

ÃÖŸÖß¿Ö µÖÖ¤ü¾Ö - दोनों रचनाकार, अज्ञेय और मर्ढेकर की रचनाओं में व्यक्त भाषा की, शैली की, शिल्प की तुलना कैसे करेंगे?

सूर्यनारायण रणसुभे- दोनों ने भाषा के प्रति विद्रोह किया, पारंपारिक भाषा से। नए शब्दों का उपयोग किया। अज्ञेय संस्कृत की ओर गए। संस्कृत के बहुत ही सूक्ष्म शब्द, बहुत ही सुंदर शब्द †Ö¸ ¤¿Ö•Ö ¿Ö²¤ ³Öß ²ÖÆŸÖ »ÖÖ<… ‡ÃÖx»Ö< ‘अब मैं तुम्हें चंपा की कली नहीं कहूँगा, अब मैं तुम्हें कलगी बाजरे की कहूँगा।’ सारी ग्रामीण शब्दावली उठा लाते हैं। मर्ढेकर में यह कहीं नहीं मिलेगा। क्योंकि मर्ढेकर का गाँव से और देशज भाषा से संबंध ही नहीं है। पुणें में स्थायिक हुए। विदर्भ में कहीं तो जन्म, पुणें में पढ़े, मुंबई, इन तीन शहरों के बाहर नहीं। अलबत्ता मर्ढेकर अंग्रेजी शब्द ले आए। अंग्रेजी शब्दों को तोड फोड के शब्दों का प्रयोग किया वगैरह। और मुझे ठीक से याद नहीं आ रहा। परंतु कहीं-कहीं पर उनमें देशज शब्द हैं। मजदूरों में प्रचलित, मुंबई के मजदूरों में जो ग्रामीण शब्द उनको मिले। उनकी जो एक प्रसिद्ध कविता है- ‘उठा-उठा आता गिरणोदय झाला’ ´Ö¸ÖŠß ´Ö अरूणोदय पर बहुत कविताएँ हैं। ‘आता गिरणोदय झाला’ ये शब्द अपने-आप में विलक्षण है। क्योंकि शहर का आदमी गिरनी की आवाज होने के बाद उठता था। उसका सूर्य से संबंध नहीं था। गिरनी की आवाज सुनता था। जब उन्होंने यह लिखा,‘¯ÖŒ“Ö¸»Ö»Öß ¸Ö¡Ö ÃÖÖ¸ß…’ तो अत्रे ने उस पर एक लेख लिखा। ‘¯ÖŒ“Ö¸’ ये मूल अंग्रेजी का शब्द, उसका मराठीकरण कर रहे हैं। ये हास्यास्पद कर रहे हैं वगैरह-वगैरह। तो बहुत ही टूट पडे उन पर। तो मर्ढेकर ने उत्तर दिया कि, उसके लिए शब्द बताइए आप। क्योंकि उनको कहना यह था कि घनी रात है भयंकर। बीच-बीच में कहीं तारे चमक रहे हैं। जैसे एक टायर है और बीच-बीच में उसमें छेद हो और टायर में से देखे तो कहीं कहीं सफेद दिखता है। तो यह उनको कहना था- ‘¯ÖŒ“Ö¸»Ö»Öß ¸Ö¡Ö ÃÖÖ¸ß…’ सटीक बिंब वे ले लाए। उन्होंने मानवीकरण बहुत किया है ‘±ú»ÖÖ™ü ¤Ö¤Ö, ±ú»ÖÖ™ ¤Ö¤Ö’ ये उनकी बहुत प्रसिद्ध कविता है। फलाट - दादा - फलाट दादा, रेल प्लॅटफार्म पर यह कविता है।

ÃÖŸÖß¿Ö µÖÖ¤ü¾Ö - अज्ञेय की कविता सूक्ष्म सौंदर्य बोध को व्यक्त करती है, लेकिन मर्ढेकर की

कविता पर एक आरोप लगाया गया है कि यह दुर्बोध है...

सूर्यनारायण रणसुभे - यह आरोप तो दोनों पर भी लगा है। दुर्बोधता का ऐसाआरोप वह पीढ़ी लगाती है जो पारंपारिक कविता के मोह से मुक्त नहीं हो पाती। जिसकी समझ पारंपारिक कविता में इतनी गहरी है कि वे वैसी ही भाषा चाहते हैं। वैसी ही समझ चाहते हैं। परंतु प्रत्येक काल के अनुसार संवेदनाएँ बदलती है और भाषा बदलती है। तो उसको ग्रहण करना चाहिए। जैसे दलित कविता जब आई तब मध्यवर्गीय ब्राह्मण समाज को वह बहुत कठिन लगी। क्योंकि उसके शब्द ही उनको नहीं मालूम। एक ने तो लिखा कि दलित साहित्यकारों को अंत में शब्द सूची देनी चाहिए। शब्दकोश और उसके अर्थ देने चाहिए, हमको उसका अर्थ ही नहीं लगता। उनके लिए वह दुर्बोध है। क्योंकि उन्हें उस जीवन का संदर्भ ही नहीं मालूम। तो ये दुर्बोधता जो है यह विशिष्ट समय की है। उसका जो आकलन करते हैं, उसके लिए सहज है। इसलिए ये सापेक्ष शब्द है।

ÃÖÝÖß¿Ö µÖÖ¤¾Ö - सर, मर्ढेकर के संबंध में, विशेषतः उनके सौंदर्यशास्त्र पर मराठी में काफी चर्चा हुई और काफी लिखा भी गया। मराठी में एक ऐसा वर्ग है जिसने मर्ढेकर के सौंदर्यशास्त्र को सिर पर उठाया। तो दूसरा ऐसा वर्ग है जिसने उनके सौंदर्यशास्त्र को पूरी तरह से नकारा। तो इन दोनों वर्गों की मान्यताओं के बारे में आप क्या कहना चाहेंगे?

सूर्यनारायण रणसुभे - नहीं, इस पर मैं कोई टिप्पणी नहीं कर पाऊँगा। क्योंकि सौंदर्यशास्त्र के संबंध में मैं अधिक नहीं जानता। अज्ञेय ने सौंदर्यशास्त्र पर अलग से कुछ नहीं लिखा है। मर्ढेकर ने लिखा है। परंतु यह सच है कि मर्ढेकर एक वर्ग विशेष के ही प्रतिनिधि थे। इसलिए उनकी अपनी सौंदर्य कल्पनाएँ कुछ अलग रही होंगी।

ÃÖÝÖß¿Ö µÖÖ¤¾Ö - सवाल यह है कि, जैसे -अज्ञेय की काव्य परंपरा को लेकर उनके बाद के कवि उनका अनुकरण करते हैं, उस परंपरा को आगे बढाते है। ठीक उसी ढंग से मराठी में हुआ है क्या?

सूर्यनारायण रणसुभे - ÆÖ, Æ†Ö Æ… ¯Ö. ×¿Ö. 'रेगे वगैरह अति सूक्ष्म सौंदर्य के कवि के रूप में आते हैं। वैसे नारायण सुर्वे' भी मर्ढेकर का ही विस्तार है। क्योंकि महानगरीय चेतना मर्ढेकर ने व्यक्त की, वह मध्यवर्ग की हो या मजदूरों की। क्योंकि इसमें मजदूर भी आया है। इसमें 'गणपत वाणी विडी पितांना चावायचा नुसतिच काडी, म्हणायाचा अन् मनाशींच की ह्या जागेवर बांधिन माडी', µÖ •ÖÖ कविता आती है न तो उनमें सभी वर्ग आए हैं। नारायण सुर्वे तो मर्ढेकर को लेकर बहुत ही आत्मीयता से बोलते हैं। केशवसुत और मर्ढेकर यही दो उनके प्रेरणा स्त्रोत हैं। इसलिए मर्ढेकर को लेकर आगे गई है कविता। बहुत आगे गई है। और वैसे ढसाळ भी मर्ढेकर को मान्य करते हैं। मराठी कविता का चेहरा बदलने वाला वह व्यक्ति है। उन पर अभी तक किसी ने यह आरोप नहीं लगाया है कि वे कविता का ब्राह्मणीकरण करते हैं, क्योंकि उन्होंने मूल्य कल्पना ही बदल दी। इसलिए ऐसी

बात नहीं।

ÃÖŸÖß¿Ö µÖÖ¤ü¾Ö - एक अंतिम प्रश्न है। विशेषतः अज्ञेय के संदर्भ में, आप अज्ञेय को कई बार इलाहाबाद में मिले हैं। बाद में भी मिले। महाराष्ट्र में भी संगोष्ठी हुई थी, मुलाकात हुई थी। कुछ यादें या संस्मरण...

सूर्यनारायण रणसुभे - याद तो यह कि मैं एम. ए. में था, उनका व्याख्यान हुआ। मैंने भरी कक्षा में उठकर पूछा था कि 'शेखरः एक जीवनी' आपकी आत्मकथा है ऐसा मैं महसूस करता हूँ। आप क्या महसूस करते हैं? उन्होंने उत्तर दिया कि अज्ञेय जीवित हैं, इसलिए आप यह प्रश्न पूछ रहे हैं। इतना कहकर वे रूक गए। खतम, आगे बढ ही नहीं सकते। अच्छा जब वे निकले बाहर, एक तो उनके साथ भागना पडता था। हम हिंदीतर भाषी तीन- चार लोग मैं, शतपथी, पिल्लई वगैरह थे, जो उन्हें कई प्रश्न पूछने की इच्छा रखते थे। हम कुछ और प्रश्न भाषा के संदर्भ में पूछते, तो वे रूकते। उनकी एक बात थी। प्रश्नकर्ता जो पूछ रहा है उसकी ओर बहुत बारीकी से देखते थे। पता नहीं कि क्या चेहरे पढ़ते थे वगैरह-वगैरह। और बहुत गंभीरता से यह कहते थे कि भई एक-दो-मिनट में तो इस पर बात नहीं की जा सकती।

साक्षात्कार की तिथि : 22 ±ú¸ü¾Ö¸üß 2014

स्थान : लातूर (महाराष्ट्र)

›üÖ. ÃÖŸÖß¿Ö µÖÖ¤ü¾Ö,

अध्यक्ष, हिंदी विभाग,

शिवाजी महाविद्यालय, रेणापुर (´ÖÆüÖ¸üÖÂ™ü)

संदर्भ ग्रंथ सूची

(आधार ग्रंथ, संदर्भ ग्रंथ, कोश ग्रंथ, पत्र-पत्रिकाएँ)

I) सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'

अ) आधार ग्रंथ

आ) संदर्भ ग्रंथ

इ) कोश ग्रंथ

ई) पत्र-पत्रिकाएँ

II) बाळ सीताराम मर्ढेकर

अ) आधार ग्रंथ

आ) संदर्भ ग्रंथ

इ) कोश ग्रंथ

ई) पत्र-पत्रिकाएँ

<u>सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'</u>

अ) आधार ग्रंथ :

अ) उपन्यास :

1. शेखर : एक जीवनी, पहला भाग - उत्थान, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नयी दिल्ली, 2013
2. शेखर : एक जीवनी, दूसरा भाग - संघर्ष, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नयी दिल्ली,, 2013
3. नदी के द्वीप, अज्ञेय रचनावली, खंड - 5, संपा. डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी [illegible], 2012
4. अपने अपने अजनबी, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, 2011

2ा) कविता :

1. सदानीरा, संपूर्ण कविताएँ - 1 (1929-56), अज्ञेय, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नयी दिल्ली, 2003
2. सदानीरा, संपूर्ण कविताएँ - 2 (1957-86), अज्ञेय, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नयी दिल्ली, 2003

क) आलोचनात्मक कृतियाँ :

1) अज्ञेय रचनावली, संपा डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल , संपा. मंडल- डॉ. कन्हैयालाल नंदन, प्रो. रमेशचन्द्र शाह, प्रो. नंदकिशोर आचार्य, नौवां खंड, 2012, भारतीय ज्ञानपीठ,नयी दिल्ली
2) अज्ञेय रचनावली, संपा डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल, संपा. मंडल- डॉ. कन्हैयालाल नंदन, प्रो. रमेशचन्द्र शाह, प्रो. नंदकिशोर आचार्य, दसवां खंड, 2014, भारतीय ज्ञानपीठ,नयी दिल्ली
3) अज्ञेय रचनावली, संपा डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल, संपा. मंडल- डॉ. कन्हैयालाल नंदन, प्रो. रमेशचन्द्र शाह, प्रो. नंदकिशोर आचार्य, ग्यारहवां खंड,2014, भारतीय ज्ञानपीठ,नयी दिल्ली
4) अज्ञेय रचनावली, संपा डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल, संपा. मंडल- डॉ. कन्हैयालाल नंदन, प्रो. रमेशचन्द्र शाह, प्रो. नंदकिशोर आचार्य, बारहवां खंड, 2014, भारतीय ज्ञानपीठ,नयी दिल्ली
5) अज्ञेय रचनावली, संपा डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल, संपा. मंडल- डॉ. कन्हैयालाल नंदन, प्रो. रमेशचन्द्र शाह, प्रो. नंदकिशोर आचार्य, तेरहवां खंड, 2014,भारतीय ज्ञानपीठ,नयी दिल्ली

आ) संदर्भ ग्रंथ

1. अज्ञेय : एक अध्ययन भोलाभाई पटेल, गुजरात युनिर्वसिटी, अहमदाबाद, 1983
2. अज्ञेय की काव्यतीतिर्षा, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, 2001
3. अज्ञेय, रमेशचंद्र शाह, साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली, 1994
4. अज्ञेय : कथाकार और विचारक, विजयमोहन सिंह, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2012
5. अज्ञेय और उनका कथा-साहित्य, गोपाल राय, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2010
6. अज्ञेय और अडिग के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. परिमला अंबेकर, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, 1997
7. अज्ञेय, डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, 2002

8. अज्ञेय, विद्यानिवास मिश्र
9. अज्ञेय का कवि-कर्म, रमेशचंद्र शाह, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2012
10. अज्ञेय की औपन्यासिक संचेतना, नंदकुमार राय, शारदा प्रकाशन, नयी दिल्ली
11. अज्ञेय का कथा-साहित्य, देवकृष्ण मौर्य, अतुल प्रकाशन, कानुपर, 1994
12. अधूरे साक्षात्कार, नेमिचंद्र जैन, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2002
13. अज्ञेय :विचार का स्वराज, डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल, प्रतिभा प्रतिष्ठान, नयी दिल्ली, 2010
14. अज्ञेय : अलीकी का आत्मदान, डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2011
15. अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, रामस्वरूप चतुर्वेदी, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, 2011
16. अज्ञेय : वागर्थ का वैभव, रमेशचंद्र शाह, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2012
17. अज्ञेय की आलोचना दृष्टि, राजेंद्र प्रसाद पाण्डेय, सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2011
18. अज्ञेय होने का अर्थ, डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2002
19. अज्ञेय संचयिता, संपा. नंदकिशोर आचार्य, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2001
20.आधुनिकता : संवेदना और संप्रेषण, संपा. डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2010
21.आलोचना का आधुनिक बोध, रामदरश मिश्र, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2013
22. संरचनावाद, उत्तर संरचनावाद एवं प्राच्य काव्यशास्त्र, गोपीचंद नारंग, साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली,2004
23. आधुनिकता बनाम उत्तर आधुनिकता, संपा. डॉ. संजीवकुमार जैन, वाङ्मय बुक्स, अलीगढ़, 2013
24. आधुनिक हिंदी कविता में विचार, डॉ. बलदेव वंशी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2002
25. आधुनिक हिंदी कविता, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2010
26. आधुनिकताबोध और आधुनिकीकरण, डॉ. रमेश कुंतल मेघ
27. आधुनिकता के पहलु, विपिनकुमार अग्रवाल
28. आधुनिकता के बारे में तीन अध्याय, डॉ. धर्मवीर भारती
29. आधुनिकता और सर्जनशीलता, डॉ. गंगाप्रसाद विमल
30. आधुनिकता और उत्तर आधुनिकता, डॉ. गंगाप्रसाद विमल, नयी दिल्ली, 2012
31. आधुनिक बोध, रामधारीसिंह दिनकर, 1973
32. आधुनिकता पर पुनर्विचार, अजय तिवारी, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, 2012
33. आधुनिकतावाद और साहित्य, दुर्गाप्रसाद गुप्त, सामयिक बुक्स, नयी दिल्ली, 2011

34. आलोचना और आलोचना, देवीशंकर अवस्थी,
35. आधुनिकता और हिंदी उपन्यास, इन्द्रनाथ मदान, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली 2011
36. आधुनिक हिंदी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान, डॉ. देवराज
37. आलोचक अज्ञेय की उपस्थिति, डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2011
38. आधुनिक हिंदी समीक्षा, सं. निर्मला जैन, प्रेमशंकर, साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली, 1985
39. आज और आज से पहले, कुँवर नारायण, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1999
40. आधुनिक मराठी साहित्य का प्रवृत्तिमूलक इतिहास, डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे
41. कहानी आंदोलन की भूमिका, डॉ. बलराज पाण्डेय
42. कविता की तलाश, डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2010
43. कामायनी, जयशंकर प्रसाद
44. कविता के नये प्रतिमान, डॉ. नामवरसिंह, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2013
45. कथाकार अज्ञेय, डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़, 1993
46. गद्यकार अज्ञेय तथा उनकी रचनाधर्मिता, संपा. डॉ. सतीश यादव, यश पब्लिकेशन्स, नयी x¤|»»Öß, 2013
47. धूमिल और नारायण सुर्वे का कवि कर्म, शैलजा प्रकाशन, कानपुर, 2013
48. नई कविता के प्रतिमान, लक्ष्मीकांत वर्मा
49. नयी कविता : स्वरूप और समस्याएँ, डॉ. जगदीश गुप्त
50. नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, ग. मा. मुक्तिबोध, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2008
51. शिखर से सागर तक, रामकमल राय, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 1987
52. शमशेर, संपा. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना
53. संवाद, डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय,किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2006।
54. समकालीन हिंदी कविता : अज्ञेय और मुक्तिबोध के संदर्भ में, डॉ. शशि शर्मा, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2008
55. संशय की एक रात, नरेश मेहता
56. साहित्य के नये प्रश्न, प्रभाकर श्रोत्रिय, सामयिक बुक्स, नयी दिल्ली, 2014
57. सीताकांत महापात्रा की प्रतिनिधि कविताएँ, अशोक वाजपेयी
58. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेंद्र, मयुर पेपरबैक्स, नोएडा, 1996
59. हिंदी आलोचना के बीज शब्द, डॉ. बच्चनसिंह, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2001
60. हिंदी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव, भारतभूषण अग्रवाल

पत्र-पत्रिकाएँ

1. पूर्वग्रह, अंक - 70-71

2. गोदारण, अंक - 11, संपा. आलोक सिंह

3. धर्मयुग, अप्रैल 1987

4. हंस, जून 2000, Ã÷¯ÖÖ. ¸Ö•Ö¦¡ µÖÖ¤¾Ö

5. इंद्रप्रस्थ भारती, अज्ञेय विशेषांक, संपा. प्रो. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, जुलाई-सितंबर 2011

कोश-ग्रंथ

1. साहित्य कोश, भाग- 2, संपा. डॉ. धीरेंद्र वर्मा, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 2000

2. समाज विज्ञान कोश (ई-कोश) संपा. डॉ. अभयकुमार दुबे, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी ×¾Ö¿¾Ö×¾Ö¤¡µÖÖ»ÖµÖ, ¾Ö¬ÖÖ ¡

बाळ सीताराम मर्ढेकर

अ) आधार ग्रंथ

कादंबरी -

1. रात्रीचा दिवस, मौज प्रकाशन गृह, मुंबई, 1991
2. तांबडी माती, मौज प्रकाशन गृह, मुंबई, 1991
3. पाणी, मौज प्रकाशन गृह, मुंबई, 1991

कविता :

1) मर्ढेकरांची कविता, बाळ सीताराम मर्ढेकर, मौज प्रकाशन गृह, मुंबई, 1944

समीक्षा :

1) सौंदर्य आणि साहित्य, बा. सी. मर्ढेकर, मौज प्रकाशन गृह, मुंबई, 1992
2) कला आणि मानव, बा. सी. मर्ढेकर, मौज प्रकाशन गृह, मुंबई
3) ¾ÖÖ’्मयीन महात्मता, बा. सी. मर्ढेकर, मौज प्रकाशन गृह, मुंबई

आ) संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. अर्वाचीन मराठी काव्य दर्शन, डॉ. अक्षय कुमार काळे
2. अनन्यता मर्ढेकरांची, डॉ. द. भि. कुलकर्णी, पद्‌गंधा प्रकाशन, पुणे, 2009
3. एका पीढीचे आत्मकथन, संपा. पु. शि. रेगे, मुंबई मराठी साहित्य संघ, 1975
4. कवितेतील आधुनिकवाद, डॉ. केशव सद्रे, शब्दालय प्रकाशन, श्रीरामपूर, 2013
5. कादंबरीचा आशयवेध, डॉ. आशा सावदेकर, विजय प्रकाशन, नागपूर, 2013
6. कथनात्मक साहित्य आणि समीक्षा, हरिश्चंद्र थोरात, शब्द पब्लिकेशन, मुंबई, 2011
7. कांही मराठी कविता : जाणिवा आणि शैली, डॉ. सुधीर रसाळ
8. काव्य प्रतीती, वसंत आबाजी डहाके, विजय प्रकाशन, नागपूर, 2013
9. खडक आणि पाणी, गंगाधर गाडगी, उत्कर्ष प्रकाशन, पुणे, 2003
10. धार आणि काठ, नरहर कुरूंदकर
11. परंपरा आणि नवता, गो. वि. करंदीकर
12. पुन्हा मर्ढेकर, विजया राजाध्यक्ष, मौज प्रकाशन गृह, मुंबई, 2008
13. बाळ सीताराम मर्ढेकर, यशवंत मनोहर, साहित्य अकादमी, नवी दिल्ली, 1987
14. मर्ढेकरांची कविता : स्वरूप आणि संदर्भ, खंड पहिला, मौज प्रकाशन गृह, मुंबई, 2008

15. मराठी कविता: परंपरा आणि दर्शन, संपा. डॉ. रवींद्र शोभणे, विजय प्रकाशन, नागपूर, 2006

16. मर्ढेकरांची कविता : स्वरूप आणि संदर्भ, खंड दुसरा, मौज प्रकाशन गृह, मुंबई, 2008

17. मराठी कविता : आकलन आणि आस्वाद, डॉ. नागनाथ कोत्तापल्ले

18. मर्ढेकर-सुर्वे : दोन युगमुद्रा, डॉ. अशोक नामदेव पळवेकर, सुगावा प्रकाशन, पुणे, 2008

19. मर्ढेकरांच्या कादंबऱ्या : एक शोध, डॉ. अनिल उगले, स्वरूप प्रकाशन, औरंगाबाद, 2010

20. मर्ढेकरांची सौंदर्यमीमांसा, रा. भा. पाटणकर, मौज प्रकाशन गृह, मुंबई, 2012

21. मराठीतील कथनरूपे, वसंत आबाजी डहाके, पॉप्युलर प्रकाशन, मुंबई, 2012

22. योगभ्रष्ट, वसंत आबाजी डहाके

23. साहित्य-विचार, दि. के. बेडेकर, लोकवाङ्मय गृह, मुंबई, 2011

24. साहित्यातील अधोरेखिते, म. द. हातकणंगलेकर, श्री विद्या प्रकाशन, पुणे, 2008

25. शोध मर्ढेकरांचा, विजया राजाध्यक्ष, मौज प्रकाशन गृह, मुंबई, 2009

मराठी पत्रिका

1. प्रतिष्ठान, मार्च 1993

2. ÃÖÖ×ÆüŸµÖ ÃÖ““Öß, •Ö»Ö 1993

कोश ग्रंथ

1. मराठी वाङ्मय कोश, समन्वयक-संपादक - डॉ. विजया राजाध्यक्ष, महाराष्ट्र राज्य साहित्य आणि संस्कृती मंडळ, मुंबई, खंड- चौथा, 2002

■ ■ ■